श्रीहरिः

आनन्दमय जीवन

[सुख, साहस, उत्साह और प्रफुल्लता-प्रेरक शुभ विचार]

"स्वस्थ रहने का अमूल्य तरीका"

निश्चिन्तता ही तो स्वास्थ्य सुधार की सबसे बड़ी दवा है। दिमाग से व्यर्थ की चिन्ता आयी कि काम बिगड़ा। दिमाग में व्यर्थ की बातों का अम्बार न लगने दें। जितना ग्रहण करने लायक हो उतना ग्रहण करें। दिमाग में बिना जरूरत की व्यर्थ की बातें ठहरने न दें। धीरे धीरे विचार शून्यता सध जायगी। आवश्यकता का ज्ञान आवश्यक है तो अनावश्यकता का अज्ञान भी आवश्यक है। जो जरूरी है उसे पूरा कर डालो, जो गैर जरूरी है उसे भुला डालें।

(विनोबा)

लेखक—

डा० रामचरण महेन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०

आनन्दका मार्ग

आप दुःख, चिन्ता या निराशाके गहन अन्धकारमें भटकनेके लिये नहीं जन्मे हैं, न आपको निर्जीव मुर्देके समान निर्बलता, भय, चिन्ता, कमजोरी आदि दुष्ट विकारोंका ही शिकार होना है। आपको अपवित्र विचार अस्त-व्यस्त नहीं कर सकते। जिन मार्गोंसे आपकी जीवन-शक्तिका ह्रास होता है, वे आपके लिये नही है। आप दैवी शक्तिसम्पन्न महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं। समाजमें आपका प्रतिष्ठित पद है। आपके हिस्सेमें सच्चा सुख आया है। आप एक सजीव दैवीशक्तिसम्पन्न आत्मा हैं। आपका स्वरूप सत्-चित्-आनन्दमय है। आपके कण-कणमें दिव्य प्रवाह बह रहा है। आपको इस आनन्दमय जगत्मे आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करना है। सदा विकसित पुष्पके समान खिले रहना है।

आप कभी निराश न हों; चट्टानकी तरह कर्त्तव्यमार्गपर दृढ़ रहें और आनन्दपूर्वक अग्रसर होते रहें। आनन्दमय विचारोंमें डूबे रहनेसे आरोग्य, दीर्घ-जीवन और मानस-शान्ति प्राप्त होती है; खिलखिलाकर हँसनेसे रक्तसंचालनकी गति तीव्र होकर स्फूर्ति आती है, मानसिक रोग दूर होते हैं। परमेश्वर स्वयं आनन्दमय हैं। वे प्रसन्नता और स्फूर्तिका केन्द्र हैं। आनन्दमय स्वरूपको पहचानिये और अपने आनन्दमय वातावरणका विकास करते हुए आध्यात्मिक मार्गपर आरूढ़ होइये।

जिन पाठकोंने मेरी प्रथम कृति 'स्वर्ण-पथ' से प्रेरणा प्राप्त की है, उन्हें प्रस्तुत कृतिसे जीवनको मधुर बनानेमें सहायता मिलेगी—ऐसी आशा है।

गवर्नमेण्ट कालेज, सरदारशहर (राजस्थान) —रामचरण महेन्द्र

विषय-सूची

आनन्दमय जीवन

जीवनका दिव्य अभिप्राय

तुम्हारे अंदर परमेश्वर बोलते हैं, परमेश्वर सुनते और देखते हैं। तुम्हारे अणु-परमाणुओंमें ईश्वरकी निस्सीम सत्ताका निवासस्थान है। जहाँ तुम हो, वहाँ परमात्मा हैं; जहाँ परमात्मा हैं वहाँ तुम हो। तुम्हारा जीवन तथा व्यवहार परमेश्वरके दिव्य प्रबन्धसे सुव्यवस्थित है। परमात्मा तुमसे प्रेम करते हैं, इसीलिये वे सदैव तुम्हारा मार्ग-दर्शन किया करते हैं।

तुम कभी दुखी, भ्रान्त या निराश नहीं हो सकते; क्योंकि तुम्हारे जीवनके संचालक परमात्मा हैं। परमेश्वरकी आनन्दमयी सत्तामें विकारोंको स्थान नहीं है। वह तो सरल, सुखद, निर्विकार, उदार, प्रेममय सत्ता है। परमेश्वर सत्य और शिव संकल्पमय हैं, तुम्हारे चेतन-अचेतनके साक्षी हैं। जब परमेश्वरसे तुम्हारा इतना निकटका सम्बन्ध है, तब संसारके क्षुद्र थपेड़े तुम्हें कैसे उद्विग्न, अशान्त और अप्रसन्न कर सकते हैं?

परमात्मा मङ्गलमय हैं। तुम्हारे अंदर रहकर तुम्हारे ही द्वारा वे शुभ कर्म कराते रहते हैं। तुम्हे वहीं जाना चाहिये जहाँ तुम्हारे ईश्वरीय अंश-को संतुष्टि प्राप्त हो। तुम्हें वही पवित्र दृश्य देखने चाहिये जिनसे तुम्हारे

नेत्रोंके पृष्ठ-भागमें रहनेवाले परमात्माको प्रसन्नता हो । जिसे तुम सुनते हो, वह ईश्वरकी दिव्यवाणी है । अतः तुम्हें स्नायुओं, रक्तकोषों तथा रग-रगमें दिव्य स्फूर्तिका संचार करनेवाली वाणी ही श्रवण करनी चाहिये ।

समग्र विश्वमें एक तत्त्व ही निज कार्य नाना रूपोंमें प्रकट होकर सम्पन्न कर रहा है—एक ही आत्मा, एक ही विराट् सत्य वर्तमान है । अन्य तत्त्व इसीसे जीवन-शक्ति ले रहे हैं । यह वही दैवी तत्त्व है, जिसकी ओर हम स्वतः जा रहे हैं । वही सनातन परमेश्वर है । हम परमेश्वरके पुत्रोंका कलुषिता, गंदगी, अभद्रतासे कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता । यदि आज हम संसारके माया, मोह, वासनाकी कीचडमें फँसे हुए हैं तो उसका यह अभिप्राय नहीं कि हमें कभी दैवीतत्त्वका ज्ञान ही न हो । अवश्य हमें विश्वके इस महाप्रभावशाली तथा जीवनप्रद दैवीतत्त्वका अनुभव होनेवाला है । जिस दिन हम इस दैवीतत्त्वसे अपना निकट सम्बन्ध स्थापित करेंगे, उसी दिन हमारे जीवनमें परिवर्तन प्रारम्भ होने लगेगा । वह एक नया रूप धारण करने लगेगा ।

स्विट् मार्डनने दैवीतत्त्वके सम्बन्धमें लिखा है—'हम उसी परम तत्त्वके अंश हैं । हम उससे पृथक् नहीं हैं । जो गुण ईश्वरमें हैं, वे हमें सरलतासे प्राप्त हो सकते हैं; क्योंकि हमारा आदिस्रोत वही तो है । हम पूर्ण और अमर हो सकते हैं; क्योंकि पूर्ण परमात्मासे ही हमारी उत्पत्ति है, इत्यादि बातोंका अनुभव करनेसे हमारा जीवन एक प्रकारकी अपूर्व अलौकिकतासे परिपूर्ण हो जायगा । महान् आनन्द और संतोषसे वह भर जायगा । जितना ही हम दैवीतत्त्वके साथ एकताका सम्बन्ध स्थापित करेंगे, जितने ही हम सांसारिक क्षुद्रताओं, पारस्परिक मनोमालिन्य, द्वेष, ईर्ष्यासे सम्बन्ध त्यागकर परम पितामें तन्मय हो जायँगे, उतना ही हमारा जीवन शान्तिमय, आश्वासनपूर्ण और उत्पादनयुक्त होगा ।'

सेण्ट पालकी तो यह धारणा थी कि न मृत्यु; न जीवन, न स्वर्गीय दूत, न सिद्धान्त, न शक्ति, न वर्तमान पदार्थ, न भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले पदार्थ, न ऊँचाई, न गहराई—अभिप्राय यह कि संसारका कोई भी पदार्थ तुम्हे ईश्वरीय प्रेमसे पृथक् नहीं कर सकता। तुम अपनी आत्माके सत्यको पहचानो, वह तुम्हे सांसारिक बन्धनोसे मुक्त कर देगा।

जब तुम सांसारिक चिन्ताओंसे मुक्त होते हो, तब तुम्हारी आत्मा सजग हो उठती है। आत्मा परमेश्वरका निवासस्थान है। इसमेंसे जो ध्वनि होती है वह परमेश्वरका आदेश है। परमेश्वर आत्माके द्वारा बोलता है। यदि तुम ध्यानसे सुनो तो तुम्हे निर्देश देता है। भ्रष्ट पथसे रोकता है। गलतियोपर धिक्कारता है। पाप-पथसे रोककर श्रेष्ठ पथकी ओर संकेत देता है। हमारी आत्मा निरन्तर ध्वनि किया करती है। अपने दुष्कृत्यपर जब तुम पछताते हो तो समझो कि यह परमेश्वरका ही संदेश है।

स्मरण रखो, तुम्हारी आत्मापर संसार-संग्रामका और संसारके मिथ्याडम्बरका कोई प्रभाव नहीं हो सकता। तुम संसारकी ईर्षा, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोहके वशमें इधर-उधर मारे-मारे फिरनेवाले पुतले नहीं हो। तुम अजर, अमर, नित्य और सनातन आत्मा हो। तुम सांसारिक परिस्थितियोके गुलाम नहीं हो सकते।

तुम्हारे भीतर जो प्रकाशमान तत्त्व है वह मरेगा नहीं। शरीर नष्ट हो सकता है; पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश-तत्त्व इन्हीं तत्त्वोमे विलीन हो सकते हैं, किंतु तुम्हारे भीतर रहनेवाला तुम्हारा स्वरूपभूत आत्म-तत्त्व मृत्युसे निर्भय है। मृत्युका उसपर कोई वश नहीं। मृत्यु उसे नहीं मार सकती। वह मृत्युपर भी विजय प्राप्त करता है। इस आत्मस्वरूपको पहचाननेसे मनुष्य विकराल काल-चक्रसे मुक्त हो जाता है।

जब तुम अपनी आत्माको नहीं पहचानते, तभीतक बन्धनमे समझते हो। जब तुम अपनेको शरीर नहीं, आत्मा समझोगे; अन्तरात्माकी

उच्च स्थितिमें रहोगे; वैयक्तिक क्षुद्रताओंसे ऊँचे उठकर अपने आत्म-स्वरूपको पहचान लोगे, तभी वास्तविक अर्थमें सुखी हो सकोगे। जबतक मनुष्य अपनी आत्माको नहीं पहचानता, तबतक उसे सुख, शान्ति, संतोष प्राप्त नहीं होते।

अपनी दुश्चिन्ताओंसे तुम इसलिये परेशान हो; क्योंकि तुम अपने आपको स्थायीरूपसे सांसारिक मोह-बन्धनसे बाँधे हुए हो। गृह, बन्धु-बान्धव, नाना सांसारिक वस्तुएँ तुम्हारे साथ सदैव रहनेवाली नहीं हैं। इनका सम्बन्ध क्षणिक है। इसी प्रकार इनकी चिन्ताओंका आवरण भी क्षणिक है। मोह-बन्धनके अन्धकारमें तुम्हें सदा नहीं रहना है।

इस संसारमें जन्मसे पूर्व तुम्हारा सम्बन्ध परमेश्वरसे था। उसीके तुम एक अंग थे। उस बृहत् प्रकाशपुञ्जकी एक सनातन अभिन्न रश्मि ही तुम्हारी आत्माका स्वरूप है तथा वह तुम्हारे ही शरीररूपी मन्दिरमें प्रतिष्ठित हुई। पचास-साठ वर्षके लिये इस आत्मतत्त्वकी संसारमें प्रतिष्ठा स्थापित करनेके लिये तुम्हें यहाँ भेजा गया है। जब तुम सांसारिक मोहमें आत्मसत्ता भूलते हो, तब इस दिव्य प्रयोजनको भूल जाते हो जिसके लिये परमेश्वरने तुम्हें भेजा है।

जिस तत्त्वको आत्मविश्वास कहते हैं, वह तुम्हारे भीतर बैठे हुए परमेश्वर ही हैं। आत्मविश्वास तुम्हारी शक्तिका मूल केन्द्र है। जो मनुष्य आत्मविश्वाससे सुरक्षित है, वह परमेश्वरसे सच्चा सान्निध्य प्राप्त कर चुका है। यही सत्य और बुद्धिका प्रकाश है। संसारमें जो चमत्कार देखते हैं, यह महान् आत्मविश्वासी पुरुषोंका प्रताप है। जीवनका दिव्य अभिप्राय यह है कि मनुष्य अपनी आत्माको समझे और उसीके प्रकाशमें रहकर कार्य करे।

आनन्दमय जीवन

भारतीय संस्कृति एवं जीवन-दर्शनकी मूलवृत्ति जगत्को आनन्दमय मानती है। जहाँ हम जीवको ब्रह्मका सनातन अंग मानते रहे हैं, वहाँ जगत् तथा सृष्टिके मूलमे आनन्द और कल्याणके तत्त्वोका विधान है। हमारे जीवनका लक्ष्य आनन्दकी प्राप्ति है, हम निरन्तर आनन्दकी ओर गतिमान् हैं। चरम आनन्दकी प्राप्ति हमारा लक्ष्य है। हमारे जीवनका आधार और प्रयोजन चरम आनन्दकी उपलब्धि है।

पाश्चात्य विचारधारा और संस्कृति भौतिकवादी आधार-शिलापर अवलम्बित है। वस्तुतः उनमें अतृप्ति, विषाद तथा निराशा है। भारतीय जीवन-दर्शनमे, हमारे साहित्य, कला और संगीतमें जीवनका जय-घोष गुंजरित किया गया है, तो दूसरी ओर पाश्चात्य साहित्यमें सस्ती भावुकता, रोमांस भौतिकवाद और दुःख-निराशाकी कालिमा बिखेरी गयी है। एक ओर आध्यात्मिक आनन्द, अनन्त सुख, आशा-उत्साह है, तो दूसरी ओर नास्तिकता और भौतिकवादका गहन अन्धकार। हमारे यहाँ मृत्युके पश्चात् भी दूसरे लोकमें आनन्दमय जीवनका विधान है। अपने जीवनपुष्पको आनन्दके वातावरणमे रखने और आशा-उत्साहके शुभ्र आधारपर खड़ा रखनेवाला भारतीय विषम परिस्थितियों तथा प्रतिकूलताओंमें भी उत्साह एवं प्रफुल्लताके दर्शन करता है।

परमेश्वर आनन्दकन्द हैं। उनके सब अङ्गोसे आनन्दकी किरणे प्रकाशित होती हैं। उनके मुखारविन्दपर आनन्दकी मधुर मुसकान है। वे सुहृद, दयालु, प्रेमी, सुन्दर, ऐश्वर्यवान् हैं। वे चारो ओर अपनी सृष्टिमें अपने इसी आनन्द-रसकी वर्षा करते रहते हैं। जब आप अपने आपको आनन्द-स्वरूप परमेश्वरका अश मानते हैं, तब दूसरे शब्दोंमे उनके आनन्दतत्त्वका अपने अंदर होना स्वीकार कर लेते है। बीजमे जो गुण होते हैं, वे ही पौधे-के रूपमे अङ्कुरित, पल्लवित, पुष्पित एव फलित होते हैं। आनन्दके पौधे होनेके कारण आपमे, आपके अणु-अणुमे आनन्द-ही-आनन्द सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। अतः ससारकी प्रतिकूलताओके होते हुए भी आपके जीवनका विस्तार सदा-सर्वदा आनन्दमें होना चाहिये।

आपके आनन्दका स्रोत हृदयमे है। मनमे जीवन, जगत् और समाज-के प्रति आपका जैसा दृष्टिकोण है, वैसा ही आपके चारो ओर प्रतिक्रिया-स्वरूप संसारमें प्रकट होता है। यदि आपने अपने आनन्दके उद्गमको बंद कर रखा है और दुःख-निराशाके रन्ध्रोंको खोल रखा है, तो निश्चय ही आपका जीवन अन्धकारमय रहेगा।

आपने अपने आनन्द तथा अधिकतम सुखका क्या आदर्श बनाया है और सतत उसकी ओर चलनेमे कितना उत्साह, आन्तरिक शान्ति, मनका संतुलन प्राप्त कर रहे है ?

आत्मिक आनन्द, उच्च विचार एवं सदुद्देश्योमे रमण करने तथा उन्हे प्राप्त करनेमे आप कितने जागरूक रहते हैं ? आपके मनमे उन्हे प्राप्त करनेके लिये कितनी निष्ठा, उद्योग एवं श्रमकी शक्तियॉ हैं ? बिना श्रमके आप न अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति कर सकते हैं, न भविष्यके लिये सुख-सामग्रीके उपादान एकत्रित कर सकते हैं। अतः मनोयोगपूर्वक श्रम करनेको प्रस्तुत हो जाइये। आनन्दपूर्वक किया गया काम न केवल जीवनमे मधुरता और उत्साहका संचार करता है, प्रत्युत वासनाओको भी दबाता है। कार्यमे

आनन्द लेनेकी वृत्ति बड़ी सुन्दर है। जगत्‌के महत्तम दार्शनिकोने श्रम-की प्रतिष्ठा की है। अपना प्रिय कार्य चुनिये तथा उसे सम्पन्न करनेमे आनन्दकी भावना सदा मनमे पुनः-पुनः लाते रहिये।

अपने आनन्दोका वर्गीकरण कीजिये और देखिये कि वे किस कोटिके हैं—

पाशविक आनन्द

क्या आप पाशविक आनन्दोके पीछे मतवाले हो रहे हैं ? पाशविक आनन्द क्या हैं ? जिन आनन्दोसे पशुओको तृप्ति मिलती है वे पाशविक आनन्द कहलाते हैं । पशुओमें तीन प्रकारके आनन्द होते हैं—१—भोजनके आनन्द, २—विषय-वासनाकी तृप्तिके आनन्द, ३—निद्राके आनन्द । पशुओंको अच्छा पेटपर भोजन प्राप्त हो जाय, विषय-वासना-तृप्ति-का सुख प्राप्त हो जाय और फिर निद्रा मिले, तो वे सबसे अधिक आनन्दका अनुभव करते हैं।

क्या आप केवल भोजन, विषयवासना-तृप्ति या निद्रामें ही सबसे अधिक सुखकी प्रतीति मानते हैं ? यदि ऐसा है तो निश्चय ही अभी पशुके स्तरसे ऊँचे नहीं उठे हैं । प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि पाशविक आनन्दोसे ऊपर उठे ।

मानवोचित आनन्द

मनुष्य बौद्धिक प्राणी है । मन उसकी अद्भुत शक्तियोंका केन्द्र है । उसके मनमे नाना शक्तियोंका संग्रह है । कल्याणद्वारा वह नये-नये प्रसगों, नये-नये भावो, कथानकों, स्थितियोका आनन्द प्राप्त करता है; भाव आनन्द-के आदिस्रोत हैं । हर्ष, उल्लास, करुणा, प्रेम, दया, सौहार्द आदि नाना भावोंमें आनन्दका अनुभव करता है । एकाग्रता, मनन, चिन्तन इत्यादि अनेक तत्त्व आनन्द प्रदान करनेवाली प्रक्रियाएँ हैं । हमे चाहिये कि स्वयं अपने मनके द्वारा आनन्द प्राप्त करें । साहित्य, कला, संगीत, ललित कलाएँ,

कविता इत्यादि हमारे सात्त्विक आनन्दके स्रोत हैं । हम चाहें तो स्वय नये साहित्यके निर्माणद्वारा सृजनात्मक आनन्द प्राप्त कर सकते हैं । वैज्ञानिक आनन्द आजके युगकी माँग हैं । नयी-नयी वस्तुओं, कलों, पुर्जों, डिजाइनों-के निर्माणमें हम आनन्द प्राप्त कर सकते हैं । संसारमें भ्रमणकर देश-विदेशकी समस्याओंके अध्ययनद्वारा आनन्दमग्न हो सकते हैं ।

उच्चतम आत्मिक आनन्द

सर्वोत्कृष्ट आनन्द परमेश्वरसे दैवी एकताका सम्बन्ध स्थापित करने, अपना सम्बन्ध किसी उच्चतम सत्तासे जोडनेमें है । प्रार्थना, ईश-चिन्तन, उपवासद्वारा आत्मशुद्धि, उच्च आध्यात्मिक साहित्यका चिन्तन, मनन और अध्ययन, सद्विचारमें रमण, सत्सङ्ग-विहार आदि वे साधन हैं जिनसे मनुष्य सांसारिकतासे छूटकर उच्च आत्मस्थितिमें प्रवेश करता है । हम जितना ही ऊँचे चिन्तनमें रमण करते हैं, उतने ही भव-मोह-बाधासे मुक्त होते जाते हैं । स्तुति, प्रार्थना और उपासना वे साधन हैं जिनके द्वारा दैवी आनन्दसे हमारा निकट सम्बन्ध स्थापित होता है और हम उच्च आत्मस्थितिमें आते हैं ।

आजका युग शिकायतोंका युग है, जिसमें हरेक व्यक्ति असंतुष्ट, अतृप्त, अधीर-सा प्रतीत होता है । लोग उन आदर्शोंके प्रति मनमें टीस लिये फिरते हैं, जो कभी प्राप्त न किये जा सके । वे उन वस्तुओं, सम्बन्धों, आनन्दों-की बात सोच-सोचकर पछताते हैं, जो कभी न मिल सकें । वे संसारके संघर्षोंसे टक्कर न ले सके, अतएव सबसे शिकायत करते और दूसरोंके नाना दोष निकालते फिरते हैं; दूसरोंकी विध्वंसात्मक आलोचना करते हैं । इस युगमें हरेक बेसुरा-सा अनुभव करता है और घोर नैराश्यके दुःख-उदधिमें डूब रहा है । यह गलत दृष्टिकोण ही हमारे दुःख और प्रतिकूलता (Maladjustments)का कारण है । हम शायद इसीलिये दुखी हैं; क्योंकि हम शिकायतें करते और दूसरोंमें दोष-दर्शनकी प्रवृत्ति रखते हैं ।

आधी आबादी बस काल्पनिक सुखकी तलाशमें है जो कदाचित् कभी वापस नहीं आयेगी। बहुतसे हाथ मल-मलकर किसी ऐसे भविष्यकी आशा लगाये बैठे हैं जिसमें सब कुछ एकाएक प्राप्त हो जायगा। आजके जीवनमें, वर्तमानमें आनन्द लेनेवाले बहुत अल्पसंख्यक व्यक्ति हैं। दुःख और प्रतिकूलताएँ तो चला करती ही हैं; किंतु उनके बावजूद तो थोड़े-से अल्प-सुख, सरल आनन्द और मस्तीके क्षण हैं। उनका रस लेनेवाले कम हैं।

आपका जीवन कितना ही कष्टकर क्यों न हो, व्यक्तिगत अथवा सामाजिक प्रतिकूलताएँ कैसी भी विषम क्यों न हों, संसारमें आपके लिये फिर भी आनन्द, सुख, यश और प्रतिष्ठा है, सच्चे मित्रोंका प्रेम है; प्रकृतिका अतुल भण्डार आपके लिये खुला पड़ा है; निद्राका मधुर मरहम है; शान्तिकी गोद है, उत्साहकी रश्मियाँ हैं, नयी-नयी वस्तुओंके निर्माण, इतिहासकी बहुमूल्य निशानियोंके संरक्षणका आनन्द है। परिवारके बच्चों तथा पत्नीके मधुर प्रेमकी प्रेरणा है; घरकी वस्तुओंकी सजावटमें आनन्द है, सगीतकी मंद स्वरलहरीमें आह्लाद है। सच मानिये, यदि विवेकपूर्ण दृष्टिसे अपनी गरीबी और बेबसीकी जिंदगीको भी आप देखेंगे, तो आपको आनन्दकी अनेक वस्तुएँ प्राप्त हो जायेंगी।

उदात्त मानवीय भावनाओंको मनमें रखना, उनके अनुसार आचरण करना, दूसरोंमें उनका विकास करना स्वयं अपने तथा दूसरोंके आनन्दकी दृष्टिका अमोघ उपाय है।

आनन्दमय जीवनके उपकरण

यदि आप अपने विचारोंको उत्थान और विकासकी ओर उत्तेजित करें तो आप अपनी वर्तमान स्थितिमें भी आनन्द और समृद्धिकी मनःस्थिति उत्पन्न कर सकते हैं। वह व्यक्ति क्योंकर आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकता है, जो नकारात्मक विचारोंके वायुमण्डलमे रहता है? आप अपने विरोधी, अपनी कमजोरी, निर्बलता, अयोग्यता, कठिनताके समस्त घातक विचारोंको मनोराज्यसे बहिष्कृत कर दीजिये।

आजसे ही केवल अपनी उन्नति और विकासके सृजनात्मक विचारोंके वायुमण्डलमें ही निवास कीजिये। यह स्वीकार कीजिये और अपने गुप्त मनमें यह बात बैठा लीजिये कि आपकी आत्माका निकट सम्बन्ध परम-आत्मा (ईश्वर) से है। । प्रेम, सौहार्द, सत्य, विवेक, संतुलन, शान्ति आदि दैवीतत्त्वके प्रकाश आपके जीवनमें अवश्यमेव होंगे। ये आपके हैं। आप सुखी, आनन्दमय जीवन अवश्य व्यतीत करेंगे। आपमें उच्चकोटिकी सृजनात्मक शक्ति है, आपमें अन्तःप्रेरणा है, आन्तरिक प्रकाश है। आपके भाग्यमें संकुचितता नहीं, विपुलता है।

मानव-जीवन सृष्टिका सर्वश्रेष्ठ जीवन है। इसकी महत्ता एक स्वरसे सबने स्वीकार की है। जब अनेक जन्मोंके पुण्यों तथा शुभ संस्कारोंके फल-स्वरूप आपको आनन्दमय मानव-जीवन प्राप्त हुआ है, तब क्यों नहीं इसका सर्वाधिक आनन्द प्राप्त करते ? आप मानव हैं, सृष्टिके सर्वश्रेष्ठ जीव हैं, अपनी मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियोंको विकसित कीजिये और भविष्यमें अधिकाधिक विकासकी सम्भावनाएँ स्वयं आपको प्रतीत हो जायेंगी।

अपनी आत्माको शान्त संतुलित रखनेके हेतु उत्तेजनाओं और क्षुद्र सांसारिकतासे बचते रहिये। जो व्यक्ति ईश्वरमें दृढ़ विश्वास लेकर जीवनमें प्रविष्ट होता है, बच्चो-जैसे निर्मल चित्तसे श्रद्धापूर्वक दैवी सत्ताके प्रकाशको मानता है, वह संसारके मोहजालसे मुक्त रहता है। ईश्वरीय आधार मिलनेसे मनुष्य आन्तरिक रूपमें आनन्दित हो जाता है।

सादा जीवन व्यतीत किया करें। अपनी आदतोंमें संयमी बनें, स्वार्थ और स्वकेन्द्र करनेकी प्रवृत्तिका परित्याग करें। जीवनमें वे ही व्यक्ति दुखी बनते हैं जिनका जीवन कृत्रिम आवश्यकताओं, व्यसनों, विलासिता, मिथ्या प्रदर्शन, झूठी शान या अभक्ष्य पदार्थोंके प्रयोगसे भरा हुआ है!

एक बार मैं तथा मेरे छः साथी प्रोफेसर चुनावके सम्बन्धमें अफसर बनाकर बाहर ग्रामोंमें भेज दिये गये। एक सज्जन स्नानके लिये गरम पानी,

शेविंगकी सुगमता, प्रातः चाय तथा बिस्कुटकी चिन्तामे थे, तो दूसरे सिगरेटके लिये उतावले थे। तीसरे नौकरको पुकार-पुकारकर उनका बिस्तर न उठाने और चेस्टर न देनेपर परेशान थे, चौथे महोदय टट्टीके लिये पानी माँग रहे थे, स्वयं नहीं लेना चाहते थे। एक महोदय बिस्तरेमे पड़े-पड़े जाड़ेकी शिकायत कर रहे थे। साराश, प्रत्येक अपने कृत्रिम जीवनकी जंजीरोंमें जकड़ा पड़ा था और तनिक-सी असुविधासे छटपटा रहा था। सुखमय जीवन मेरा था, जो नौकरके होते हुए भी स्वयं अपने पाँवो-पर खड़ा दूसरोकी सहायताको प्रस्तुत था। सादगी सबसे बढ़िया फैशन है। कृत्रिमता और बनावट सबसे अधिक दुःखदायक है।

आर्थिक समस्या आज प्रत्येक व्यक्ति और परिवारकी समस्या है। जो कुछ आप कमाते हैं, उससे कम व्यय कीजिये। सम्भव है आपको अपनी आवश्यकताएँ कम करनेमे कठिनाइयाँ प्रतीत हो। सच मानिये, आयके अनुसार अपना बजट बनाने और नियन्त्रण करनेवाला व्यक्ति ही सुखी रहता है। दृढ़ नियन्त्रण और संयमके बलपर प्रत्येक व्यक्ति कुछ बचत अवश्य कर सकता है। आपका सुख आपकी बचतपर निर्भर है—यह मत भूलिये। चाहे आज आधे भूखे रहिये, फटे वस्त्र पहनिये, टूटे घरमे रहिये, पर बचतकी योजना घरमें अवश्य रखिये। स्वयं इसपर कार्य कीजिये और अपने बच्चोंको सिखलाइये।

सृजनात्मकरूपसे विचार किया कीजिये। अपने-आपको ऐसी शिक्षा दीजिये कि आप स्पष्टतः और सचाईसे विचार कर सकें, कल्पनाके मिथ्या लोकमे न रहे। अपना मन उपयोगी योजनाओंसे परिपूर्ण रखा कीजिये। अपने मस्तिष्कके द्वारपर एक जागरूक प्रहरीकी भाँति खडे रहिये कि कहीं कोई अनिष्टकर, अहितकर घातक विचार उसमें अनजानमे प्रविष्ट न हो जाय। प्रत्येक घातक विचार आपका भयंकर शत्रु है। सावधान!

दूसरोंके समक्ष बहस या तर्कमें बातचीत तथा व्यवहारमे आत्म-समर्पणकी आदत बनाइये, ! मान लीजिये, आप किसीसे भिन्न दृष्टिकोण

रखते हैं, धर्म, संस्कृति, जाति-पाँति, शिक्षा या अन्य किसी विषयमें मत-भेद है। अब आप बातचीत करते समय अपना मत दृढ़तासे प्रतिपादन कर रहे हैं, दूसरे सज्जन भी हठसे अपनी बातपर डटे हुए हैं। दोनोंमें बहस चल रही है। कोई अपने 'अहम्' को चोट नहीं पहुँचाना चाहता। हमारा सुझाव है कि आप आत्मसमर्पण कर तनिक देरके लिये हार मान लीजिये और विरोधी व्यक्तिको प्रोत्साहित होने दीजिये। इससे दूसरा व्यक्ति अपनी विजय मानकर बड़ा प्रसन्न होगा, उसका 'अहम्' उत्तेजित हो उठेगा और वह आपका सदाके लिये मित्र बन जायगा।

आत्मसमर्पणकी आदत समाजमें मधुर और स्निग्ध सम्बन्धोंको स्थिर रखनेवाली अमृतोपम ओषधि है। अपनी हठ करनेकी आदत छोड़ दीजिये, बल्कि सम्भव हो तो स्पष्टरूपमें अपनी भूल स्वीकार कर लीजिये, दूसरोंका दृष्टिकोण देखिये, अपनेको तौलिये और व्यावहारिकता सीखिये। घर, ग्राम, मुहल्ला, अपने शहर, सब जगह ऐसे व्यक्तिका स्वागत होता है जो दूसरोंका दृष्टिकोण समझनेको प्रस्तुत रहता है। हठी, उत्तेजित होनेवाला, दम्भी; कुटिल और अहंवादीका सर्वत्र तिरस्कार होता है।

कृतज्ञ बनिये, अर्थात् जो व्यक्ति आपके लिये बलिदान करते हैं, सदा सहायक एवं हितेच्छु हैं, उन मित्रों, हितैषियों, शुभाभिलाषियोंके प्रति कृतज्ञता स्वीकार करते चलिये। सबसे अधिक कृतज्ञ परमेश्वरके प्रति रहिये; क्योंकि उनकी अनुकम्पासे आप कभी उऋण नहीं हो सकेंगे। जिन अवसरोंके कारण आप इतने समुन्नत हुए हैं उनके प्रति, उनको लानेवाले व्यक्तियोंके प्रति कृतज्ञ बनिये। आपको भगवान्‌ने कार्य करने, प्रसन्न रहने-की शक्तियाँ प्रदान की हैं, अतः उनके प्रति अपने कर्तव्योंका निर्वाह करते चलिये।

अपने स्वभाव तथा मनःस्थितियोंपर काबू रखिये। इसका आपके आन्तरिक जीवन तथा सुख—आनन्दसे निकट सम्बन्ध है। मधुर-प्रसन्न

स्वभावका व्यक्ति विकट जीवन-स्थितियोंमें भी प्रसन्न-चित्त रहता है। मुसकराहट उसके मानसिक संस्थानका एक अंश होता है।

मनःशान्ति, उल्लास और सद्भावनाकी मनःस्थितियोको विकसित कीजिये। जिस मस्तिष्कमे शान्तिपूर्वक उल्लसित मुद्रासे कार्य करनेका स्वभाव है, वह विषम परिस्थितियोंमे भी आनन्दित रह सकता है।

जीवनमे उदारता बड़ी सुखमय मनःस्थिति है। इसका विरोधी तत्त्व अर्थात् संकुचितता मनुष्योको दबाने, सीमित करने और अहंवादी बनानेवाला दुर्गुण है।

जो सुख हमें दूसरोको देनेसे प्राप्त होता है, उसे कोई भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकता है। देनेसे मन उदार बनता है और मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक, आध्यात्मिक सभी प्रकारकी शक्तियोका विकास होता है। यह दान रुपये-पैसे, श्रम, सहयोग, प्रेम आदि अनेक प्रकारका हो सकता है। यदि आपके पास धन दान देनेके लिये नहीं है, तो श्रम-दान कर दीजिये। श्रम-दान अर्थात् अपने मन, शरीर, वचन, कर्म किसी भी प्रकारके श्रमद्वारा दूसरोकी सहायता कर दीजिये। इस उदारतासे आपकी गुप्त आध्यात्मिक शक्तियोंका विकास होगा। उदारता मनुष्यके बड़प्पनका चिह्न है।

जीवनमे सदुद्देश्यसे कार्य करते चलिये। यदि आपका उद्देश्य पवित्र है तो गरीबीके जीवनमे भी सुख, शान्ति और आनन्द है। 'सब सुखी हों, सब स्वास्थ्य प्राप्त करें, सब कल्याण प्राप्त करे, सब उन्नति करते रहे'—ये ऐसी भावनाएँ हैं जिन्हे सामने रखकर कार्य करनेसे मनुष्यको आन्तरिक सुख-संतोष प्राप्त होता है। आपके जीवनका उद्देश्य आध्यात्मिक सौन्दर्यसे युक्त जीवन तथा शक्तिकी प्राप्ति होना चाहिये। यह उद्देश्य सबसे ऊँचा और कल्याणकारी है।

दूसरोंके जीवनमे दिलचस्पी लिया कीजिये। स्वकेन्द्रित होनेसे मनुष्य दूसरोका हानि-लाभ नहीं देख पाता, अपना-ही-अपना भला देखता है।

यह स्थिति बड़ी दयनीय है। जितना आप दूसरोंको देते हैं, प्रेम करते हैं और सहायता प्रदान करते हैं, उतने ही अनुपातमें आप आनन्द और सुख-शान्ति प्राप्त करते हैं।

एक-एक दिनको श्रेष्ठ और सुखी बनाइये। अर्थात् एक बारमें एक प्रकारका जीवन व्यतीत कीजिये। आपका जो सबसे आवश्यक कार्य है, जो आपको आज ही कर डालना है, उसके महत्त्वको देखते हुए पूर्ण कर डालिये। जितनी अच्छी तरह, जितनी प्रसन्नता एवं संतोषसे आपका आजका जीवन व्यतीत होगा, एक-एक करके वैसा ही समग्र जीवन बनता जायगा।

कोई विशेष रुचि रखिये। प्रकृति-प्रेम, टहलना, बागवानी, संगीत, खेल, साहित्य, कला, चित्रकारी, फोटोग्राफी, बढ़ईगिरी, विदेशी भाषाएँ सीखना, समाज-सेवा, यात्रा, लिखना-पढ़ना आदि-आदि अनेक प्रकारकी विशेष रुचियाँ हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी प्रकृति और शक्तिके अनुसार कोई भी शौकका साधन जुटा सकता है। शौकोंमें लगे रहनेसे जीवनका भार प्रतीत नहीं रहता और तनाव दूर करनेका एक साधन प्राप्त हो जाता है। अवश्य ही वे शौक आत्म-पतन करनेवाले न हों।

परमेश्वरपर जीती-जागती निष्ठा, पूर्ण विश्वास और श्रद्धा जीवनको मधुर बनानेके अमोघ साधन हैं। पूजा, भजन, कीर्तन, सद्ग्रन्थावलोकन, सत्सङ्ग-विहार वे दिव्य साधन हैं जिनसे मनुष्यका जीवन ऊँचा उठता है और वह क्षुद्र सांसारिकतासे मुक्त होकर मनःशान्ति प्राप्त करता है। ईश्वर आपके जीवनका केन्द्रबिन्दु है। उससे निरन्तर संयुक्त होने, अपना सम्बन्ध बनाये रखने, आत्मचिन्तन करनेसे जीवनमें गहराई आती है।

मङ्गलमय भविष्यकी आशा रखिये

स्मृति एवं आशा मनुष्यके मानसिक जीवनके दो पक्ष हैं। अनेक व्यक्ति वर्तमान जीवनसे असतुष्ट होकर विगत कटु-मृदु अनुभूतियोंमें डूबने-उतराने लगते हैं। कुछ वर्तमानके कठोर संघर्षका रोना रोते रहते हैं। अतीतकी चिन्ता या वर्तमानकी व्यस्तता विचारके लिये ये दोनों ही उतने उपयोगी नहीं हैं, जितना मङ्गलमय भविष्यका शुभ चिन्तन।

वर्तमान जीवनसे पलायन कर दैनिक समस्याओंसे अनायास ही मुक्ति प्राप्त कर लेना सम्भव नहीं है। वर्तमानकी विभीषिकाका सामना करना ही होगा। यदि आप उनसे पलायन करेंगे, तो सम्भव है भारी खतरेमें फँस जायँ। अतः उनमें भरपूर आत्मविश्वाससे संलग्न रहे। वर्तमान हमारे संघर्षका युग है। हम अपने पुरुषार्थको विकसित करें और डटकर इन प्रतिकूलताओंका सामना करें।

अतीत मृतप्राय है। जो समय चला गया, सो सदा-सर्वदाके लिये हाथसे गया, नष्ट हो गया। उसपर हमारा कोई वस नहीं। अतीतकालीन कष्टों एवं दुश्चिन्ताओंमें निमग्न रहना मस्तिष्ककी सूक्ष्म कार्य-शक्तियोंको पंगु कर देना है। आत्मा पुरानी स्थितिमें ही निवास करती है। पुरानी गलतियोंका रोना रोनेवाले आगे चलनेके पाँव काट डालते हैं। बीती हुई त्रुटियोंपर परेशानी हीनत्वकी आत्मभावनाको विकसित कर मनुष्यको डरपोक बना डालती है। गड़े हुए मुर्दे उखाड़नेवाले दुर्गन्धिमय वातावरण-में निवास करते हैं।

मनुष्यका मन चञ्चल है। हमारे मस्तिष्कको चिन्ताके लिये केन्द्र-बिन्दु चाहिये। उसे चाहे आप विगत स्मृतियाँ दीजिये अथवा वर्तमानका शुष्क संघर्ष; स्मरण रखिये, यदि आप उसे सोचने-विचारनेके निमित्त विचार-कण न देंगे, तो वह अतीत या वर्तमानमेंसे कोई भी चुनकर अपना भला-बुरा ताना-बाना बुनना शुरू कर देगा। चिन्तनके लिये कुछ देना आपके मानसिक स्वास्थ्यके लिये आवश्यक है।

विगत स्मृतियोमे हम मृदु अनुभूतियोके स्थानपर कटु प्रसंग अधिक याद रखते हैं। स्मृतियोंके अतुल भडारमें नाना दुःखभरी अनुभूतियाँ गुप्त मनमें संगृहीत रहती हैं। बहुत-से मानसिक अनैतिक वासनाओंसम्बन्धी प्रारम्भिक जीवनकी मूर्खताएँ, अनजानमें किये हुए पाप, दोष, दुर्व्यवहार, दूसरोका अहित, ईर्ष्या, मनमुटाव अन्तःकरणमें, स्मृतियोंकी चट्टानोंमें दबे पड़े रहते हैं। अनेक गदी वासनाओंको हमें बलपूर्वक दबाना पड़ता है, समाजके बन्धनका ध्यान रखना पड़ता है। अतीतकी दबी हुई पीड़ा, कष्ट, दुःखद प्रसग, गलतियॉ जितनी भुला दी जायँ उतना ही श्रेष्ठ है। मानसिक स्वास्थ्यके लिये उन्हें कब्रमे दफना देना ही स्वास्थ्यप्रद है।

आपका मन यदि इन्हीं गलतियोमे निहित रहेगा तो ये भूलें या वेदनाएँ परिवर्तित, संक्षिप्त, सम्मिश्रित और रूपान्तरित होकर आपके वर्तमान मधुर जीवनको कड़वा बना देगी। आपका वर्तमान उस काली छायामें दिल तोड देगा और वर्तमानकी फुलवारी सूख जायगी।

अतीतके दुःखोको याद करनेवाले व्यक्तिके मनमे एक गुपचुप भय, शङ्का, वेदना सदा बनी रहती है। ऐसे व्यक्ति मिथ्या भय, ईर्ष्या, क्रोध, वासना या वैरकी जटिल मानसिक ग्रन्थियोसे पीडित रहते हैं।

मस्तिष्ककी उन्नति, स्वास्थ्य, ताजगी और उर्वरा-शक्तिको बनाये रखनेके लिये यह आवश्यक है कि आप मङ्गलमय समुन्नत भविष्यकी आशा रखिये। उत्तम भविष्यपर मनको केन्द्रित करनेसे नव-प्रकाश, नव-स्फूर्ति, नयी-नयी कल्पनाएँ जाग्रत् होती हैं। मनुष्यकी कार्यशक्तियोंमें अभूतपूर्व उन्नति होती है। आशाके सुनहरे प्रदेशका स्पर्श पाकर मनुष्य द्रुतगतिसे अग्रसर होता है।

भविष्य उत्तम है। आगे हमारे सुख एवं समृद्धिका समय आ रहा है। हमारे आनन्दके दिन अब आ गये हैं; दुःख-क्लेश, परस्परविरोधी इच्छाएँ, प्रतिकूलताएँ समाप्त हो चुकी हैं; अब तो चारो ओर आनन्द ही है। हमारे आगे यश, प्रतिष्ठा एव प्रेमका सुरम्य प्रदेश खुल गया है। आनन्द ही हमारा सच्चा स्वरूप है। हमारा भविष्य ही चातुर्दिक उन्नति

लिये शानसे चला आ रहा है—मनको इस प्रकारकी स्वास्थ्यदायक भावनामे सराबोर रखना उन्नतिके लिये बड़ा उपयोगी है। ऐसे संकेत निरन्तर देनेसे हम अपनी शक्ति एवं सामर्थ्यकी वृद्धि करते हैं।

हम जितना ही अपनी शक्तियोंसे माँगते हैं, उतना ही अधिक हमें मिलता है। आशामे जितनी सचाई और आत्मविश्वास होता है, वह उतनी ऊँची होती जाती है। अन्तमे यह आशावादिता हमारे स्वभावका एक अङ्ग बन जाती है।

भविष्यकी शुभ आशाओंमे ऐसा जादूभरा संदेश छिपा है, जो हमारे मनमे, शरीरके अङ्गोंमें, अणु-अणुमे, रक्तमें स्फूर्ति एवं नवशक्ति भर देता है। हमारा मुखमण्डल पौरुष एवं ईश्वरीय तेजसे देदीप्यमान हो उठता है।

वह व्यक्ति धन्य है, जो अपने पुराने अनुभवोके बलपर विवेक-बुद्धि एवं निज शक्तिको देखकर अपने भविष्यकी कल्पना करता है। भविष्यकी आशा जरूर कीजिये, किंतु सावधान! ऐसी ऊँची-ऊँची असम्भव कल्पनाओंमें मत डूब जाइये जो कभी पूर्ण न हो, या जिनतक आपकी शक्तियाँ न उठ सके। अपने वर्ग, स्तर और योग्यताओके अनुसार आप भविष्यको उज्ज्वलतर बनानेकी शुभ भावनाएँ करे।

हमारी आशाकी, सुखकी, आनन्दकी भावनाको कोई नहीं छीन सकता। भविष्यमें उन्नति करनेकी भावना, प्रसन्न रहनेकी भावना, अधिक-से-अधिक परिश्रम कर समुन्नत होनेकी भावना—ये मनुष्यको ऊँचा उठानेवाली जीती-जागती शक्तियाँ हैं।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

(गीता २।६५)

'चित्तके परम प्रसन्न होनेपर सब दुःखोंका नाश हो जाता है और अखण्ड प्रसन्नतायुक्त चित्तकी स्थिति बनी रहनेसे बुद्धि सुस्थिर हो जाती है।'
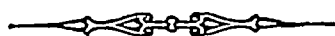
ये चिन्ताएँ

मानव-बुद्धिके विकारग्रस्त, कुण्ठित, विषादमय रूपसे उत्पन्न मैलका नाम 'चिन्ता' है। यह मस्तिष्ककी वह अवस्था है, जब मनुष्य अपने लाभ तथा उन्नतिके स्थानपर भय, कुढ़न, शक्तिहीनता, परिस्थितिकी विषमता, दैन्यका अनुभव करता है। चिन्ता किसी भी दशामें मनुष्यकी कमजोरी तथा परिस्थितिसे संघर्ष न कर सकनेका प्रमाण है।

चिन्ताएँ नाना रूपों तथा विषयोंकी होती हैं। मुख्यरूपसे हम उन्हें निम्न विभागोंमें बाँट सकते हैं—(१) शारीरिक चिन्ताएँ, (२) सांसारिक चिन्ताएँ और (३) धार्मिक चिन्ताएँ। स्थूलरूपमें यह कहा जा सकता है कि सांसारिक चिन्ताएँ सबसे अधिक लोगोंको सताती हैं। उन्हींसे शारीरिक तथा धार्मिक चिन्ताओंकी उत्पत्ति होती है। अतः सर्वप्रथम उन्हीं-पर विचार करें।

सांसारिक चिन्ताएँ

इस वर्गमें अनेक छोटी-छोटी बातें सम्मिलित हैं। सर्वप्रथम आर्थिक चिन्ताएँ हैं। आजके जीवनमें दो तत्त्व मुख्यरूपसे महत्त्वपूर्ण बन गये हैं—रुपया तथा इन्द्रिय। अधिकांश व्यक्तियोंकी समस्या भोगसे सम्बन्धित है। भोगका तात्पर्य विस्तृत वासना-जन्य सुखोंसे है। इसमें कामवासना, स्पर्श, गन्ध, सुन्दर दृश्योंको देखनेकी लालसा तथा भाँति-भाँतिके सुस्वादु पदार्थोंका उपयोग सम्मिलित है।

मानव अन्ततः एक जानवर ही है। अतः साधारण स्तरपर रहने-वाले निम्न कोटिके व्यक्तियोंको इन्द्रिय-सुख चाहिये। हम इस स्त्रीसे विवाह

करते तो कैसा अच्छा रहता ? अमुककी पुत्री कितनी सुन्दर है ? अमुक अभिनेत्री कैसा मुग्धकारी श्रृंगार करती है ? अमुककी पत्नी सामाजिक आचार-व्यवहारमें कैसी निपुण है ?—इस प्रकारकी अनेक छोटी-मोटी चिन्ता-लहरियाँ साधारण मानवीय स्तरपर रहनेवाले मनुष्योंके हृदय-सरोवरमें उठा करती हैं। वे प्रत्येक स्त्रीको ललचाई दृष्टिसे देखते हैं और हृदयमें एक प्रकारकी दलित वासनाके उभरनेका अनुभव करते हैं। इस प्रकारकी चिन्ताओंसे ग्रस्त व्यक्तियोंसे हमें दो बातें कहना है—वासनाका सुख क्षणिक है। दूसरे आकर्षक और समीप आनेपर यह काला कलूटा परम निन्द्य, अनेक अनर्थ तथा गुप्त रोगोंकी सृष्टि करनेवाला राक्षस है।

वासना-जन्य चिन्ताओंसे सावधान ! क्या तुम तरह-तरहके गुप्त रोगोंसे बचना चाहते हो ? क्या तुम समाजमें उच्च गौरवशाली प्रतिष्ठित पद, स्थिति प्राप्त करना चाहते हो ? क्या तुम अपने लिये भावी पीढ़ीके मनपर एक उज्ज्वल भाव छोड़ना चाहते हो ? यदि हाँ, तो वासनाकी चिन्ताओंको त्याग दो। प्रत्येक अभिनेत्री तुम्हारे सात्त्विक पवित्र आदर्शसे नीची है, प्रत्येक पड़ोसीकी पत्नी तुम्हारे लिये पूज्य है। तुमसे छोटी आयुकी बालिकाएँ तुम्हारे द्वारा पथ-प्रदर्शनके लिये उत्सुक हैं। क्या तुम उनका पथ-प्रदर्शन न करोगे ?

वासनाजन्य चिन्ताएँ तुम्हारी निर्बलताकी द्योतक हैं। तुमको अपनी वासनाके ऊपर विजय प्राप्त करनी चाहिये। सिनेमाके गंदे फिल्मोंको न देखो, दूसरोंकी स्त्रियोंकी ओर वासना-लोलुप दृष्टि कभी न डालो; गंदे चित्र, बुरे गाने, कुसङ्गति त्याग दो, तुम इन महा-अनर्थकारी चिन्ताओं-से मुक्त रहोगे।

यदि तुम वासनाकी तुच्छताको मनमें गहरा उतार सके तो अपनी बहुत-सी शक्तिका क्षय रोक सकोगे। रात्रिमें शय्या ग्रहण करनेसे पूर्व मनको पवित्र संकल्पोंमे निरत रखना, कुसङ्गतिसे बचना, सद्ग्रन्थोंकी प्रेरणा ग्रहण करना वासना-मुक्तिका उपाय है।

आर्थिक चिन्ताएँ

आर्थिक चिन्ताएँ आजके मानवकी बडी कमजोरी है। हरेक व्यक्ति 'अधिक रुपया चाहिये' चिल्ला रहा है। जिस किसीसे पूछिये, वही अपनी गरीबीका प्रदर्शन करता है। यथेष्ट रुपया रखनेवाले धनी-मानी व्यक्ति भी आर्थिक चिन्ताओंमे डूबे हैं।

आर्थिक चिन्ताओंकी उत्पत्तिके प्रमुख कारण इस प्रकार हैं—

(१) कृत्रिम आवश्यकताओंकी अभिवृद्धि।

(२) अपनेको दूसरोंके समक्ष बढ़ा-चढ़ाकर प्रदर्शन करना।

(३) शौककी वस्तुओं—उत्तम वस्त्र, बढ़िया मकान, कीमती भोजन, मेवा-मिष्टान्न, सैर-सपाटेका उपयोग।

(४) नशेबाजी या वेश्यागमन, गुप्त रोग, मुकद्दमेबाजी।

(५) समाजमे दूसरोंको अधिक देना-लेना, विवाह-शादियोंमें अनाप-शनाप आडम्बर और व्यय।

(६) अधिक संतानकी उत्पत्ति तथा उनकी आवश्यकताएँ जुटानेमें कठिनाइयाँ।

(७) दूसरोंको प्रसन्न करनेकी चेष्टामें व्यय।

ऊपरके प्रत्येक कारणपर विचार कर देखिये कि आप आखिर क्यों चिन्तित हो रहे हैं? व्यर्थका शौक या दिखावा छोड दीजिये। अपना वास्तविक रूप जनताके समक्ष आने दीजिये। क्या रक्खा है थोडी देरके उस आनन्दमें जो सदाके लिये आपको ऋणके बोझमें बॉध दे। उस रतिसुखमें क्या आनन्द है, जो इतने बच्चे उत्पन्न कर दे कि आप उनकी शिक्षा, विवाह और नौकरी लगानेमें ही मर मिटे? व्यर्थकी आवश्यकताएँ वे जंजीरें हैं, जो आपको दूसरोंके सामने हाथ फैलानेको विवश करती है। एक बीड़ी या दियासलाईकी सींकके लिये आप दूसरोंके सम्मुख हाथ पसारते

नहीं लजाते, कैसा दुर्भाग्य है कि चार पकौड़ी, सिनेमा, मिठाई या जुएके लिये आप दूसरेकी खुशामद करते हैं।

गरीबी बुरी नहीं है। यदि आप गरीब हैं तो वैसे ही समाजके सम्मुख रहिये। आपके गुण, आपकी शिक्षा, उच्च संस्कार, व्यवहार, मुखकी प्रसन्नता, सज्जनताका व्यवहार आपको समाजमें उच्च पद प्रदान करेगा। सज्जन व्यक्ति गरीब होकर भी प्रतिष्ठाका अधिकारी होता है।

मितव्ययता एक कला है। इसमें पारङ्गत बनकर आप आर्थिक चिन्ताओंसे मुक्त रह सकते हैं। आयको देखिये, उसीके अनुसार व्ययको कम या अधिक करते चलिये। जिस दिन आप कुछ नहीं कमाते, उस दिन भूखा रह लेना कर्ज लेकर चिन्तित रहनेसे श्रेयस्कर है।

सामाजिक चिन्ताएँ

सामाजिक आचार-व्यवहारमें नाना प्रकारकी चिन्ताएँ आपको व्यग्र करती हैं। आप अपने अफसरको प्रसन्न करना चाहते हैं। डरते हैं कि कहीं वह क्रुद्ध न हो जाय। यदि आप दूकानदार हैं तो ग्राहकोंके रुष्ट हो जानेसे डरते हैं। यदि आप अध्यापक हैं तो विद्यार्थियोंसे, वकील हैं तो अपने मुवक्किलोंसे, उपदेशक हैं तो श्रोताओंसे डरते हैं। ये चिन्ताएँ तब दूर हो सकती हैं, जब आप मनोविज्ञानका अध्ययन कर मनुष्योंके गुप्त रहस्योंका ज्ञान प्राप्त करें। स्त्री, पुरुष, ग्राहक, श्रोता, बच्चों, बूढ़ों, अफसरोंके मनमें रहनेवाले 'अहं' को समझ लें। लोग तभी आपसे क्रुद्ध होते हैं, जब आप उनके 'अहं' पर आघात करते हैं। 'अहं' को उकसाने या उभारनेसे प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न हो सकता है। आपके सामाजिक व्यवहार सरस—स्निग्ध हो सकते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति एक बंद पुस्तकके समान है। उसमें नाना अनुभूतियाँ, स्वाभाविक कमजोरियाँ दलित कामनाएँ भरी पडी हैं, वह कुछ चीजोंमे दिलचस्पी लेता है, कुछको नापसंद करता है। इन्हींका मनोवैज्ञानिक अध्ययन हमे इस प्रकारकी चिन्ताओंसे मुक्ति प्रदान कर सकता है।

मानसिक चिन्ताएँ

इनका जन्म अति भावुकता या अति विचारशीलतासे होता है। कुछ व्यक्ति इतने सुकुमार होते हैं कि तनिक-सी मानसिक चोटको भी सहन नहीं कर पाते; टीका-टिप्पणी, मजाक, आलोचना या अपने विषयमें अप्रिय बातें सुनकर आवेशमें भर जाते हैं। कुछ निराशाका ताना-बाना दिन-रात बुना करते हैं। कहीं असफलता हो गयी, उसीको लिये चिन्तित रहा करते हैं। भविष्यमें क्या होगा ? हमारी नौकरी रहेगी या छूट जायगी ? बच्चोंकी शिक्षा कैसे चलेगी ? लडकियोंका विवाह कैसे होगा ? बाजारमें महँगाई है, उदर-पूर्ति कैसे चलेगी ?—इन चिन्ताओंमें फँसे रहनेवाले व्यक्तिको जानना चाहिये कि परमेश्वरके हाथ इतने बड़े हैं कि वे उक्त सभी कार्योंकी पूर्तिके लिये उपयुक्त साधन निकाल लेंगे। हमें अशक्तता, निराशा, कमजोरीका अनुभव नहीं करना है, भविष्य उज्ज्वल है। हमारी शक्तियाँ भी तबतक इतनी बढ़ जायँगी कि हम सभी बढ़नेवाले उत्तरदायित्वोंको पूर्ण कर सकेंगे। यदि हमारे उत्तरदायित्व बढ़ते हैं तो हमारी शक्तियाँ, योजनाएँ, संचित धनराशि, समाजमें सम्मान, हमारे सम्बन्ध भी तो उत्तरोत्तर विकसित हो रहे हैं। हमारी मानसिक और बौद्धिक समस्याएँ भी तो निरन्तर वृद्धिपर हैं। हमारे मित्र, सगे-सम्बन्धी भी तो हमारी सहायताके लिये मौजूद हैं। अतः चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। फिक्र क्यों करें। आनेवाला समय हमारे लिये उज्ज्वल होगा। हमारे बाल-बच्चे बढ़कर उस स्थितिमें पहुँच जायँगे कि हमारा भार वहन कर सकें।

मनमें चिन्ता रखना फूसमें अग्निको छिपाये रखने-जैसा मूर्खतापूर्ण प्रयत्न है। चिन्ता आपके स्वास्थ्यको दग्ध कर देगी। आपका बहुत-सा हिस्सा जीनेसे नहीं, प्रत्युत चिन्ताकी महान् अनर्थकारी, प्रलयकारी दुर्वह कराल अग्निसे भस्मीभूत हो जायगा।

अपने विषयमें अधिक चिन्तन कर हम अपनी समस्याओंको हल

नहीं कर पाते । उलटे कठिनाइयोसे संघर्ष करनेवाली गुप्त इच्छाशक्तिका ह्रास करते हैं । आनेवाली कठिनाइयोंके विषयमे चिन्ता कर रही-सही शक्तियोंको भी क्षय करनेकी अपेक्षा यह युक्तिसंगत है कि उनपर स्थिरबुद्धिसे शान्तचित्त हो उनको दूर करनेकी तदबीरोंपर विचार किया जाय ।

चिन्ता न कीजिये, ठडे दिलसे प्रत्येक समस्यापर सोचिये, विचारिये । समस्याको हल करनेकी कोई युक्ति निकालिये । श्रम कीजिये । चिन्तासे क्या पायेगे ? यदि आप स्वयं नहीं सोच सकते, तो मित्रोसे, पत्नीसे, अध्यापकसे या किसी विशेषज्ञसे सलाह लीजिये । दूसरोको अपनी समस्याएँ सुलझानेका अवसर प्रदान कीजिये ।

कोई ऐसी विषम स्थिति नहीं कि उसकी सुलझाहट न की जा सके । थोड़ी-सी विचारशीलतासे कुछ-न-कुछ ऐसा उपाय अवश्य निकल आयेगा जिससे परिस्थितिकी रक्षा हो सके ।

शारीरिक चिन्ताएँ

शारीरिक चिन्ताओंमे क्रमशः होती हुई कमजोरी तथा आनेवाली वृद्धावस्था प्रमुख हैं । कुछ व्यक्ति अपनी शारीरिक निर्बलताको बढ़ा-चढ़ाकर देखनेके आदी होते हैं । यह एक प्रकारका संदिग्ध स्वभाव है ।

साधारण व्यायाम, संयमित जीवन, जिह्वापर नियन्त्रण तथा आहार-विहारमे सावधान रहनेसे अनेक शारीरिक चिन्ताएँ दूर हो सकती हैं । शङ्काकी आदत अनर्थकारी है । आपका जीवन सौ वर्षतक मजबूतीसे चलनेके लिये बनाया गया है । उसपर अत्याचार न करे तो वह मजेमें अपने-आप चलता जायगा । मिथ्या भय त्याग दीजिये । साधारण बीमारियोंसे युद्ध करनेकी प्रचुर सामर्थ्य आपमे विद्यमान है । व्यर्थके भयसे शरीर दुर्बल होता है ।

चिन्ताकी सृष्टि करनेवाले आप स्वयं ही हैं । यह आपके विचारकी आदतमात्र है । बाह्य वातावरणसे चिन्ताका कोई सम्बन्ध नहीं है । चिन्ता करके वातावरणको बदला नहीं जा सकता ।

यदि शरीरकी चिन्ता है, तो कुछ क्रियात्मक कार्य कीजिये । टहलिये, कसरत कीजिये, शुद्ध वायुमे रहा कीजिये या विश्राम लीजिये; पर व्यर्थ फिक्र-से तो कुछ होना नहीं है। योजना बनाकर चिन्ताके कारणको दूर करना ही उससे मुक्तिका उपाय है।

धार्मिक चिन्ताएँ

ईश्वर क्या है ? आत्मा तथा ईश्वरका क्या सम्बन्ध है ? मृत्युके पश्चात् क्या होता है ?—ये प्रश्न बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। इनसे मनमें सत्प्रकाशका उदय होता है। लेकिन यदि आप इनके ठीक उत्तर नहीं जानते या कोई आपको संतुष्ट नहीं कर पाता, तो कोई चिन्ता न करे। ज्यों-ज्यों आपका ज्ञान बढ़ेगा आप स्वय इनकी उपयोगिता तथा अर्थ समझते चलेंगे। धर्म अनुभवकी वस्तु है। प्रतिदिन हम धार्मिक समस्याओंके विषयमें भी कुछ-न-कुछ ग्रहण करते हैं। अतः समयसे पूर्व इन चिन्ताओंसे भी परेशान नहीं होना चाहिये। यदि हम अनुभवसे लाभ उठावे तो प्रायः सभी प्रकारकी चिन्ताओंसे मुक्त हो सकते हैं।

चिन्तापर विजय प्राप्त करनेका सुनहरा नियम

हावर्ड युनिवर्सिटीके मनोविज्ञानके प्रोफेसर विलियम जेम्सने कहा है, 'चिन्तापर विजय प्राप्त करनेका सर्वोत्तम उपाय धार्मिक विश्वास है।'

वास्तवमे आनन्दकन्द परम प्रभु, परमात्माकी भक्ति, उनका भजन-कीर्तन, प्रेमसे उनका गुणगान, सत्सङ्ग इत्यादि सत्कर्मोंमे लीन हो जाना सांसारिक चिन्ताओसे मुक्तिका सर्वोत्तम उपाय है। भक्ति ही आनन्दका वह मार्ग है, जो स्थायी एव व्यापक सुख-शान्ति प्रदान करनेवाला उपाय है। भक्त संसारको ईश्वरमय देखता है। जो व्यक्ति ससारको मैत्रीभावसे देखता है; संसारको प्रेमरूप देखता है उस मनुष्यपर ईश्वर भी प्रेमकी वर्षा करता है। प्रसन्नता, धैर्य, आशा, प्रशान्ति, श्रद्धा, प्रेम और आनन्द—इन लक्षणोंसे युक्त मनुष्यका नैसर्गिक स्वभाव होना चाहिये।

मनुष्यके सारे दुःखोका कारण यह है कि वह ईश्वरीय आदेशोंके प्रतिकूल चलना पसंद करता है। जगत्की मिथ्या वस्तुओंके प्रति व्यर्थके माया-मोहमें लिप्त हो जानेके कारण ईश्वरीय प्रेम और आनन्दका यह मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। दैवी प्रसन्नता तथा आनन्दके इस स्रोतको खोलनेसे ही उसे शान्ति प्राप्त हो सकती है।

पापग्रसित मनुष्योंको यह संसार अन्धकारमय नैराश्यसे परिपूर्ण प्रतीत होता है। जहाँपर मनोविकार एवं स्वार्थपरता है, वहींपर मानसिक नरक है। जहाँ पवित्रता और प्रेम है, वहींपर मोक्ष है।

आप ईश्वरीय अंश हैं, सतत आनन्दमय हैं। श्रुति भगवतीकी आनन्दमय वाणीमें—

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति।

आनन्दसे ही सब प्राणी जन्मते हैं और उत्पन्न होकर आनन्दसे ही जी रहे हैं। हमारी आत्माका स्वरूप आनन्द ही है। फिर शोक, चिन्ता, निराशामें डूबनेकी क्या आवश्यकता है? यदि हम पारमार्थिक दृष्टि प्राप्त कर सकें, तो अपने गन्तव्य धाम—आनन्दको प्राप्त कर सकेंगे। भक्ति ही आनन्दप्राप्तिका राजमार्ग है।

ईसा महान् कहा करते थे कि धर्मके केवल दो ही स्वरूप हैं—१—ईश्वरको पूरे हृदयसे प्रेम करना तथा २—अपने पड़ोसीके प्रति आत्मभाव रखना! वे दोनों ही तत्त्व बड़े महत्त्वके हैं।

चिन्ताके समय आप प्रार्थना करें। परमपिता परमेश्वरकी गोदमें, शान्ति और प्रेमके समुद्रमें अपने आपको अनुभव करें। जिसपर परमेश्वरकी कृपा है, जिसे परमेश्वरके प्रति श्रद्धा है, उसे चिन्ता दुखी नहीं कर सकती।

अकेला चल

महात्मा कन्फ्यूशियसने कहा है, 'महान् व्यक्ति जो चीज ढूँढ़ते हैं, वह अपने अंदर ही उन्हें प्राप्त हो जाती है, जब कि कमजोर दूसरोंका मुँह ताका करते हैं।' जीवनका आदेश है, 'मनुष्यकी दो शिक्षाएँ होती हैं। प्रथम वह जो अपने गुरुजनों या संसारसे प्राप्त करता है, दूसरी वह जो स्वयं अकेला चलकर अपने अनुभवोंसे संचित करता है।'

चाहे व्यापार हो या खेल, कानून, प्रेम या महत्ताके लिये उद्योग, आपको यह बात गाँठ बाँध लेनी चाहिये कि वह स्वयं अपने बल, बुद्धि एवं उद्योगद्वारा ही अर्जित की जा सकती है। संसारकी सर्वोत्तम शिक्षा वह है, जो मनुष्य स्वयं सतत संसार एवं समाजमें संघर्षद्वारा प्राप्त करता है। आत्मनिर्भर ही सर्वत्र पूजा जाता है। एक विद्वान्ने लिखा है, 'नौजवानो! याद रक्खो, जिस दिन तुम्हें अपने हाथ, पैर और दिलपर भरोसा हो जायगा, उसी दिन तुम्हारी अन्तरात्मा कहेगी—बाधाओंको कुचलकर तू अकेला चल, अकेला। सफलताका शीतल आँचल तेरे माथेका पसीना पोंछनेके लिये दूर हवामें फहरा रहा है।'

जिन व्यक्तियोंपर तुमने आशाके विशाल महल बना रक्खे हैं, वे कल्पनाके व्योममें विहार करनेके समान अस्थिर, सारहीन, खोखले हैं। अपनी आशाको दूसरोंमें संश्लिष्ट कर देना स्वयं अपनी मौलिकताका ह्रास-

कर अपने साहसको पंगु कर देना है । जो व्यक्ति दूसरोंकी सहायतापर जीवन-यात्रा करता है, वह शीघ्र अकेला रह जाता है। अकेला रह जानेपर उसे अपनी मूर्खताका ज्ञान होता है।

आपकी शक्ति और सुख आपमें ही है

जो अपना सुख और प्रसन्नता दूसरोंसे चाहता है, उनके सुखमें सुखी, उनकी नाराजगीमें अस्त-व्यस्त हो जाता है, वह जीवनभर दूसरोंकी गुलामीमें फँसा रहता है । दूसरोंके आदेशमें हर्ष, प्रसन्नता, घृणा, क्रोध, उद्वेगका अनुभव करनेवाला व्यक्ति उस बच्चेकी तरह है जो दूसरेकी गोदीसे उतरना नहीं चाहता ।

मनुष्यके सुख, साहस, उत्साह, प्रफुल्लताका केन्द्र किसी बाह्य सत्तामें नहीं है। बाह्य वस्तुओंकी ओर निरन्तर दौड़ना और उनसे किसी प्रकारकी सहायता या प्रेरणाकी आशा रखना मृगमरीचिकामात्र है। सोचिये आज जिस व्यक्तिकी प्रसन्नतासे आप भावी जीवनके सुख-स्वप्न निर्मित कर रहे हैं, यदि कल वह आपसे मुख मोड़ ले, अनायास ही क्रुद्ध हो जाय, या चल बसे, तो आपका सुख कहाँ जायगा ? दूसरेको अपने जीवनका संचालक बना देना ऐसा ही है, जैसा अपनी नौकाको एक ऐसे प्रवाहमें डाल देना, जिसके अन्तका आपको कोई ज्ञान नहीं ।

अकेले चलना पड़ेगा

संसारमें दो व्यक्ति एक-सी रुचि, एक स्वभाव, एक दृष्टिकोण या विचारधाराके कभी भी नहीं रहे हैं। जितने मस्तिष्क, उतने ही उनके सोचने-विचारनेके ढग, रहनेकी नाना पद्धतियाँ, पोशाक पहननेके तरीके होते हैं। भोजन सबका भिन्न-भिन्न है। एक सरल सीधी खाद्य वस्तुओंमें, सूखी रोटीमें मधुर स्वाद लेता है, तो दूसरेको मिर्च-मसालेसे परिपूर्ण नाना शृङ्गारिक उत्तेजक भोजन प्रिय है। एक ठंडा जल पीकर आन्तरिक शान्तिका अनुभव करता है, तो दूसरा बर्फसे युक्त सोडा, लेमन, शरबत, ठंडाई

या मद्यपान चाहता है। एक छः घंटे सोकर नया जीवन लेता है, दूसरा दस घंटे पलग तोडता है। सक्षेपमें, ससार विभिन्न तत्त्वों, मन्तव्यों तथा जीवन-दर्शनवाले व्यक्तिसमूहोंसे विनिर्मित किया गया है। फिर किस प्रकार आप अपनी योग्यता, अभिरुचि अथवा साम्य विचारधाराका व्यक्ति पानेकी आशा कर रहे हैं? नहीं, कदापि नहीं। आपको अपने-जैसा व्यक्ति कदापि प्राप्त न होगा! आपको जीवन-पथपर अकेले ही अग्रसर होना पड़ेगा। कोई आपके साथ दूरतक न चल सकेगा। अकेले चले चलिये।

जीवनको एक यात्रा मानिये। यात्रामें एक-दो अल्पकालीन सगी-साथी आपको प्राप्त हो गये हैं। इनसे चार दिनके लिये आप बोलते-बरतते हैं; हँसी-ठट्ठा, संघर्ष, छीना-झपटी चलती है। साथ-साथ कुछ समयतक आगे बढ़ते हैं, किंतु धीरे-धीरे उनकी जीवनयात्रा समाप्त होती चलती है। एकके पश्चात् दूसरा आपको छोडता चलता है। आपके साथ अभी छः-सात व्यक्तियोंका परिवार था। सातमेंसे छः रह जाते हैं और फिर क्रमशः आप अकेले ही रह जाते हैं। 'अरे मैं अकेला रह गया, बिल्कुल अकेला'—आपका मन कुछ कालके लिये अशान्त-सा हो उठता है। उसमें एक कड़वाहट-सी आ जाती है। पर वास्तवमें जीवनका यह अकेलापन ही मानव-जीवनका चरम सत्य है।

सबको पाकर भी हम सब अकेले हैं, नितान्त अकेले! हमारे साथ कोई भी दूरतक चलनेवाला नहीं है। जिन्हें हम भ्रम-मायावश अपने साथ चलता हुआ समझते हैं, वास्तवमें वे हमारे अल्पकालीन सहयात्रीमात्र हैं। हमारे इस अकेलेपनमें कोई भी हाथ बँटाने, दिलासा देनेवाला नहीं है। हम अकेले आये, अकेले जीवनपर्यन्त चलते रहे, अकेले ही निरन्तर बढते रहेंगे। हम अपने दोनों पाँवोंपर ही चलना है; हमें अपने दोनों हाथोंका ही सहारा हो सकता है।

नित नये-नये रूप बनाकर मनुष्य इस अकेलेपनको विस्मृत करनेका

उद्योग करता है। भीड़-भाडसे भरे हुए विशाल नगरोमे निवास करता है; सिनेमा, थियेटर, दौड, खेल इत्यादि देखता है; अपने परिवार, इष्ट-मित्रों-की संख्यामें विस्तार करता है; किंतु वह मूर्ख नहीं जानता, इस माया-चक्रसे वह स्वयं ही उलझनमें फँस रहा है। सूखी रेतसे स्निग्धताकी आशा रखता है; बालूमेसे तेल निकालना चाहता है; हवामे किले बनाना चाहता है। दूसरोके बलपर चलने, उनसे आशा, उत्साह, प्रेरणा या सहायता चाहनेका यह मायाजाल मृगमरीचिका नहीं तो क्या है ?

अकेलेपनसे भयभीत न हों !

ईश्वरीय ज्योतिके पुञ्ज मानव ! तू अकेला चल ! बियाबान जंगल अथवा भीड़-भाडसे युक्त नगर, प्रान्त सर्वत्र अकेला चल। अकेलेपनसे तुझे भयभीत नहीं होना है। महान् व्यक्ति सदैव अकेले चले हैं; और इस अकेलेपनके कारण ही दूरतक चले हैं। अकेले व्यक्तियोने अपने सहारेसे ही संसारके महत्तम कार्य सम्पन्न किये हैं। उन्हे एकमात्र अपनी ही प्रेरणा प्राप्त हुई है। वे अपने ही आन्तरिक सुखसे सदैव प्रफुल्लित रहे है। दूसरेसे दुःख मिटानेकी उन्होने कभी आशा न रक्खी। निज वृत्तियोमे ही उन्होने सहारा देखा। अपने ही पॉवोके बलपर उन्होने समग्र यात्रा पूर्ण की। अकेलेपनसे घबराना नहीं है, प्रत्युत अपने पॉवोको भार वहन करने, संघर्ष करनेके लिये पुष्ट करना है। मानव ! अकेला चल, अकेला अपनी यात्राको सफल बना।

अकेलापन जीवनका चरम सत्य है, किंतु अकेलेपनसे घबराना, जी तोड़ना, कर्तव्यपथमे इतोत्साह या निराश होना सबसे बडा पाप है। अकेले-पनसे मत घबराइये। अकेलापन आपकी निजी आन्तरिक प्रदेशमें छिपी हुई महान् शक्तियोंको विकसित करनेका साधन है। अपने ऊपर आश्रित रहनेसे आप अपनी उच्चतम शक्तियोको खोज निकालते है। जितना ही आप अपनी शक्तियोसे कार्य लेते हैं, उतना ही उनकी अभिवृद्धि

या विकास होता है। अपने हाथ, पाँव, मस्तिष्क, शरीर इत्यादिसे कार्य लेना, अपने पाँवोंपर चलना अपनी गुप्त शक्तियोंको खोज निकालना है। अतः अकेलेपनमें निराशाके लिये, कायरताके लिये, संसारसे भागकर एक कोनेमें छिप जानेके लिये कोई स्थान नहीं है। अकेले हैं, तो डरें नहीं। हतोत्साह न हों। वरं अपनी ही शक्तियोंका इस मर्यादातक विकास करें कि दूसरोंके आश्रयकी आवश्यकता न पड़े।

दूसरोंका आश्रय त्याग कर स्वयं अपनी गुप्त शक्तियाँ जाग्रत् करनेके लिये संकेत या सजेशनका प्रयोग किया कीजिये। प्रतिदिन सायंकाल अथवा प्रातःकाल शान्तचित्त हो एकान्त स्थानमें नेत्र मूँदकर दृढ़तासे निम्न वाक्योंका पुनः-पुनः उच्चारण कीजिये—

आत्मशक्ति जाग्रत् करनेके लिये संकेत

'मैं अकेला होते हुए भी शक्तिशाली हूँ। मेरे अंदर वह शक्ति है, जो स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य कर सकती है। मैं दूसरोंका अनुगामी न बनूँगा। मैं कभी दूसरोंका अनुकरण न करूँगा। मैं अपनी महत्ता और प्रतिभाका प्रभाव दूसरोंपर डाल सकता हूँ। मुझमें विशेषता है, निजी मौलिकता है। सच्ची शक्ति मेरे भीतर विद्यमान है। मुझे अपनी शक्तियोंपर पूरा भरोसा है। मैंने अकेले ही सफलता प्राप्त करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा की है। मेरी प्रतिज्ञा दृढ़ है और अटल है। उसे भगवान् अवश्य पूरी करेंगे।'

प्रलोभनके आगे न झुकिये

प्रलोभन एक ऐसा आकर्षक मोहचक्र है, जिसका कोई स्वरूप, आकार, स्थिति, अवस्था नियत नहीं है, किंतु फिर भी वह नाना रूपोमे मानवमात्रको ठगने, पदच्युत कर पथभ्रष्ट कर देनेके लिये आता है। जीवनमे आनेवाले बहुत-से मायावी प्रलोभन इतने मनोमोहक, लुभावने और मादक होते है कि क्षणभरके लिये विवेकशून्य हो अदूरदर्शी वन हम विक्षिप्त-से हो उठते हैं। हमारी चिन्तनशील सत्प्रवृत्तियाँ पङ्गु हो उठती हैं तथा हम विषय-वासना, आर्थिक, लोभ, स्वार्थ, सकुचिततावश प्रलोभनके शिकार बन जाते है। अन्ततः उनसे उत्पन्न होनेवाली हानियो, कष्टो, त्रुटियों, अपमान तथा अप्रतिष्ठासे दग्ध होते रहते है। प्रलोभन जीवनकी मृगतृष्णा है, तो बुद्धिका भ्रममोहका मधुर रूप।

लालचके रूप अनेक हैं। कभी आप सोचते हैं, 'मै धनवान् बनूॅ, ऊँचा रहूॅ, मेरे ऊपर लक्ष्मीकी कृपा रहे, इस उद्देश्य-सिद्धिके हेतु आप रिश्वत, कालाबाजार, झूठ, फरेब, कपट, हिसा करके रुपये हड़पते है। टेकेदार, ओवरसीयर, इजीनियरतक रिश्वतमे हिस्सा लेते है। रेलवे, पुलिस, चुंगी इत्यादि विभागोंमे भ्रष्टाचार इसी स्वार्थ और संकुचितताके कारण फैले हुए हैं। डाक्टर और वकील रोगी और मवक्किलोसे अधिकाधिक ऐठना चाहते हैं। बाजारमे खराब माल देकर अथवा निम्नकोटिकी वस्तुओंका सम्मिश्रण कर व्यापारी खूब लाभ कमाना चाहते हैं। सिक्केने जैसे मान-वीयताका शोषण कर लिया हो। प्रलोभनके अनेक रूप हैं—

असुक व्यक्तिकी पत्नी मेरी पत्नीकी अपेक्षा सुन्दर है। मुझे भी सुन्दर पत्नी प्राप्त होनी चाहिये। मै तो असुक अभिनेत्री-जैसी स्त्रीसे विवाह करूॅगा।

अमुक व्यक्तिका मकान सुन्दर है। अमुकके पास आलीशान कोठी, मोटर, नौकर-चाकर, सुन्दर वस्त्र, फरनीचर इत्यादि हैं। मैं भी किसी प्रकार उचित-अनुचित कैसे ही उपायोंसे ये वस्तुएँ—सुविधाएँ प्राप्त करूँ। अमुक मुझसे ऊँचे पदपर आसीन हो गया, मैं भी छल-बल-कौशलसे या रुपया दे-दिलाकर यही पद प्राप्त करूँ।

अमुक व्यक्ति बड़ा सुस्वादु भोजन खाता है, मिठाई, पूड़ी, पकवान, मेवे, दूध, रबड़ी आदि बढ़िया-से-बढ़िया वस्तुएँ नित्य चखता है। मैं भी किसी अच्छे-बुरे उपायसे ये चीजें प्राप्त करूँ। ऐसा सोचते-सोचते जैसे ही कोई तनिक-सा प्रलोभन आपको देता है कि आप बिना सोचे-समझे उसके समक्ष घुटने टेक देते हैं। रुपया, कमीशन, डाली, फल, मुफ्त सेवा, नाना उपहार ले लेना—सब प्रलोभनके ही स्वरूप हैं। इनका कोई आदि-अन्त नहीं। समुद्रकी तरङ्गोंकी भाँति आते ही रहते हैं ये।

नैतिक दृष्टिसे कमजोर चरित्रवाले व्यक्ति आसानीसे प्रलोभनके शिकार बनते हैं। जिनकी आवश्यकताएँ, विलासी इच्छाएँ, चटोरपन, अनुचित माँगें, नशे बढ़े हुए हैं, वे प्रायः प्रलोभनोंके सामने झुकते हुए देखे गये हैं। जिन्हें दान-दहेज, यात्राएँ, भौतिकता, टीपटापका शौक है, वे लालचमें फँसते हैं। कभी-कभी सहज सात्त्विक बुद्धिवाले भी दूषित वातावरणके प्रभावसे प्रलोभनोंके चक्करमें आ जाते हैं।

विषयोंमें रमणीयताका भास बुद्धिके विपर्ययसे होता है। बुद्धिके विपर्ययमें अज्ञानसम्भूत अविद्या प्रधान कारण है। इस अविद्या, क्षणिक भावावेग, अदूरदर्शिताके ही कारण हमें प्रलोभनमें रमणीयताका मिथ्या बोध होता है। प्रलोभनसे तृप्ति एक प्रकारकी मृगतृष्णामात्र है।

प्रलोभनमें मुख्यतः दो तत्त्व कार्य करते हैं—उत्सुकता एवं दूरी। ईसाइयोंके मतानुसार आदि पुरुष एडम (आदम) का स्वर्गसे पतन ज्ञान-वृक्षके फलको चखनेकी उत्सुकताके ही कारण हुआ था। उन्हें आदेश मिला था कि वे अन्य सब वृक्षोंके फलोंको चख सकते हैं, केवल उसी

वृक्षसे बचते रहें। जिस बातके लिये हमें रोका जाता है, अप्रत्यक्ष रूपसे उसके प्रति हम अधिकाधिक आकृष्ट होते हैं। अतः एडमको वर्जित फलके प्रति उत्सुकता उत्पन्न हो गयी। औत्सुक्यसे प्रभावित होनेके कारण उस फलमें रमणीयताका भास हुआ। उन्होने चुपचाप प्रलोभनके प्रति आत्मसमर्पण कर दिया। पर ईश्वरने उन्हें इसकी बड़ी कड़ी सजा दी।

जो पदार्थ, इन्द्रियोंको तृप्त करनेके नाना साधन हमसे दूर रहते हैं, जिन्हे हम दैनिक जीवनमें नहीं पाते, जिनका स्वाद हमने नहीं उठाया है, वे ही दूरी (Distance) के कारण हमें आकर्षक प्रतीत होते हैं। वास्तवमें रमणीयता किसी बाह्य जगत्की वस्तुमें नहीं है। वह तो हमारी कल्पना तथा उत्सुकताकी भावनाओंकी प्रतिच्छाया (Reflection) मात्र है। वस्तुको आकर्षक बनानेवाला हमारा मन है जो क्षण-क्षण नाना वस्तुओंपर मचल-मचलकर जाता है। नयी वस्तुकी ओर हमें बरबस खींचकर ले जाता है। कभी वह जिह्वाको उत्तेजितकर हमें सुस्वादु वस्तुओंकी ओर आकृष्ट करता है, कहीं कानोंको मधुर संगीत सुननेके लिये खींचता है। कहीं हमारी वासनाओंको उद्दीप्तकर मादक वृत्तियोंको उत्तेजित कर देता है। मनकी कोई भी गुप्त अतृप्त इच्छा प्रलोभनका रूप धारण कर लेती है। विवेकका नियन्त्रण ढीला पड़ते ही मन हमें स्थान-स्थानपर बहकाता फिरता है। अथवा विवेकपर आवरण (पर्दा, तमोवृत्ति, इन्द्रिय-दोष, बीमारी, प्रमाद) पड़ा रहनेसे बुद्धि तिरोहित हो जाती है। फलतः हम पतनकी ओर जाते हैं। हमारा वातावरण गंदा हो जाता है, हम दूसरोंको धोखा देते हैं, झूठ बोलते, ठगते हैं। विवेकपर पर्दा पडा रहनेसे ही दुष्ट पुरुष विद्याको विवादमें, धनको अहंकार और विलासमें, बलको परपीडामें लगाते हैं, निर्बलोंको सताते हैं। अतः मनपर सतर्कतासे अन्तर्दृष्टि रखनी चाहिये।

जैसे युद्ध करते समय जागरूक संतरीको यह ध्यान रखना पड़ता है कि न जाने शत्रुका कब आक्रमण हो जाय, कब किस रूपमें शत्रु प्रकट हो

जाय, उसी प्रकार मनरूपी चञ्चल शत्रुपर तीव्र दृष्टि और विवेकको जागरूक रखनेकी अतीव आवश्यकता है। जहाँ मन आपको किसी इन्द्रिय-सम्बन्धी प्रलोभनकी ओर खींचे, वहीं उसके विपरीत कार्य कर उसकी दुष्टताको रोक देना चाहिये।

न जीता हुआ स्वेच्छाचारी मन बडा बलवान् शत्रु है। वासना और कुविचारका जादू इसपर बड़ी शीघ्रतासे होता है। बड़े-बडे संयमी व्यक्ति वासनाके चक्रमें आकर मनको न रोक सकनेके कारण पथभ्रष्ट हो जाते हैं। इनसे युद्ध करना अत्यन्त दुष्कर कृत्य है। इससे युद्ध-कालमें एक विचित्रता है। यदि युद्ध करनेवाला दृढतासे युद्धमे संलग्न रहे, निज इच्छाशक्तिको मनके व्यापारोंमें लगाये रहे तो युद्धमे संलग्न सैनिककी शक्ति अधिकाधिक बढती है और एक दिन वह इसपर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेता है। यदि तनिक भी इसकी चञ्चलतामें बहक गये तो यह मनुष्यके चरित, आदर्श, संयम, नैतिक दृढ़ता और धर्म-भावनाको तोड-फोड़कर सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है।

मनको दृढ़ निश्चयपर स्थिर रखने और उसीपर एकाग्र ध्यान रखनेसे मुमुक्षुकी इच्छाशक्ति प्रबल बनती है। मनका स्वभाव मनुष्यकी इच्छाशक्तिके अनुकूल बन जानेका है। उसे जिन विषयोंकी ओर दृढ़तासे एकाग्र कीजिये, वही कार्य करने लगेगा। वह व्यर्थ निश्चेष्ट-निष्क्रिय नहीं बैठना चाहता। अच्छाई या बुराई—वह किसी-न-किसी ओर अवश्य आकृष्ट होगा। यदि आप शुभ रचनात्मक समुन्नत कार्योंमें उसे न लगायेंगे तो वह बुराईकी ओर चलेगा। यदि आप उसे पुष्प-पुष्प विचरण करनेवाली मधुलोभी तितली बना देंगे—जो रूप, रस और गन्धपर मँडराये—तो वह अवश्य आपको किसी भयङ्कर स्थितिमे डाल देगा। यदि आप उसे उद्दण्ड रक्खेंगे तो वह दिन-रात मनमाने बुरे स्थानोंपर भटकता रहेगा। यदि आप शुभ इष्ट-पदार्थोंके सुविचारोंमें उसे स्थिर रक्खेंगे तो वह आपका सबसे बड़ा मित्र बन जायगा।

जब-जब अपने अन्तःकरणमें विषय-वासनाका प्रबल संघर्ष उत्पन्न हो तब-तब नीर-क्षीरविवेकी निश्चयात्मिका बुद्धिको जाग्रत् कीजिये। मनसे थोड़ी देर पृथक् रहकर इसके कार्य-व्यापारोंपर तीव्र दृष्टि रखिये। बस, कुविचार, कुत्सित चिन्तन, वासनाका ताण्डव, कुकल्पनाका चक्र टूट जायगा और आप मनके साथ चलायमान न होंगे। मनके व्यापारके साथ निज आत्माकी समस्वरता न होने दें। इसी अभ्यासद्वारा वह आज्ञा देनेवाला न रहकर सीधा-सादा आज्ञाकारी अनुचर बन जायगा—

मन लोभी, मन लालची, मन चंचल मन चोर।
मनके मत चलिये नहीं, पलक-पलक मन और॥

प्रमादमें फँसी इन्द्रियोंके सुखमें स्थिरता नहीं है। इन्द्रियसुख दुःखरूप है। यह अस्थिर और क्षणिक है। यह आनन्दका आवरणमात्र है। इन्द्रिय-सुखके लिये मनुष्यको अनेक कुचक्रों—कुटिल रीतियोंका अवलम्ब लेना पड़ता है। एक सुखकी लालसामें मनुष्य अधिकाधिक उलझता ही जाता है। एक इन्द्रियको तृप्त करते-करते मनुष्य दूसरी-तीसरी-यों अधिकाधिक सांसारिकतामें लिप्त होता ही जाता है। अन्तमें पापयोनिको प्राप्त होता है। जबतक मन और इन्द्रियोंपर पूरा नियन्त्रण नहीं होता, तबतक सुखकी आशा रखना व्यर्थ है। मनपर निरन्तर कड़ी दृष्टि रखिये—स्वयं भगवान् श्रीकृष्णजीने गीतामें हमें मनपर तीखी निगाह रखनेकी ओर निर्देश किया है—

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥
(६। ३६)

मनको संयमित न करनेवाले पुरुषके द्वारा योग दुष्प्राप्य है। स्वाधीन मनवाले प्रयत्नशील पुरुषके द्वारा ही योग प्राप्त होता है—इष्टसिद्धि प्राप्त होती है।'

अभ्यास और वैराग्यसे मनको वशमें करनेमें बहुत सहायता मिलती है। गीतामें मनको ईश्वरमें एकाग्र करनेके लिये अभ्यास करनेका अमूल्य उपदेश दिया गया है—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

(६।२६)

'यह अस्थिर और चञ्चल मन जिस-जिस कारणसे संसारमें जाय, उस-उससे हटाकर इसे बार-बार आत्मामें लगावे।'

सुखरूप भासनेवाली विषय-वासनाके प्रलोभनमें कदापि न फँसिये। कुपथगामी मनके विपरीत चलिये। परमात्माका जो रूप आपको विशेष आकर्षक प्रतीत होता हो, उसीमें मन-बुद्धिको एकाग्र करनेका सतत अभ्यास करते रहिये। वैराग्य और शुभचिन्तनके अभ्याससे प्रलोभनसे मुक्ति मिल सकती है।

भारतीय संस्कृतिमें प्रलोभनसे बचे रहनेके लिये दान और त्यागका विधान है। भारतीय, यदि वह सच्चे अर्थोंमें भारतीय संस्कृतिका पुजारी है तो वस्तुओं, धन, ज्ञान, श्रमशक्ति इत्यादिको एकत्र न कर उनके भलेके लिये अधिक-से-अधिक व्यक्तियोंमें उसे वितरित करनेका प्रयत्न करता है। जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र अपनी रश्मियोंको संसारके कोने-कोनेमें फैलाकर प्रकाश करते हैं, सच्चा भारतीय वैसे ही अधिक-से-अधिक दान देता है—शक्तिका, सेवाका, अपने श्रम-सामर्थ्य और सम्पत्तिका त्याग करनेसे उसका आत्मसंयम बढ़ता है। शरीर और मनपर काबू होता है, वासनाएँ शान्त रहती हैं, आत्मा भौतिक पदार्थोंके चिन्तनसे मुक्त होकर अन्तर्मुखी बनती है। क्षुद्र बाह्य पदार्थों तथा रूपोंसे आसक्ति हटते ही उसे आत्मानुभव होने लगता है। वह जान लेता है कि मैं हाड़, मांस, वासना, तृष्णा, मोह नहीं हूँ, मैं तो सत्-चित्-आनन्दस्वरूप, विशुद्ध आत्मा हूँ।

विस्मृतिका महामन्त्र

बीते हुए कटु, दुःखप्रद, अप्रिय अनुभवोको विस्मृतकर, उज्ज्वल प्रकाशपूर्ण भविष्यपर समस्त वृत्तियाँ केन्द्रित कर दिन प्रारम्भ करना शान्त और सुखी रहनेका सर्वश्रेष्ठ साधन है। जीवनकी कड़वाहट दूर करनेके लिये अनिष्ट कल्पनाओं, दुष्ट वासनाओ, प्रतिकूलताओ, दुश्चिन्ताओं, विषम परिस्थितियों, अभद्र प्रसंगोंको भूलना सीखो। यदि अपने शरीरका स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति और जीवनकी मधुरता अभीष्ट है तो विस्मृतिके इस महामन्त्रकी सिद्धि करो।

जो व्यक्ति हर समय बीते हुए दुःख-क्लेश-विपत्ति, विघ्नबाधामय विचारोंका शिकार रहता है, अपने जीवनके अन्धकारमय अंशपर केन्द्रित रहता है, सदैव बुराई—असफलताके ही कुवचन मुखसे उच्चारण करता है, जीवनके अप्रीतिकर भागको ही देखता रहता है, रोज-रोज अपने जीवनकी छोटी-मोटी भूलोंको लेकर झींकता रहता है, निरन्तर पश्चात्तापकी और वैर-विरोधकी ज्वालासे जला करता है या क्षुद्र चिन्ताओंमे आत्मग्लानिका अनुभव कर अपने हृदय-मन्दिरमे निज चरित्रकी कमजोरियोको पोसता रहता है—उसका हृदय सदैव क्षुब्ध रहता है और अन्तःकरणमें एक भयानक तूफान मचा रहता है। वह आध्यात्मिक उच्च शिखरपर आरूढ़ नहीं हो पाता।

जो पहले भूल करके पुनः सँभल जाता है, पीछे भूल नहीं करता, वह मेघसे मुक्त शुभ्र चन्द्रमाकी भाँति इस लोकको प्रकाशित करता है। ऐसा पुरुष अपने पिछले परितापमय अनुभवोंको विस्मृत करनेको सदैव प्रस्तुत रहता है; क्योकि वह जानता है कि ये ही अन्तःकरणमे सत्य ज्ञानको प्रकाशित होनेसे रोकते हैं और उन्नतिके पथपर अग्रसर नहीं होने देते। वह उधरसे चित्त हटा लेता है, मन मोड़कर झींकनेके स्थानपर

भविष्यपर आशा बाँधता है। इसी कारण उसका प्रत्येक कार्य एक अभिनव ज्योतिसे आलोकित रहता है।

जो हुआ सो हुआ; किंतु भविष्यमे ऐसा कदापि न होगा, हम प्रलोभनोके पंजोंमे दुबारा न आयेंगे, हम दुष्ट मनोविकारोंमें चित्त विक्षिप्त न होने देंगे, जन्म-जन्मान्तरोके कुसंस्कारोंको अपने चित्तसे बाहर निकाल देंगे और जीवनके विषाक्त और परम दुःखमय क्षणोंकी पीडासे कातर होनेके स्थानपर मनको पूर्ण निर्मल रखेंगे, उसमे परम पवित्रताका सचार करेंगे और तमाम कुत्सित विषैली दुश्चिन्ताओंको अन्तःकरणसे देशनिकाला दे देगे, ऐसी शुद्ध भावनावाले व्यक्तिके निमित्त दुःखका भार उतार डालना साधारण-सी बात है।

तुम अपना कार्य उचित रीतिसे तभी सम्पन्न कर सकोगे, जब अपनी पिछली भूलों, कमियो, न्यूनताओ, गलतफहमियो, असावधानियो, कमजोरियोंको मनसे सदैवके लिये निकालकर पूर्ण विश्वास धारणकर अग्रसर होगे। यदि तुम्हारे अंदर अपनी कमियोंके विचार बहते रहेंगे तो वे आत्म-विश्वासको कभी दृढ न होने देगे। तुम्हारे सकल्प सदैव ढीले-ढाले बने रहेंगे, तुम इच्छाशक्तिकी अभिवृद्धि न कर सकोगे। तुम अयोग्यताकी निकृष्ट भावनामे रमण करोगे तो निरन्तर अयोग्य ही बनते जाओगे। यदि तुम्हारे अंदर यह भाव घर कर गया कि हमसे तो गलतियाँ ही हुआ करती है तो पूर्ण सावधानी रखते-रखते भी तुम कुछ-न-कुछ गलती कर ही दिया करोगे। शङ्कित और दुविधामय मानसिक स्थितिमे रहनेसे हम देखते-देखते गलती कर बैठा करते हैं। मानसिक पृष्ठ-भूमिमेंसे ऐसी भ्रमात्मक कल्पनाएँ, असत्-चिन्तन, दुविधामय विचारधारा नष्ट कर दिया जाय तो मनुष्य श्रेष्ठ कार्योंके सम्पादनके निमित्त अधिक स्वच्छन्दता तथा शक्ति प्राप्त कर लेता है और उसका जीवन सुधर जाता है।

इस विकारस्वरूप प्रकृतिमें सभी जीव त्रुटियोंसे परिपूर्ण हैं। किसीमें कम तो किसीमे अपेक्षाकृत अधिक दोष सभीमें हैं। तुमसे यदि

कोई अप्रिय बात हो गयी और तुम्हें उसके लिये हार्दिक पश्चात्ताप हो गया तो ठीक है। यही यथेष्ट है, किंतु इसीपर झींक-झीककर अपना जीवन क्लेशयुक्त, भारस्वरूप न बनाओ। इसी विषयको लेकर रोते न रहो। बार-बार इन्हींपर विचार कर, तिलका ताड़ बना पश्चात्तापकी ज्वालामे जलते न रहो। इस प्रकार तुम अपना सुनहरा भविष्य भी शूलमय बना लोगे। इस परिवर्तनशील जगत्में अप्रिय प्रसंगोको विस्मृत कर देनेपर ही हम आध्यात्मिक विकास कर सकते हैं। जो व्यक्ति यही चिन्तन करता है कि मैं मूर्ख हूँ, मूढ और मन्दमति हूँ, अधम और पापी हूँ, निकृष्ट और कुटिल हूँ, मुझसे कुछ होना-जाना नहीं, वह क्रमशः तद्रूप हो जाया करता है। जीवनकी सफलता भावनाओपर निर्भर है। जितना ही तुम अपनी योग्यतापर अविश्वास करोगे, जितना भय और शङ्काको हृदयमे स्थान दोगे, उतने ही उन्नतिसे दूर पड़े रहोगे। तुम्हारी शङ्काएँ और भय ही तुम्हारे जीवनको नष्ट करते हैं। अनेक व्यक्तियोकी असफलताका कारण केवल यह है कि वे निराशाजनित भावोको ही प्रोत्साहन देते रहते है। अपनी इन कुत्सित कल्पनाओ और अनिष्ट-चिन्तनके द्वारा वे विफलता, अकल्याण और पतन तथा निराशाप्रद वातावरणकी सृष्टि अपने चारो ओर कर लेते हैं। वे मूर्ख नहीं जानते कि इनको विस्मृत कर देनेमे ही कल्याण है। क्योकि वे ही हमारी आत्मश्रद्धामें बाधक होते हैं।

ससारने हमारे अरमान कुचल डाले हैं, निकट सम्बन्धियोतकने हमारे हृदयके टुकड़े-टुकड़े किये हैं, लोगोने जानते-बूझते हमारा अपमान किया है, हमारे वैरी प्रतिशोध लेनेकी ताकमे हैं, हमें रह-रहकर अपने ऊपर क्रोध आता है, दिलमे दर्द है, चित्तमें खिन्नता है; पर क्या हम नित्य इन्हीं निकृष्ट विनाशकारी, आत्माको पंगु करनेवाले विचारोमें उलझे रहे ? क्या हमारा यह बहुमूल्य मानव-जीवन इन्हीं अकल्याणकारी बातोमे तिल-तिलकर कुढ़ते-कुढ़ते, झींकते-झीकते समाप्त हो जायगा ? हमें चाहिये कि हम इन्हे भूल जायँ; हृदयसे तुरंत निकाल फेके।

यदि हमारे विचार कल्याणकारी महानुभावोंके शुभ चरित्रोंपर केन्द्रित रहेंगे, हम उनके चरित्रके उत्तम अंशों, सद्‌गुणों, शुद्ध तत्त्वोंपर विचार किया करेंगे, तो हमारा भी कल्याण होता जायगा, हम उठते जायेंगे, निरन्तर आगे बढ़ते जायेंगे। इसके विपरीत यदि हम अपने विरोधियों, वैरियों और कुप्रवृत्तिवाले दुर्जनोंके विषयमें सोचा करेंगे तो निश्चय ही पतनकी ओर ढुलकते जायेंगे। सर्वोत्तम यही है कि हम अपने शत्रुओंके विचार बलात्कार मानसिक परिधिमें लाकर उसे कलुषित न होने दें, उन्हें विस्मृत कर दें और कभी उनके विषयमें सोचें ही नहीं। दुःख, क्लेश, तिरस्कार, निन्दासे मुक्त होनेके लिये विस्मृति अमोघ औषधि है, अतः पीड़ा, अप्रसन्नता और दुष्टताको भूल जायँ, सदैवके लिये उधरसे नेत्र मूँद लें, चित्त हटा लें, मनको मोडकर उत्तम अभिलाषाओंपर केन्द्रीभूत कर दें। जिन विचारोंसे हमारा जीवन सुखमय बनता है हम उन्हींको हृदयमें प्रवेश होने दें, उन्हींका दृढ़ चिन्तन करें, उन्हींपर चित्तको एकाग्र करें।

बाह्य जगत्‌में नित्य संघर्ष चला करता है; किंतु प्रत्येक वस्तुके अन्तरिक्षमें अक्षय शान्ति निवास करती है। जिन व्यक्तियोंको तुम बुरा कहते हो, सम्भव है उनका हृदय परम पवित्र हो। तुम्हारी धारणा ही गलत हो। अतः तुम दूसरेके दोषोंको विस्मृत करना सीखो। उनके चरित्रके उन्हीं गुणोंको स्मरण रक्खो जो सुन्दर हों और कल्याणकारी हों। परच्छिद्रान्वेषणके समस्त विचारोंको भूलकर आत्माको उत्तम तत्त्वोंपर दृढ़ करो। विषयोंसे, इन्द्रियोंके भोगोंसे, बुद्धिके ऊहापोहसे, सांसारिक ताने-बानेसे उन्मुक्त पक्षीकी भाँति स्वच्छन्द होकर हृदयके अन्तरालमें प्रवेश करो। वहाँ स्वार्थयुक्त समस्त दूषित वातावरणसे मुक्त रह सकोगे। इस आनन्दधाममें तुम्हारी झंझटें, प्रतिकूलताकी भावनाएँ, अप्रिय प्रसंगोंके कटु अनुभव, निरर्थक क्षोभ और व्यर्थकी हाय-हाय नष्ट हो जायगी।

जिस व्यक्तिने विस्मृतिके माहात्म्यको हृदयङ्गम कर लिया है, वही सुखी है। उसके लिये दुःखोंका बोझ उतार डालना अत्यन्त साधारण-सी

बात है। कुछ दिन पूर्व इसी तत्त्वको स्पष्ट करते हुए एक महोदयने (Unity) यूनिटी नामक मासिकपत्रिकामें लिखा था—

'और मै अपने अनुभवसे कह रहा हूँ—सच मानो। इस ओषधि (अर्थात् विस्मृति) द्वारा दुःखोंका भार उतार डालना अत्यन्त सरल है। प्रारम्भिक अभ्यासके उपरान्त आप बड़ी-से-बडी चिन्ताको चुटकियोपर उडा डाला करेगे। क्रमशः इस कलामें आप इतने दक्ष हो जायेंगे कि जीवनकी किरकिरी और दुःखपूर्ण परिस्थिति सामने आते ही अदृश्य हो जाया करेगी। तब यह संसार आपको पूर्ण आनन्दमय प्रतीत होगा; क्योंकि इसमें चिन्ता, कष्ट, पीडा, अभाव इत्यादि कोई भी कुत्सित वस्तु शेष न रह जायगी।'

यदि आप शूरवीर और बहादुर होना चाहते हैं तो आप हीनत्वकी भावनाको पूर्णरूपसे विस्मृत कर दीजिये। विजयके ही विचारोको अपने मनमें आने दीजिये और निश्चय कर लीजिये कि हम किसीसे नहीं डरेंगे, कोई हमे डरपोक नहीं बना सकता, मनुष्य कायर जन्तु नहीं होता, हमारी रचनामें भय रक्खा ही नहीं गया। हम तो साहसिक कार्योंके सम्पादनके लिये बनाये गये हैं, उन्हे अवश्यमेव प्राप्त करेंगे।

यदि आप सफलता प्राप्त करना चाहते हों तो नाकामयाबी, क्षुद्रता, अयोग्यताकी समस्त बाते मनसे निकाल डालिये। यदि कोई आपसे मन्द बुद्धि कहता है तो उसकी बातसे साफ इन्कार कर दीजिये। दूसरेकी ऐसी किसी भी प्रेरणा (Suggestion) का अपने ऊपर प्रभाव न होने दीजिये। हार, हीनत्व, दारिद्र्यके दुष्ट विचारोको सदैवके लिये तिलाञ्जलि दे डालिये। जबतक विफलताके विचार आपके हृदयमे अतिक्रमण करते रहेंगे, तबतक कदापि सफलता प्राप्त न होगी। आप अयोग्यता, अविश्वास, आशङ्काके क्षुद्र विचारोको विस्मृतिके गर्तमें फेक दीजिये। हृदयमे इस बातको ही ऊपर रखिये कि हम मन्दबुद्धि नहीं, कायर नहीं, पथभ्रष्ट नहीं है। हममे वह साहस है जिससे हम महान् कार्य सम्पादन करेंगे।

शक्तिकी इच्छा है तो कमजोरीके विचारोंको विस्मृत कर डालिये। स्वास्थ्य चाहते हैं तो बीमारी, आधि-व्याधिके विचारोंको भूल जाइये। स्वास्थ्यप्रदायक विचारधाराको मनमें आने दीजिये। स्वास्थ्यका भाव स्थायी रखिये, वार्त्तालाप उसी विषयपर कीजिये। प्रेमकी कामना है तो ईर्ष्या, क्रोध, निन्दा, कटुताके विपरीत भावोंको विस्मृत कर दीजिये। शान्ति चाहते हैं तो मिथ्यावाद, बकवास, परच्छिद्रान्वेषण, भ्रम, संशयको भुला दीजिये। आप केवल वाञ्छनीय तत्त्वोंका ही चिन्तन कीजिये। जैसी अभिलाषा हो, वैसे ही विचारोंको हृदयके कोने-कोनेमें भर दीजिये। ऐसा न हो कि प्रतिकूलताकी भावनाएँ आपके अन्तःकरणमें घर करके आपका सर्वनाश कर डालें।

प्रिय पाठक! आप नीच, दुखी, दीन-हीन समझकर, अपने-आपको अकर्मण्य, रोगग्रस्त मानकर किसी प्रकार उत्तम तत्त्वोंकी प्राप्ति कर सकते हैं? दुःख, दरिद्रता और असफलता उस व्यक्तिसे सदैव दूर रहती हैं, जो इनका स्वागत नहीं करता, इनकी ओरसे सदैवके लिये मुख मोड़ लेता है और विस्मृत कर बैठता है। दुनियाँ उसीकी है जिसने अपने प्रकाशमय अंगको देख लिया है, जो दैवी तत्त्वोंमें तन्मय रहता है और जिसने निकृष्ट विचारसे मुक्ति पा ली है।

यदि आप अनन्त सुख और अक्षय शान्तिकी कामना करते हैं और अपने पापों, दुःखों, चिन्ताओंसे छुट्टी पा लेना चाहते हैं तो विस्मृतिके रहस्यको चित्तमें अङ्कित कीजिये। यदि स्वस्थ शरीर, दीर्घायु और मानसिक शान्ति अभीष्ट है तो पतनकी ओर ले जानेवाली कुप्रवृत्तियों, मानसिक जगत्‌में तूफान लाकर अस्त-व्यस्त बनानेवाली दुर्भावनाओंको विस्मृत करना सीखिये। दुःखकी, पीडाकी, रोगकी कष्टप्रद बातोंको भूलना सीखिये। ऐसा व्यवहार कीजिये जिससे स्वयमेव आपकी मानसिक प्रेरणा विजय, वृद्धि, उन्नति और उच्चताकी ओर स्फुरित हुआ करे।
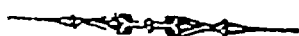
न जाने कल क्या होगा ?

भविष्यमे क्या होगा, हमारे ग्रह शुभ हैं या अशुभ, हमारे भाग्यकी लकीरोकी प्रगति किस ओर है, हमारे ऊपर कोई आपत्ति तो नहीं आ रही है, हमारे शकुन, फल, कर्म अच्छे है या बुरे, न जाने कल क्या होगा—ये ऐसे भयङ्कर प्रश्न हैं जो कितने ही व्यक्तियोकी आध्यात्मिक शान्ति भङ्ग किया करते हैं। भविष्यत् जाननेके लिये कितने ही थोथी विचारधाराके युवक फकीरो-मुल्लाओं और पहुँचे हुए साधुओके पास भटकते है। जिससे जरा उन्हे भविष्यत्के विषयमे पता चलनेकी आशा हुई, उसके पीछे-पीछे लगे रहते हैं, हजार खुशामद करते हैं और पसीनेकी गहरी कमाई सहर्ष सौप दिया करते हैं। किसीने उनके मनकी बात कह दी, वे फूल उठे। किसीने कुछ भयानक बात बतला दी, बस, मुरझाकर निरुत्साह हो गये, अपने भाग्यको दोष देने लगे। कमनसीबी, नाकामयाबी, असफलताकी घातक कल्पनाओ-द्वारा अपनी शक्तिको पङ्गु करने लगे। सिर्फ अनिष्टकी कल्पनामात्रसे वे झींकने लगते हैं, परेशान हो जाते हैं और यह मान बैठते हैं कि हम तुच्छ

हैं, क्षुद्र हैं, हीन हैं। हमारे भाग्यमें तगी, कमजोरी, अयोग्यता, अकर्मण्यता ही है। हमारे पल्ले रूखी-सूखी रोटी ही वदी है। हमें तो सदैव कडी धूपमें ही काम करना है, हमे गरीवीमे ही सड़ना है।

मनुष्य अपने भविष्यकी अच्छी वात सुनकर इतना प्रसन्न नहीं होता, जितना कुत्सित वात सुनकर डर जाता है। हमलोगोंकी प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि अशुभ, निकृष्ट, आधि-व्याधिके विचारोंपर शीघ्र विश्वास कर लेते हैं। हमारे ऊपर इन अन्धकारमयी भावनाओंका प्रभाव वडी शीघ्रतासे होता है और कभी-कभी तो वे विचार इतने स्थायी (Fixed Ideas) हो जाते हैं कि हम उन्हें आयुभर भूल नहीं पाते। एक व्यक्तिके दिलमें यह विचार जम गया कि मेरी मृत्यु पागल कुत्तेके काटनेसे होगी। वह मामूली कुत्तेको देखकर ही भागता, छिप जाता और जवतक वह अदृश्य न हो जाता, वाहर न निकलता। एक वार एक साधारण कुत्तेने उसे जरा-सा पंजे लगा दिये। कुछ खरोंच-से आ गये। वह वीमार पड़ा और लगभग एक मास वीमार रहकर मृत्युको प्राप्त हुआ। कितने ही व्यक्तियोंकी यह धारणा वन जाती है कि आगामी जीवन वड़ा कठिन, वड़ा सघर्षपूर्ण, वड़ा कठोर आ रहा है। वस, वे वेसिर-पैरकी निराश कल्पनाओंद्वारा अपने जीवनको संकटमय वना लिया करते हैं। घवराकर व्यर्थकी चिन्ताओंसे ग्रस्त रहते हैं और पनपने नहीं पाते।

प्रिय पाठक! भविष्यका ज्ञान पहले तो असम्भव है और यदि हो भी जाय तो क्या लाभ! यदि भवितव्य ही होना है, नियतिका लेखा वॅधा है, उसका एक भी अक्षर इधर-से-उधर नहीं हो सकता तो उसे जान लेनेसे क्या लाभ? हम उसे नहीं वदल सकते, वह अपरिवर्तनीय है, शाश्वत है तो उसके विषयमें जान लेनेसे क्या प्रयोजन? हॉ, हानिकी अधिक सम्भावना है। यदि हमें यह मालूम हो जाय कि कल इतने रुपये प्राप्त हो जायँगे तो सम्भव है हम आज गाँठकी पूँजी समाप्त कर डालें। इसी प्रकार यदि यह

ज्ञात हो जाय कि हमें कल इस ससारसे चल देना है तो डर, चिन्ता, उद्वेग, क्लेशसे कलके बजाय आज ही मृत्यु हो जाय। प्रायः देखा गया है कि फाँसीका दण्ड पानेवाले कैदी केवल मृत्युके विषम विचारद्वारा पहलेसे ही अधमरे हो जाया करते है।

भविष्यमे क्या होनेवाला है इस तत्त्वकी अनभिज्ञता जीवको इसलिये प्रदान की गयी है कि जिससे भविष्यमें आनेवाले अनिष्टकी आशङ्कासे उस शूलमयी घटनाके पूर्ववर्ती दिनोंके सुखको हम न खो बैठे।

एलेक्जेडर पोप नामक कविने बलिपशुका उदाहरण लेकर इसी भावको बड़े ही मर्मस्पर्शी रूपमे व्यक्त किया है—

'उस बलिपशु को देख आज जिसका तू है नर !
निज उमंग में रक्त बहाएगा बेदी पर।
होता उसको ज्ञान कहीं तेरा है जैसा,
क्रीडा करता कभी उछलता फिरता ऐसा ?
अंतिम क्षण तक खाता पीता काल काटता।
हनने को जो हाथ उठा है उसे चाटता ?

मृत्यु प्रतिपल उसके सिरपर नाचती रहती है, यमदूत उसे हड़प जानेको तत्पर रहते हैं, वधिक पत्थरपर उसे काटनेको छुरा पैना करता है पर बलिपशु अन्ततक आनन्दमय रहता है। अन्तमें पोपके इसी सिद्धान्तपर पहुँचता है—

The blindness to the future kindly given.

अर्थात् भविष्यका अज्ञान परमेश्वरका परम अनुग्रह है। यदि उस पशुको यह विदित हो जाय कि जरा देरमें उसे मृत्युके घाट उतार दिया जायगा तो कदाचित् वधसे पूर्व ही उसका अस्तित्व विलीन हो जाय और मृत्युके पूर्ववर्ती दिनोके सुखको भी खो बैठे।

सचमुच अनिष्टकी कल्पना विषमय है। मृत्युकी आशङ्कासे प्राणिमात्र-का विचलित हो जाना स्वाभाविक बात है। और हम सबको क्रमशः विलीन भी हो जाना है, फिर उसकी चिन्ता क्यों? मौत आयेगी यह निश्चय है; पर जिस चीजसे बच नहीं सकते उससे डरना ही क्यों? जितने दिन हमे रहनेको मिले है उनका तो पूर्ण आनन्द उठा ले, जब बुरे दिन आवेगे देखा जायगा। आजका सुन्दर दिन हमे परमेश्वरने प्रदान किया है। उसे तो आनन्दपूर्वक बिता ले। कल क्या होगा कौन जाने? किसे यह पता है कि कल आयेगा भी या नहीं; हम आजके लिये कह सकते है कि हमारा अस्तित्व है, हमारा गृह, बाल-बच्चे, बन्धु-बान्धव इत्यादि हैं पर कल क्या होगा यह सब कुछ छिपा है और जिसको कोई नहीं जानता उसकी फिक्र भी क्यो?

जीवनकी मोटी पुस्तकका एक पृष्ठ आपके सम्मुख खुला है। उसे देखकर आप आजकी बात जान सकते है पर अन्य पृष्ठोंमे कौन-सी बात छिपी है यह बात तुरंत नहीं बतायी जा सकती। परमेश्वर अत्यन्त सावधानी-से एक-एक शब्द, एक-एक पंक्ति और एक-एक पृष्ठ हमारे सामने आने देता है। यदि इस पूरी पुस्तककी विचार-धारा, जीवनका पूरा लेखा, हमे पहले ही ज्ञात हो जाय तो शायद अनिष्टकी बाट देखते-देखते ही हम मृत्युके ग्रास बन जायँ।

विशाल समुद्र है। हम अपनी छोटी-सी नाव लिये उसे पार करने निकले हैं। डूबते बहुत है, घबराते अधिक हैं, पर दृढ विचार, संकल्प और आशावादी उसी नन्हीं-सी नावसे उसे पार भी कर जाते हैं। यदि हम कठिनाई आनेसे पहले ही हाय-हाय मचाने लगे; अस्थिर, चञ्चल, भीरु हो जायँ तो हमारी जीवन-नैया क्षणभरमें डूब जाय।

जीवन तो प्रगतिशील है, चलता जाता है, मरनेवाले मरते है, डूबने-वाले डूबते हैं। जो गिरता है गिरे, पर तुम लोगोको गिरता देखकर क्यों विचलित होते हो, चले चलो, सफरमें आगे क्या होगा—देखा जायगा।

प्रिय पाठक ! यदि तुम सर्वाङ्गपूर्ण जीवनका आनन्द लेना चाहते हो तो कलकी चिन्ता छोडो । तुम अपने चारो ओर जीवनके बीज बोओ । भविष्यमें सुनहरे सपने देखनेकी आदत बनाओ। सदैवके लिये मनमे यह बात बैठा लो कि तुम्हारा कल अत्यन्त प्रकाशमय, मधुर और आनन्ददायक होगा । कल तुम अपनेको आजसे भी अधिक सौभाग्यशाली पाओगे । 'मुझे अपने कार्योंमे कल और अधिक सफलता प्राप्त होगी । कल वह समय आयेगा, जब मेरा मन उत्पादक शक्तिसे भर जायगा और मेरा जीवन ऐश्वर्यसे परिपूर्ण हो जायगा, जब मै और आगे बढ जाऊँगा, ऊँचा उठ जाऊँगा, उत्तरोत्तर उन्नतिशील होऊँगा, अधिकाधिक उज्ज्वल हो जाऊँगा । रोज मेरे अदर कुछ-न-कुछ इच्छाशक्तिका प्रादुर्भाव हो रहा है । कलपर मुझे पूर्ण विश्वास है । वह मुझमें और दिव्यताका संचार करनेवाली है । मुझमें इतनी शक्ति है कि विघ्न-बाधाएँ डरकर दूर भाग जायँगी । कल मै आजसे भी अधिक प्रसन्न रहूँगा'—ऐसी विचार-धारासे निश्चय ही परम कल्याण होगा । जब तुम अंदर साँस खीचो तो यही विचार करो, अपने मस्तिष्कके प्रत्येक कणके साथ 'आनन्दमय जीवन' का चिन्तन करो । जबतक तुम इसे पूर्णरूपसे ग्रहण न कर लो, तबतक निरन्तर जाप करते रहो । इसे रसकी तरह पेट भरकर पान कर जाओ । जब तुममे दृढताका संचार हो, तब क्रमशः अपने-आपको इनकी अवस्थाके साँचेमे ढलता हुआ पाओगे । तुम्हारे संशय उड़ जायँगे और कलकी चिन्ता न सतायेगी ।

सच्चे अर्थोंमें 'मनुष्य' बनिये

तुम मानवताके प्रतीक हो ! आदिकर्ता परमप्रभु परमेश्वरके वीर मेधावी पुत्र हो। तुम उन दिव्य गुणों, आत्मिक और मानसिक सम्पदाओंके पुञ्ज हो, जो तुम्हारे परम पितामें सन्निहित हैं।

प्रत्येक मनुष्य उस दिव्य विभूतिका अधिकारी है, जिसकी धारणा हम जगन्नियन्ता, सच्चिदानन्द-आनन्दघन, अमृतमय भगवान्में करते हैं।

मानवता क्या है ?

हमें पशुत्वसे ऊँचा उठानेवाला जो गुण है, उसे 'मानवता' कहते हैं। 'मानवता' मनुष्योंका धर्म है। इसे धारण करके ही हम 'मनुष्य' नामको सार्थक करते हैं। इसकी अनुपस्थितिमें हम मनुष्य-जैसे पवित्र सम्बोधनके अधिकारी नहीं हैं।

मानवता क्या है ? सद्‌गुणों, मनुजोचित सद्‌भावनाओंसे युक्त भद्रजनों-जैसा सदाचरण एवं शुभ कार्योंको करनेमें हमारा जो पुरुषत्व है, उन्हीं सामूहिक सद्‌गुणोंका नाम 'मानवता' है। मानवता शुभ संकल्पोंको धारण करनेवाली है। मानवता उन सद्‌व्यवहारोंका नाम है जो हमें असुरत्वसे

ऊँचा उठाते हैं और हमारी प्रवृत्ति सदाचार, संयम, परमार्थसिद्धि, सद्बुद्धि और विवेककी ओर रखते हैं।

मानवताकी पूर्णता देवत्वकी प्राप्तिका प्रथम सोपान है। जिस मनुष्यके 'शिवम्' तत्त्वका जितना अधिक विकास होता है, वह मानवताके उतना ही निकट है। मनुष्यमे ईश्वरका जो दिव्य अंश है उसे धारण किये रहनेकी सतत प्रयत्नशीलता मानवता है। दिव्य भावनाओमें जितनी तल्लीनता और निष्ठा है वह उतना ही मानवताके समीप है! अपने कार्योंद्वारा अन्तःस्थित परमेश्वर-को प्रकट करना, निज वातावरणकी भूमिको दैवी प्रकाश, प्रेम, सहानुभूति, दया, आनन्द, तृप्तिसे भर देना, गिरे हुए प्राणियोंको ऊँचा उठाना, परस्पर सेवा, सद्भाव, सहानुभूति रखना मानवताका विकास करना है।

एक विद्वान्का कथन है, दिव्य शक्तियोका सम्पूर्ण विकास मानवताकी पूर्णता है। विश्वमे एक ही पवित्रतम मन्दिर है, जिसमे अत्यन्त शक्तिशाली पूर्णताकी प्रतिमा स्थित है। वह मन्दिर मानवका शरीर है। इस मानवीय शरीरका सर्वोत्तम उपयोग, अपने अन्तःस्थित देवको सुरक्षित रखना है। मानवोचित कर्मोंसे ही वह अन्तःस्थित देव प्रसन्न होता है। परस्पर प्रेम-पूर्वक सम्मिलन, दर्शन और स्पर्शसे स्वर्ग-सुखका अनुभव मानवताके अभ्युदयपर निर्भर है। मानवताकी शीतल, सुखकर और समुन्नत वृष्टिसे विश्वके समस्त सताप शान्त हो जाते हैं।

हिन्दुओंके दो महापुरुषो—भगवान् राम तथा योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णमे हमे मानवताकी पूर्णताके आदर्श उदाहरण मिलते हैं। उनकी सर्वगुण-सम्पन्नता, सर्वज्ञता, कर्म-कुशलता, कर्तव्यशीलता ही उनके मानव-जीवनकी पूर्णताके परिचायक हैं। श्रीरामचन्द्रने जन्मसे लेकर ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, राज्यत्व, प्रसन्नता, पुत्रधर्म, संकट, युद्ध-सहायता इत्यादिकी नाना मर्यादाओंके आदर्श हमारे सम्मुख प्रस्तुत किये हैं। जगत्के जंजालो और त्रितापोसे घिरे रहकर धर्मकी धुरन्धरता, ज्ञानकी गरिमा, नीति-निपुणता, बुद्धि-विशालता,

मन तथा संयमकी महत्ता, चित्तकी संशुद्धि और मननशीलता, अहंकार-शून्यता, विचारोंकी दक्षता, बल-सौन्दर्य, सरसताकी प्रचुरता, ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य और मोक्षकी सम्पूर्णता प्राप्त कर लेनेका आदर्श भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रमें दृष्टिगोचर होता है। मनुष्य-जीवनका ऐसा कोई अङ्ग नहीं जिसकी पूर्णता तथा सर्वाङ्गीण विकास इन दोनो महामानवोंमे न हो। 'सत्यं शिवं सुन्दरम्'का एकीकरण करके आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधि-भौतिक पूर्णता यहाँ हमे सहज ही उपलब्ध हो जाती है। श्रीकृष्णके चरित्रसे स्पष्ट है कि मानव सयम और सादे जीवनके द्वारा (१) कर्म, (२) भक्ति, (३) ज्ञान तथा (४) योगका समन्वय करता हुआ दिव्य शक्तियोंसे सम्पन्न जीवन व्यतीत कर सकता है।

श्रीराम तथा श्रीकृष्णने मानवताका पथ प्रशस्त किया, मानवताका उच्चतम आदर्श हमारे सम्मुख रक्खा और विशुद्ध मानवताकी रक्षाके लिये सतत संग्राम किया। इन दोनो महामानवोंकी मानवता—कर्तव्यशीलता, लोकोपकार, सात्त्विकता, कर्मशीलता और धर्मसंस्थापनामें है। इन्होंने स्वार्थके लिये कर्म नहीं किया, प्राणिमात्रके तथा देश-जातिके सुखके लिये व्यक्तिगत सुखका बलिदान किया; मानवीय धर्मकी रक्षाके लिये निरन्तर सघर्ष किया; समग्र जीवन दूसरोंकी सेवा, परोपकार, कर्तव्य-पालन और सत्यकी स्थापनामे लगाया।

इन दोनो महामानवोंमे शरीरकी हृष्टपुष्टता, विद्याध्ययनके प्रति प्रेम, गुरुजनोंके प्रति असीम आदर-भाव, माता-पिता आदि ज्येष्ठोंके प्रति पूजनीय भाव, कुल तथा देशकी मानरक्षाके लिये बलिदान, कर्तव्यपालनमे निर्भीकता, जागरूकता, विनम्रता, दैनिक जीवनमे आत्मसम्मान, सात्त्विकता, शिष्टता, अथक परिश्रम, कार्यकुशलता और धर्म-प्रेम मिलते हैं। साहित्य, कला और संगीत उनके व्यक्तित्वके अङ्ग थे। श्रीकृष्णने उपनिषदोंका दोहन कर महान् दार्शनिक साहित्यका निर्माण किया, जो गीताके नामसे विख्यात है।

धार्मिक जीवनमे, ये महामानव, जीवन्मुक्त थे। इनमे भोगके साथ योग तथा त्यागका समन्वय था। इनके किसी भी कर्ममे आसक्ति, ममता और अहंता नहीं थी। ऐश्वर्य, धर्म, बल, यश, श्री और वैराग्य आदि मानवताके सभी तत्त्वोकी पूर्णता ही नहीं, अनन्तता इन महामानवोंमें उपलब्ध हो जाती है। इनमे मानवता और ईश्वरत्वका जो समन्वय मिलता है, वह हमारे लिये आदर्शरूपमे पथ-प्रदर्शक है। हम चाहे तो उनमेसे अनेक तत्त्वोका जीवनमे विकास कर सकते हैं। इनका मानवरूपमे प्रकट होना मानवमात्रके लिये ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति, तेज आदिके अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करना था। मानव-जीवनकी पूर्णताके लिये श्रीकृष्णका सदेश देखिये—

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥

(गीता ३। ३०)

'हे अर्जुन! ध्याननिष्ठ चित्तसे सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमे समर्पण करके आशारहित, ममतारहित और संतापरहित होकर जीवन-युद्ध कर।'

मानवताके सद्गुण

मानवताके लक्षणोका वर्णन भगवान् श्रीकृष्णने गीताके १६ वे अध्याय-में दैवी सम्पदाके अन्तर्गत किया है। सच्चे आदर्शरूप मानवमे निम्न गुण होने आवश्यक हैं। इनके सर्वोच्च विकाससे ही हम सच्चे अर्थोंमें मनुष्य कहलानेके अधिकारी हैं—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

(गीता १६। १–३)

श्रीकृष्ण भगवान्‌के उपर्युक्त मन्तव्योंके अनुसार जिन व्यक्तियोंको दैवी सम्पदाएँ प्राप्त हैं, उनके लक्षण इस प्रकार हैं—

१ **अभयम्**—मनमें भयका सर्वथा अभाव।

२ **सत्त्वसंशुद्धिः**—अन्तःकरणकी अच्छी प्रकारसे स्वच्छता।

३ **ज्ञानयोगव्यवस्थितिः**—तत्त्व-ज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति।

४ **दानम्**—बिना फलकी इच्छा किये देशकालपात्रानुसारसात्त्विक दान।

५ **दमः**—इन्द्रियोंका दमन।

६ **यज्ञः**—भगवत्पूजा और अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मोंका आचरण।

७ **स्वाध्यायः**—वेद-शास्त्रोंके पठन-पाठनपूर्वक भगवत्‌के नाम और गुणका कीर्तन।

८ **तपः**—स्वधर्म-पालनके लिये कष्ट एवं प्रतिकूलताएँ सहन करना।

९ **आर्जवम्**—शरीर और इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता।

१० **अहिंसा**—मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना।

११ **सत्यम्**—यथार्थ और प्रिय भाषण।

१२ **अक्रोधः**—अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधित न होना।

१३ **त्यागः**—कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग।

१४ **शान्तिः**—चित्तकी चञ्चलताका अभाव।

१५ **अपैशुनम्**—किसीकी निन्दा न करना।

१६ **भूतेषु दया**—सब भूत-प्राणियोंमें हेतुरहित दया।

१७ **अलोलुप्त्वम्**—इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी आसक्तिका न होना।

१८ **मार्दवम्**—मन, वाणी, कर्म और स्वभावकी कोमलता।

१९ **ह्रीः**—लोक और शास्त्रके विरुद्ध आचरणमें लज्जा।

२० **अचापलम्**—व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव।

२१ **तेजः**—वह शक्ति, जिसके प्रभावसे श्रेष्ठ पुरुषोंके सामने विषयासक्त और नीच प्रकृतिवाले मनुष्य भी प्रायः अन्यायाचरणसे रुककर उनके कथनानुसार श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रवृत्त होते है।

२२ **क्षमा**—अपने अपकार करनेवालेके दोषको क्षमा करके उसका भला करना।

२३ **धैर्य**—किसी भी विपत्तिमे धैर्य रखना।

२४ **शौच**—बाहर-भीतरकी पवित्रता।

२५ **अद्रोह**—किसी भी प्राणीमे शत्रुभाव न होना।

२६ **नातिमानिता**—अपनेमे पूज्यताके अभिमानका अभाव।

दीर्घकालीन अभ्याससे इनका निश्चय ही आपमे विकास होगा और आप सच्चे मानव बन सकेंगे।

मानव-धर्मके दस लक्षण

गीता, स्मृति, पुराण और रामायण इत्यादि धर्म-ग्रन्थोमे मानव-धर्मकी विशद व्याख्या की गयी है। स्मृतियोंमें मनुस्मृति सबसे अधिक प्रमाणित मानी जाती है। मनुजीने मनुष्यके लिये दस लक्षण आवश्यक बताये है। जो व्यक्ति इन दस लक्षणोसे युक्त है, वे ही सच्चे मानव-धर्मका पालन कर रहे हैं। मनुजी कहते हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(६।९२)

अर्थात् धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य तथा अक्रोध—ये मनुष्यके दस मुख्य लक्षण हैं। जिसमे ये मानव-धर्मके दसो लक्षण मौजूद हो, वह सच्चा मानव कहलानेका अधिकारी है। इन गुणोका सम्बन्ध किसी देश, जाति या समुदायविशेपसे नहीं है, प्रत्युत सभी देश, सभी जाति और सभी समुदायोके धर्मनिष्ठ मानवोंमें ये गुण समानरूपसे पाये जाते हैं और सभी इनका सम्पादन कर सकते हैं।

पहला लक्षण—धृति

मानवताके अधिकारीमें धैर्यधारण, संतोष अथवा उच्चकोटिकी सहनशीलता होनी चाहिये; वह आपत्तियोंसे कर्तव्यच्युत न हो। धृतिमान् पुरुष विपत्तियों, प्रतिकूलताओंके विरोधमे अपना धैर्य नहीं छोडते। वे दूसरोका भी कल्याण करते हैं। धैर्य ही मानव-धर्मकी नींव है।

दूसरा लक्षण—क्षमा

अपने शरीरमें पूर्ण शक्ति होनेपर भी अपना अपकार करनेवालेको उन्नति या सत्पथपर अन्तःप्रेरणासे आनेका अवसर देना; उसकी उन्नतिके लिये अपकारको भी प्रसन्नतासे ग्रहण करना क्षमा कहलाता है। हिंसासे हिंसा, घृणासे घृणा, क्रोधसे क्रोध, प्रतिशोधसे प्रतिशोधकी निरन्तर उत्पत्ति तथा वृद्धि होती रहती है और दोनोका अहित होता है अतः दूसरोंके बुरे संस्कारोको हटानेके लिये क्षमा धारण करनी चाहिये।

तीसरा लक्षण—दम

दमका अर्थ यहाँ मनका निग्रह है; क्योंकि इन्द्रियनिग्रह अलग बताया है। संयम या मनको नियन्त्रित तथा नित्य शुभ विचारों तथा भगवच्चिन्तनमें लगाये रखना। निगृहीत मनमे गदे, अशुभ विचार कभी नहीं आते। मन बडा चञ्चल है। वैराग्य, व्रत, संयम, उपवास और एकनिष्ठ होकर निरन्तर भगवन्नाम-जपद्वारा मनको अपने काबूमें रखनेवाला ही मानवताका अधिकारी है।

चौथा लक्षण—अस्तेय

अस्तेय अर्थात् चोरी न करना, तरह-तरहकी धोखेबाजियो, रिश्वत, कालाबाजार, दूसरोंका शोषण करनेके लिये विभिन्न चालाकियाँ चलना, लूट-मार करना, धर्मकी आड लेकर कानूनसे बचकर छोटी-बडी चोरियाँ करना मानवता-का ह्रास करना है। 'चोरी' शब्द बड़ा व्यापक है। रिश्वत लेना-देना, बाजारमे चीजोंको चोरीका आश्रय लेकर खरीदना-बेचना, अच्छी चीज दिखाकर खराब

देना, सब चोरीमें सम्मिलित हैं। मनुष्य जितना पाता है, उससे अधिक पानेका लोभ, भोगविलास, फैशन, मौज, शौक, मनमाने व्यय निषिद्ध होने चाहिये।

पाँचवाँ लक्षण—शौच

सच्चे मनुष्यको पवित्र हृदयसे साफ होना चाहिये। 'शौच' का अर्थ है सफाई। बाहर शरीरसे वह स्वच्छ रहे और अंदर मनमें पवित्र रहे। बाहरी सफाईमें शरीरकी निर्मलता होनी चाहिये। तडक-भड़क, दिखावा, शौकीनी कृत्रिमतासे मुक्ति होनी चाहिये। आन्तरिक सफाईमें हमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, अभिमान, राग-द्वेष, वैर, छल, कपट एवं दम्भादि दुर्गुणोंसे मुक्त होना चाहिये। अन्तःकरण-शुद्धिसे ही हम मानव कहलानेके अधिकारी हैं। आन्तरिक शुद्धिके लिये आत्मनिरीक्षण, आत्मालोचन और सद्विचारकी अतीव आवश्यकता है।

छठा लक्षण—इन्द्रियनिग्रह

मनुष्यमें कान, त्वचा, आँख, जीभ, नाक—ये पाँच इन्द्रियाँ हैं और जो ग्रहण, गति, शब्दोच्चारण, त्याग और आनन्द-भोगकी शक्तियाँ हैं वे कर्मेन्द्रियाँ कहलाती है। इनमें मनुष्यकी ज्ञानेन्द्रियाँ अधिक प्रबल एवं श्रेष्ठ हैं। जो इनके वशमें रहता है, वह पशु या राक्षस बन जाता है। इन पाँचोंके विषयोंकी आसक्तिके भयंकर दुष्परिणाम होते हैं। अतः इनके संयमसे हम 'मनुष्य' कहलानेके अधिकारी बनते है।

सातवाँ लक्षण—धी

'धी' अर्थात् बुद्धि। मनुष्यमें बुद्धिबलका सर्वोच्च विकास होना चाहिये। गीतामें कहा गया है, 'जो बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति, कर्तव्य और अकर्तव्य, भय और अभय, बन्धन और मोक्षको ठीक-ठीक जानती है वह सात्त्विकी है। जिसके द्वारा पुरुष धर्म और अधर्म तथा कर्तव्य और अकर्तव्यको यथार्थ रीतिसे नहीं जान पाते वह राजसी है और जिस बुद्धिसे वह

अधर्मको धर्म तथा अन्य सब विषयोंको भी उलटा ही समझता है वह तामसी बुद्धि है।' सात्त्विकी बुद्धिके विकासद्वारा ही मानवताकी रक्षा हो सकती है।

आठवाँ लक्षण—विद्या

विद्यावान् ही सच्चा मनुष्य कहलानेका अधिकारी हो सकता है। अपढ़, मूर्ख, अन्धविश्वासी, रूढ़ियोंमें फँसे हुए व्यक्ति मानव कहलानेके अधिकारी नहीं हो सकते। सब विद्याओंमें श्रेष्ठ आत्मविद्या है जिससे हृदयमें सद्-ज्ञानका प्रकाश होता है।

नवाँ लक्षण—सत्य

मनुष्यका सच्चा धर्म सत्य है। जैसा सत्य-व्यवहार वैसा ही सत्यभाषण, बाहर-भीतर एक-सा रहना; दिखावेसे दूर रहना; ऐसे शब्दोंका प्रयोग करना जिनमें मन्तव्य स्पष्ट हो जाय और अर्थका अनर्थ न हो, दूसरेके हृदयमें द्वेष तथा दुःख उत्पन्न न हो; यह मानवताका एक लक्षण है।

दसवाँ लक्षण—अक्रोध

क्रोधकी उत्तेजनासे मुक्त रहना; मनसे शान्त, सहनशील, सद्भावनाओं, प्रेम, सहानुभूति, दया, करुणा आदिसे परिपूर्ण रहना मनुष्योचित कर्म है। उत्तेजित होनेवाला स्वभाव अनेक भयङ्कर पापोंकी जड़ है। सच्चे मानवको बाहर-भीतरसे शान्त, मृदुल, सहनशील तथा विजयी होना चाहिये।

उपर्युक्त सद्गुणोंके विकाससे सच्ची मानवताका निर्माण होता है। सच्चा मानव संसारके सौन्दर्यका सिरमौर है। पूर्ण मानवमें ऐश्वर्य, धर्म, यश, कर्म, श्री और वैराग्यकी परिपक्वता होती है। उसमें लौकिक और अलौकिक सभी गुण होते हैं ऐसे मानवोंसे पृथ्वीपर ही स्वर्गका निर्माण हो सकता है।
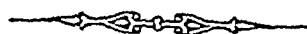
आप स्वयं एक देवता हैं

मनुष्यमे सब देवताओंका निवास है। विधाताने मनुष्यके शरीरमें देवत्वकी सब गुंजाइशे भर दी हैं। देवताओंमे प्रस्तुत सब सद्गुणोंका भण्डार मानव-शरीरमें है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंने जो जीवन व्यतीत किये थे, वे ऐसे थे कि जिनमें देवताओंके तत्त्व प्रत्यक्ष प्रकट थे।

इस भूमिमें जो स्वर्ग भरा हुआ है, जो-जो दिव्य विशेषताएँ हैं, यदि उनके लिये आप हृदयके द्वार खोल दे तो आपका देवत्व विकसित हो सकता है। भारत-भूमि देवताओंकी पवित्र भूमि है। इसके कण-कणमे देवत्व भरा हुआ है। आप भारत-भूमिमें जन्मे हैं अतएव अपनेको परम भाग्यशाली समझिये।

वास्तवमे शरीरकी अधिक महत्ता नहीं है। राक्षस और देवता दोनोंके बाह्य शरीरोंमे एक-से ही अवयव होते हैं। हमारी आन्तरिक भावनाएँ, सद्गुण,

सात्त्विकता और पवित्रता ही हमें देवत्वकी ओर अग्रसर करती है। हमारी अच्छाइयोंका सम्बन्ध देवत्वसे है। श्रवणकुमार, प्रह्लाद, ध्रुव इत्यादि मानवशरीरोंमें देवता ही थे। कहते हैं कि एक बार श्रवण अपने पिता-माताको टॉगे-टॉगे लादे-लादे थक गया। उसने क्रोधित होकर मॉ-बापको उतार देना चाहा। उसके पिताने कहा कि कुछ और आगे ले चलो। श्रवणकुमार जैसे ही कुछ आगे बढा, उसके हृदयमें देवत्वका प्रादुर्भाव हुआ। उसे अपनी गलती मालूम हुई और उसने अपने पितासे बार-बार क्षमा मॉगी। उसके पिता यह दिखाना चाहते थे कि एक पुत्र पिताके लिये क्या-क्या कर सकता है। हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर, कर्ण इत्यादि हमारे लिये प्रकाशस्तम्भ हैं।

इस भारत-भूमिके अतीतकालीन इतने दिव्य संस्कार फैले पड़े हैं, इसका अतीत इतना उज्ज्वल है कि यदि आप अपना हृदय उसके लिये खोल दें, तो निश्चय जानिये आपमें जरूर देवत्वके गुण प्रकट होंगे। आपकी सात्त्विकता और पवित्रता निरन्तर प्रकाशित होगी, आप ऊँचे उठते रहेंगे और राक्षस-तत्त्वसे मुक्त होते रहेंगे।

देवताओंकी प्रथम विशेषता है, वे (देव अर्थात् देनेवाले)—सदैव देनेवाले, दान करनेवाले हैं। यह देना (या दान) अनेक प्रकारका हो सकता है। श्रम, धन, स्नेह, प्रेम, करुणा, सहानुभूति, आश्रय आदि देना। देवता भावनाओंसे परिपूर्ण है। देवताओंकी पूजा करनेसे वे प्रसन्न होते हैं। वे कम लेते हैं, अधिक-से-अधिक देते है। यदि हम भी समाजसे कम-से-कम लेकर अधिक-से-अधिक दे तो हम देवता बन सकते हैं। हमारे प्राचीन ऋषि, मुनि, ज्ञानी-संत-महात्माओंमें कमानेकी असंख्य योग्यताएँ थीं और उनसे वे बहुत धन प्राप्त कर सकते थे। लेकिन उन्होंने लिया नहीं, त्याग किया। उन्होंने शेष आयुपर्यन्त कुछ-न-कुछ दिया, यहॉतक कि सर्वस्व दे डाला। इन्ने श्रमी, दानी, उदार महात्मा मानवशरीरमें देवता ही थे।

गायत्रीका 'देवस्य' हमें यह शिक्षा देता है कि हम कम-से-कम ले और अधिक-से-अधिक प्रदान करे। हम समाजकी अधिक-से-अधिक सेवा करे और आयके रूपमे कम-से-कम लें। अधिक लेना स्वार्थका प्रतीक है। अधिक लेना संकुचितता है, निर्बलता है और राक्षसत्वकी ओर पतन है।

देवताओंकी दूसरी विशेषता यह है कि वे स्वर्गमें रहते हैं। तो क्या आप भी स्वर्गमें निवास कर सकते हैं? हॉ, आप रह सकते हैं। इमरसन लिखते हैं कि यदि मुझे नरकमें भी रहना पड़ा तो अपने स्वभावसे नरकको भी स्वर्ग वना लूँगा। वास्तवमें अपने स्वभावकी उदात्तता, मधुरता, अच्छाईके कारण हम स्वर्गकी सृष्टि कर सकते हैं। यदि हम दूसरोंपर विश्वास करे, प्रेम करे, सहानुभूति दिखलाये, ऊँचा उठाये, अच्छाइयॉ बढ़ावे तो विश्वास रखिये आपका देवत्व जरूर विकसित होगा। प्रेम और अच्छाइयो-के विकाससे बिगड़े हुए, पथभ्रष्ट भी सुपथपर आ जाते है। सद्व्यवहारका गहरा प्रभाव पडता है। सद्भावनाएँ जैसी जाती हैं, दुगुनी-चौगुनी होकर देनेवालेके पास लौटती हैं। वे चारो ओर पवित्र वातावरणकी सृष्टि करती हैं। आपकी सद्भावनाएँ और सद्व्यवहार आपके अंदर व्याप्त दैवी तत्त्वके प्रतीक हैं। इनका विकास प्रतिदिनके अपने सत्कर्मोंद्वारा करते रहे।

हमारे अंदर अच्छाइयोका भण्डार भरा पडा है। हमारी तरह अन्य मानवोमें भी सद्गुण भरे है। यदि हम अपने अदर देवत्वको विकसित कर ले तो अन्य व्यक्ति भी हमारे अनुकरणपर अपनी सात्त्विकता और पवित्रताका विकास करेगे। हम सब सात्त्विकता और पवित्रताके सद्व्य-वहारसे एक अच्छे वातावरणकी सृष्टि करते हैं। हमारा यह पवित्र कर्तव्य

है कि इस दिव्य वातावरणकी परिधिका निरन्तर विस्तार करते रहे। जितने अधिक व्यक्ति हमारे इस वातावरणके अन्तर्गत आयेंगे, उतने अधिक वे गुप्तरूपसे देवत्वका विकास कर सकेंगे।

देवता अमर होते हैं। हम भी अमर बन सकते हैं। जिस व्यक्तिकी सत्-कीर्ति अमर है वह शरीररूपसे न सही आत्मिकरूपसे अजर-अमर है। बुद्ध, गाँधी, ईसा क्या मर गये ? नहीं, अपनी कीर्तिके कारण अमर हैं। उनकी कीर्ति अक्षय है। वे सदा अमर बने रहेंगे। यदि हम भी अपने सत्कार्योंकी वृद्धि करें तो देवत्वका विकास कर सकते हैं।

जो शरीरके लिये जीते हैं वे मरते हैं। जो पेटू होते हैं, वे मरते हैं। जो शरीरकी खुजली मिटाने और भोगोंकी तृप्तिके लिये जीते हैं, वे निकृष्ट जीवन व्यतीत करते हैं। उस आदमीकी मौत आती है, जो दूसरोका शोषण करता है, हिंसा करता है या दूसरोका हृदय दुखाता है। इन्द्रिय-तृप्ति तो पशु भी करते हैं, उदर एवं कामेन्द्रियकी क्षुधा वे भी तृप्त करते हैं। यदि हम इसी गंदगीके नीचे जीवनमें फँसे रहे तो हम पशुत्वकी कोटिमें ही रहते हैं। यह निकृष्ट जीवन मानवके लिये अशोभनीय है।

देवता वृद्ध नहीं होते, सदा युवक बने रहते हैं। अक्षय यौवन उनकी विशेषता है। उनकी विशेषताओंका जो सौन्दर्य है, वह उन्हें युवक बनाता है। देवता हँसता है, मधुर मुसकान उसके मुखपर खेलती रहती है। मृत्युतकसे वह मुसकराकर व्यवहार करता है। मृत्यु हमारा अन्तिम अतिथि है। जो व्यक्ति निराशाकी भावनासे मुक्त हैं, उदासी जिनके पास नहीं आती, जो प्रफुल्ल हैं वे देवता हैं। युवककी भावना है कि अपने कर्तव्यपर स्फूर्तिसे, जोशसे लगा रहे, आगे बढ़ता रहे, आनन्दपूर्वक जिये। देवत्वकी भावना कहती है कि हम नवयुवककी भावना लेकर जियें। हम राक्षसत्व (पशुत्व) का हमेशा विरोध करते रहे। अपने

परमार्थ, लोक-सेवा, सद्व्यवहारके रूपमें देवत्वका विकास करते रहे। आप अपनेको सुधारिये, पूर्ण समाज सुधर जायगा। आप स्वयं देवता बनिये, सम्पूर्ण समाज, देश और विश्व देवताओसे भर जायगा।

विश्वास कीजिये, आप स्वयं एक देवता हैं। जिस कामको करनेसे आपके मनमे नीचता, ओछापन, हिंसा, स्वार्थ, घृणा और क्रोध उत्पन्न होता है, वह आपके आचरणके योग्य नहीं है। आपका सरोकार दुष्टता और पशुत्वसे कदापि नहीं है। आप कुपथपर नहीं जा सकते। आपका पग बुराईकी ओर नहीं बढ़ सकता। आप तो देवत्वके सब गुणोसे परिपूर्ण समुन्नत आत्मा हैं। परमेश्वरके एक दिव्य अंश हैं।

व्यक्तिविशेष, जातिविशेष और देशविशेषके नाते आप कोई कार्य न करे। आप तो मानवताके नाते सेवा-कार्य कीजिये। आपका धर्म व्यक्तिका धर्म नहीं है, वह तो समाज और सारे विश्वका है। कोई जाति अथवा धर्म अपनी संकुचित परिधिमें आपको बॉध नहीं सकता। आपका आचरण किसीके लिये हानिकर न हो, दुःखकर न हो, हिंसा, द्वेष, ईर्ष्यासे परिपूर्ण न हो। आप तो समस्त मानवमात्रकी भलाईको दृष्टिमे रखकर देवत्वका आचरण करे और दूसरोकी सद्भावनाओ, श्रेष्ठताओ और पवित्रताओका आदर करे।

महर्षि रमणका वचन है–'दैवी ज्ञान हुए बिना मनुष्यको अपनी कीमत नहीं मालूम होती और इसीलिये अपने विषयमें वह औरोंसे जानना चाहता है, जब कि अपने सम्बन्धमें वह अपनी आत्मासे विश्वस्त किंतु दृढ़तापूर्वक जानकारी कर सकता है। सासारिक दृश्यपर देव मोहित नहीं होते; क्योकि निरन्तर अन्तर्दृष्टि रखनेके कारण उन्हे अपने भीतर ही उससे अधिक महत्त्वपूर्ण चीजे मिल जाती हैं।'

सबसे धनी सबसे दुखी

धन और सुख क्या—इन दोनोंका परस्पर सम्बन्ध है ? जो व्यक्ति धनी है, क्या वह सुखी भी है ? जिन व्यक्तियोंके पास बडी पूँजी, जमीन, जायदाद, धन, मकान इत्यादि हैं, क्या वे वास्तवमें आनन्दित, संतुष्ट, शान्त भी हैं ? सुसज्जित मकान, सुन्दर वस्त्र, मोटर, सुस्वादु भोजन एवं धनके भरे हुए भण्डारोंके स्वामी ही इस संसारका आनन्द लूट सकते हैं ? ये ऐसे प्रश्न हैं जो जन-मानसको उद्वेलित किया करते हैं।

धन एक साधन है, जिसके द्वारा भिन्न-भिन्न आवश्यक वस्तुएँ खरीदकर हम सुख-शान्ति प्राप्त करते हैं। धनसे वे चीजें हमारे पास आ सकती हैं, जिसके द्वारा हम स्वयं अपने और परिवारके योग्य वस्त्र, भोजन इत्यादि ले सकते हैं। लेकिन जब धन ही साध्य बन जाता है और मनुष्य केवल धन-संग्रहको ही जीवनका लक्ष्य बना लेता है, तब वह एक ऐसी दुष्ट वृत्तिमें फँस जाता है जिससे उसे लाभके स्थानपर मानसिक अशान्ति प्राप्त होने लगती है। वह उसीके मोह-चक्रमें घूमता-फिरता और उसे बढ़ाने तथा सहेजनेकी चिन्तामें लगा रहता है।

हमारे नगरके एक सेठ, जिनकी अभी पिछले दिनों मृत्यु हुई है, नगरमें अपने ऐश्वर्य और धनके लिये प्रसिद्ध थे। जीवन बड़े सुख-विलासमे व्यतीत हो रहा था कि वृद्धावस्थामें विवाह कर लिया। धीरे-धीरे पुनः परिवार-वृद्धि हुई। वृद्धावस्थामें दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनके पोषण-शिक्षणके अतिरिक्त नयी पत्नीके यौवनको संतुष्ट रखनेकी चिन्ता सवार हुई। इधर व्यापारने रुख बदला और उधरसे ध्यान हटनेके कारण भयङ्कर हानि हुई। कुछ जायदाद बिकनेकी नौबत आ गयी। अपनी प्रतिष्ठाके ह्रासकी चिन्ताने सेठजीको मानसिक रोगी बना दिया। रेहन की हुई जायदाद बिक गयी। जिस दिन उन्हे मालूम हुआ कि मेरे दिवालेकी बात लोगोंकी जबानपर है, उनका घरसे निकलना दुष्कर हो गया। मानसिक रोग बढ़ता गया। एक रात हृदयकी गति रुकनेसे अनायास ही उनकी मृत्युका समाचार पत्रोमे छपा। समाचारपत्रोंमे लिखा गया कि '५७ वर्षकी वृद्धावस्था होनेके कारण सेठजीकी मृत्यु हो गयी।' किसे ज्ञात था कि मृत्युका कारण बुढापा नहीं, प्रत्युत धनके आधिक्यसे उत्पन्न मानसिक चिन्ता थी।

पंजाबके एक पूँजीपतिका वृत्तान्त मुझे स्मरण हो आया है। वे महानुभाव गल्लेके व्यापारी हैं। लक्ष्मीकी कृपा हुई तो एक साधारण-सी स्थितिसे उन्नत होते गये। स्वयं अध्यवसाय और परिश्रमसे कार्य लिया और शहरके एक धन-सम्पन्न व्यक्ति गिने जाने लगे। ढलती अवस्थामे, व्यापार उनके पुत्रोंके हाथोमें आया तो शैथिल्य आ गया। लड़के सट्टा करने लगे। एक उदास और अभाग्यशाली दिन उन्होने सुना कि सट्टेका दाँव उनके विपरीत रहा और वे सब कुछ हार गये हैं।

'मेरा सब कुछ चला गया। अब जबतक घरके मकान और दुकाने न बेची जायँ तबतक इज्जत बचना सम्भव नहीं है। क्या किया जाय? इस वृद्धावस्थामें भी क्या यह दुःखदायी दिन देखना बदा था? क्या करूँ?

आत्महत्या कर लूँ या कहीं भाग जाऊँ ? लेकिन कर्जवाले कब मुझे छोड़ेंगे ? ऐसी अनेक बातें मनमें लिये वे मुझे मिले।

'कुछ अनावश्यक मकान या जायदाद बेचकर बेहद जरूरतमंद कर्जदारोंका ऋण चुका दीजिये। शेषको पुनः सचाई, निष्ठा और परिश्रमसे व्यापार कर धन कमाकर चुकाइये। आपके तीन पुत्र हैं। एक आप स्वयं हैं। नये जोशसे यदि परिश्रम करेंगे तो निस्संदेह आप पुनः उसी सम्पन्न स्थितिमें आ जायँगे।' वे मेरी सम्मति मान गये। लगभग आधी जायदाद बेच दी गयी। शेषको रख पुनः व्यापार चालू किया गया। गत आठ वर्षकी साधनाके अनन्तर आज वे पुनः साधारणतः सम्पन्न स्थितिमें आ गये हैं, किंतु उन्हें मामूली हैसियत पसंद नहीं है। वे अपनी पहली अवस्थाके स्वप्न निरन्तर देखकर दुखी और अशान्त रहा करते हैं। उनके मनकी शान्ति और संतुलन ठीक नहीं हो पाता। सदा कुछ खोये-खोये-से रहते हैं।

धनके आधिक्यसे मनुष्यमें एक प्रकारकी मिथ्या शान-सी आ जाती है। यदि कभी संयोगवश धनकी कमी हो जाय, हानि हो, व्यापार नष्ट हो जाय तो धनी मनमें व्यथा-भार लिये रहता है। एक दिन वही उसे ले बैठता है। धनके साथ उसे सदा ज्यों-का-त्यों बनाये रखनेकी इच्छा बनी रहती है। इससे धनी व्यथित रहता है।

व्यापारी पूँजीपति और धनी व्यक्ति सदासे अस्वस्थ रहते आये हैं। अंदर-ही-अंदर रुपयेको बनाये रखने और मान-प्रतिष्ठा स्थिर रखनेकी चिन्ता उन्हें अशान्त रखती है। कभी उनके पेटमे विकार है तो कभी सिरदर्द, उदासी इत्यादि। उन्हें चिन्ताके कारण पूरा भोजनतक नहीं पच पाता; रात्रिमें पूरी निद्रा नहीं आती; बाह्य प्रदर्शनकी भावना उन्हें अतृप्त-सी रखती है।

धनीकी जल्दी मृत्युका कारण अतृप्ति, लालसा, चिन्ता और उदासी

है। धनके आधिक्यके साथ चिन्ता बढ़ती रहती है। धन जितना एकत्रित किया जाता है, उतना ही वह मानसिक उत्तरदायित्वके भारको बढ़ाता है।

यदि धनी दान, परोपकार, समाज-सेवा इत्यादिमें अपने रुपयेका सदुपयोग करता चले, तो उसका यह भार कम हो जाता है; संकुचितवृत्ति नष्ट हो जाती है। सर्वोत्तम यही है कि मनुष्य यदि अपने पास रुपया रक्खे भी तो अपने आपको उससे बाँधे नहीं। अपने ऊपर रुपयेका अनावश्यक प्रभुत्व न होने दे। रुपयेको एक साधनमात्र समझकर ग्रहण करे, उसे साध्य कदापि न माने।

सच्चा सुख, शान्ति, आनन्द मनुष्यके आन्तरिक भावमें हैं। धनसे इनका सम्बन्ध बहुत कम है। गरीब व्यक्ति, फक्कड़, मस्त, बेपैसेवाले व्यक्ति धनकी चिन्तासे मुक्त होनेके कारण स्वस्थ और दीर्घायु होते हैं। सड़कोंके किनारे पड़े हुए फकीर, दैनिक श्रम करनेवाले मजदूर, आठ दस घंटे काम करने और चिथड़े लपेटे रहनेवाले गरीब किसान अधिक जीते हैं, वे अधिक शान्त, प्रसन्न और स्वस्थ रहते हैं। उन्हें न धनको स्थिर रखने, न अनावश्यक संग्रह करने और न कृत्रिम मायाजाल फैलाये रखनेकी चिन्ता है, और न पूँजीद्वारा शोषण करनेकी आकाक्षा।

धन एक विष है, एक मद है जो मनुष्यको विक्षिप्त कर देता है। सत्य ही कहा है—

कनक कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाय।
वो खाये बौराय है यह पाये बौराय॥

धर्मकी कमाईसे समृद्धि

धनको हमारे यहाँ एक देवीके रूपमें माना गया है। इसे हम माता लक्ष्मी कहते हैं। लक्ष्मीमें देवत्वके गुणोंकी भावना है। जो व्यक्ति रिश्वत, काला बाजार, झूठ, कपट, चोरी करते या बिना परिश्रमकी कमाई लेते हैं, वे लक्ष्मी देवीका अपमान करते हैं। जिस स्थानपर माता लक्ष्मीका अपमान

हो, वे वहाँ कैसे ठहर सकती हैं ? अतः वे उस स्थानको त्याग कर उस व्यक्तिके पास पहुँचती हैं जो सचाई, परिश्रम और धर्मकी कमाई करता है।

सट्टे और जुएसे लोग एक रातमें ही इतने अमीर होते देखे गये हैं कि आश्चर्य होता है। अहमदगढ़ (पंजाब) की एक घटना हमें याद है। एक सुनार साधारण आयसे जीवन-निर्वाह करता था । एक दिन दुकानके लिये सोना खरीदने वह लुधियाने गया। वहाँ देखा कि कुछ व्यक्ति सट्टा लगा रहे थे। उसका भी मन मचल उठा। जी कड़ाकर उसने भी सट्टा लगा दिया। संयोगसे भारी माल हाथ लगा। सोचा कि यह पेशा सबसे अच्छा है। न मेहनत, न देर । अठगुने रुपये मिलते हैं, बस, दुकान छोड़कर सट्टा ही लगाने लगा । भाग्य अच्छा था । हर बार जीत-ही-जीत होती गयी। एक दिन सट्टा बाजारमें गया और सब कुछ दाँवपर लगा दिया। उस दिन भाग्य उलटा था, वह सब कुछ हार गया। सारी सम्पत्ति क्षणमात्रमें विलीन हो गयी। सोचा एक बार और प्रयत्न करें। पर दुबारा-तिबारा हारता ही चला गया। अन्ततः दूकानका भी सब धन स्वाहा हो गया। अब मानसिक क्लेशकी भीषण यन्त्रणामें दग्ध होने लगा। एक मास पश्चात् उसका शव ही घरसे बाहर निकला और वह घरवालोंको गरीबी, बेबसी और ऋणमें छोड़ गया।

इसके विपरीत धार्मिक कमाईके अनेक उदाहरण आपको मिल सकते हैं, जिनमें आय कम हुई; किंतु सचाई, श्रम और ईमानदारीके कारण उसीमें समृद्धि और संतोष रहा। कबीर एक जुलाहे थे । रैदास चमार थे। इन महापुरुषोंकी आय कितनी होती होगी । स्वयं अनुमान कर सकते हैं; पर उसीमें उन्होंने जीवनका मजा लूटा, सुखी और मस्त रहे। गाधीजी गरीबीका, परसुख और संतोषका जीवन व्यतीत करते रहे। इसके अतिरिक्त 'सैकड़ों ऐसे श्रम, सचाई और ईमानदारीके उदाहरण उपलब्ध हो सकते हैं जो सात्त्विकता और धर्मभावनासे परिश्रम करनेपर प्रतिष्ठित पदपर आसीन हुए।

धर्मका पैसा टिकाऊ होता है। मनुष्य उसका मूल्य समझता है तथा उससे स्थायी लाभ उठाता है। ऐसा व्यक्ति व्यसन, व्यभिचार, दिखावा इत्यादिसे दूर रहकर संयमी, सदाचारी जीवन व्यतीत करता है। धर्मका एक पैसा चोरी-अधर्मके हजार रुपयेसे अच्छा है; क्योंकि उसमें मानसिक और आध्यात्मिक सुखका भाव है। यह भय नहीं कि हमारी चोरी पकड़ी जायगी।

अधर्म और पापकी कमाईके साथ फजूलखर्चीका आगमन होता है। मनुष्य व्यर्थके अभिमान, अहंकार, डाह, शौक, व्यसनमें पड़कर अनाप-शनाप व्यय कर डालता है। झूठी शान और दम्भके वशमे पड़कर शेखीबाज बेजरूरी चीजोंको भी जरूरी बना डालते हैं।

वकालतके पेशोंमें स्थान-स्थानपर झूठ, फरेब, बेईमानीसे काम लेना पड़ता है। वकील रुपयेके कारण सत्य और मिथ्याका कोई विवेक नहीं करते। फलतः वे अमीर होते देखे जाते हैं, पर अन्तमें उनकी विलासी, भड़कीली, कामसे बचनेवाली संतान सारा रुपया चौपट कर डालती है। सिनेमा चलानेवालोंकी संतान दुश्चरित्र, विलासी और रोमांटिक हो जाती है। शराब बेचनेवाले महाजन बहुत जल्दी अपनी मक्कारीसे ऊँचे मकान खड़े कर लेते हैं, पर बच्चे शराबी बनकर सारी पूँजी नष्ट कर देते हैं। पापकी कमाईके साथ फजूलखर्ची, नशेबाजी, बुरे कामकी शौकीनी, प्रमाद और आलस्य आते हैं।

धर्मकी कमाई ही समृद्धिका मूल मन्त्र है। वह टिकाऊ और सदा आनन्द देनेवाली है। मनुष्य जानता है कि उसने कितने श्रमसे उसे प्राप्त किया है, अतः वह उसे व्यय करनेमे भी संयमसे काम लेता है। इस आत्मदमन और संयमसे वह समुन्नत होता है।

अपनी आवश्यकताएँ घटाइये

आज सर्वत्र पैसेकी तंगीकी ध्वनि आ रही है। प्रायः सभी अपनी आयमें अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति नहीं कर पा रहे हैं। भौतिक आनन्दो-को पानेके लिये रिश्वत, घूस और कालाबाजार चल रहे हैं। आय बढ़ती नहीं तो उनकी व्यग्रता और भी बढ़ती है।

विवेक हमसे कहता है कि इस समस्याको दूसरी तरहसे क्यों नहीं सुलझाते। 'तेते पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर।' आयकी चिन्ता छोडकर आवश्यकताओंको घटाना प्रारम्भ कर दीजिये, जिससे इसी आयमें काम चल जाय और कुछ शेष भी बच जाय।

हमें परेशान करनेवाली हमारी कृत्रिम आवश्यकताएँ और बनावटी जीवन है। जैसे हम हैं, उससे बढ़ा-चढ़ाकर दिखानेके हम आदी बन गये हैं। हमने पढ़-लिखकर अपने विलास तथा आरामकी नाना वस्तुओंको

जन्म दे डाला है। हमारी जीभ तथा वासना अनियन्त्रित हो गयी है। हम दूसरोंका अन्धानुकरण करनेकी मूर्खता कर रहे हैं। फलतः रोगी और दुखी हैं।

आवश्यकताएँ हमारे गुण, स्वभाव और परिस्थितिके अनुसार घटती-बढ़ती रहती हैं। रबरकी तरह, चाहे जितनी बढ़ा लीजिये, चञ्चल मनका नियन्त्रण कर चाहे जितनी सिकोड लीजिये। जितनी अधिक आवश्यकताएँ उनकी पूर्तिके लिये उतना ही श्रम, भाग-दौड़ और संघर्ष। अपूर्ण रहनेपर उसी अनुपातमें मानसिक कष्ट और वेदना।

मोटे रूपसे आपकी आवश्यकताएँ तीन प्रकारकी है—(१) जीवन-यापनके लिये जरूरी, (२) सुखविषयक, (३) विलासविषयक। प्रथम वर्गकी आवश्यकताएँ पूर्ण कर अधिक-से-अधिक सतोष हो सकता है। वर्ग २ और वर्ग ३ की अन्तिम सीमाका कोई ठिकाना नहीं।

प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनियोंने आवश्यकताओमे भेद नैतिक आधार-पर किया था। उन्होने मानवके लिये उन्हीं आवश्यकताओंकी योजना रक्खी थी, जो सरल, सादा जीवन और उच्च विचारोंकी पोषक थी। सुख और विलासको उन्होंने मानवकी शक्तियाँ कुण्ठित करनेवाला माना था।

भौतिक सभ्यताके युगमे मनुष्यने सुख और विलासकी आवश्यकताओं-को बढाया; और उनके अपूर्ण रहनेपर वह विक्षोभ, मानसिक कष्ट तथा अभावोंकी भट्ठीमें जलता रहा।

जीवनविषयक आवश्यकताएँ क्या हैं ? हम आवश्यक, सुखविषयक एव विलासकी आवश्यकताओमें विवेक किस प्रकार करे ? आइये, इस प्रश्नपर विचार करे।

जीवन-रक्षक आवश्यकताएँ वे हैं जिनके बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। पौष्टिक भोजन, वायुयुक्त मकान, साधारण वस्त्र, रोगोपचारक सुविधाएँ तथा शिक्षा—ये ऐसी मौलिक आवश्यकताएँ हैं जो जीव धारणके,

अतिरिक्त मनुष्यकी शारीरिक, मानसिक तथा शैल्पिक शक्तियोंका विकास करती हैं। प्रत्येक व्यक्तिको इनकी पूर्तिका प्रथम प्रयत्न करना चाहिये।

इनके पश्चात् उन आवश्यकताओंको पूर्ण कीजिये जो आपके सामाजिक प्रतिष्ठाके लिये जरूरी हैं और जिनके लिये आपको कभी-कभी अपनी जीवनविषयक आवश्यकताओंसे विमुख होना पड़ता है।

यहाँतक आप अपने आपसे उदारताका व्यवहार कर सकते हैं; किंतु आगेका मार्ग बड़ी जागरूकता एवं सावधानीका है। भोग-सुख एवं विलासके क्षेत्र अनन्त हैं। आजके मानवकी चिन्ताका कारण ये ही वर्ग हैं।

विलास एवं भोग-सुखका वर्ग बड़ा लंबा है। इसमें बढ़िया-बढ़िया वस्त्र, आलीशान मकान, गहने, मनोरञ्जनके कीमती साधन, मिष्टान्न और ऊँचे प्रकारके भोजन, मोटर, सिनेमा, क्लबका जीवन, मादक पदार्थोंका सेवन, दान-दहेजकी अधिकता, बहुमूल्य वाहन और कलात्मक वस्तुओंका संग्रह सम्मिलित है।

अपने पेशे, स्तर तथा वातावरणको देखिये और फिर उपर्युक्त आवश्यकताओंको कम करते जाइये। अपने सामाजिक जीवन, आर्थिक शक्ति, परिवारके सदस्योंकी संख्या, स्थान एवं समयको देखिये।

जिस वस्तुको रखनेकी आपमें क्षमता नहीं है और जो आपकी किसी स्थायी माँगकी पूर्ति न कर केवल मिथ्या प्रदर्शनमात्रके लिये है, उसे त्याग दीजिये। जिन भोजनोंसे आपकी कार्यक्षमता नहीं बढ़ती, केवल व्यसनके रूपमें वे साथ बँधे हुए हैं, उनसे तुरंत दूर रहने लगिये। पान, सिगरेट, शराब, भाँग, चरस, बीडी और इसी प्रकारके दूसरे व्यसन आपकी अज्ञानताके सूचक हैं, इनके पंजेमें बँधे रहना महामूर्खता है।

मानवको शान्ति तब प्राप्त होती है, जब वह कम-से-कम आवश्यकताओंका बोझ सिरपर रखता है। जिसे तनिक-तनिक-सी वस्तुका मोह होता है, वह उनकी अपूर्तिपर निरन्तर विक्षुब्ध रहता है।

कम आवश्यकतावाला व्यक्ति अपनी शक्ति क्षुद्र कार्योंसे बचाकर उच्चतर कार्योंमें व्यय कर अपनी आत्मिक उन्नति कर सकता है। देहमें वासना है, वासनासे असंख्य इच्छाएँ और इच्छाओंसे कष्ट उत्पन्न होता है। जैसे हाथीके बाहर निकले हुए दाँत फिर अंदर नहीं जाते, वैसे ही एक बार बढ़ी हुई आवश्यकताएँ कम नहीं हो पातीं। प्रत्येक आवश्यकता एक ऐसा महसूल है, जो चुकाना ही पड़ता है।

आजके जीवनमें जो समस्याएँ अत्यन्त पेचिदा हो रही हैं, जिनसे अन्तःकरणमें क्षोभ उत्पन्न होता है, वे बढ़ी हुई झूठी कृत्रिम आवश्यकताओंसे ही उत्पन्न हुई हैं। हम स्वयं ही इनके जनक हैं।

देखिये, आपकी प्रवृत्ति किस ओर चल रही है—क्या आप निरन्तर एकके पश्चात् दूसरी अन्धाधुन्ध आवश्यकताएँ बढ़ाते चले जा रहे हैं? अनाप-शनाप व्यय कर दूसरोंसे ऋण ले-लेकर क्यों व्यर्थ ही अपनेको बन्धनोंमे डाल रहे हैं? कहीं आपको मिथ्या-प्रदर्शन, झूठी शान, जगत्‌को अपना अतिरञ्जित स्वरूप दिखानेकी तो आदत नहीं पड़ गयी है? विलास, भोग, व्यभिचार, अभक्ष्य वस्तुओंका भोजन-पान करनेकी कुत्सित आदतमें पड़-कर आपका चित्त चञ्चल तो नहीं रहता है? यदि आप इन शत्रुओंसे मुक्त रहना चाहते हैं तो अपनी आवश्यकताओंको एक-एक करके कम करते जाइये, आप सुखी रहेंगे।

हमारा सुख हमारी आवश्यकताओंके अनुपातमें रहता है। अधिक आवश्यकताओंवाला व्यक्ति बड़ी कठिनतासे सुख-समृद्धि प्राप्त करता है। कारण, उसकी अन्तिम आवश्यकताकी पूर्ति होते-होते सुख भोगनेकी शक्ति बिल्कुल क्षीण हो जाती है। प्रत्येक आवश्यकता एक मानसिक बन्धन है। जो इन बन्धनोंमे अधिक-से-अधिक बँधा है, उसके सुखमें उतनी ही बाधाएँ हैं।

अधिक आवश्यकतावाला व्यक्ति जिस मानसिक रोगसे पीड़ित रहता है, वह है मनका वशमें न रहना, अति चञ्चलता, अति स्वच्छन्दता और इन्द्रियोंको वशमें न कर सकना। यदि ऐसे व्यक्ति कुछ चित्तवृत्ति-निरोध करे, तो बढ़ी हुई आवश्यकताओंसे मुक्ति पा सकते हैं। मनुष्य मनकी वृत्तियोंको ढीला छोडकर चञ्चल, उन्मत्त और प्रचण्ड बना लेता है। कालान्तरमें आदत बन जानेपर उनसे मुक्ति असम्भव हो जाती है। व्यसन, फैशन, व्यभिचार आदि कुत्सित आदतोंका प्रारम्भ बड़ा साधारण होता है, धीरे-धीरे व्यसन बढ़ते हैं। अन्तमें मनुष्य इन्द्रियोंका दास हो जाता है।

इसी प्रकार यदि मनुष्य मनमें दृढ़तासे यह प्रण कर ले कि मुझे मनकी चञ्चलता, व्यर्थके प्रलोभन इत्यादिसे मुक्त रहना है तो वह मनकी प्रलोभन-वृत्तिको नियन्त्रित कर सकता है।

जैसे आपने व्यसनके मायाजालको प्रारम्भसे क्षीण किया था, वैसे ही शुभ भावनाओंका प्रारम्भ कीजिये। शुभका चिन्तन कीजिये, सद्विचारमें लगे रहिये; व्यर्थकी कृत्रिम आवश्यकताओंको काटते जाइये, आप देखेंगे, आपका अन्तर्द्वन्द्व कम हो गया है। मनमें अब दुःखकी लहरें कम उठती हैं। अपनी पूर्णताकी भावना, आत्मशान्तिकी भावना अन्तर्मुखी निश्चयात्माकी भावनामें दृढ़तापूर्वक रमण करनेसे चित्तवृत्तिका निरोध होता है। मनमें यह भावना जमाइये—

'आवश्यकताओंकी पूर्ति सम्भव नहीं है। एक आवश्यकता पूर्ण होती है, तो चार नयी और आकर खड़ी हो जाती हैं। इनकी पूर्तिपर बीस-पचीस नयी जरूरतें मुँह फैला देती हैं। इस मायाजालमें फँसनेपर आवश्यकताओंका अन्त नहीं। अतः मैं व्यर्थ इन्हें कदापि न बढ़ने दूँगा।'

अन्तर्द्वन्द्वसे मुक्ति

कितने ही क्षीण मनोबलवाले व्यक्ति मनकी दो विरोधी भावनाओंके पारस्परिक संघर्षके शिकार रहा करते हैं। दोनो ओर समान रूपसे आकर्षण रहता है। उनका मन दोनों ओरको आकृष्ट होता है। वे चाहते हैं कि उन दोनों पारस्परिक विपरीत बातोको कर डाले। एक ओर उन्हें जगत्के नाना भोगों, पुत्र-कलत्र इत्यादिमें आकर्षण प्रतीत होता है, सुन्दर मिष्टान्न-पर उनका मन लुभता है, तो दूसरी तरफ यह भी जी करता है कि अन्तःकरण शुद्ध सात्त्विक बन जाय, इन्द्रियाँ वशमें हो जायँ, मन विषयोसे हटकर परमात्मामें एकाग्र हो जाय। इस प्रकार मनमें संशयकी उत्पत्ति होती है और मन भ्रमित हो जाता है।

जीवनमे अनेक ऐसे अवसर आते हैं जब मन अन्तर्द्वन्द्वसे अशान्त हो जाता है। किसी विशेष परिस्थिति या मनोदशामे हम कोई कार्य करना स्थिर करते हैं; उसकी प्राप्तिका उद्योग भी करते हैं; किंतु कुछ काल पश्चात् मनके किसी अज्ञात कोनेसे एक दूसरी आकांक्षा उदित हो आती

है; उस ओर भी प्रवल आकांक्षा होने लगती है। फलतः मनमें अन्तर्द्वन्द्व-की उत्पत्ति हो उठती है जिसके कारण हम वड़े असमंजसमें पड़ जाते हैं। कुछ स्थिर नहीं कर पाते। अतः किंकर्तव्यविमूढ़ रह जाते हैं।

स्थिरबुद्धिकी न्यूनता

स्थिरबुद्धिकी न्यूनता अनेक साधकोंकी निर्वलता है। इसके गर्भ-भागमें संदेह तथा प्रलोभनके तत्त्व कार्य करते हैं। मनुष्य किसीके कहनेसे या पढ़नेसे या दूसरेके उदाहरणमात्रसे साधन आरम्भ करता है; किन्तु तुरंत ही उसे सिद्धि नहीं मिलती! फलतः वह अपने साधनमें संदेह करने लगता है। यह सदेह मनको शिथिल वना देता है तथा वह किसी दूसरी ओर आकर्षित हो उठता है। संशय तथा प्रलोभनसे पूर्ण अन्तःकरणमें स्थिरबुद्धिका निरन्तर क्षय हुआ करता है। ये दोनों शत्रु मनुष्यको कर्तव्यमार्गसे च्युत किया करते हैं।

जव मनुष्य सत्यके अन्वेषणमें तुच्छ वस्तुओंको ही परम पदार्थ मान-कर उनमें लिप्त होना चाहता है, तव मनकी स्थिरबुद्धि पंगु तथा शक्तिहीन-सी हो जाती है। स्वार्थपूर्ण प्रयत्न हमारी दैवी आकांक्षाको ग्रस लेते हैं, अतः अनन्त जीवनके साथ हमारी एकता नहीं हो पाती। यह पृथक्त्व, जो प्रतीत और अनुभूत होता है, केवल मानसिक भ्रम (Mental illusion) है और मूर्खता तथा अविश्वाससे उत्पन्न हुआ है। अपने वास्तविक स्वरूप-की अनभिज्ञताके फलस्वरूप ही यह विलगता हमें विक्षुव्ध करती है।

मनकी दो भूमिकाएँ

प्रत्येक व्यक्तिके अन्तःकरणमें दो स्तर हैं। एक परम दिव्य, द्वितीय निकृष्ट। उच्च भूमिका हमें सात्त्विक जीवनकी ओर खींचती है। निम्न भूमिका हमें उच्छृङ्खलताकी ओर आकर्षित करती है। अन्तर्द्वन्द्वकी उत्पत्ति उस समय होती है जव साधक इन दो भूमिकाओंके जोड़ (Margin) पर रहता है। जो सदैव उच्च भूमिकामें जीवन व्यतीत करते हैं—जैसे योगी, ऋषि, मुनि, तपस्वी, महात्मा इत्यादि, उनके मनमें निम्न विकारोंका समावेश ही नहीं होता। इसके विपरीत निम्नकोटिके राजसी

और तामसी प्रकृतिवाले व्यक्तियोको पवित्रताका आनन्द मालूम ही नहीं। अतः निकृष्ट बुद्धिके व्यक्तियोंमे भी अन्तर्द्वन्द्व नहीं होता। मुश्किल तो उन व्यक्तियोंकी है जो मध्यमे हैं। कभी इस ओर आकर्षित होते हैं, तो कभी दूसरी तरफ खिंच जाते हैं। ऐसे ही उदीयमान व्यक्तियोंके मनमें द्वन्द्व उत्पन्न हुआ करता है। इस प्रकारकी दो विरोधी भावनाएँ उनके मनको इष्ट मार्गपर एकाग्र नहीं होने देतीं। मानसिक शान्ति एवं समस्वरताको अस्तव्यस्त कर देती हैं।

कल्पना कीजिये—एक साधक चाहता है कि मनमें अश्लील विचार, कामोत्तेजक स्मृतियाँ, निन्द्य इच्छाएँ प्रविष्ट न हों; किंतु फिर भी इच्छाके विपरीत ये विरोधी विचार बारंबार आया करते हैं। वह उन्हे विस्मृत करना चाहता है, किंतु फिर भी वे पुनः अधिकाधिक वेगसे प्रविष्ट होकर प्रज्ञाको आशंकित कर देते हैं।

मूल प्रवृत्तियोंका शोध

अन्तर्द्वन्द्वसे मुक्तिके लिये मानवकी मूल प्रवृत्तियोंके स्वरूपोंका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। मनमें जो प्रवृत्तियाँ जन्मजात हैं वे तो किसी-न-किसी मात्रामे अवश्य वर्तमान रहेगी। उनसे आप छुटकारा केवल दो प्रकारसे पा सकते हैं। प्रथम तो यदि आप देवता बन जायँ तब और दूसरे जब आप उनका शोध (Sublimation) कर दे तब। प्रथम कार्य तो बहुत कठिन है; किंतु यदि हम चाहे तो दूसरे रूपको अपनी सहायतामें ले सकते हैं। यदि हम कुछ मनोवैज्ञानिक साधनोको कार्यरूपमें परिणत करे, तो अवश्य ही हमे अन्तर्द्वन्द्वसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

कोई भी मूल प्रवृत्ति न अपने आपमें अच्छी ही है या बुरी ही। जैसे पानीका स्वाद न तो मीठा ही कहा जा सकता है, न कड़ुवा; इसी प्रकार मनुष्यकी किसी मूल प्रवृत्तिको न तो निन्दनीय कहा जा सकता है न प्रशंसनीय। ये प्रत्येक जीवमें स्वाभाविक हैं। फ्रायड महोदयका

कथन है कि इन पाशविक प्रवृत्तियोंका दमन सम्भव नहीं है। यदि दमन किया तो दबी वासना बड़े-बडे जटिल रोग उत्पन्न कर देती है। अनेक सांकेतिक चेष्टाएँ, व्यर्थ प्रलाप, अन्तर्द्वन्द्व इत्यादि इन दबी हुई वासनाओं-के प्रकाशित होनेके लिये ही हुआ करती हैं।

अतः जब कोई मूल प्रवृत्ति प्रकट होना चाहे, तब लोक-मर्यादाकी रक्षा करते हुए उसे प्रकाशित होनेका अवसर प्रदान करना चाहिये। निन्दनीय समझकर दबानेकी चेष्टाका भयंकर परिणाम हो सकता है। यद्यपि इस सिद्धान्तका बड़े-बड़े मनीषियोंने खण्डन किया है और वह युक्तियुक्त भी है, तथापि इस सिद्धान्तको मान ले तो हमें उसे प्रकट होनेके उपाय सोचने चाहिये। और उन्हे किसी दूसरे रूपमे प्रकाशित करनेमे शीघ्रता करनी चाहिये। ऐसा करनेसे हमारा अन्तर्द्वन्द्व विभिन्न प्रवृत्तियोंसे सामञ्जस्य प्राप्त कर लेगा और मन शान्त हो जायगा।

दबी हुई वासनाएँ गान-विद्यामें खूब प्रकाशित होती है। अनेक व्यक्ति पढ-लिखकर अपनी वासनाओंका शोध किया करते हैं। बच्चोंको पढाने-लिखाने, उनके साथ हँसने-खेलने, लोरी देनेमें; पूजा-पाठ, मन्त्रोच्चारण, मन्दिरमें निवास करनेसे, प्राकृतिक रमणीय स्थानोंका निरीक्षण करनेसे, टहलनेसे, पशु-समाजसे मित्रता स्थापित करनेसे, चित्रपट देखनेसे, खेतीबारी-फुलवारी इत्यादिमे हलका कार्य करनेसे मनका सञ्चार होता है। प्राणायाम, व्यायाम तथा कुम्भक इत्यादि क्रियाएँ योगियोंकी मूल प्रवृत्तियोंका शोध करती है। उपवाससे पाशविक प्रवृत्तियोंका दमन होता है। कुछ व्यक्ति तन-मनसे अपने कार्यमे लिप्त होकर इच्छाको तृप्त कर लेते है।

चिर यौवन

इस कुत्सित कल्पनाने—'अमुक अवस्थाके उपरान्त मनुष्यकी ढलती अवस्था प्रारम्भ हो जाती है, जीवनके परमाणु कम हो जाते हैं, अथवा निस्तेज होकर बिखरने लगते हैं। बुझा हुआ दिल, गिरा हुआ मन, तेज-हीन मुख और शक्तिहीन शरीर—इनमे बुढापा आ घेरता है। उसकी इच्छा, अभिलाषा, उत्साह, उद्योग और पुरुषार्थका ह्रास होने लगता है और जीवनके प्रत्येक भागमे अकर्मण्यताका राज्य छा जाता है—साथ ही रोग, निर्बलता, जडता, निरुत्साह आदि मृत्युके पूर्वचिह्न दिखायी देने लगते हैं और वह क्रमशः किसी अज्ञात लोकका पथिक बन बैठता है।'—सचमुच मानव-समाजका बड़ा नाश किया है।

जिन डरपोक व्यक्तियोंमें जीवनशक्ति नहीं है, जिस जीवनमे पुरुषार्थ और सामर्थ्य नहीं है, जिनके हृदयकमलपर चिन्तारूपी कीडा लग चुका है, वे जीवनको व्यर्थ, मूल्यहीन अथवा नगण्य समझेगे ही। ये ही लोग दूसरोंको भी मृत्युके मुखमें ढकेलते हैं। जीते हुए ये मृतक प्राणी मानवता-के भयकर शत्रु है।

यदि हम इस प्रकारके संकीर्ण, अन्धकारमय, निराशाजनक विचारों-का रोना रोते रहेगे, यौवनरूपी कौमुदीको असमय ही बुढापेके काले-काले बादलोसे ढॉक देंगे, वृद्धावस्थाके कुविचारोको आत्माके किसी कोनेमे स्थान दे देंगे, कमनसीबी फूटे-भाग्य और रोगोंकी कल्पनाओमे विहार करते रहेंगे, जईफीके स्वप्न दिन-रात देखा करेंगे, तो निश्चय ही बुढापेकी ओर बढ़ेंगे, बूढे होने लगेंगे और बूढे हो जायॅगे। जैसी हमारी हार्दिक

इच्छा होगी; जैसे हमारे विचार होंगे, जैसी हमारी मानसिक अभिलाषाएँ होंगी, हम वैसे ही बनते जायँगे ।—यदि हम मनको गिरती हुई शक्तियोंकी ओर लगायेंगे, बुढापेके दुःखदायी विचारोंके पंजेमें फँसा देंगे तो फल निश्चय ही अत्यन्त कष्टकर होगा । हमारा प्रत्येक मानसिक भाव, जो उत्थान, उन्नति, उत्साह और यौवनकी मधुर कल्पनाओंसे बिछुडकर किसी अनर्थके साथ जुड़ा है, बुढापा, आलस्य, प्रमाद, शैथिल्य ही उत्पन्न करेगा । वह कार्यशक्ति और मानसिक दृढताको पंगु कर देगा, महत्त्वाकाङ्क्षाको नष्ट-भ्रष्ट कर डालेगा और शीघ्र ही हमें यमराजके घरका अतिथि बना देगा ।

प्रिय पाठक ! आनन्दकन्दके इस आनन्द-जगत्मे बुढ़ापा-जैसी कोई वस्तु नहीं । आपका शरीर काफी दिनतक रहनेवाला है। आप सत्य हैं; असत्य या पानीके बुलबुलेकी तरह क्षणिक नहीं । आप इच्छानुसार जितने दिन चाहें, जीवित रह सकते हैं। आयुकी मर्यादाका आधार शरीरकी बनावटपर निर्भर है । जिस कालमें शरीर सुदृढ, बलवान्, नीरोग एवं चिन्तामुक्त रहता है, उस कालमे आयु भी लंबी होती है। अतः यदि आप शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्यके नियमोंका पालन करें तो पिछले पाँच सौ वर्षोंमे मनुष्यकी आयुकी जो मर्यादा रही है, उसे निश्चय ही पा सकते हैं

यौवन वास्तवमें किसी आयुविशेषका नाम नहीं । हम यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि अमुक वर्षमें मनुष्यके यौवनका सूर्यास्त हो जायेगा और बुढापेके बादल आ घेरेंगे। यौवन तो स्वास्थ्य और बलका दूसरा नाम है। जवानी जिन्दादिली, उत्साह और महत्त्वाकाङ्क्षाको कहते हैं । यदि ऐसा न होता तो आज हम बीस-बीस वर्षके बूढे और साठ-साठ वर्षके जवान न देखते ।

याद रखिये, जबतक आपमें रस, रुधिर, मास, वसा, अस्थि, मज्जा और वीर्य—ये सप्त धातुएँ पर्याप्त मात्रामें विद्यमान हैं, जबतक ये सातो

बढ़तीपर हैं या कम नहीं होती, जबतक ये सभी तत्त्व आपके भोजनसे पुष्टि पा रहे हैं और आप किसी अस्वाभाविक या अप्राकृतिक रीतिसे इन्हे फ़िजूल खर्च नहीं कर रहे हैं—तबतक आपकी आयु चाहे कुछ भी क्यो न हो, आपको युवक बनाये रखनेमें पूर्ण समर्थ है। आधि-व्याधि आपके पास आनेका साहस नहीं कर सकतीं।

इन सातो धातुओका बल ४० वर्षतक बढता है। यह अवस्था शरीरके सब धातुओको पूर्णता पहुँचाती है। मैकफैडन (Bernarr Macfadden) साहबका तो यह कहना है कि 'जीवन ५० वर्षके उपरान्त प्रारम्भ होता है' (life begins after fifty) प्रत्येक प्राणी-के शरीरकी पूरी बाढ़ होनेमें जितना समय लगता है, उससे पाँचगुनी उसकी आयु होती है। अतः जो व्यक्ति अपने प्रारम्भिक जीवनके पैंतीस या चालीस वर्षतक ब्रह्मचर्यके नियमोका पालन करेगा वह अवश्य १२५ वर्ष जीवित रहेगा। प्रिय पाठक! यौवन, स्वास्थ्य और दीर्घजीवनके लिये आजसे अभीसे प्रतिज्ञा कीजिये कि आप ब्रह्मचर्यके नियमोका पालन करेंगे। ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठासे आपको अमित बल, तेज और शान्ति प्राप्त होगी। धैर्य, साहस, ओज, मनोबल—सभी कुछ वीर्यके अन्तर्गत आ जाते हैं। वीर्य-लाभसे आपकी समस्त गुप्त शक्तियोका विकास होगा और आप एक बार पुनः सजीव और चैतन्यमय हो सकेंगे। वीर्यवान् साधु पुरुष ही युवक, बलवान्, आरोग्यवान् और भाग्यवान् हो सकता है।

वही व्यक्ति अधिक दिनोंतक जीता है जो शरीर और मस्तिष्ककी समान (Harmonious) उन्नति करता है। यदि आप मानसिक परिश्रम करते हैं, अपना अधिकांश समय पठन-पाठन, अध्ययन, हिसाब-किताब इत्यादिमे व्यतीत करते हैं तो यौवनके लिये आपको शारीरिक श्रम अवश्य करना होगा। यदि आप दिनभर शारीरिक मेहनत करते हैं तो कुछ समय आपको मस्तिष्ककी उन्नतिके लिये जरूर देना होगा। गाढ़ी नींद सोनेके

लिये शारीरिक परिश्रम अत्यन्त आवश्यक है, किंतु मीठी नींद सोनेके लिये शान्त, पुष्ट और निर्भय मस्तिष्क अनिवार्य है। इन दोनोका समावेश पर्याप्त मात्रामें नियमित रूपसे कीजिये।

यौवन बनाये रखनेके लिये एक दिन भी व्यायाममें नागा न होनी चाहिये। नियमितरूपसे रोज शुद्ध ताजी हवामें सामर्थ्यानुसार व्यायाम कीजिये। दीर्घ श्वासोच्छ्वास, यौगिक आसन या अंग्रेजी व्यायाम हो सके तो थोड़ा-थोड़ा सभीका अभ्यास करे। टहलना, दौडना, तैरना, खेलना, हँसना भी अपने-अपने स्थानपर कम महत्त्व नहीं रखते। दीर्घायुके लिये अल्पाहारी होना पड़ेगा। मिर्च-मसाला, मादक तथा उत्तेजक राजसी आहारको त्याग कर साधारण भोजनमें दूध, फल, साग, सब्जीकी मात्रा बढ़ाइये। हर एकादशीको व्रत करना अत्यन्त गुणकारी है। स्वास्थ्यपर जितने ग्रन्थ पा सकें उनसे अवश्य लाभ उठाइये। सादा और पवित्र जीवन बिताने, शाकाहारी बनने, प्रकृतिकी शरणमें जानेपर जरूर आपको यौवन मिलेगा।

शारीरिकके साथ मानसिक स्वास्थ्यपर भी यथेष्ट ध्यान दीजिये। जितने प्रकारके भाव मनमें उठते हैं, सबका अच्छा या बुरा प्रभाव धमनियों-पर पडता है। क्रोध, घृणा, भय, ईर्ष्या गुप्तरूपसे अत्यन्त वि[illegible]ला प्रभाव शरीरपर करते हैं और समय पाकर नाना प्रकारकी बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं। इसके विपरीत उदारता, विश्वास, आशा और प्रेमका असर स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त आश्चर्यजनक तथा लाभप्रद होता है। सबसे प्रेम करना सीखिये। जीवनमें जो कुछ मिठास है प्रेमके ही कारण। इसीसे भगवान् प्रेमके अवतार कहलाते हैं। यौवनके लिये हमें प्रेमसिद्धि अवश्य करनी होगी। हमारे अंदर प्रेमका जो अङ्कुर है उसे खिलनेका अवसर जरूर मिलना चाहिये। प्रेमकी बाढको रोकिये नहीं, बल्कि विवेक, बुद्धि, धर्मभावना और कर्तव्यको सामने रखकर जैसे बने उसे रास्ता दीजिये।

सदा-सर्वदा प्रसन्नचित्त, संतुष्ट, शान्त और घोर आशावादी बने रहिये । बीती हुई बातोंके लिये न तो अधिक दिनतक पश्चात्ताप कीजिये, न भविष्यके लिये चिन्ता और भय । 'हम कायर हैं, दुर्बल, रोगी या मूर्ख हैं, कमनसीब हैं—हमारा भाग्य फूट गया—दैव हमारे प्रतिकूल है'—इस प्रकारके अन्धकारमय निराशाजनक विचार कभी मनमें न आने दीजिये । कभी एक क्षण भी मनमें इस विचारको स्थान न दीजिये कि हम बीमार हैं, बूढ़े हैं या कमजोर हैं—क्योंकि बुढापा, बीमारी या कमजोरी विचारोंके ही फल हैं । हमेशा अपने उज्ज्वल भविष्यपर भरोसा रखकर आत्मविश्वास एवं पूर्ण निश्चयसे कहिये—'मुझमे दुर्बलता नहीं, रोग नहीं, बुढापा नहीं । मुझे मृत्युका डर नहीं । निकृष्टता, दीनता, निर्बलता, आधि-व्याधिसे मेरा कोई सरोकार नहीं !'

प्रिय पाठक ! यदि आप अक्षत यौवनका सुख लूटना चाहते हैं तो सदैव यौवनके दिव्य प्रवाहको मनमें बहाते रहिये । ऐसा आचरण रखिये कि आपकी मानसिक प्रेरणा विजय, वृद्धि, उन्नति और उच्चताके लिये स्फुरित हुआ करे । आत्माको सुखके, आनन्दके, संतोषके मीठे समुद्रमें हिलोरें लिवाते रहिये । बालकोंपर प्रेम, प्राकृतिक सौन्दर्यके प्रेम, विश्वप्रेम, विशुद्ध संगीतप्रेम, सच्ची भक्ति, परमार्थके काम, कसरत, मानसिक शुद्धता, कामकाजी जीवन और जीवनके सुखमय पहलुओंपर विचार करनेसे जवानी बनी रहती है ।

यदि हम हमेशा यौवनके उच्चादर्शको सम्मुख रख उसकी प्राप्तिके लिये उत्साहपूर्वक प्रयत्न करे तो बुढापा हमसे अवश्य दूर रहेगा । जबतक हमारे जीवनमें माधुर्य है, उत्साह और आशाका कमल खिला है, महत्त्वाकांक्षाका सुखद राज्य है और खूनमें कार्यशक्तिका प्रवाह बहता है—तबतक कौन हमें बूढा कह सकता है ?

मानवताके तीन शत्रु—हरी (Hurry), वरी (Worry), करी (Curry)

मनुष्यके शरीरमें प्रायः प्रत्येक रोगके कीटाणु बीजरूपसे वर्तमान हैं। दवाइयोंके किसी सूचीपत्रको लेकर बैठ जाइये और एकके बाद एक तरह-तरहके रोगोंकी भयानकता, उनके लक्षण तथा बचनेके उपाय आपको मालूम होंगे। आपकी मानसिक परिधिमें ये लक्षण स्थायीरूपसे जड पकड़ने लगेंगे। और प्रायः हरेक लक्षणको पढते समय आपके दिमागमें यही आयेगा कि 'हम प्रत्येक रोगसे पीडित हैं। उनके कारण हम अपने शरीरमें शिथिलताका अनुभव कर रहे हैं; उन्हींकी वजहसे हम अपना कार्य पूरी तरह नहीं कर पा रहे हैं; उन्हींके कारण हमें चिन्ता, दुःख और क्लेश हैं। यह मनुष्यके अन्तःकरणमें रहनेवाली संदिग्ध वृत्तिका कुपरिणाम है। मनुष्य अपने विचारोंके प्रभावसे नष्ट होता या श्रेष्ठ बनता है। रोगोंका विचार, उनकी कुकल्पनामें निरन्तर रमण, मरनेका भय—मनुष्यको रोगग्रस्त कर देता है। रोगोंसे भरे इस मानव-जीवनमें अनेक रोग ऐसे हैं, जिनसे तनिक-सी चेष्टा और मनोवृत्तिमात्रसे मनुष्य चाहे तो बच सकता है। हरी, वरी, करी ऐसे ही भयंकर रोग हैं जो मनुष्यका जीवन चाट जाते हैं, खून पी डालते हैं और उसे दीन-दुनियाँ कहींका भी नहीं छोड़ते।

हरी (Hurry) अर्थात् जल्दबाजीका ज्वर सबसे भयानक होता है, यह न केवल हर कामको उचित रीतिसे करनेमें ही बाधक होता है अपितु मनुष्यकी बुद्धि, बल और सम्मानका भी क्षय करता है। जल्दीका काम शैतानका होता है। जिस-जिस जगह, जिस-जिस क्षेत्रमें, जिस-जिस अवसरपर आप जल्दीबाजी करेंगे, काम बिगडेगा। दैनिक व्यवहारसे लेकर ऊँचे-से-ऊँचे क्षेत्रमें जल्दबाजी उस पैरमें बँधी चक्कीके समान होगी जो उसे दिन-प्रति-दिन अवनतिके गहरे गड्ढेमें गिराती जायगी। हडबड़, घबराहट, उतावलापन, अधीरता इन सब स्थितियोंके अन्तरमें भय छिपा है। भय मानवताका सबसे बडा शत्रु है। इसीके कारण अव्यवस्था और अनिश्चयात्मिकता उत्पन्न होती है। कहते हैं कि महाराणा प्रतापको मृत्यु-शय्यापर पड़े

हुए किसी बातपर इतना दुःख न हुआ था जितना अपने पुत्र अमरसिंहकी उतावलीपर। यूरोपके एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञके विषयमें भी एक ऐसी ही घटना प्रसिद्ध है, जिससे पता लगता है कि वह जल्दबाजीसे कैसा चिढ़ता था। उसने कुछ धर्म-सम्बन्धी पत्र लिखे थे और कह रक्खा था कि 'मेरे मरनेके बाद इन्हें पोपके पास भिजवा देना।' मरते समय लोगोंने पूछा, क्या ये कागज पोपके पास भेज दिये जायँ? उसने कहा, 'नहीं कलतक ठहरो। मैंने अपने जीवनभरमें उतावली कभी न करनेका नियम कर लिया है। मेरे सब काम ठीक समयपर होने चाहिये।'

याद रखिये क्रम और व्यवस्था मानव-जीवनकी सफलताके मूलमन्त्र हैं। प्रातः सोकर उठनेसे रात्रिमे सोनेतक आपका प्रत्येक कार्य सुचारुरूपसे होना चाहिये। जीवनमें सुव्यवस्था लाइये। यह नहीं कि उठनेमें आलस्य कर गये। फिर टहलना, दातुन, व्यायाम, स्नान या भोजन करनेमें जल्दी की। हड़बड़ाते हुए खाना खाया—खाया क्या बिना कुचले जल्दी-जल्दी निगल गये। दफ्तरमें देरसे पहुँचे, जल्दीमें वहाँ गलती-पर-गलती की। रोनी सूरत लिये घर आये और भाग्यको कोसते रहे या घरवालोंपर गुस्सा उतारा और फिर झगडते-झगडाते सोने चले।

वरी (Worry) अर्थात् चिन्ता मानवताका सबसे भयंकर शत्रु है। चिता और चिन्तामें केवल एक बिंदुका अन्तर है। यदि चिता मृतक शरीरको जलाती है तो चिन्ता जीते-जी मनुष्यको दग्ध कर देती है। बहुत-सी बातें, जिनकी आप चिन्ता करते हैं, अनहोनी हैं; और यदि कोई ऐसी बात है जो जीवनमें अवश्य होगी तो उसके लिये भी फिक्र करनेसे क्या लाभ? फिक्रसे फाका अच्छा है। एच० जी० वेल्सका कहना है, 'भयकी गर्जना उसके द्वारा की हुई क्षतिसे अधिक भयानक है (Bark of danger is more fearful than its bite) डरकर आप अपनी शक्तियोंको कुण्ठित कर बैठते हैं। उस कुभावनाकी पूर्तिके लिये उपयुक्त वातावरण उपस्थित कर देते हैं और फिर उस बातसे बचना असम्भव-सा हो जाता है। यदि आप बीमारीसे डरेंगे, तो याद रखिये आप अवश्य बीमारीके शिकार

हो जायँगे । यदि दरिद्रतासे डरेंगे, तो दरिद्रता हाथ धोकर आपके पीछे पड़ेगी और यदि आप मृत्युसे डरेंगे तो यमदूतोंके आनेमें कुछ संदेह न समझिये । व्यर्थकी चिन्ता छोड़िये । जबतक हृदयसे भयकी भावना न जाय, हठपूर्वक प्रबल वेगसे पुनः-पुनः चेष्टा कीजिये । आपकी चेष्टा कभी निष्फल न होगी, आपका अवश्य उद्धार होगा । आप सदा-सर्वदा सुखी, नीरोग, निश्चिन्त, निर्भय, लक्ष्मीपति होनेके विचार मनमें भरिये; सुख, समृद्धि, शान्ति, आरोग्यता, निर्भयता आदिका संचार कीजिये । प्रातः उठते ही और रात्रिमें सोते समय मनमे कहिये, 'मै पूर्ण निर्भय, निःसङ्ग और निष्पाप हूॅ । मै पूर्ण वीर्यवान् एवं पूर्ण भाग्यवान् हूॅ । कोई मुझे डरा नहीं सकता । मेरी शक्ति अनन्त है । मै जो चाहूॅ कर सकता हूॅ । अब मै पहलेसे आरोग्य हूॅ, अधिक निर्भय हूॅ; अधिक शान्त हूॅ, अधिक निर्विकारी हूॅ ।'

करी (Curry) अर्थात् मसाले भी हमारे जानी दुश्मन हैं । हम जैसा भोजन करते हैं, वैसे ही बुद्धिवाले बन जाते हैं । लोगोंके दिमाग आजकल आसमानपर चढे है । जबतक तरह-तरहके मसालोंसे भरा साग न हो, टुकडा न तोड़ेंगे । दिनमें चार-पॉच आने चाट-पकौडीकी भेट जरूर होनी चाहिये । याद रखिये, मसाले बहुत उत्तेजक होते है । दिन-रात चटपटी, मसालेदार, खट्टी चीजे खानेसे अॅतड़ियॉ निर्बल हो जाती हैं, पाचन-क्रिया मन्द पड जाती है और भूख कभी खुलकर नहीं लगती । लाल मिर्च ब्रह्मचर्यके लिये प्रत्यक्ष काल ही है । मसालेदार भोजनसे वीर्य उछल पडता है और आयु कम होती है । अतः जिन्हे वीर्यकी रक्षा करनी हो उन्हे चाहिये कि वे मिटाई, खटाई, मिर्च-मसालेसे सर्वदा बचे रहें । सदैव सस्ता, सादा, स्वच्छ और स्वल्प भोजन किया करे । धीरे-धीरे कम करके आप इनका सर्वथा त्याग कर सकते हैं ।

अपनी भलाईके लिये इन तीनो भयानक शत्रुओंसे कुश्ती लड़िये । इनसे डरिये नहीं, जहाँ डरे कि मरे । परमात्मामें पूर्ण विश्वास लाकर साहस-पूर्वक इनका सामना कीजिये ।

प्रशंसकसे सावधान

तुम्हारी प्रशंसा कर अपना काम निकाल ले जानेवालोंकी कमी नहीं है। स्वयं तुम भी उनसे अपनी तारीफ सुनकर मद-मस्त हो जाते हो, प्रसन्नतामें फूल उठते हो, नीर-क्षीर-विवेक विलुप्त कर बैठते हो। प्रशंसकको गले लगाते हो, किंतु तुम यह विस्मृत कर बैठते हो कि तनिक-सी प्रशंसामें बह जाना तुम्हारी एक मानसिक निर्बलता है।

आजके युगमें लोग दो ही इच्छाओंकी पूर्तिके हेतु एड़ी-चोटीका पसीना एक करते हुए प्रतीत होते हैं— प्रथम रुपया, दूसरी प्रशंसा। बड़े-बड़े नेता, त्यागी, महात्मा, विद्वान्, वक्ता, लेखक, दानी, दार्शनिक—जिसे भी देखिये वह प्रशंसा या सम्मान चाहता है। सम्मान-प्राप्तिके लिये वह जो कहो, वही कर डालनेको तैयार रहता है। विद्वान् चाहे आर्थिक सम्पन्नताकी कामना न करे, किंतु भूखे पेट रह तथा फटे वस्त्र पहिनकर भी वह अपनी प्रशंसा अवश्य चाहता है। वह चाहे और सब छोड़ दे, प्रशंसाकी भूखको नहीं छोड़ पाता।

प्रशंसा सुनकर हमारा 'अहं' तृप्त होता है। हम मद-मस्त हो उठते हैं और अंदर-ही-अंदर अपनी महत्ताका अनुभव करते हैं। अहं-तृप्तिसे

मनुष्य अपनी निर्बलताओंको आँखोंसे ओझल करनेका विफल प्रयत्न करता है। दूसरेके द्वारा अपनी प्रशंसा सुनकर भले ही हम अपनी दुर्बलताओंके प्रति वीतराग हो जायँ, अपने-आपको लाख अच्छा समझें, किंतु निर्बलताएँ तो ज्यों-की-त्यों रहेंगी ही। प्रशंसासे हम थोडी देर कल्पनाके सुखद जगत्में विचरण कर लें; किंतु ससार और समाजकी कटुता और कठोरतासे हम आँखें नहीं मूँद सकते।

आप निरन्तर मिलते-जुलते अपने प्रशसकोंकी सख्या बढानेमें व्यस्त हैं। भिन्न-भिन्न अवसरोपर आप उन्हें उपहार भेजते हैं, दावतें देते हैं, मुबारकबाद देकर प्रसन्न करनेकी चेष्टा करते हैं, किंतु आपको यह ज्ञात नहीं कि प्रशंसाकी भित्ति कमजोर बालूपर खडी होती है। अवसर अटकने-पर सब छोड भागते हैं। जबतक आप प्रतिष्ठित पदपर आसीन हैं, दूसरोंके आपसे दस छोटे-बड़े कार्य सम्पन्न होते हैं, रुपया-पैसा या अधिकार आपके पास है, तभीतक प्रशंसक आपके साथ है।

प्रशसा मनुष्यकी कार्य-शक्तियोंको पङ्गु कर उसे छोटी-सी प्राप्तिमें तुष्टि दे देती है। वह सस्ती प्रसिद्धिसे संतुष्ट होकर मजबूतीसे आगे नहीं बढता। जो जितना कमजोर और उथला होता है वह उतनी ही आसानीसे प्रशसासे विजित हो जाता है। प्रशंसा एक प्रकारका झूठा आवरण है।

प्रशंसा एक झूठा माया-जाल है। इसमें फँसकर मनुष्य अपना सही रूप नहीं देख पाता। यह वह शीशा है, जिसमें मनुष्यको अपने-सा बडा प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है। वह अपने विषयमें बडे ऊँचे मनसूबे बाँधता है, अपनेको बडा अमीर, बुद्धिमान्, वक्ता, विवेकवान् या सुन्दर समझता है, जब कि असली बात उलटी ही होती है। प्रशंसासे सबसे बडी हानि वास्तविकतासे दूर हट जाना, अपनी असलियतको कमजोरियो या दुर्बलताओंको भूल जाना है।

अध्यात्म-जगत्में प्रशंसा, मान, आदरकी भूख एक प्रकारका मद है।

प्रशंसा करनेवालेसे प्रेम करना तथा निन्दा करने या आलोचना करनेवाले-से घृणा या उसका तिरस्कार करना—ये दोनों ही विवेककी सीमाके अतिक्रमण हैं। वास्तविकता इनके मध्यममें स्थित है। हमें उचित तो यह है कि प्रशंसा और निन्दामें अपना मानसिक संतुलन (Mental balance) बनाये रक्खे और अपने जीवनको समुन्नत करने, उन्नत बनानेवाले सुझावोंको ग्रहण कर लें, चाहे वे प्रशंसकसे आयें अथवा आलोचकसे प्राप्त हों।

आध्यात्मिक व्यक्ति न प्रशंसामें भूलता है, न निन्दामें निराश होकर आत्महत्या करता है। वह अपनी इस कमजोरीसे दूसरोंको अनुचित लाभ नहीं उठाने देता। वह अच्छी तरह जानता है कि उथले, ओछे व्यक्ति ही प्रशंसकोंसे घिरे रहते हैं; ऐसे व्यक्ति ही हानि पहुँचाते हैं। कुछ व्यक्ति प्रशंसामे इतने घिर जाते है कि भविष्यमे उन्नति नहीं करते। आध्यात्मिक व्यक्ति निरन्तर आगे बढता है। सस्ती प्रसिद्धिसे उसे घृणा होती है। वह जो क्षेत्र चुनता है, उसीमें अपनी समस्त विद्या-बुद्धि लगाता चलता है। चाहे उसे प्रशंसाकी मिठाई प्राप्त न हो। वह प्रशंसासे ऊँचा रहता है। उसकी प्रेरणा बाह्य थोथे व्यक्तियोंमे न होकर अन्तरमें होती है। वह अपनी आत्म-तुष्टिके हेतु कार्यमे संलग्न होता है। गोस्वामी तुलसीदास, भक्त कवि सूर, राजरानी मीराँ, गुरु नानक, संत कबीर, महात्मा दादूको कभी यह चिन्ता नहीं रही कि कोई उनकी प्रशंसा करता भी है अथवा नहीं, कोई उनकी रचनाएँ पढता है या तिरस्कार करता है। वे तो निरन्तर अन्तःप्रेरणासे शान्ति-पूर्वक सधैर्य साहित्य-साधना करते रहे। हम ऐसे व्यक्तियोंको आध्यात्मिक व्यक्ति कहेगे, जिन्हे न प्रशंसाकी भूख है, न निन्दासे निराश होनेकी कायरता। प्रशंसाके अभावमें वे कभी विचलित नहीं हुए। मीरॉ अनेक निन्दाओंके बावजूद दृढ़तासे भक्ति और काव्य-जगत्मे आगे बढ़ती रही।

आत्मसंयमका अभ्यास कीजिये

मनुष्यका सुख संसारकी बाह्य वस्तुओं, नाना विलास-सामग्रियों, गगनचुम्बी अट्टालिकाओं, सुस्वादु भोजन अथवा वासनातृप्तिमे नहीं है। बाह्यमुखी व्यक्ति नाना आकर्षक वस्तुओंमें मृगतृष्णाकी भाँति सुखकी अतृप्त लालसाओंमें भटकता रहता है। मनुष्यका मन तो महाचञ्चल है। वृक्षकी डालोंपर कूदते हुए बंदरकी भाँति सुखकी एक वस्तुसे दूसरी फिर तीसरी-चौथी वस्तुपर फुदकता-कूदता रहता है। अन्तमे मनुष्य अस्त-व्यस्त हो भ्रमित हो जाता है। आत्मसंयमके अभावमें मनुष्य निरा पशु है।

सुखका साधन अपनी वृत्तियोको अन्तर्मुखी करना है। शान्ति और सुखकी जड़ मनुष्यके हृदयमें है। बाह्य संसारमे सुख-शान्तिकी खोज करना मृगतृष्णामात्र है। जबतक आपका मन संयमित होकर स्वयं अपने अधिकारमे नहीं आता, तबतक कोई साधना सम्भव नहीं है।

विचारोंमें आत्मसंयम

सर्वप्रथम विचार-संयम प्रारम्भ कीजिये। आपके मनमे जो-जो विचार आते हैं, उन्हे ध्यानसे परखिये। वे कैसे हैं ! उनकी प्रवृत्ति किस ओर है ! वे किस तरफ प्रवाहित होते रहते हैं। कहीं उनकी प्रवृत्ति वासनाकी ओर तो नहीं है ! अधिकांश साधक वासनासे आकृष्ट होकर अपना संयम भङ्ग कर बैठते हैं। वासना नाना आकर्षक रूप बनाकर उनके सम्मुख आ उपस्थित होती है। देखिये, आपके विचार वासनाके पङ्कसे तो नहीं सने हुए हैं !

विचार-संयममें ध्यान रखनेयोग्य प्रथम तत्त्व यही है कि आप केवल अपने हितके सात्त्विक, पवित्र एवं उच्च प्रकारके सृजनात्मक विचारोंमें

ही रमण करें। निराशाके सब विचार, वासनासे सने गंदे विचार, दूसरोंकी निकृष्ट आलोचना, चुगली या क्षुद्र प्रलोभनोंके घातक विचार सर्वथा त्याज्य हैं। जबतक आपके विचारोका प्रवाह शुद्ध नहीं होता, आप द्वन्द्वोंमें फँसे तड़पा करेंगे।

शुद्ध विचारसे मन, वचन, इन्द्रियाँ शान्त रहती हैं; क्योंकि शुद्धता पवित्र ईश्वरीय गुण है। जो विचार किसीके अहित, प्रतिशोध, हानि अथवा स्वार्थसिद्धिके हेतु किया जाता है, वह ऐसे घातक भाव उत्पन्न करता है कि स्वयं सोचनेवालेकी बडी हानि हो जाती है।

अच्छे विचार ही मनमें आने दीजिये और इन्हींको दूसरोंके कल्याण एवं प्रेरणाके हेतु प्रसारित कीजिये। सद्विचारोंके शुभ्र वातावरणमे रहने-से मनुष्य अपनी बुद्धिका विकास उचित रीतिसे कर पाता है। आपके विचार अधमोका उद्धार करे, पीड़ितोको सान्त्वना दे और शोकाकुलोको आशावान् बनाये।

अनुभवोंमें आत्मसंयम

अनुभवोंमें आत्मसंयम कीजिये, अर्थात् आप उन्हीं अनुभवोंको स्मृति-पटलपर आने दीजिये, जो आपके भावी जीवन, उत्थान, प्रगति तथा विकासके लिये हितकर हों, जिनसे आपको सत्-प्रेरणा और उत्साह प्राप्त हो।

सुखद उत्साहवर्द्धक अनुभवोको याद करनेसे भावी जीवनके लिये प्रेरणा प्राप्त होती है। यदि आप अपनी गलतियोंको यादकर रोते रहेंगे, तो आपका विकास अवरुद्ध हो जायगा और आपका व्यक्तित्व निर्बल पड़ता जायगा।

आपके प्रत्येक अनुभवके साथ एक पूरा दृश्य, जीवनका एक अङ्ग संयुक्त रहता है। यदि आप आशावान् अनुभवोको स्मरण करेंगे तो आपको आगेके लिये शक्ति और प्रेरणा प्राप्त होगी, आप हृष्ट-पुष्ट अनुभव करेंगे, आपका भोजन सहज ही पच जायगा। सफलता एक ऐसा उत्साह-

वर्द्धक शब्द है कि वह चाहे छोटी-सी ही क्यों न हो; अपनी सफलताका नाम सुनकर या अनुभवोंको स्मरणकर हमें अतिशय आनन्द प्राप्त होता है, ध्यानमें उत्साह और एकाग्रता प्राप्त होती है; आगे बढ़कर कार्य करनेमें आह्लाद मिलता है।

सफलताकी प्रत्येक स्मृति आपकी अमूल्य निधि है। अपनी सफलताके जितने छोटे-बड़े अनुभवोंको आप एकत्रित कर सकते हैं, वास्तवमें आप उतने ही धनी हैं। आपका यह राज्य असीमित, यह सम्पत्ति प्रचुर होनी चाहिये।

प्रत्येक गलती आपके भावी जीवनको सुधारने तथा आगे आनेवाले जीवनको समुन्नत बनानेवाली होनी चाहिये। अपनी गलतियोंको भावी जीवनका पथ-प्रदर्शक, निर्माता और आकाश-दीप बनाइये।

रहन-सहनमें आत्मसंयम

आज आप एक व्यक्तिको अपनेसे सुन्दर वस्त्र पहने देखते हैं और लुभा जाते हैं। आप भी अपने वस्त्र त्याग कर वैसे ही वस्त्रोंकी ओर दौड़ते हैं। दूसरेको किसी नये ढंगका भोजन करते देख, स्वयं भी बिना उचित-अनुचित विचारे, वैसा ही खानेका उद्योग करते हैं। दूसरोंकी टीपटाप देख स्वयं भी उनका अन्धानुकरण करते हैं। भोजन, शृङ्गार, रहन-सहन, आचरण-व्यवहार और रीति-रिवाजका अन्ध-अनुकरण करना विशृङ्खलित मनका प्रतीक है। यह छिछोरेपनकी निशानी है। अस्थिर एवं चञ्चल-वृत्तिके दास ही ऐसा अनुकरण करते हैं।

कहीं आप भी ऐसे थोथे, बनावटी दिखावेसे परिपूर्ण कृत्रिम जीवनमें तो नहीं फँस गये हैं? दूसरोंका अनुकरण आपकी अशान्त और अस्थिर चित्तवृत्तिका दुष्परिणाम है। उसमें अपनी कोई मौलिकता नहीं है।

कभी भोजन, आकर्षक वस्त्र, सिनेमाके दृश्य, वासनाजन्य आनन्द तो कभी शृंगार, स्वार्थ, आर्थिक प्रलोभन आपके आत्मसंयमको निर्बल करते हैं।

इन सब विघ्न-बाधाओसे सदा सतर्क रहनेकी आवश्यकता है। जीवनमें सफलता प्राप्त करनी है, 'तो मनको एक स्थानपर केन्द्रित करनेका अभ्यास कीजिये।

तन्द्रा एवं आलस्य

आलस्यमें पडकर आपका मन कठिन और दुरूह कार्योंपर एकाग्र नहीं होता। जहाँ कुछ शुष्क, पर आवश्यक कार्य सम्मुख आया कि आप तन्द्रा एवं आलस्यमे डूब गये! यह स्थिति आलसी मनकी द्योतक है।

आत्मविश्लेषणद्वारा आपको अपने मनकी अनेक त्रुटियॉ प्रतीत होंगी। कभी कोई दुःख-कलह सम्मुख आयेगा, तो कभी कठोर कर्तव्यपालन-में मन पिछडता हुआ अनुभव होगा। संयमी व्यक्ति दृढ़तासे मनको एक उद्देश्यपर एकाग्र करता है और उसे यत्र-तत्र भटकने नही देता।

जब कर्तव्यपालन अथवा शुभ कार्य—जैसे प्रातःकालीन टहलना, तड़के उठना, शौचादिसे निवृत्ति, पूजन, प्रार्थना अथवा दैनिक कार्यक्रम आदिमें आलस्यका भाव उपस्थित हो, तो तुरंत उससे युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत हो जाइये। तुरंत शय्या त्यागकर कर्मरत हो जाइये। निद्रा-मैथुन अथवा क्षुधामें आत्मसंयमका सर्वाधिक महत्त्व है, क्योकि ये तीनो वृत्तियाँ जितनी बढ़ायी जायॅ, उतनी ही बढ़ती जाती है। आप इनके वशमें न रहकर इनपर विवेकद्वारा शासन कीजिये।

व्यसन मनुष्यकी सबसे मीठी कमजोरी है। मीठी इसलिये कि मनुष्य जानते-बूझते इनमें निमग्न हो अपना विनाश करता है। कौन नहीं जानता कि शराब पीना बुरा है ? कौन तम्बाकू, पान-बीडी, सिगरेट इत्यादिके दूषित विषोसे अपरिचित है ? कौन नहीं जानता कि विषय-वासना मृत्युको आमन्त्रित करनेका एक ढंग है ? लेकिन खेदका विषय है, अधिकांश व्यक्ति इनमे फॅसते और अपना सर्वनाश करते हैं।

यहॉ आत्म-संयम जीवनउद्धारक महौषध बन जाता है। यदि

प्रारम्भसे ही हम अपनी मर्यादाओंका ध्यान रक्खें, तो इन व्यसनोंसे अमूल्य जीवन सम्पदाकी रक्षा कर सकते हैं ।

भाग्यशाली आत्माओ ! अपनी दुष्प्रवृत्तियोंको कुचलकर सत्पथपर चलिये और अपने जीवनमें ईश्वरत्व प्रकट कीजिये । क्षुद्र 'अहं' को मारिये । वासनाओंको वेगसे दग्ध कर डालिये । इनपर विजयी होनेमें धर्मभावना बड़े महत्त्वकी भावना है ! इन्हे आप अधर्म समझकर छोडिये । जहाँ पाप, मिथ्याचार और अमर्यादा है, वहाँ धर्म नहीं है । जहाँ विवेक है, सत्य है, वहीं धर्माचरण है ।

आत्मसंयमीमें विवेकशक्ति (नीर-क्षीर पृथक् करनेकी शक्ति) जाग्रत् रहती है । वस्तुतः वह अच्छे-बुरेमें सूक्ष्म विवेक कर क्षणिक लाभमें निरत नहीं रहता । वह एक ओर उत्तेजनासे बचता है, तो दूसरी ओर अति भावुकतासे सँभलता है । प्रलोभनों, व्यसनों और दुर्बलताओंसे विवेक सदैव उसकी रक्षा करता है ।

विवेक हमें सदैव आत्मसंयमकी ओर जागरूक रखता है । विवेकके मूर्तिमान् प्रतीक भगवान् श्रीराम थे, जो राज्यका ऐश्वर्य त्यागकर वनमें असंख्य कष्टोंको सहते रहे और अपनी वासनाओं तथा मनोवृत्तियोंपर शासन करते रहे । उनकी समस्त इच्छाएँ केवल विवेक-शक्तिके अधीन थीं ।

अपने जीवनमें आत्म-नियन्त्रणपर विशेष ध्यान दें । विलासिता, ऐय्याशी, फैशनपरस्ती, नशाखोरी, उच्छृङ्खलता आदि ऐसे विषैले आकर्षण हैं जो मनुष्यका नाश कर देते हैं । अतः आत्मनियन्त्रणद्वारा इन दुष्टोंसे बचे रहें और अपने शुभ संकल्पोंपर दृढ़ रहें ।

आत्मसंयमसे मनुष्यकी बल-बुद्धिकी वृद्धि होती है । वह विपत्तियोंपर विजय प्राप्त करता है और आनन्द तथा कष्टोंमें सम-भाव धारण करता है । आत्मनियन्त्रणमें साधनाका प्रारम्भ एवं अन्त दोनों ही हैं ।

जीवन एक खुली पुस्तक-जैसा होना चाहिये

जो-जो बातें हम दूसरोकी दृष्टिसे बचाते हैं या जिन विचारोका उच्चारण करते हुए हम शङ्कित—प्रकम्पित होते हैं, उसका कारण यह है कि स्वयं हमारा अन्तःकरण उन्हे तुच्छ और घृणित समझता है और उनका तिरस्कार करता है। हम लोकनिन्दाके भयसे उन तुच्छ वासनाओ, गलत योजनाओं और पाशविक वृत्तियोको दूसरोके समक्ष प्रस्तुत करनेमे आत्म-ग्लानिका अनुभव करते हैं।

हमारे गुप्त मनमें ऐसी अनेक पाशविक दुष्प्रवृत्तियाँ छिपी रहती हैं, जो गंदा वातावरण पाकर एकाएक उत्तेजित हो उठती हैं और हमें आश्चर्य होता है कि हम कैसे इतने पतित हो गये कि इतने निम्नस्तरपर उतर आये।

आश्चर्य यह है कि हम कैसे उन निन्द्य वासनाओंके चंगुलमें फँस जाते हैं, जिन्हें हमारा अन्तःकरण बुरा कहता है ? हम इतने उच्च नैतिक सांस्कृतिक स्तरपर होते हुए भी वस्तुतः क्यों पशुत्वकी कोटिपर आ जाते हैं ?

वास्तवमें प्रत्येक मनमें उच्चतम दैवी गुणों एवं निन्द्यतम दानवी पशुवत् वासनाओंके बीज पड़े रहते हैं। प्रकृति सभी प्रकारके गुण मानव-मनमें छोटे रूपमें यत्र-तत्र छिपाये रहती है। जैसा वातावरण मिलता है, समयानुसार वैसा ही गुण जाग्रत् और विकसित हो उठता है। यदि हम अपने सद्गुणोंको प्रोत्साहित करते रहें तो दुर्गुण स्वयं फीके पड़ जाते हैं । सतत सदुद्योगों, सद्विचारों और सद्भावनाओंमें निवास करनेसे कुवासनाएँ नष्ट हो जाती हैं ।

आप यदि किसी विचार, कार्य या वचनको लज्जाजनक और घृणित मानते हैं, तो उसका परित्याग क्यों नहीं कर देते ? आपके मुँहमें दाँत खराब हो जाता है, कीडा उसे खोखला कर डालता है । जबतक आप उसे डाक्टरसे निकलवा नहीं देते, तबतक चैन नहीं पाते । आपके बाल बढ़ जाते हैं, उन्हें जबतक नाई काट नहीं देता, आपका मन बेचैन रहता है। बदनमें जब गंदगी एकत्रित हो जाती है तो आप स्नानके बिना अशान्त रहते हैं। इसी प्रकार यदि आप किसी विचार, कार्य या वचनको तुच्छ, घृणित और गंदा समझते हैं, तो उसे क्यों नहीं बाहर फेंक देते ? गंदा विचार किसी-न-किसी दिन आपका भयंकर पतन करनेवाला है । कूड़े-करकटकी तरह मनका झाड़ू लगाते समय इसे बाहर निकाल फेंकनेमें ही आपका मानसिक स्वास्थ्य सुरक्षित रह सकता है ।

जो विचार बुरा है, उसका उच्चारण या कार्यरूपमें परिणत करना तो निन्द्य है ही, उसे मनमें रखना, किसी मस्तिष्क-रन्ध्रमें पनपने देना उससे भी अधिक लज्जाजनक है ।

मनुष्यका अन्तःकरण दैवी तत्त्वसे परिपूर्ण है । परमेश्वरकी सत्ता वहींसे हमें सत्पथपर अग्रसर किया करती है । आत्माकी आवाज हमें सदा विवेकमय पथपर चलानेवाली है । हमें इसी ध्वनिके अनुसार कार्य करना चाहिये । जो शक्ति आपको मनमे गंदा विचार न रखनेकी प्रेरणा देती है, वह यही अन्तरात्मा है ।

आप अपने जीवनको दुराव-छिपावसे दूर रखिये । आपका जीवन एक ऐसी खुली पुस्तक होना चाहिये जिसका प्रत्येक पृष्ठ खुला हुआ हो, जिसकी प्रत्येक पंक्ति स्पष्ट हो और पढ़ी जा सके । उसका एक-एक शब्द साफ-साफ हो । जिस व्यक्तिका जीवन स्पष्टरूपसे पढ़ा, समझा और साफ-साफ देखा जा सके, जिसमें छिपाने योग्य कुछ शेष ही न रह जाय, वही अनुकरणीय है ।

जैसे ही आपका मन किसी बातको दूसरोंसे छिपानेको करे, तो सावधान हो जाइये । जिसका तिरस्कार आपकी आत्मा करती है, वह त्याज्य है ।

जिस दृष्टिकोण या विचारधाराको दूसरोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए आपको लज्जा या हिचक नहीं प्रतीत होती, उसे करनेमें कोई पाप नहीं । छिपानेकी प्रवृत्ति चोरीकी दुष्प्रवृत्ति है । इस गंदे मार्गसे सदैव जागरूक रहिये । वही कीजिये जिसे करनेमें आपको अपने अन्तःकरणका हनन नहीं करना पड़ता ।

जीवनका मितव्यय

यदि आप रात्रिमें दस बजे सोकर प्रातः सात बजे उठते हैं तो एक बार जरा पाँच बजे भी उठकर देखिये। अर्थात् व्यर्थकी निद्रा एवं आलस्यसे दो घंटे बचा लीजिये। चालीस वर्षकी आयुतक भी यदि आप सात बजेके स्थानपर पाँच बजे उठते रहें तो निश्चय जानिये दो घंटेके इस साधारण-से अन्तरसे आपकी आयुके दस वर्ष और जीनेके लिये मिल जायँगे।

नित्यप्रति हमारा कितना जीवन व्यर्थके कार्यों, गप, शप, निद्रा तथा आलस्यमें अनजाने ही विनष्ट हो जाता है, हम कभी इसकी गिनती नहीं करते। आजकल आप जिससे कोई कार्य करनेको कहें, वही कहेगा, 'जी, अवकाश नहीं मिलता। कामका इतना आधिक्य है कि दम मारनेकी फुरसत नहीं है। प्रातःसे सायंतक गधेकी तरह जुते रहते हैं कि स्वाध्याय, भजन, कीर्तन, पूजन, सद्ग्रन्थावलोकन इत्यादिके लिये समय ही नहीं बचता।'

इन्हीं महोदयके जीवनके क्षणोंका यदि लेखा-जोखा तैयार किया जाय तो उसमें कई घंटे आत्मसुधार एवं व्यक्तित्वके विकासके हेतु निकल सकते हैं। आठ घंटे जीविकाके साधन जुटाने तथा सात घंटे निद्रा-आराम इत्यादिके निकाल देनेपर भी नौ घंटे शेष रहते हैं। इनमेंसे एक-दो घंटा मनोरञ्जन, व्यायाम, टहलने इत्यादिके लिये निकाल देनेपर छः घंटेका समय ऐसा शेष रहता है जिसमें मनुष्य परिश्रम कर पर्याप्त आत्म-विकास कर सकता है, कहीं-से-कहीं पहुँच सकता है।

यदि हम सतर्कतापूर्वक यह ध्यान रक्खे कि हमारा जीवन व्यर्थके कार्यों या आलस्यमें नष्ट हो रहा है और हम उसका उचित सदुपयोग कर सकते हैं तो निश्चय जानिये हमें अनेक उपयोगी कार्योंके लिये खुला समय प्राप्त हो सकता है।

आजके मनुष्यका एक प्रधान शत्रु आलस्य है। तनिक-सा कार्य करनेपर ही वह ऐसी मनोभावना बना लेता है कि 'अब मैं थक गया हूँ;

मैंने बहुत काम कर लिया है अब थोड़ी देर विश्राम या मनोरञ्जन कर लूँ।' ऐसी मानसिक निर्बलताका विचार मनमें आते ही वह शय्यापर लेट जाता है अथवा सिनेमामें जा पहुँचता है या सैरको निकल जाता है और मित्र-मण्डलीमें व्यर्थकी गपशप करता है।

यदि आधुनिक मानव अपनी कुशाग्रता, तीव्रता, कुशलता और विकासका घमंड करता है तो उसे यह भी स्मरण रखना चाहिये कि समयकी इतनी बरबादी पहले कभी नहीं की गयी। कठोर एकाग्रतावाले कार्योंसे वह दूर भागता है। विद्यार्थी-समुदाय कठिन और गम्भीर विषयोंसे भागते हैं। यह भी आलस्यजन्य विकारका एक रूप है। वे श्रम करते हैं, विश्राम और मनोरञ्जन अधिक चाहते हैं। स्कूल-कॉलेजमें पाँच घंटे रहेंगे तो उसकी चर्चा सर्वत्र करते फिरेंगे; किंतु उन्नीस घंटे जो समय नष्ट करेंगे; उसका कहीं जिक्रतक न करेंगे। यह जीवनका अपव्यय है।

व्यापारियोंको लीजिये। बड़े-बड़े शहरोंके उन दूकानदारोंको छोड़ दीजिये, जो वास्तवमें व्यस्त हैं। अधिकाश व्यापारी बैठे रहते हैं और चाहे तो सोकर समय नष्ट करनेके स्थानपर कोई पुस्तक पढ़ सकते हैं और ज्ञान-वर्धन कर सकते हैं; रात्रि-स्कूलोंमे सम्मिलित हो सकते हैं; मन्दिरोंमें पूजन-भजनके लिये जा सकते है, सत्सङ्ग-स्वाध्याय कर सकते हैं। प्राइवेट परीक्षाओंमे बैठ सकते हैं। निरर्थक कार्यों—जैसे व्यर्थकी गपशप, मित्रोंके साथ इधर-उधर घूमना-फिरना, सिनेमा, अधिक सोना, देरसे जागना, हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहना—से बच सकते हैं।

दिन-रात चौबीस घंटे रोज बीतते हैं। आगे भी बीतते जायँगे। असख्य व्यक्तियोंके जीवन बीतते जाते हैं। यदि हम मनमें दृढ़तापूर्वक यह ठान ले कि हमे अपने दिनसे सबसे अधिक लाभ उठाना है, प्रत्येक क्षणका सर्वाधिक सुन्दर तरीकेसे उपयोग करना है तो कई गुना लाभ उठा सकते हैं।

जो व्यक्ति अपनी आयका प्रारम्भिक बजट बनाकर खर्च करता है; वह प्रत्येक रुपये, इकन्नी और पैसेसे अधिकतम लाभ निकालता है। इसी

प्रकार दैनिक कार्यक्रम बनाकर समयको व्यय करनेवाला जीवनके प्रत्येक क्षणका अधिकतम लाभ उठाता और आत्म-विकास करता है।

प्रत्येक क्षण जो हम व्यय करते हैं, अन्तिमरूपसे व्यय कर डालते हैं, वह वापस लौटकर आनेवाला नहीं है। जब मृत्यु समीप आती है तो हमे जीवनके दो-चार क्षणोंका ही बड़ा मूल्य लगता है। यदि हम विवेकपूर्ण रीतिसे अपने उत्तरदायित्व और जिम्मेदारियोंको धीरे-धीरे समाप्त करते चले तो हम जीवनमें इतना कार्य कर सकते हैं कि हमें उसपर गर्व हो।

क्या आप जीन जेक रूसो नामक विद्वान्‌के जीवनके सदुपयोगकी कहानी जानते हैं! वह कहारका कार्य करते-करते फाल्तू समयके परिश्रमसे विद्वान् बना था। दिनभर रोटीके लिये परिश्रम करता और रात्रिमें पढ़ता था। एक व्यक्तिने उससे पूछा—'आपने किस स्कूलमें शिक्षा पायी है?' रूसोने कहा—'मैंने विपत्तिकी पाठशालामें सब कुछ सीखा है।' यह कहार दिनभर सख्त मेहनतकी रोटी कमाता और बचे हुए समयमें पढ़कर धुरन्धर शास्त्रकार बन गया। हम भी यह कर सकते हैं।

समयके अपव्ययके पश्चात् हम भाव, विचार, वासना, उत्तेजना आदि अनेक रूपोंसे जीवनका अपव्यय किया करते हैं। दुर्भाव न केवल दूसरोंके लिये हानिकर हैं वरं स्वयं हमें बडी हानि पहुँचा जाते है। एक बारका किया हुआ क्रोध दूसरोंपर तो बादमें प्रभाव डालता है, पहले तो हमारे रक्तको विषैला और स्वभावको चिडचिडा बना डालता है, पाचन-क्रियाको शिथिल कर डालता है, बहुत देरतक सम्पूर्ण शरीर थरथराता रहता है। यदि हम वासनाको नियन्त्रणमें रखकर वीर्यसचय करे, तो जीवनमे जीवाणु-तत्त्व, पौरुष, बल, बुद्धिकी वृद्धि हो सकती है। व्यर्थ जो वीर्य नष्ट किया जाता है, वह जीवनका अपव्यय ही है।

घृणित विचार, क्षणिक उत्तेजना, आवेश हमारी जीवनी-शक्तिके अपव्ययके अनेक रूप हैं। जिस प्रकार काले धुएँसे मकान काला पड़ जाता है, उसी प्रकार स्वार्थ, हिंसा, ईर्ष्या, द्वेष, मद, मत्सरके कुत्सित विचारोंसे मनोमन्दिर काला पड जाता है। हमे चाहिये कि इन घातक मनोविकारोंसे

अपनेको सदा सुरक्षित रक्खे । गदे ओछे विचार रखनेवाले व्यक्तियोसे बचते रहें । वासनाको उत्तेजित करनेवाले स्थानोपर कदापि न जायँ, गदा साहित्य कदापि न पढ़े । अभक्ष्य पदार्थोंका उपयोग सर्वथा त्याग दे ।

शान्त चित्तसे एकान्त स्थानपर बैठकर ब्रह्मचिन्तन, प्रार्थना, पूजा इत्यादि नियमपूर्वक किया करे । आत्माके गुणोका विकास करे । सच्चे आध्यात्मिक व्यक्तिमे प्रेम, ईमानदारी, सत्यता, उदारता, दया, श्रद्धा, भक्ति और उत्साह आदि स्थायीरूपसे होने चाहिये । दीर्घकालीन अभ्यास तथा सतत शुभचिन्तन एवं सत्सङ्गसे इन दिव्य गुणोकी अभिवृद्धि होती है ।

अपने जीवनका सदुपयोग कीजिये । स्वयं विकसित होइये तथा दूसरोंको अपनी सेवा, प्रेम, ज्ञानसे आत्म-पथपर अग्रसर कीजिये । दूसरोको देनेसे आपके ज्ञानकी संचित पूँजीमें अभिवृद्धि होती है ।

हमारे जीवनका उद्देश्य भगवत्प्राप्ति या मुक्ति-प्राप्ति है । परमेश्वर बीजरूपसे हमारे अन्तरात्मामें स्थित हैं । हृदयको राग-द्वेष आदि मानसिक शत्रुओं, सांसारिक प्रपञ्चो, व्यर्थके वितण्डावाद, उद्वेगकारक बातोमे बचाकर ईश्वर-चिन्तनमें लगाना चाहिये । दैनिक जीवनको उत्तरदायित्वपूर्ण करनेके उपरान्त भी हममेंसे प्रायः सभी ईश्वरको प्राप्तकर ब्रह्मानन्द लूट सकते हैं—

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम् ।
यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति माऽमृतम् ॥

मानवकी कुशलता, बुद्धिमत्ता सासारिक क्षणिक नश्वर भोगोंके एकत्रित करनेमें न होकर अविनाशी और अमृतस्वरूप ब्रह्मकी प्राप्तिमे है ।

सब ओरसे समय बचाइये, व्यर्थके कार्योंमे जीवन-जैसी अमूल्य निधिको नष्ट न कीजिये, वर उच्च चिन्तन, मनन, ईशपूजनमे लगाइये । सदैव परोपकारमे निरत रहिये । दूसरोकी सेवा, सहायता एवं उपकारसे हम परमेश्वरको प्रसन्न करते है ।

आत्मालोचन

हम प्रायः दूसरोंकी आलोचना करते हुए, उनकी गलतियाँ बताते हुए तथा भाँति-भाँतिकी टीका-टिप्पणियाँ करते नहीं थकते। कुछ व्यक्ति तो विशेषरूपसे परच्छिद्रान्वेषणद्वारा दूसरोंके प्रति अपनी ईर्ष्या प्रकट करते हैं। यह एक प्रकारका मानसिक रोग है।

आध्यात्मिक उन्नति, जगत्में प्रगति तथा उच्चपदकी प्राप्तिका मार्ग ही दूसरा है। वह मार्ग है—आत्मालोचनका; अर्थात् स्वयं अपनी आलोचना करना तथा अपने दुर्गुणोंको दूर करना। अमितगताचार्यने सैकड़ों वर्षों पूर्व एक बड़ी उपयोगी बात कही थी—

विनिन्दनालोचनगर्हणार्है
मनोवचःकायकषायनिर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं
भिषग् विषं मन्त्रगुणैरिवाखिलम्॥

अर्थात् 'जिस प्रकार वैद्य मन्त्रके द्वारा विषको दूर करता है, उसी प्रकार मै सासारिक दुःखोंके उत्पन्न करनेवाले अपने पापोंका विनाश करता हूँ। उन पापोंका, जिनका निर्माण मेरे वचन, शरीर और हार्दिक मलोंद्वारा हुआ है। अपने उन दोषोंकी मै बुराई करता हूँ, आलोचना करता हूँ और घोर निन्दा करता हूँ।'

यदि हम दूसरोंकी—समाज, सस्थाओं, परिस्थितियों, ऊपरी विषयों, निकटस्थ समाजके दैनिक जीवन-सम्बन्धी, व्यर्थकी आलोचनाओंके स्थानपर स्वयं अपने चरित्रकी आलोचना करें तो उन्नतिका मार्ग खुल सकता है।

कौन ऐसा व्यक्ति है, जो हर दृष्टिसे पूर्ण है? किसमें पूर्ण परिपक्वता है? यदि आप गम्भीरता और सचाईसे देखें, तो आपको विदित होगा कि आपके पास और कामोंसे भी महत्त्वपूर्ण कार्य करनेको शेष है। वह कार्य संसारके अन्य सब कामोंसे उच्च और पवित्र है। वह है—आत्मनिर्माण। आत्मनिर्माणकी पहली सीढ़ी यह है कि मनुष्य चुन-चुनकर अपने चरित्रकी

निर्बलताओंको निकाल दे। अपनी कमजोरियोंके प्रति निरन्तर जागरूक बना रहे।

जिस किसानके खेतमें अनावश्यक घास-फूस उत्पन्न हो जाता है, उसकी खेती चौपट हो जाती है। जिस व्यक्तिकी साधारण-सी बीमारीकी चिकित्सा नहीं की जाती, वह अन्तमें मृत्युको प्राप्त होता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने दोषो, कमजोरियों, स्वभावकी दुष्प्रवृत्तियोंका उन्मूलन कर उन्हे नष्ट नहीं करता, वह पतनके ढालू मार्गपर जा रहा है।

आपका घर जल रहा है, तो क्या आप अपने घरकी अग्नि बुझानेके स्थानपर दूसरेके जलते घरको देखकर संतुष्ट होंगे। आपको स्वयं अपनी ही निर्बलतारूपी अग्नि दूर करनी है। जहाॅ स्वयं अपनेमे कमजोरियाँ भरी हैं वहाॅ केवल दूसरेकी त्रुटियोंको देखकर अपने-आप निश्चेष्ट बने रहना कहाँकी बुद्धिमत्ता है ?

जो व्यक्ति अपनी वृत्तियोको अन्तर्मुखी कर अपनी सच्ची आलोचना करता और अपनी बुराइयोंको दूर करनेका सतत उद्योग करता है; वह महानताके मार्गपर आरूढ़ है। अपनी निर्बलताओके प्रति जागरूक होना आधी विजय प्राप्त करना है। बुरे विचार, दूसरोके प्रति ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिशोधके भाव अन्धकारकी वस्तु हैं। परछिद्रान्वेषण करनेसे हम धीरे-धीरे चिन्ता, व्यग्रता, निन्दा, अधैर्य, अविनय, चञ्चलता, असतोष, उद्वेग, निराशा, हृदयक्षोभ, चिड़चिडापन इत्यादि मानसिक विकारोंके पंजेमें फॅस जाते हैं। एक बार वैसा स्वभाव बन जानेपर हमारा आभ्यन्तरिक ईश्वरका अंश मलिन पड़ जाता है। अपने दोषोको मनुष्य निष्पक्ष नेत्रोसे तथा सावधानीसे बहुत कम देखता है। हमारे अंदर अपने 'अहं'की भावना इतनी तीव्र होती है कि हम अपने बडप्पनमें भूले रहते हैं। जो आत्म-परिष्कारकी इच्छा रखते हैं, उन्हे दोष भी यथार्थ दीखते है, अतएव निष्पक्षभावसे आत्मालोचन करनेसे ही यथार्थ उन्नति हो सकती है।

अपना शिवत्व जाग्रत् रक्खें !

वैज्ञानिक हमें सूचित करते हैं कि यदि सृष्टिके सूक्ष्म कणोंको परस्पर मिलाने, जोडने या संयुक्त करनेवाली शक्ति (Cohesive Force) न होती, तो हमारी सृष्टि विघटित होकर छोटे-छोटे टुकडोंमें विभक्त हो गयी होती । सृष्टिका अन्त आ गया होता । परमेश्वरने ऐसी शक्तिका निर्माण किया है जो सृष्टिको बीजरूपसे संयुक्त किये हुए है । जड पदार्थोंमें ही नहीं; परस्पर जोडनेवाली इस शक्तिका अस्तित्व प्राणि-जगत्में भी है । प्राणि-जगत्को परस्पर एक सूत्रमें सम्बद्ध करनेवाली शक्ति एक प्रेम है । प्रेमके दैवी नियमके अनुसार भिन्न-भिन्न प्राणी परस्पर एक दूसरेके संनिकट आते हैं; सामाजिक प्रेममय जीवन व्यतीत करते है और सुखी रहते हैं । प्रेमके पश्चात् दूसरी महान् शक्तिका नाम है शिवत्व अर्थात् कल्याणके उच्चस्तर-

पर उठना, परोपकार-रत रहना, दूसरोंको ऊँचा उठाना, सेवा-सहायता कर मानवताके स्तरको श्रेष्ठता एवं पूर्णताकी ओर ले जाना है। जहाँ शिवत्व है, वहीं उन्नतिकी ओर प्रगति है। जहाँ कुटिलता है, वहीं अवनति है। शिवत्व मानवमात्रको सज्जनता और भलाईसे परस्पर संयुक्त करनेवाली विवेक-जनित शक्ति है।

मनुष्यने महाविध्वंसकारी एटम बम, हाइड्रोजन तथा नाइट्रोजन बमोंका आविष्कार किया है, जिसके क्रूर प्रयोगके द्वारा सृष्टिके बृहत् भागका नाश हो सकता है, जीव-जन्तुके अतिरिक्त पर्वततक विलीन हो सकते हैं, पृथ्वीका विशाल भाग नष्ट किया जा सकता है, समुद्रका जल खौल सकता है, और समस्त विश्व समाप्त किया जा सकता है; परंतु ऐसा नहीं हुआ, विश्व मौजूद है। इसका कारण यह है कि विध्वंसात्मक विरोधी शक्तियोंकी अपेक्षा दैवी सृजनात्मक शक्तियाँ अधिक हैं। दूसरे शब्दोंमें घृणा, हिंसा, द्वेष, स्वार्थ, वासनाकी अपेक्षा मनुष्यका प्रेम, सत्य, शिवत्व अधिक हैं। देवत्व अधिक है। वह असुरत्वको दबाता रहा है। आसुरी सम्पदा दैवी सम्पदासे सदा हारती रही है। मनुष्यमें बुराईकी अपेक्षा अच्छाई अधिक है।

मानव-भूमिपर शिवत्वकी जिस दिन कमी हो जायगी, उसी दिनसे विश्व क्षीण होना प्रारम्भ हो जायगा। सम्भव है, कुछ व्यक्तियोंमें असुरत्व उग्र हो उठा हो, किंतु शिवत्वका प्राधान्य रखनेवाले महापुरुषोंका आधिक्य है। शिवत्वके आधारपर मानव-जगत् आधारित है।

आजके स्वार्थ-ईर्ष्यामय संसारमें प्रत्येक मनुष्यका उत्तरदायित्व बढ़ गया है। यदि हम विश्वको सुखकर, शान्तिपूर्ण एवं आनन्दमय बनाना चाहते हैं, तो हममेंसे प्रत्येकको अपने व्यक्तित्वके शिवत्व (पर-हित) की वृद्धि करनी चाहिये। अर्थात् यथासम्भव अपने संकल्पों एवं कार्योंकी सुघड़ता, उच्चता एवं सदाशयतासे जगत्में शिवत्वका प्रसार करना चाहिये।

व्यक्तियोंसे समाज, समाजसे देश और देशसे विश्वभरमें शिवत्वका प्रसार हो सकता है। एक-एक व्यक्ति स्वयं अच्छे समुन्नत बननेका प्रयत्न करे, तो उसके सम्पर्कमें आनेवालेसे अन्य व्यक्ति भी अनुकरणद्वारा सदाशयता ग्रहण कर सकते हैं। आप स्वयं अपने शिवत्वका विकास करनेको कटिबद्ध हो जायँ, तो जगत्की वाटिकामें एक ऐसे वृक्षके समान उपयोगी हो सकते हैं जिसकी शीतल छायामें अन्य व्यक्तियोकी शुभ वृत्तियाँ विकसित और प्रेरित हो। सङ्गका मनोवैज्ञानिक प्रभाव होता है। शुभ वृत्तियोंवाले व्यक्तिके सम्पर्कमें मनुष्यका देवत्व विकसित होता है। अतः स्वयं आप शिवत्वका व्रत ग्रहणकर न केवल अपना उद्धार करते हैं; वरं विश्वको मङ्गलमय बनानेमे भी प्रचुर सहायता प्रदान करते हैं।

शिवत्व धारण करनेवाला व्यक्ति तृष्णाजनित स्वार्थ, थोथे ममत्व एव निकृष्ट वासनासे दूर रहता है। वह अपने लिये नहीं, दूसरोकी भलाईके लिये जीवित रहता है। स्वयं उसका चरित्र एवं आत्मविकास दूसरोंके लिये अनुकरणीय होते हैं। उसके आत्म-भावका दायरा अति विस्तृत होता है और जाति, धर्म, सम्प्रदाय या सामाजिक स्थितिके बन्धन उसके लिये कोई अर्थ नहीं रखते।

आप शिवकी उपासना करते हैं। शिवलिङ्गपर पुष्प, बेलपत्र तथा नैवेद्य अर्पित करते हैं, पर क्या आप शिवजीके महत्त्वको समझते हैं? क्या आप शिवत्वको अपने जीवनमें उतारते हैं? क्या आपका जीवन उन सिद्धान्तोंपर चल रहा है जिसके शिव प्रवर्तक थे?

शिवजीका समग्र जीवन बुराईका नाश और भलाईकी स्थापनाके लिये है। उन्होंने मानवमात्रके कल्याणके लिये अपने कण्ठमें विष धारण किया और वे नीलकण्ठ कहलाये। दैत्य एवं राक्षसोंका दमन किया और शिवत्वकी स्थापना की। इसी प्रकार विश्वव्याप्त हिंसा, ईर्ष्या, स्वार्थ, ममत्व, वासना, तृष्णाके विषको निगलकर संसारके कल्याणके हेतु प्रेम, सौहार्द, सेवा,

सहानुभूति, दया, त्यागका प्रचार-प्रसार कर आप भी जीते-जागते शिव बन सकते हैं। सदाशयताकी मधुर मुसकान मुखपर धारण कर सकते हैं। दूसरोंका अन्धकारमय पथ अपने आत्मज्ञानसे आलोकित कर सकते हैं।

आत्माओ ! संसारमे अपने देवत्वका प्रसार करो। सज्जनताका प्रकाश फैलाओ। भय और चिन्तासे प्रकम्पित विश्वमें विश्वास, पारस्परिक सौहार्द और बन्धुत्वकी शीतलता छिड़को। सर्वत्र आत्मभावकी रश्मियोंको बिखेरते रहो। तुम्हारा जीवन, मानव ही नहीं, समस्त जीवमात्रके कल्याण, सेवा, सहायताके लिये ध्रुवतारा हो सकता है।

आपके मनमे शिवत्व हो अर्थात् आप स्वयं अपने तथा दूसरोंके लिये शुभ सात्त्विक मति धारण करे, सबका भला, सबकी उन्नति, स्वास्थ्य, कुशलता, मङ्गलमय भविष्यके शुभ विचारोंसे परिपूर्ण रहे। किसीके लिये भी अहितकर विचार मनःप्रदेशमे प्रविष्ट न होने दे। मनसे किसीका बुरा न चाहे। किसीके विरोधमें आया हुआ दुष्ट विचार न केवल दूसरोंके लिये स्वयं आपके लिये भी विषैला है। दूसरेको हानि पहुँचानेसे पूर्व वह आपको घातक मानसिक विषसे भर देता है। आपका अणु-अणु घृणा, ईर्ष्या, क्रोध, प्रतिशोधसे उद्विग्न हो उठता है। प्रतिक्षण एक अग्नि हृदयप्रदेशमें जलती रहती है। शिवत्व धारण करनेसे मन स्वस्थ और शीतल रहता है। विवेक संतुलित मानसिक अवस्थामें ही कार्य करता है।

अपने वचनमे शिवत्व प्रकाशित करें। मुखसे कोई ऐसा वाक्य या शब्द न उच्चारण करें जिससे अपना या दूसरेका अहित हो सकता हो। वचनका संयम प्रत्येक साधकके लिये महत्त्वपूर्ण है। आप जो कुछ उच्चारण करते हैं, उसका प्रभाव समस्त समाजपर पडता है। वचन आपको समाजसे संयुक्त करता है। बोले हुए शब्दकी तरंगे विश्वभरमें व्याप्त हो जाती हैं। उनसे अनेक मानवसमुदाय प्रभावित होते हैं। अतः अपशब्दका उच्चारण कर अपने आपको कलङ्कित, लाञ्छित न कीजिये। जो व्यक्ति दैनिक

व्यवहारमें वासनासम्बन्धी अश्लील गालियोंका उच्चारण करते हैं, वे समाजका बड़ा अपकार करते हैं। एक तो वासनाके प्रति जीवका आकर्षण स्वय ही होता है, दूसरे ये गंदी गालियाँ अपरिपक्व शिशुओंपर अपना गुप्त प्रभाव डालती हैं। उनके मन विषैले विचारोंसे भरकर पापकी ओर उन्मुख होते हैं। समाजमें जो अनाचार, अश्लीलता, गंदगी, वासनाका नग्न ताण्डव फैला हुआ है, उसका कारण सिनेमाके गंदे गीत हैं जो प्रायः रेडियो अथवा अविवेकी मूर्खोंद्वारा गा-गाकर प्रचलित हो रहे हैं। आप वाणीके इस पापसे बचें। जिह्वापर संयम रखकर शुभ भाव प्रकट करें; दूसरोंको अच्छे संकेत ही दें; उनकी उन्नतिके लिये सृजनात्मक आलोचना ही करें, आत्मभावके विकासमें सहायक हों। अपने वचनोंद्वारा दूसरोंको आदर, सतोष, महानता देनेसे आप स्वय बदलेमें इन्हीं दैवी सम्पदाओं-को प्राप्त करते हैं।

मनके सयमका तो आप स्वयं ही अनुभव करते हैं; किंतु वचनका सयम समाजका भला करनेवाला है। आप जो शब्द मुखसे निकाले, उनकी सत्यता, निर्मलता और उपादेयतापर विचार करके ही उच्चारण करें। आपके वचनोंसे कटु सत्य भी मधुर होकर निकले, जिससे दूसरा उसे ग्रहण कर ले और अपना भला कर सके। झूठी प्रशंसा, दिखावा, चुगली, असत्य भाषणसे सदा सावधान रहे। ये आपके शिवत्वका ह्रास करनेवाले शत्रु हैं।

तीसरी साधना कर्ममें शिवत्व है। आपके कार्य शिवतत्त्वसे परिपूर्ण हो। आपके हाथ-पाँवोंद्वारा किये गये कर्मोंसे समस्त मानवताका भला होता रहे। इस प्रकार मन, वचन, कर्मद्वारा अपने आचरणमें शिवत्वकी साधना करते चलें। अपना शिवत्व जाग्रत् रक्खे।

उपकार करनेकी शक्तिका प्रयोग करें

'हमारी योग्यता और हमारे हृदयसे यदि कोई अधिकारी पुरुष उचित माँग पेश करता है, तो उसे देनेमें ही बुद्धिमानी है। निरन्तर देते रहो; क्योंकि पहले या पीछे तुम्हें अपना ऋण बराबर चुकाना पड़ेगा। थोड़े समयके लिये तुम्हारे न्यायपथके बीचमें मनुष्य या घटनाएँ भले ही बाधक सिद्ध हों, पर टालना थोड़े ही समयके लिये होगा। अन्तमें तुम्हें कर्ज बराबर चुकाना पड़ेगा। अगर तुम बुद्धिमान् हो, तो तुम ऐसे वैभवसे डरोगे, जो तुम्हारे सिरपर और भी बोझस्वरूप बन जाय।

'उपकार ही प्रकृतिका लक्ष्य है, पर जितने अधिक तुम उपकृत होते हो, उतना ही अधिक तुमपर टैक्स लगेगा। महापुरुष वही है, जो अधिक-से-अधिक दूसरोंका उपकार करे। वह नीच है—और संसारमें यही एक बड़ी नीचता है कि स्वयं उपकार ग्रहण करते रहना और किसीकी भलाई न करना। प्रकृतिका यह कुछ नियम-सा है कि जो लोग हमारे ऊपर उपकार करते हैं, उनके साथ उपकार करनेका मौका प्रायः हमें मिलता ही नहीं और मिलता भी है तो बहुत कम। लेकिन जो भी उपकार हमारे साथ किया जाय, जो भी लाभ हमे प्राप्त हो, उसे हमे ज्यों-का-त्यों पाई-पाई चुका देना चाहिये, अपने उपकारीको नहीं तो किसी दूसरेको ही।

'सावधान! कहीं तुम्हारे हाथमे उपकार करनेकी बहुत-सी शक्तियों ही खाली न पड़ी रहे। यह शक्ति खाली पड़ी-पड़ी सड़ जायगी, इसमें कीड़े पड़ जायेंगे। किसी-न-किसी ढंगसे इस शक्तिका सदुपयोग करो।'—एमर्सन

एमर्सनके इन शब्दोंमें गहरी सत्यता निहित है। निरन्तर देते रहनेसे मनुष्य न केवल दूसरेका उपकार करता है, प्रत्युत स्वयं अपना भी विकास करता है। मान लीजिये, कोई आपसे श्रमदानकी आकांक्षा करता है। कहता है, 'मुझे पढा दीजिये, अमुक पुस्तक समझा दीजिये—मेरे लिये

कुछ लिख दीजिये, मेरा पत्र लिख दीजिये तो इन कार्योंको कर देनेसे प्रार्थीका तो भला होता ही है; उसकी आत्मासे निकली हुई आशीर्वादकी वाणी तो आपको प्राप्त होती ही है, साथ ही इन कार्योंमे शक्तियोंका व्यय करनेसे वे स्वभावतः विकसित होती हैं। हम चाहे जान-बूझकर अथवा किसीसे प्रेरित होकर ज्यों ही कार्यमें संलग्न होते हैं, त्यों ही हम अपनी शारीरिक अथवा मानसिक शक्तियोंसे कार्य लेने लगते हैं। इस अभ्याससे स्वयं हमारा शरीर विकसित होता है और मन प्रसन्न रहता है।

दूसरेके साथ किये गये उपकारसे उत्पन्न प्रसन्न मानसिक मुद्रा, आन्तरिक संतोष एवं आशावादिता ऐसी बहुमूल्य दैवी सम्पदा है, जिसका मूल्य कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है। हमारे द्वारा किया हुआ उपकार हमें अमित मानसिक संतोष प्रदान करता है। आत्म-संतोषसे बढ़कर दूसरा आनन्द नहीं। आत्मानन्द ही आनन्दकी सर्वोच्च स्थिति है।

लोकोपकारके लिये किये गये कार्योंके करनेमे हमें दैवी सहायता मिलती है, सतत साथ रहनेवाली दैवी प्रेरणा हमारे साथ रहती है। उन कवियोंकी अमृत-वाणीमें अवगाहन कीजिये जिन्होंने 'स्वान्तःसुखाय' साहित्यमें रस-धारा प्रवाहित की है। तुलसीदासजीके मनमे न अर्थलाभ था, न यशाकाङ्क्षा। भक्तप्रवर सूर काव्य-सृजनको जीविका-उपार्जनका माध्यम नहीं बनाना चाहते थे। प्रेमविह्वल मीराबाईकी पीयूषवर्षिणी वाणी केवल आत्म-संतोषके लिये लिखी गयी थी। गुरु नानक, संत कबीर इत्यादि भक्त कवियोंकी कविताका ध्येय परोपकार-वृत्ति ही थी। इस वृत्तिके कारण ही उन्हें निरन्तर दैवी प्रेरणा प्राप्त होती रही, उनकी वाणीमें अपूर्व रस और हृदयको स्पर्श करनेकी शक्तिका प्रादुर्भाव हुआ; दूर-दूरतक उसका प्रसार हुआ। असंख्य जनताने उसमें निमज्जनकर आत्म-संतोष प्राप्त किया। परोपकारी दृष्टिकोणकी यही विशेषता है कि यह मनुष्यमें गुप्त आत्मबल भर देता है। संसारसे कुछ न पाकर भी परोपकाररत व्यक्ति अपनी आत्माने सब कुछ प्राप्त कर लेता है।

परोपकारी वृत्ति जिस क्षेत्रमें प्रवेश करती है, उसीमें अपना चमत्कार प्रदर्शित करना प्रारम्भ कर देती है। राजनीतिके क्षेत्रमें महात्मा गांधीजीकी ख्यातिके और बहुत-से कारणोंसे परोपकारवृत्तिकी ही प्रधानता है। स्वयं अपने स्वार्थके लिये उन्होंने कुछ नहीं किया, बड़े-बड़े महल, विशाल अट्टालिकाएँ, जमीन, जायदाद कुछ भी एकत्रित न कर वे स्वदेश-सेवा, सत्य-पालन, अहिंसाकी साधनामें संलग्न रहे। जीवनभर दूसरोंको देते रहे। उन्होंने अपना समय, धन, चिन्तन, श्रम, यहाँतक कि शरीरतक देश-सेवाको दान दे डाला। इस आत्मसमर्पणका फल यह हुआ कि कुछ न होते हुए भी वे आजतक असंख्य भारतवासियोंके हृदय-सम्राट् बने हुए हैं। जिन व्यक्तियोंने अर्थ, यश या शक्तिकी कामनासे कार्य किये, हम उन्हें विस्मृत कर बैठे हैं।

आधुनिक युगमें विनोबा परोपकारवृत्तिकी एक सजीव प्रतिमा हैं। भू-दान-यज्ञके कार्यको वे परोपकारकी दृष्टिसे कर रहे हैं। स्वयं उनके पास कदाचित् निवासके लिये मकान भी न हो, किंतु अनेक निर्धन, बेघर-बारके व्यक्तियोंके लिये उन्होंने भूमि एकत्रित कर दी है। ग्राम-ग्राम वे पैदल भागे फिरते हैं। उनका शरीर दुबला कृशकाय है, फिर भी उसमें दैवी शक्तिका निवास है।

परोपकारी वृत्तिके ऐसे कितने ही उदाहरण हमें इतिहासमें उपलब्ध हो सकते हैं। आज भी वे दैवी-आलोकसे द्युतिमान् हैं। ईश्वरीय शक्तिका गुप्त प्रभाव आज भी उनके साथ है।

जो व्यक्ति अपनी परोपकार-वृत्तिका विकास करता है, वह अपने व्यक्तित्वमें दैवी आकर्षण उत्पन्न कर लेता है, जिसका अलक्षित प्रभाव जनतापर गहराईसे स्थायीरूपमें पड़ता है। इस वृत्तिका विकास समय मिलते ही अवश्य करें।
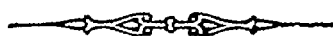
जीवनकी सार्थकताके चार नियम

जेन काऊल नामक विद्वान्ने मानव-जीवनकी सुख-समृद्धि एवं आन्तरिक शान्तिकी दृष्टिसे चार बड़े महत्त्वपूर्ण नियमोंका प्रतिपादन किया है। उनका विश्वास है कि इन नियमोंके आधारपर मनुष्य सुखी जीवन व्यतीत कर सकता है।

उनका प्रथम नियम है '<u>स्मरण रक्खो कि आनेवाला कल आजकी अपेक्षा अत्यन्त उल्लासपूर्ण होगा। उसके पूरे-पूरे उपयोगपर आशा रक्खो।</u>'

वास्तवमें आनेवाले 'कल' का महत्त्व अत्यधिक है। यदि हम अपने भावी जीवनके प्रति उल्लसित आशावादी दृष्टिकोण रखकर निज-जीवनमें पदार्पण करें और प्रत्येक परिस्थितिसे किसी-न-किसी प्रकार लाभ उठानेकी भावना मनमें रक्खें, तो निश्चय ही हमारी कार्य-सम्पादिका शक्तियाँ तीव्रतासे अपना कार्य करनेको प्रस्तुत रहती हैं। आशा मनुष्यके जीवनका

स्रोत है। हम किसी महान् उद्देश्यके लिये सतत प्रयत्नशील हैं तो आशाकी डोरी पकड़कर ही अग्रसर हो सकते हैं। वह हमें जीवन-रससे, नवीन उमंगसे परिपूर्ण कर देती है।

जिस व्यक्तिने उत्साह खो दिया है, वह सबसे बड़ा दिवालिया है। रुपयेका दिवाला तो आसानीसे पूरा हो सकता है। यदि आशा और उत्साहका दृढ़ सहारा प्राप्त है, तो लक्ष्मीका कृपापात्र बना जा सकता है, चार-छः वर्षमें बहुत आर्थिक लाभ हो सकता है, मूर्ख भी विद्वान् हो सकता है; किंतु आनेवाले 'कल' पर भरोसा न रखनेवाला व्यक्ति तो आधार-भूत जीवनतत्त्व—भविष्यके लिये आशाका दिवालिया है। ऐसा दिवालिया जीवनमें कुछ नहीं कर सकेगा, 'आज' का भरा-पूरा उपयोग कीजिये, किंतु 'कल' पर आजसे भी अधिक अच्छा कार्य करनेका दृढ़ संकल्प और आशा रखिये। एक-एक क्षण बहुमूल्य धन है। व्यर्थ नष्ट किया हुआ प्रत्येक क्षण दुबारा वापस आनेवाला नहीं है। कलकी आशामें मनुष्य 'आज' का सही उपयोग करना सीखता है।

द्वितीय नियम है, 'कला-संगीत, पुस्तक और सामयिक घटनाओंके विषयमें ज्ञानवर्द्धन करो।' इसके अन्तर्गत काऊल महोदयने बड़ी गहरी बात कही है। यदि मनुष्य केवल अपने ही विषयमें सोचता-विचारता रहे, रुपया कमाकर अपने ही हितमें खर्च करे, केवल अपना ही लाभ दृष्टिमें रक्खे, तो उसमे एक बड़ा दुर्गुण आ जाता है। उसकी ज्ञानपरिधि बहुत सीमित हो जाती है। वह स्व-केन्द्रित हो जाता है। स्वार्थमयी भावना-की निरन्तर अभिवृद्धि होनेसे उसका आत्मविकास रुक जाता है।

कला, संगीत, पुस्तकावलोकन, अध्ययन, समाचारपत्रोंका अध्ययन हमारे ज्ञानका विस्तार कर हमें स्वकेन्द्रित होनेसे बचाता है। इससे हमारी रुचिका परिष्कार होता है और हम व्यक्तिगत राग-द्वेषसे मुक्त होकर अपनी वासनाका परिष्कार करते हैं।

वासना मनुष्यकी वड़ी भारी कमजोरी है। यह ऐसी घातक चीज है कि वीर-से-वीर और दृढ़-से-दृढ़ व्यक्तिको अनायास ही पछाड़ डालती है। वासनाके वहावको रोकना असम्भव है। कला, सङ्गीत, अध्ययन, पूजन, संध्या, गायत्री इत्यादिका सबसे वड़ा महत्त्व यह है कि ये मनुष्यकी वासनाके विकासको सांस्कृतिक प्रकाशमय मार्ग प्रदान करते हैं। हमारे क्रोध, घृणा और मदका नाश होता है। कलात्मक अभिरुचिसे व्यक्तिका पथ मङ्गलमय होता है। सङ्गीत तथा भक्तिका समन्वय कल्याणकारी है।

तृतीय नियम स्मरण रखिये, 'सर्वशक्तिमान् प्रभुमें जब तुम्हारा विश्वास है, तब तुम्हारी यह निष्ठा सुरक्षाके लिये चट्टानका कार्य करेगी।'

ईश्वरमें निष्ठा रखनेवाले व्यक्तिको सत्य, न्याय, प्रेम, सहानुभूति एवं उदारताकी ऐसी आधारशिला प्राप्त हो जाती है, जिससे उसे लोकोत्तर आनन्द प्राप्त होता है। ऐसा व्यक्ति अपने आपको ईश्वरसे संयुक्त देखता है। उसे प्रत्येक पुष्प एवं पत्तेमें ईश्वरीय सुरक्षाके दर्शन होते हैं।

ईश्वरीय विचारोंसे संचालित व्यक्ति अपने हृदयमें एक दिव्य आलोकका अनुभव करता है जिससे वह दैवी कार्यकी ओर अग्रसर होता है। वह प्रत्येक कार्यको ईश्वरीय समझकर एक पूजाके रूपमें करता है।

आध्यात्मिक जीवनके विकासकी आधारशिला परमेश्वरमें निष्ठा है। यह जड़मूलसे निकलकर मनुष्यकी आध्यात्मिकता, परिवार, मुहल्ला, शहर, देश और यहाँतक कि समग्र संसारको प्रभावित करती है। मनुष्य परमेश्वरकी सत्ता अपने अणु-अणुमें भरकर ही ऊँचा उठता है।

हमारी सबसे प्रभावशाली प्रार्थनाएँ वे हैं, जिनमें हम समय और संसारकी चेतनासे ऊँचे उठकर एक उच्चस्तरमें निवास करने लगते हैं। भक्त मीरा, प्रह्लाद, कवीर इत्यादि संसारमें रहते हुए भी इसी सत्तामें निवास करते रहे। वे अपने आपको परम प्रभुके हाथोंका एक ऐसा यन्त्र

समझते थे, जिसका संचालन स्वयं प्रभु करते थे। इस रहस्यवादी सांनिध्यसे ही हम अपने जीवनमे सुख-शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। परमेश्वरकी शक्ति ही हममें प्रकट होती है।

चतुर्थ नियम है—दूसरोंको आप अपने ज्ञानका दान कीजिये। जहाँ कहीं भी हों और जब कभी भी कर सके, दूसरोंके साथ आत्मीयता और मैत्रीका व्यवहार कीजिये और यथासाध्य उनकी सहायता कीजिये।

दान चाहे जिस रूपमें, चाहे जिस वस्तु—श्रम, भूमि, रोटी, आटा किसीका हो, मनुष्यको त्याग एवं बलिदानकी शिक्षा देता है। दान संयमका प्रथम सोपान है। यथासम्भव हम सभी प्रकारके दान करते रहे, तो श्रेष्ठ है।

यदि आपके पास समुन्नत मस्तिष्क है, आप नवीन दृष्टिसे जीवनके कर्मोंको समझ सकते हैं तो अपने दृष्टिकोणोंको दूसरोके समक्ष अवश्य रखिये। दूसरोके हृदयमें ज्ञानका प्रकाश डालिये। आपका व्यवहार आत्मीयता एवं मैत्रीसे परिपूर्ण होना चाहिये। मैत्री-भावकी वृद्धि करनेसे मनुष्यको अशान्त करनेवाला दुर्भाव, ईर्ष्या-द्वेष नष्ट हो जाता है। आत्मीयताका दायरा सदा बढ़ाते रहिये। आपके इस दायरेमे केवल घरके व्यक्ति या मित्र ही न हों, समग्र संसारके व्यक्ति और जीवमात्र हो। मैत्रीभावकी अभिवृद्धिसे आप सुख-दुःख, राग-द्वेष, मान-अपमानके ऊपर उठकर कल्याणकारी जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

वास्तवमें, उपर्युक्त चारों नियम अध्यात्म-मार्गपर अग्रसर होनेके लिये उपयोगी ज्ञानसे परिपूर्ण हैं। अधिक-से-अधिक लाभ तभी प्राप्त हो सकता है, जब आप दैनिक जीवनमे इनका प्रयोग दृढ़तासे करते चलेंगे।

मनका भार हलका कीजिये

क्या आप मन-ही-मन दुखी रहते हैं ? क्या अंदर-ही-अंदर भुने जा रहे हैं ? कोई आन्तरिक दुःख-पीड़ा या अन्तर्वेदना आपको व्यथित—पीड़ित कर रही है ? कोई दुर्दमनीय विषम मानसिक व्यथा आपको व्यथित रखती है ? यदि आप दुखी हैं, पीडा, कसक, वेदना या आन्तरिक हाहाकारसे विह्वल रहते हैं तो आपको सावधान हो जाना चाहिये । इसका तात्पर्य यह है कि आपपर कोई गम्भीर और स्थायी मानसिक कष्ट आनेवाला है । इस स्थितिसे जितनी शीघ्रतासे हो, छुटकारा प्राप्त कीजिये ।

मानसिक दुःखका कारण गुप्त मनमें कटु स्मृतियों या भावी आशङ्काओंको सहेजना और विपरीत विचार रखकर निरन्तर उन्हें पोसते जाना है ।

मानसिक कष्टोंसे आक्रान्त व्यक्ति अंदर-ही-अंदर घुले जाते हैं, ऊपरसे हँसते रहनेपर भी अंदरसे नैराश्यकी काली छाया उनपर पड़ती रहती है। जब वे एकान्तमें होते हैं, तब विक्षुब्ध होकर रोते हैं, अश्रुधारा बहाते हैं। संसार उन्हें अन्धकारमय और नैराश्यपूर्ण प्रतीत होता है।

आप मनमे कष्ट, पीड़ा लिये फिरते हैं, तो मानो अपने साथ भयंकर अत्याचार कर रहे हैं। अपनी महत्त्वाकाङ्क्षाओं और उल्लासपर पानी फेरकर जीवन उजाड रहे हैं। अपने मनका भार हलका कीजिये।

मनमें गुप्त इच्छाओ, दलित भावनाओंको रखना अनेक प्रकारके मनोवैज्ञानिक रोगोंकी सृष्टि करना है। गुप्त मनमें कष्ट रखना रूईमें अग्नि छिपाये रखनेके अनुरूप घातक है।

जैसे आप कूड़ा-करकट बाहर नालीमें फेंककर अपने घरको झाड़ते-बुहारते स्वच्छ करते हैं, वैसे ही अपने मनके रुके हुए इन दुष्ट विकारोंको फेंक दीजिये, बाहर निकाल दीजिये। निम्न उपायोंसे आप आन्तरिक गंदगीसे सहज ही मुक्ति पाकर गुप्त मनको स्वच्छ कर सकते हैं।

अपने इष्टमित्रोंकी संख्यामें वृद्धि कीजिये। आत्मभावका जितना व्यापक प्रसार होगा, उतना ही मनका भार हलका होगा। इनसे आप खुल-खुलकर बातें कीजिये। इनको अपने मनकी व्यथा तथा अपनी अनुभूतियाँ सुनाकर मनका भार हलका कर सकते हैं।

मनुष्य यह चाहता है कि कोई उसकी अन्तःकथाएँ सुने, उसके साथ समवेदना प्रकट करे, उसे सच्ची सान्त्वना प्रदान करे और निरन्तर ऊँचा उठनेकी प्रेरणा प्रदान करे। आपका यह मित्र आपकी दुःखभरी कहानियाँ सुनकर मनकी व्यथाको हलका करेगा। सच मानिये, अपने मनकी बात किसी दूसरे सहानुभूति रखनेवालेसे कह देना मनके भारको हलका करनेका एक अमोघ साधन है।

क्या आपके गुप्त मनमे मिथ्या भय, शङ्काएँ रहती हैं ? यदि ऐसा है, तो इनका दूसरोंसे समाधानकर निकाल दीजिये, अन्यथा इसके फल भयंकर हो सकते हैं । मनोवैज्ञानिक सलाह पूछनेवाले एक पाठकका यह पत्र देखिये और फलकी भयंकरतापर विचार कीजिये—

आपके सुन्दर तथा मनोवैज्ञानिक लेख पढकर मनको अत्यन्त शान्ति प्राप्त होती है और एक नया मार्ग दिखायी पडता है, परतु क्या बताऊँ मेरे मनपर बोझा है, जिसे हटानेकी लाख कोशिश करनेपर भी वह हल्का नहीं हो पाता और वह बोझा है शारीरिक जो कि समयके बहावके साथ मानसिक रूप धारण कर चुका है। दुर्भाग्यवश अपनी मन्दबुद्धिके कारण मेरा चेहरा अत्यन्त कुरूप बन गया है। मुहाँसो और काले दागोंने मेरे मुखके लावण्यको हटाकर विचित्र-सा बना दिया है। मन तो चाहता है कि चमड़ीको उधेड़ दूँ, उपचार भी करता हूँ तो बेफायदा । दूसरोंके सामने ऐसे भद्दे और कान्तिहीन मुखको ले जाते हुए लज्जा-सी अनुभव होती है। बचपनकी स्मृति याद आती है तो मन और भी दुःखित होता है। कभी-कभी नौबत यहाँतक पहुँचती है कि आत्महत्या करनेका मन होता है। मेरा मन अत्यन्त दुःखित और मलिन है, किसी काममें नहीं लगता । सब व्यर्थ-सा जान पडता है। मानसिक व्यथाके कारण मनमें कभी प्रसन्नता नहीं रहती। जीवन निराशापूर्ण और अन्धकारमय लगता है। इस चेहरेकी कुरूपताने मेरे मन और मस्तिष्कको घुनके समान चाट लिया है।

इस पत्रमे अभिव्यक्त समस्त मानसिक कष्ट केवल आत्मग्लानि और हीनत्व भावनाकी ग्रन्थिके कारण हैं। मुहाँसा होना यौवनके आगमनका प्रतीक है।। पेटमे कब्जके कारण या रक्तमें उष्णताके कारण भी मुहाँसे हो सकते है। प्रायः अनेक संवेदनशील व्यक्ति ऐसी या और छोटी-छोटी नगण्य बातोंको लेकर मानसिक वेदनासे व्यथित रहते है। अपना दुःख कहें, तो दूसरे उसमें हिस्सा बटावें, कुछ कम करें । दुःख बटे। अंदर-ही-अंदर मानसिक कष्टको पोसते रहनेसे आत्महत्या-जैसी घृणित स्थिति-

तक आ सकती है । अतः गुप-चुप कष्टको दूसरोंसे कहकर सलाह लीजिये, उसका हल ढूँढ़िये । अनेक व्यक्ति गुप्त घृणित रोगोंके शिकार होकर मन-ही-मन पश्चात्ताप किया करते हैं, झूठे वैद्यों या हकीमोंके चक्रमे पड़कर रुपया नष्ट करते हैं, यह भयकर भूल है । जब आप अपनी समस्याको दूसरोंपर प्रकट करते हैं, कहते है या लिखते हैं, तब वह मनसे दूर हो जाती है । गुप्त भार हलका हो जाता है । किसी गुप-चुप पीड़ाके कारण आत्म-हत्या कर बैठना भयंकर पाप है ।

कोई ऐसी समस्या नहीं, जिसका हल न हो; कोई ऐसी परिस्थिति नही, जिसे सुधारा न जा सके । संसारकी जटिल-से जटिल मानसिक, सामाजिक समस्याका कोई हल हो सकता है, जिससे जीवन स्थिर रह सकता है और समस्याका निवारण भी हो सकता है ।

क्या आप कुरूपतासे व्यग्र हैं ? यह स्मरण रखिये कि पुरुषका सौन्दर्य उसके चेहरे या त्वचा, रूपकी बनावटमें न होकर उसके पुरुषत्वमे है । पुरुष होकर आप नारी-सुलभ लज्जा या कमनीयताकी आकाङ्क्षा न कीजिये । अपनी शक्तिकी वृद्धि कीजिये । स्त्रियाँ प्रायः कुरूप, बेडौल, काले रंगके या वीर, साहसी, निर्भय, शक्तिशाली वीरोंको पसद करती हैं । पुरुषका भूषण उसका पुरुषत्व, उसका साहस, ओज और वीरता है ।

क्या आप किसी दिशाविशेषमे पायी जानेवाली अपनी न्यूनता या कमजोरीसे तो व्यथित हैं, किंतु क्या आपने अपने गुणों और विशेषताओंकी ओर भी ध्यान दिया है ? यदि अपने गुण नहीं देखे हैं तो अपने साथ भारी अन्याय किया है ।

आपमें कुछ गुण हैं, अवश्य हैं। बहुत बड़े पैमानेमे कुछ गुण हैं । कभी अपने गुणोंको खोज निकालने और सतत अभ्याससे उन्हे विकसित करनेकी

चेष्टा की है, सम्भव है, आप कुशल वक्ता, व्यापारी, सेक्रेटरी या अध्यापक बन सकते हैं। सङ्गीत, साहित्य, कला इत्यादिमें आपको प्रसिद्धि प्राप्त हो सके। सम्भव है नेतृत्व करनेके गुण आपमे भरे पड़े हो। दुनियामें हजारो एक-से-एक बड़े और महत्त्वपूर्ण कार्य आपके करनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। यदि आप तन-मनसे उनमें लग जायँ तो निश्चय जानिये आपके मनका भार हलका हो सकता है। क्षतिपूर्तिका नियम आपके लिये कल्याणकारी है। विधिके विधानमें सर्वत्र न्याय है। परमेश्वरने एक बातकी एक स्थानपर कमी रक्खी है, तो दूसरी ओर उससे भी शक्तिशाली गुणोका प्रादुर्भाव किया है। वह एक चीज छीनते हैं, तो दस देते भी हैं। उनके विधानमें कोई कमी नहीं है। सर्वत्र प्राचुर्य है। मुक्तहस्तसे इस अक्षय भंडारसे गुणोका दान निरन्तर होता रहता है।

अपने व्यक्तित्वका विश्लेषण सहृदयतासे कीजिये। स्वयं न करें, तो किसी मनोविश्लेषणवाले विशेषज्ञसे कराइये। अपने गुणोका विकास कर अपने क्षेत्रमें महान् बनिये। निश्चय जानिये, संसारमें आपके लिये कहीं-न-कहीं बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मानसिक भार हलका करनेके लिये सङ्गीतसे उत्तम अमोघ औषधि दूसरी नहीं है। सुमधुर स्वरमें गाना गानेसे मनकी दुःख-पीड़ाको बाहर निकलनेके हेतु एक द्वार प्राप्त हो जाता है। संचित मानसिक भार बह जाता है। मन हलका हो जाता है। आदिकालसे वेदनाके निवारणार्थ भक्त, योगी तथा सांसारिक व्यक्ति सङ्गीतका उपयोग करते रहे हैं।

यह न समझिये कि आप अच्छा गा नहीं सकते, तो न गायें। यह कुछ नहीं। चाहे आप अच्छा गाना गाना जानते हों, अथवा नहीं, अवश्य गाइये, अकेलेमें जाकर गाइये। भगवान्‌की मूर्तिके समक्ष अपने पाप, शङ्का, व्यथाओंको बहा दीजिये। पश्चात्तापमयी वाणीमें मनको हल्का करनेकी

अद्भुत शक्ति है । 'मो सम कौन कुटिल खल कामी'—कविके इस पश्चात्तापभरे गानसे उसे कितनी मानसिक शान्ति प्राप्त हुई होगी, वह एक सङ्गीत-प्रेमी ही जान सकता है ।

यदि कोई प्रेमी बन्धु परिवारका सदस्य, हितैषी मित्र स्वर्गवासी हो गया है और आप दुःखका अनुभव कर रहे हैं, तो कृपया रो डालिये । फूट-फूटकर रो लीजिये । अश्रुधाराके साथ आपके मनका भार बह जायगा । आप हलके हो जायँगे । मनमे व्यथाको रखना घातक है । इस विषको आँसुओंसे धो डालना मानसिक स्वास्थ्यका सूचक है । रोना एक मनोवैज्ञानिक शान्ति-मार्ग है । रोकर हम मनका भार हलका करते हैं ।

अपने व्यक्तित्वका अध्ययन कर उन रुचिर कार्योंकी एक सूची बनाइये, जिसमें आप विशेष दिलचस्पी रखते हैं—बागवानी, साहित्य-कला, चित्रकारी, खेल-कूद इत्यादि । इनमे इस तल्लीनतासे संलग्न हो जाइये कि पुरानी व्यथाओके बारेमें सोचने-विचारनेका अवकाश ही न प्राप्त हो । खाली मन शैतानका घर कहा गया है । अतः यदि आप खाली हाथ रहेंगे, तो पीड़ाका आक्रमण हो सकता है । व्यस्त जीवनसे मनको कुछ-न-कुछ करनेका आधार मिल जाता है और दुःखका बोझ घट जाता है ।

मुसकरानेका स्वभाव बनाकर हर समय मन्द-मन्द मुसकरानेका नुसखा आजमाइये । हँसने और मुसकराते रहनेसे मानसिक तनाव दूर होता है और मनमें ताजगीका संचार होता है । डाक्टर पैस्किड, डा० पैवक इत्यादिने नवीन मनोवैज्ञानिक अनुसंधानसे यह प्रमाणित किया है कि हँसकर दुःखोंका निवारण करना कोरी भावुकतामात्र नहीं, प्रत्युत एक निगूढ़ मनोवैज्ञानिक तथ्य है ।

प्रतिहिंसाकी अग्निको दमन करनेवाली दवा है हँसना और मुसकराना । आप दूकानदार हैं, ग्राहक शिकायत करते हैं, आप क्लर्क हैं, और मालिक

झिड़कियाँ देते या जुरमाना कर देते हैं, घरवाली अपनी बड़ी-बड़ी फरमायशें पेश करती है, तो इन सभी कुटिल मानसिक अवस्थाओंमें मुसकरानेके नुसखेसे काम निकालिये अर्थात् मनको उनके विपरीत संकेतोंसे प्रभावित मत होने दीजिये।

मृदु मुसकानके द्वारा उत्पन्न स्निग्ध वातावरणसे हम अंदर-ही-अंदर एक ऐसी शीतलताका अनुभव करते हैं जो हमें संसारके प्रकोपसे बाहरके दूषित वातावरणसे बचाता है।

एक स्थानपर लिखा है, मैं ऐसा प्रसन्नस्वभाव, जो सदैव प्रत्येक वस्तुका अच्छे दृष्टिकोणसे देखनेका आदी है, प्राप्त करना अधिक पसंद करूँगा, बनिस्बत इसके कि मैं दस हजार पौण्ड वार्षिक आयकी जायदादका स्वामी बन जाऊँ।

स्कोफेनरके अनुसार प्रसन्नता प्रत्यक्ष और शीघ्रतम लाभ है। वह अन्य सिक्कोंकी तरह केवल बैंकका ही सिक्का नहीं, वरं प्रत्यक्ष सिक्का है। धन प्रसन्नताका सबसे छोटा साधन है और स्वास्थ्य सबसे अधिक।

ऊपर अपने पाश्चात्त्य चिकित्सकों तथा विद्वानोंके विचार देखे। भारतमें भी प्रफुल्लताकी शक्तिको स्वीकार किया गया है। भारतके एक चिकित्सकके मतानुसार मुसकराना हमारे स्वास्थ्यके लिये तो आवश्यक है ही, जीवनकी कठोरता एवं संघर्षको भी कम करता है। उनके विचार देखिये—

'क्रोध, आशङ्का, चिन्ता, डर आदि मानसिक रोग हैं। जिस प्रकार शारीरिक रोगोंका हमारे शरीरपर प्रभाव पड़ता है, उसी तरह हमारे चेहरेपर प्रभाव पड़ता है। इन रोगोंकी दवा है मुसकराना—प्रसन्नचित्त रहना, मुसकराना वह दवा है, जो इन रोगोंका निशान आपके चेहरेसे ही नहीं उड़ा देगी, वरं इन रोगोंकी जड़ भी आपके दिलसे निकाल देगी। यह हो नहीं सकता कि मुसकरानेवालेका दिल काला या भारी रहे।

मुसकराहटकी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया

जब आप मुसकराते हैं, तो अपने आन्तरिक मनको एक स्वस्थ स्वसंकेत देते हैं। दर्पणमे अपना खिला हुआ मुखकमल देखकर आपको आन्तरिक आह्लाद होता है। इसका विद्युत्-प्रभाव आपके सम्पूर्ण शरीरपर पड़ता है। मांसपेशियाँ स्फूर्तिसे उत्तेजित हो उठती हैं और काममें मन लगता है। मुसकरानेवाला व्यक्ति ही अपने अवयवोको पूर्ण स्वस्थ दशामें रख सकता है।

मुसकरानेका दूसरा अर्थ यह है कि आपका मन मधुर कल्पनाओं,शुभ भावनाओं तथा पवित्र विचारोंसे परिपूर्ण है। इन पवित्र संकल्पोसे ऐसी किरणें निकलती हैं जो मानसिक स्वास्थ्यको उत्तम स्थितिमें रखती हैं, जब मुसकराहट स्थायीरूपसे आपके स्वास्थ्यका एक अङ्ग बन जाती है, तब स्वभावमे एक महान् परिवर्तन हो जाता है। ऐसे मधुर स्वभावसे आपका सर्वत्र स्वागत किया जाता है।

हँसना एक बड़ी दवा है

मनोविज्ञानकी दृष्टिसे दिल खोलकर हँसना, मुसकराते रहना और चित्त प्रफुल्ल रखना दवा है। —जे० गिलबर्ट ओकले

अगर तुम्हें दो बादल दिखायी पड़ें—एक काला और एक उजला तो कालेसे निगाह हटाकर उजलेको देखते रहो और सदा मुसकराते रहो। —जेम्स एल्बर्ट

सौ वर्ष जीनेके लिये अपने चारो ओर जवान और हँसमुख मित्रोंका गिरोह रक्खो। —श्रीमती एलिजाबेथ सैफोर्ड

उपर्युक्त सम्मतियोंसे हँसने-मुसकरानेकी शक्तिपर कुछ प्रकाश पड़ता है। सभ्यताके प्रारम्भसे चिकित्सकोने हँसने तथा मुसकराते रहनेके मनो-वैज्ञानिक प्रभावके सम्बन्धमे निर्देश किया है। शताब्दियों पूर्व

बाइबिलमें कहा गया था, 'आह्लादित हृदयका मानव-स्वास्थ्यपर वही लाभ होता है, जो अनुकूल दवाइयोंका शरीरपर। उस युगसे आजतक अनेक मनोवैज्ञानिक, चिकित्सक एवं विद्वान् मुसकराहटके स्वास्थ्यदायक प्रभावके बारेमें लिखते आये हैं। हँसना पहले एक कलामात्र समझा जाता था, अब यह विज्ञान मान लिया गया।

चिकित्सकोंके मत

हमारे चिकित्सक बहुत समय पहले ही यह जान गये थे कि हँसी-खुशीसे रहनेसे मनुष्यका हृदय-कमल सदा खिला रहता है, उसकी मुखाकृति आकर्षक प्रतीत होती है, उत्साह और स्वास्थ्य बना रहता है। डा० पैस्किड, डा० पैवल्व, डा० कैनन-जैसे डाक्टरोंने अपने नवीन मनोवैज्ञानिक अनुसंधानोंमें प्रमाणित किया है कि हँसनेसे होनेवाले लाभ कवियोंकी कोरी भावुकतामात्र नहीं, प्रत्युत एक मजबूत मनोवैज्ञानिक सत्य है।

हँसनेकी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया

जब आप मुसकराते हैं तो अपने आन्तरिक मनको एक स्वस्थ स्वसंकेत (Auto-suggestion) देते हैं। दर्पणमें अपना प्रफुल्ल मुखकमल देखकर आपको आन्तरिक आह्लाद होता है। इसे देखनेका मतलब यह है कि इसके प्रभावको आप अपने शरीरमें ग्रहण करते हैं। मनोवैज्ञानिकोंका कथन है कि जैसा तुम बाहर प्रकट करोगे, वैसा ही धीरे-धीरे अंदर भी अनुभव करने लगोगे। मुसकरानेकी आदत पड़ जानेसे मनुष्यका आन्तरिक संस्थान प्रसन्न हो उठता है।

मुसकराते हुए कार्य करनेसे मनमें स्फूर्ति बनी रहती है; काममें मन लगता है। मुसकरानेवाला व्यक्ति अपने आन्तरिक एवं बाह्य अवयवोंको ठीक हालतमें रख सकता है। मुसकराते रहनेसे मन मधुर कल्पनाओंसे परिपूर्ण रहता है। इन मधुर कल्पनाओंसे चेहरेका सौन्दर्य

एवं शरीरका स्वास्थ्य उत्तम बना रहता है । मुसकराहट स्थायी रूपसे हमारे स्वास्थ्यका एक अङ्ग बन जाती है, तब स्वभाव प्रसन्न, उत्फुल्ल और प्रेममय बन जाता है । प्रसन्न मुखवाले व्यक्तिका सर्वत्र स्वागत किया जाता है ।

जिस प्रकार वृक्षकी जड़में जल देनेसे पुष्प-पत्तियोका कण-कण स्वस्थ और आकर्षक बन जाता है, उसी प्रकार मनकी प्रसन्नताका स्वस्थ प्रभाव हमारी पाँचों इन्द्रियोंपर पड़ता है । चेहरेके साथ शरीरके अणु-अणु स्वस्थ दशामें आ जाते हैं । सूँघनेकी शक्ति बढ़ जाती है, कान अपना कार्य सुचारुतासे करने लगते हैं और मन तन्मयतासे कार्यमें संलग्न हो जाता है । मुसकराहट स्वास्थ्य प्रदान करनेवाली महौषधि है ।

उन्मुक्त हँसीसे तात्पर्य है कि आपके मुखकमलकी प्रत्येक पंखुरी खिल उठे, रोम-रोममे नव स्फूर्ति दौड़ जाय ।

डा० पैस्किड (Paskid) ने लगभग १५० प्रयोग अपनी प्रयोग-शालामें किये हैं । उनका निष्कर्ष है कि 'हँसनेसे मनुष्यके थके हुए मज्जा-तन्तुओंको स्फूर्ति और सजीवता प्राप्त होती है और मनकी थकान, चिन्ताका भार कम हो जाता है । इसके विपरीत क्रोध करनेसे या आवेशमें भरे रहनेसे मासपेशियोंमें अनुचित तनाव आ जाता है । क्रोधसे सम्पूर्ण शरीरपर खिंचाव और दबाव बढ़ जाता है । हँसनेसे तनाव कम होता है । मुसकराते रहनेसे हम कितने ही आन्तरिक अवयवों तथा मांसपेशियोको व्यायाम देते हैं । चिन्ता, भय, क्रोध और आवेश अनुचित तनाव उत्पन्न कर जीवनशक्तिका ह्रास करते हैं ।

श्री एस० ए० सूमेकरने हँसनेको थकान दूर करनेकी रामबाण ओषधि माना है । ह्यूमने एक स्थानपर लिखा है कि हँसना सब जीवोंमें मनुष्य-जातिकी ही एक बड़ी विशेषता है । यह ईश्वरद्वारा मनुष्यको इसलिये दी गयी है कि वह क्षणभरमे अपने दुःख-दर्दसे मुक्ति पा सके ।

मनकी प्रसन्नता तथा चेहरेकी मुसकानसे जीवन रस और नयी शक्तिसे ओतप्रोत हो उठता है, मनकी दुर्बलता, क्लेश, चिन्ता और दुःखकी मलिनता या विकार धुल जाता है। मुसकराहट ज्ञान-तन्तुओंमें जो कुछ दुर्बलता अथवा चिन्ता होती है, उसे तत्काल दूर करती है। आनन्दका प्रभाव शरीर तथा मनके कण-कणमे होता है। जहाँ ओषधि लाभ नहीं पहुँचाती, इंजेक्शन, कुनैन या अन्य कृत्रिम दवाइयाँ काम नहीं करतीं, हास्य-भाव अपना कार्य किया करता है। इससे मानसिक कष्ट तुरंत दूर हो जाते हैं।

यदि आप रोग और व्याधिसे मुक्त रहना चाहते हैं तो हलकी मुसकराहटको स्वभावका स्थायी अङ्ग बना लीजिये। जो मुसकराते हुए जीवन व्यतीत करेगा, उसका जीवन उतना ही मधुरतासे परिपूर्ण होगा।

जब-जब आपपर भीषण परिस्थितियोंका आक्रमण हो, रुककर हँस दिया कीजिये। अच्छी हँसीसे आपका नैराश्य दूर हो जायगा।

एक अंग्रेज कवयित्रीने लिखा है, 'हँसो और सम्पूर्ण संसार तुम्हारे साथ हँसेगा। रोओ, किंतु तुम्हारे साथ रोनेवाला कोई न मिलेगा।' वास्तवमें संसार आपको तभी पसंद करता है, जब आप हँसते, मुसकराते रहें।

हँसना सीखिये, दूध पीनेवाला शिशु जैसी निर्दोष हँसी हँसता है, वैसी ही हँसी, मस्ती बिखेरनेवाली हँसी कष्टोंको विदा करनेकी अचूक दवा है। हास्य-सेवनका आनन्द ले। हँसनेवालोंका सङ्ग करें। आनन्दमय भविष्यको ही अपनी कल्पनाके नेत्रोंके सम्मुख रक्खे। हास्य और केवल निर्दोष हास्य-भाव ही आपके दुःख-दर्दकी एक श्रेष्ठ दवा है।

इन्द्रियभोगोंकी मर्यादा

मनकी पॉच इन्द्रियॉ संसारके समस्त आकर्षण और रसका कारण हैं। जबतक हमारे नेत्र सुन्दर सांसारिक वस्तुओंका दृश्य देखते हैं, जिह्वा खाद्य पदार्थोंका रस लेती है, नासिका भिन्न-भिन्न गन्धोंका आनन्द उठाती है, कान श्रवणसुखद स्वरोंपर विमुग्ध होते हैं तथा त्वचासे तापक्रम इत्यादिका बोध होता है तभीतक हमारे लिये संसारका क्रम है, तभीतक उसमे आकर्षण है।

इन्द्रिय-भोगोंसे मनुष्यको सांसारिक आनन्दकी प्राप्ति होती है। वह नाना रूपमें ससारकी विभिन्न वस्तुओका रसपान करता है। इन्द्रिय-भोगोके कारण उनकी शक्तियोका विकास होता है। वह जीवनमे अधिक-से-अधिक आनन्द लूटना चाहता है।

अधिक-से-अधिक आनन्द लूटनेकी कामनासे वह अपनी पॉचों इन्द्रियोंसे अधिक-से-अधिक आनन्द प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है।

अच्छे-से-अच्छे पदार्थ खाता है, उत्तमोत्तम सुगन्धित पदार्थ सूँघता है, नेत्रोंसे सुन्दरतम दृश्य देखता है, कानोंसे मधुरतम संगीत सुनता है और बढ़िया-से-बढ़िया वस्त्र पहनता है। इन सब वस्तुओंके प्राप्त हो जानेपर उसे ज्ञात होता है कि 'अभी कुछ और चाहिये।' वह और वेगसे इन्द्रियभोगोंकी ओर दौड़ता है। पर सब व्यर्थ! अतृप्ति और कुछ पानेकी इच्छा उसके मनमें निरन्तर बनी रहती है। इसका कारण यह है कि इन्द्रिय-भोगोंकी एक मर्यादा है। उस मर्यादासे बाहर वह कुछ आनन्द नहीं दे सकती।

जबतक मनुष्य इन्द्रियोंके मायाजालमें बँधा हुआ है, तबतक वह अँधेरेमें भटकता रहेगा। उसके पास सब कुछ सांसारिक पदार्थ होकर भी कुछ नहीं रहेगा। वह जितना इनसे सुख प्राप्त करनेकी कामना करेगा, उतना ही उसका सुख आगे बढ़ता जायगा। खेदका विषय है कि अधिकांश व्यक्ति जीवनके इसी पाशविक स्तरपर निवास करते हैं। वासनाके निम्नस्तरसे न ऊँचा उठनेका प्रयत्न करते हैं, न इस अन्धकारकी चेतना ही उनके मनमें होती है। उनका परिवार बढ़ता जाता है, आवश्यकताएँ निरन्तर अभिवृद्धिको प्राप्त होती चलती हैं, दुःख भी बढ़ता रहता है।

कविवर रहीमने एक बड़ा महत्त्वपूर्ण दोहा लिखा है—

> बड़े पेटके भरनमें हैं रहीम दुख बाढ़ि।
> या तें हाथी हहरि कै, दिये दाँत द्वै काढ़ि॥

अर्थात् बड़े पेटको भरनेमें बड़े कष्टोंका सामना करना पड़ता है, इसीसे बड़े पेटवाले हाथीने घबड़ाकर दो दाँत बाहर निकाल दिये हैं।

वास्तवमें 'बड़े पेट' वालेकी बड़ी मुसीबत है। आधुनिक कालमें वही दुखी और अतृप्त है जिसका बड़ा पेट है। अर्थात् जिसके अभाव तथा आवश्यकताएँ बढ़ी हुई हैं!

'बड़े पेट' का अर्थ अधिक व्यापक है। उसमें आपकी सभी प्रकारकी आवश्यकताओंका समावेश है। बड़े पेटसे तात्पर्य केवल उदरसम्बन्धी क्षुधा नहीं है। वरं उसका अर्थ मनुष्यकी सभी आवश्यकताएँ सामूहिक रूपसे हैं। जितनी अधिक आवश्यकताएँ, उतना ही कम सुख, शान्ति और समृद्धि। यही अध्यात्मका नियम है।

मान लीजिये, आप एक साधारण-से कच्चे मकानमें रहते हैं। आपके मनमें दर्प और अपने महत्त्वके प्रदर्शनकी भावना उद्दीप्त हुई और आपने कहा 'हमें बड़ा पक्का, आलीशान मकान मिलना चाहिये, हम इससे ऊँची हैसियतके हैं, हमें समाजमें ऊँचा होकर रहना है।' आपके मनमें एक कृत्रिम आवश्यकताकी उत्पत्ति हो जाती है। आप उसकी पूर्तिके लिये योजनाएँ बनाते हैं। जमीन खरीदनेके लिये इधर-उधर भागे-फिरते हैं, रुपया पासमें नहीं होता तो किसीसे उधार लेकर मकानके निर्माणमें लगाते हैं, जब वह बनता है, [तो सारे दिन धूप, बरसात ठण्डमें खड़े होकर उसकी बनावटको देखते हैं। जब बन जाता है, तो उसमें रहने लगते है, अब अच्छे मकानका-सा सामाजिक रहन-सहन, फरनीचर-कपड़े गाड़ी-मोटर और न जाने कितनी आवश्यकताओके बोझ आपके मनोजगत्में उदित हो उठते हैं। कहाँ आप एककी पूर्ति करने निकले थे, कहाँ उसके स्थानपर दस-बीस नवीन कृत्रिम आवश्यकताएँ मुँह फैलाये आपके सम्मुख आ खड़ी होती हैं। फिर आप उनमेंसे प्रत्येककी पूर्तिके निमित्त निकलते हैं; नाना प्रकारके झूठ फरेब, असत्यभाषण या अत्यधिक परिश्रमसे उन्हें पूर्ण करनेका प्रयत्न करते हैं।

शरीरकी आवश्यकताओंमें वासना सबसे अनर्थकारी आवश्यकता है। कामवासनाके आवेशमें मनुष्य हित-अहितका विवेक न रखकर अनियन्त्रित होता है। संतानवृद्धि होते ही उसकी परिवारवृद्धि होती है। आधुनिक युगमे परिवारवृद्धि अनेक प्रकारकी चिन्ताओं तथा उत्तरदायित्वका

कारण है। जिस व्यक्तिके सात-आठ संतानें हैं वह उन्हे खिलाने-पिलाने तथा अन्य आवश्यकताओंकी पूर्तिमें आत्म-सुधार या सुख-आनन्द विस्मृत कर बैठता है। उसे अपने तन-बदनकी सुधि नहीं रहती; उसके लिये तो कुटुम्बका पालन-पोषण ही एकमात्र जीवनका उद्देश्य रह जाता है; स्त्रियोंका जीवन प्रायः संतानके पालन-पोषणमें ही समाप्त हो जाता है। न केवल गरीबी बढ़ती है, प्रत्युत भुखमरी और आयु-नाश भी होता है। स्वास्थ्यहानिसे मनुष्यकी किसी प्रकारसे उन्नति नहीं हो पाती। वासनाका नियन्त्रण आवश्यक है। इसकी पूर्ति सम्भव नहीं है। अतः जब वासनाएँ प्रबल होती प्रतीत हों तो विवेकद्वारा इनका शमन करना चाहिये। मनको समझाइये और व्यर्थके मोहजालसे बचनेके लिये प्रेरित कीजिये। राजा ययाति बूढ़े हो गये थे। उन्होने अपने पुत्रसे जवानी लेकर हजार वर्षों-तक विषयभोग किया; किंतु उन्हें इन्द्रियोंके भोगोंमें सुख प्राप्त न हुआ। अन्तमें अत्यन्त ग्लानिसे उन्होंने कहा—

'इन्द्रियके सुखोंके उपभोगमें उनकी शान्ति नहीं होती। यही नहीं बल्कि भोगोंसे तो वासना और भी बढ़ती है। जैसे जलती हुई अग्निमें उसे शान्त करनेके लिये और घी डालें तो वह और बढ़ती है।'

सुस्वादु भोजन, मीठी गन्ध, वासनापूर्ति अथवा बहुत-से धनसे सुख प्राप्त नहीं होता। यह तो केवल सुखाभास है। जितनी ही सांसारिक सामग्री बढ़ती जाती है, उतना ही अभाव, लालच, वासना, इच्छाएँ और आवश्यकताएँ प्रदीप्त होती जाती हैं। संसारी वैभवोंसे आजतक कोई तृप्त नहीं हुआ है। महाराज ययातिने कहा है—

पृथ्वीपर जितना अन्न है, स्वर्ण आदि धातुएँ हैं, जितने पशु हैं, जितनी स्त्रियाँ हैं, ये सब भोग और वासना-पूर्तिके लिये दे दी जायँ तो भी तृप्त नहीं कर सकतीं। एक भी व्यक्तिको आन्तरिक शान्ति प्रदान नहीं कर सकतीं। अतः हमें इनका पीछा छोड़कर भगवत्-शरणमें जाना चाहिये।

महात्मा बुद्धने कहा है, 'जहाँपर वासना है, वहाँ सत्य, शान्ति एवं सुख नहीं रह सकता।' गेटे नामक महाकवि कहा करते थे, 'अगर अपने अंदर खोज करोगे, तो तुम्हे सब चीजें वहाँ मिल जायँगी।' वास्तवमें मनके बाहरकी नाना वस्तुओंमें स्थायी सुख और आनन्दकी प्राप्ति नहीं हो सकती। सुख, तृप्ति, संतोषका एकमात्र केन्द्र मनुष्यका अन्तःकरण ही है। जो अपनी वासनाओंके परिष्कारद्वारा उन्हें निम्न घृणित मार्गोंसे बचाकर उच्च पवित्र मार्गोंद्वारा प्रकाशित करता है, वही वास्तविक सुखका अनुभव करता है।

आवश्यकता इस बातकी है कि हम वासनाको कलात्मक रीतियोंमें उच्च मार्गोंमे प्रकाशित करते रहे। भजन, कीर्तन, भगवन्नाम-उच्चारण, संगीत, साहित्य, कविता, चित्रकारी, वादन, नृत्य आदि अनेक सांस्कृतिक रूपोंमे मनुष्य अपनी वासनाओंको प्रकाशित कर सकता है। वासना-परिष्कारद्वारा मनुष्य परमेश्वरको प्राप्त कर सकता है। भगवत्-भक्ति वह साधन है, जो सहज ही मुक्ति प्रदान कर देती है। कविने सत्य ही कहा है—

हरिका मनसे गुणगान करो,
तुम और गुमान करो, न करो।
स्वर गंगाका जल पान करो,
तुम अन्य विधान करो, न करो।
निसिवासर ईश्वर ध्यान करो,
तुम औरका ध्यान करो, न करो।
प्रिय नाहकी बाँहका ध्यान करो,
तुम और वितान करो, न करो॥

क्रोध एक विषधर सर्प है

क्रोधः प्राणहरः शत्रुः क्रोधो मित्रमुखो रिपुः ।
क्रोधो ह्यसिर्महातीक्ष्णः सर्वं क्रोधोऽपकर्षति ॥
तपते यजते चैव यच्च दानं प्रयच्छति ।
क्रोधेन सर्वं हरति तस्मात् क्रोधं विसर्जयेत् ॥

(वाल्मीकिरामायण उत्तर०)

'क्रोध प्राणहरण करनेवाला शत्रु है, क्रोध मुँहपर मीठा बोलनेवाला वैरी है, क्रोध महातीक्ष्ण तलवार है, क्रोध सब प्रकारसे गिरानेवाला है, क्रोध तप, यज्ञ और दान—सभीका हरण कर लेता है । अतएव क्रोधको छोड़ देना चाहिये ।'

क्रोधका मनके अन्य विकारोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध है । क्रोधके वशीभूत होकर हमें उचित-अनुचितका विवेक नहीं रहता और हम हाथापाई कर बैठते हैं । बातों-बातोंमें ही उखड़ जाना, लड़ाई-झगड़ा करना साधारण-सी बात

है। यदि तुरंत क्रोधका निवारण हो जाय, तब तो मानसिक स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ठीक है, पर यदि वह अन्तःप्रदेशमें पहुँचकर एक भावना-ग्रन्थि बन जाय, तब तो बड़ा ही दुःखदायी होता है। बहुत दिनोंतक टिका हुआ क्रोध वैर कहलाता है। वैर एक ऐसी मानसिक बीमारी है जिसका कुफल मनुष्य-को दैनिक-जीवनमें भुगतना पडता है। वह अपने-आपको संतुलित नहीं रख पाता। जिससे उसका वैर है, उसके उत्तम गुण, भलाई, पुराना प्रेम, उच्च संस्कार इत्यादि सब वह विस्मृत कर बैठता है। स्थायीरूपसे एक भावना-ग्रन्थि बन जानेसे क्रोधका वेग तो धीमा पड़ जाता है, किंतु दूसरे व्यक्तिको सजा देने, नुकसान पहुँचाने या पीड़ित करनेकी कुत्सित भावना निरन्तर मनको दग्ध किया करती है।

वैर पुरानी जीर्ण मानसिक बीमारी है, क्रोध तत्कालीन और क्षणिक प्रमाद है। क्रोधमें पागल होकर मनुष्य सोचनेका समय नहीं देखता, वैर उसके लिये बहुत समय लेता है। क्रोधमे अस्थिरता, क्षणिकता, तत्कालीनता, बुद्धिका कुण्ठित हो जाना, उद्विग्नता, आत्मरक्षा, अहंकारकी पुष्टि, असहिष्णुता, दूसरेको दण्डित करनेकी भावनाएँ संयुक्त हैं। वैरमें सोचने-समझने, प्रतिशोध लेनेका समय होता है। हम अच्छी तरह सोचते हैं, कुछ समय लेते हैं और तब बदला लेते हैं। पं० श्रीरामचन्द्र शुक्लके शब्दोंमें 'दुःख पहुँचनेके साथ ही दुःखदाताको पीड़ित करनेकी प्रेरणा करनेवाला मनोविकार क्रोध और कुछ काल बीत जानेपर प्रेरणा करनेवाला भाव वैर है, किसीने आपको गाली दी, यदि आपने उसी समय उसे मार दिया तो आपने क्रोध किया। मान लीजिये कि वह गाली देकर भाग गया और दो महीने बाद आपको मिला। अब यदि आपने उससे बिना फिर गाली सुने मिलनेके साथ ही उसे मार दिया तो यह आपका वैर निकालना हुआ।'

वैरमें धारणा-शक्ति अर्थात् भावोंको संचितकर मनमे रोक रखनेकी शक्तिकी आवश्यकता होती है। जिन प्राणियोंमें पुराने क्रोधको संचित

रखनेकी शक्ति विद्यमान है, वे ही वैर कर सकते हैं। क्रोध तो पशु, पक्षी, मनुष्य अर्थात् सभी प्राणियोंको अस्थिर और पागल करनेमे पूर्ण समर्थ है, किंतु वैर यह कार्य नहीं कर सकता। वैरमें स्थायित्व है।

क्रोधकी मात्रा कम या अधिक, तेज या हलकी हो सकती है। चिड़चिडाहट क्रोधका हलका रूप है। साधारण भूलों या मामूली खराबियो, कमजोरियों या मामूली बुराइयो अथवा भद्दी बातोंपर हम उद्विग्न होते हैं। पर यह उग्रता उतनी तेज नहीं होती। थोडी देर रहकर शान्त हो जाती है। कभी अन्य किन्हीं कारणोंसे हम परेशान रहते हैं, कुछ अप्रिय हो जानेसे दुखी होते हैं, ऐसी मनोदशामें साधारण-सी बात होते ही हम चिड़चिड़ा उठते हैं।

चिड़चिड़ाहटमें सामान्य कारण ही उद्विग्नता उत्पन्न करनेमे समर्थ है। यह एक मानसिक दुर्बलता है जो अनेक कारणोंसे उत्पन्न हो सकती है। जिस व्यक्तिको पुनः-पुनः डराया, धमकाया जाय या जिससे अधिक कार्य लिया जाय, क्रोधके अधिक अवसर प्राप्त हों और मन शान्त-दशामे न आ सके तो क्रोध स्वभावका एक अङ्ग बन जाता है। यह फिर जरा-सी असुविधा या कठिनाईमें हलके रूपमें प्रकाशित हुआ करता है।

चिड़चिड़ाहट प्रायः वृद्धोंमें अधिक देखनेमें आती है। रोगी अपनी दुर्बलताके कारण जरा-जरा-सी बातपर तिनक उठते हैं, औरतें कामसे परेशान होकर इतनी उद्विग्न रहती हैं कि मामूली-सी बातपर चिड़चिडा जाती हैं। अध्यापक विद्यार्थियोंकी कॉव-कॉव सुनते-सुनते इतने दुखी से हो उठते हैं कि तिनक उठते हैं। दूकानदार प्रायः ग्राहकोंसे जल-भुनकर इस मानसिक दुर्बलताके शिकार बनते हैं। धार्मिक रूढ़िवादी दुनियाँकी प्रगतिको देखकर जीवनभर बड़बड़ाया करते हैं।

क्रोध मनको एक उत्तेजित और खिंची हुई स्थितिमें रख देता है जिसके परिणामस्वरूप मन दूषित विकारोंसे भर जाता है। क्रोधसे प्रथम

तो उद्वेग उत्पन्न होता है। मन एक गुप्त किंतु तीव्र पीड़ासे दग्ध होने लगता है। रक्तमे गरमी आ जाती है और उसका प्रवाह बड़ा तेज हो जाता है। इस गरमीसे मनुष्यके शुभ भाव—दया, प्रेम, सत्य, न्याय, विवेक, बुद्धि आदि जल जाते हैं।

क्रोध एक प्रकारका भूत है, जिसके सवार होते ही मनुष्य आपेमें नहीं रहता। उसपर किसी दूसरी सत्ताका प्रभाव हो जाता है। मनकी निन्द्य वृत्तियाँ उसपर अपनी राक्षसी माया चढ़ा देती हैं, वह बेचारा इतना हतबुद्धि हो जाता है कि उसे यह ज्ञान ही नही रहता कि वह क्या कर रहा है।

आधुनिक मनुष्यका आन्तरिक जीवन और मानसिक अवस्था अत्यन्त विक्षुब्ध है, दूसरोंमें वह अनिष्ट देखता है, उनसे हानि होनेकी कुकल्पनामे डूबा रहता है; जीवनपर्यन्त इधर-उधर लुढ़कता, ठुकराया जाता रहता है, शोक-दुःख, चिन्ता-अविश्वास, उद्वेग व्याकुलता आदि विकारोंके वशीभूत होता रहता है। ये क्रोधजन्य मनोविकार अपना विष फैलाकर मनुष्यके जीवनको विषैला बना रहे हैं। उनकी आध्यात्मिक शक्तियोंका शोषण कर रहे हैं। साधनाका सबसे बडा विघ्न क्रोध नामका राक्षस ही है।

क्रोध शान्ति-भङ्ग करनेवाला मनोविकार है। एक बार क्रोध आते ही मनकी अवस्था विचलित हो उठती है, श्वासोच्छ्वास तीव्र हो उठता है, हृदय विक्षुब्ध हो उठता है। यह अवस्था आत्मिक विकासके विपरीत है! आत्मिक उन्नतिके लिये शान्ति, प्रसन्नता, प्रेम और सद्भाव चाहिये।

जो व्यक्ति क्रोधके वशमे है, वह एक ऐसे दैत्यके वशमे है, जो न जाने कब मनुष्यको पतनके मार्गमें ढकेल दे। क्रोध तथा आवेशके विचार आत्मबलका ह्रास करते है।

क्रोधका स्वास्थ्यपर प्रभाव

स्वास्थ्यका मनसे अकाट्य सम्बन्ध है। उत्तम स्वास्थ्यका मनकी शान्ति, उत्साहपूर्ण, आशावादी, सचेष्ट सत्-प्रेरणा तथा शुद्ध मनःस्थितिसे सम्बन्ध

होता है। हमारी आन्तरिक प्रेरणाएँ, भाव, स्वयंभू वृत्तियाँ और इच्छाएँ गुप्त मनद्वारा संचालित होती हैं। मनके अंदर ही पोषक तथा सञ्जीवनी क्रियाओंकी उत्पत्ति होती है। गुप्त मनके संस्कार और अन्तःप्रेरणा शरीरमें पोषण-क्रिया रखती हैं। अन्तरके आदेश ही हमारी पाचनशक्तिको ठीक रखते, गुर्देको क्रियाशील बनाते, यकृतका महत्त्वपूर्ण कार्य कराते हैं। मनको ठीक स्थितिमें रखने तथा उससे पूरा-पूरा काम लेनेकी शक्ति होनेके कारण ही मनुष्यका स्थान सब प्राणियोंसे ऊँचा है।

प्रकृतिका नियम यह है कि यदि भोजन शान्त अवस्थामें किया जाय तो उसका प्रभाव कल्याणकारी होगा, पर यदि वही भोजन करते समय आप खिंचे हुए हों तो इष्टका प्रभाव भी अनिष्ट हो जायगा, पेटभर भोजन न किया जा सकेगा। कमजोरी आयेगी, रक्त दूषित होगा, पाचनशक्तिमें निर्बलता आ जायगी। खाद्य पदार्थोंपर क्रोधके कारण दूषित प्रभाव पड़ता है।

कुदरत चाहती है कि हम शान्त रहें, प्रसन्न रहें और आशावादी बने रहें, मस्त और उत्मुक्त बने रहें—ऐसी निर्लिप्त अवस्थामें ही दूध, फल, तरकारी, अन्न इत्यादि अपना शुभ प्रभाव दिखाते हैं। मानसिक तनाव या उद्विग्न अवस्थामें अंदरके अङ्ग-प्रत्यङ्ग अपना कार्य उचित रीतिसे नहीं कर पाते। सद्विचारोंसे ज्ञान-तन्तु पुष्ट होते हैं, मनोविकारोंसे उनकी स्वाभाविक शक्ति ठंडी पड़ती है, प्राण-शक्तिका क्षय होता है, शरीर-यन्त्र गतिहीन हो जाता है, मनुष्य पशुतुल्य बन जाता है। भोजनके द्वारा स्वास्थ्य एवं जीवाणु-तत्त्व प्राप्त करनेके हेतु मनको उत्पादक स्थितिमे रखना बड़ा कल्याणकारी है।

उस व्यक्तिके स्वास्थ्यकी कल्पना कर सकना सरल है जो भोजन करते समय कुढ़ता रहता है, जिसके मुखसे कुत्सित शब्दोंका उच्चारण होता रहता है और जो नाक-भौंह सिकोड़े मानसिक तनावकी अवस्थामे जल्दी-जल्दी भोजन ठूँस लेता है। उसे भोजनमे क्या स्वाद आवेगा ? उससे

कैसे पौष्टिक तत्त्व प्राप्त होंगे ? भोजन अपना नैसर्गिक कार्य न कर सकेगा। ईर्ष्या और क्रोध दोनो दाहक हैं। देह और मनको जलाते हैं। मनुष्यको पनपनेका अवसर नहीं देते। क्रोधसे बनी विचार-मूर्तियाँ नीचे-ऊपर, मानस-पटलके प्रत्येक कोनेपर छा जाती हैं और उसे मोहाच्छन्न कर देती हैं। इन विचार-मूर्तियोमें एक प्रकारका कम्पन होता रहता है तथा ये जैसी हैं वैसी ही किरणें निकलती रहती हैं। साथ ही जैसे ये विचार-मूर्तियाँ हमारे मानसिक जगत्में बनी हैं, वैसी ही, उसी क्षण जिसके निमित्त ये बनी हैं, उसकी ओर दौड जाती हैं।

क्रोधके समय आपका मुखमण्डल कैसा रहता है, जरा शीशेमे देखिये। कैसा मुख लाल हो जाता है, कटु शब्दोंका उच्चारण करनेसे शरीर कॉपने लगता है, भुजाऍ फडकने लगती हैं, भृकुटी चढ़ जाती है, नेत्र लाल हो जाते हैं, होठ चलने लगते हैं। मनमे उद्वेग, विकलता, गर्व उग्रता, अमर्ष इत्यादि अनुभव उदय होते हैं। प्रत्येक मानसिक व्यापार या क्रियाका सम्बन्ध चेहरेके सौन्दर्यसे है। मनके विकारका प्रभाव शरीरके अवयवोंपर लक्षित होता है। जिस प्रकार समुद्रके धरातलपर आनेवाली सूक्ष्म तरंगोंका प्रभाव समूचे समुद्रपर पड़ता है, उसी प्रकार साधारणसे लेकर उन्नत एवं परिपुष्टतम विचार हमारी सूक्ष्म पेशियोंको प्रभावित किया करते हैं। मनके आदेशसे अनेक अहैतुक क्रियाऍ हम किया करते हैं।

क्रोध सौन्दर्यका शत्रु है। सौन्दर्यमें मनका शील, मधुरता, उत्तम स्वभाव, शुभ्र भावनाऍ, आध्यात्मिक सजीवनता सम्मिलित हैं। सौन्दर्य एक आत्मिक गुण है। यदि हम आनन्दमयी वृत्तिमे रहेंगे, मनको शुभ कल्पनाओं, पूर्ण निर्दोष स्वास्थ्यमय शुभेच्छाओंसे भरा रक्खेगे, तो हमारे अन्तर्मनमे ये प्रविष्ट हो जायॅगे। पुनः-पुनः इन्हीं शुभ भावनाओंका अभ्यास करनेसे ये हमारे मुखमण्डलपर प्रकट हो जायँगे। इसके विपरीत यदि हम क्रोधाग्निमें जलते रहेंगे तो अपकारक विकारों या गर्व, उग्रता, अमर्ष इत्यादि

मानसिक विषोंसे भरे रहेंगे, तो मुख भी विवर्ण हो जायगा, चेहरा रौद्र रूप धारण कर लेगा। ऐसी भयानक सूरत दिखाकर हम यह प्रकट करते हैं कि हमारे शरीरमें मानसिक उद्वेग हो रहा है।

क्रोधरहित होना उच्च जीवन, विचारशीलता और शुभ्र दैवी अन्तर्वृत्तिका परिचायक है। क्रोध कुत्सित है, अस्वाभाविक और पापयुक्त है। यह छल, कपट, नीचता, हिंसा, अधमता, लज्जा, अनीतिका जन्मदाता है, तमोगुणका आवरण उत्पन्न कर मनुष्यका दैविक और आध्यात्मिक अहित करनेवाला दुष्ट शत्रु है। यह वह विष है जो शरीरके अङ्गोंको बिगाड़ता, तेज, स्वास्थ्य, कान्ति, बल और आयुको क्षीण करता है। क्रोधमें अविवेक उत्पन्न होता है।

क्रोधके विषयमें श्री डा० बनारसीदास जैनके विचार यहाँ उद्धृत किये जाते हैं। आप लिखते हैं कि—'क्रोध प्रबल हो जानेपर खूनमें एक प्रकारका विष पैदा हो जाता है जिससे क्रोधी मनुष्यको बहुत हानि होती है। यही कारण है कि क्रोधी प्रायः दुर्बल रहते हैं। क्रोधी मनुष्यका खून इतना जहरीला हो जाता है कि उसके खूनकी एक बूँद खरगोश आदि जीवोंके शरीरमें पिचकारीद्वारा डालनेसे उनकी दशा बडी खराब हो जाती है। जिस खरगोशके शरीरमें उसका प्रयोग किया जाता है वह दूसरे खरगोश को फाड खाता है और कभी-कभी मरतक जाता है। इसीसे क्रोध आत्मघातके तुल्य है। क्रोधमें आकर मनुष्य ऐसे-ऐसे काम कर डालता है कि जिससे उसे बादमें पछताना पड़ता है तथा संताप सहना पड़ता है।

क्रोधी मनुष्य कभी स्वस्थ नहीं रह सकता। उसका चेहरा पीला पड़ जाता है। शरीर सूखकर काँटा हो जाता है। पाचन-शक्ति तो बिल्कुल ही बिगड जाती है जिसके फलस्वरूप शरीर रोगोंका घर बन जाता है। क्रोधी मनुष्यकी नाड़ीकी गति तेज हो जाती है। रगें ऊपरकी ओर खड़ी हुई दिखायी देती हैं। क्रोधावेशमें वह दाँत पीसने लगता है, उसकी साँस

जल्दी-जल्दी चलने लगती है, भौंहे और हाथ सिकुड़ने लगते हैं। उसका शरीर रोमाञ्चित हो जाता है, वाणी बदल जाती है, चेहरा लाल हो जाता है, जबान खुश्क हो जाती है और खूनमे गरमी पैदा हो जाती है। हारवर्ड मेडिकल कालेजके प्रोफेसर डा० वाल्टर केनिन लिखते है कि 'मनुष्यके दोनों गुर्दोंके ऊपर चनेके बराबर दो छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं जिनमेंसे एक प्रकारका पदार्थ निकलता है जिसे एड्रेनलिन कहते हैं। यह पदार्थ जब खूनमें मिलकर जिगरमें पहुँचता है तो वहाँ जमे हुए ग्लाईकोजनको शक्करमें बदल देता है। यह शक्कर खूनमें मिलकर नाड़ियोंद्वारा शरीरके तमाम हिस्सोंमें पहुँच जाती है जो रग और पुट्ठोंमें बहुत खिंचावट पैदा करती है।'

क्रोधसे बचनेके उपाय

क्रोधसे बचनेका स्थायी और वास्तविक उपाय तो यही है कि हम क्रोधके कारणको मालूम करनेकी कोशिश करें। क्रोधका आरम्भ या तो मूर्खतासे या दुर्बलतासे अथवा मानव-स्वभावसे अनभिज्ञताके कारण होता है। जब कोई व्यक्ति हमारा कहना नहीं मानता या हमारी इच्छाके विरुद्ध काम करता है तो हम आपेसे बाहर हो जाते हैं और उसपर बेतहाश बरस पड़ते हैं। हम यह समझनेकी तकलीफ ही नहीं करते कि हमें दूसरोंको अपने इच्छानुसार चलानेका क्या अधिकार है। हम अपने प्रतिदिनके अनुभवसे भली प्रकार जान सकते हैं कि प्रत्येक मनुष्यकी वृत्ति दूसरे मनुष्यसे भिन्न होती है। ऐसी हालतमे सभी मनुष्य एक ही लाठीसे कैसे हाँके जा सकते हैं। मनोविज्ञानके इस अटल सिद्धान्तको समझ ले तो हम बहुत हदतक क्रोधके चंगुलसे बच सकते है और आनन्दसे जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

आत्मप्रेरणा तथा महत्त्वाकाङ्क्षाओंके चित्र

'मैं दो वर्षसे आपके आत्मप्रेरक लेख पत्र-पत्रिकाओंमें पढ़ रहा हूँ पर फिर भी मुझे क्षणिक साहस और धैर्यके पश्चात् निराशा और उदासीके दौरे-से पडते रहते हैं। उन्नीस वर्षका होकर भी मैं गुपचुप मनमें कुछ हीनता और कमजोरीकी भावनाका अनुभव करता हूँ। मैं नये मित्र नहीं बना पाता, सदा उदास रहता हूँ और चिन्ता मुझे व्यग्र रखती है। मेरी कोई महत्त्वाकाङ्क्षा पूर्ण नहीं होती दीखती। बतलाइये मैं क्या करूँ ?'

हमारे एक पाठकका पत्र आपके समक्ष है। अधिकांश व्यक्तियोंको कभी-न-कभी इसी प्रकारकी क्षणिक दुर्बलता, उदासी और निराशाका अनुभव हुआ करता है। यदि हम यह जान लें कि ऐसी मनोदशा केवल हमारी ही नहीं अन्य व्यक्तियोंकी भी है, तो हम इस साधारणीकरणद्वारा अपनी मनोव्यथा बहुत कुछ हल्की कर सकते हैं। यदि हम यह समझते रहे कि केवल हमपर ही दुःखका यह पर्वत फट पड़ा है, तो निश्चय ही हम रोते रहेंगे; हीनत्वकी भावना अधिकाधिक हमारे पल्ले पड़ेगी। प्रायः सभीपर

ऐसी दुःखद अवस्था आती है, यह विचार हमारे दुःखभारको हल्का करनेवाला है। इससे वेदनाकी पीड़ा कुछ कम होती है।

हम चिन्ता और उदासीको इसलिये नापसंद करते हैं, क्योंकि ये नकारात्मक रीति (Negative way) से हमे सोचने-विचारने, अतीतकी शूलमयी स्मृतियोमें उलझनेमें मदद करते हैं। उस व्यक्तिके ऊपर हमे तरस आनी चाहिये जो अपने अनिष्टकी कल्पनाओके नरकमें निवास करता है। यह भ्रान्ति तब उपस्थित होती है, जब मनुष्य अपने उच्च आदर्शों और महत्त्वाकाङ्क्षाओंको मानस नेत्रोंसे दूर कर देता है। यदि आत्मप्रेरक विचारो, उपयोगी सुझावो तथा जीवनमें करने योग्य महत्त्वपूर्ण कार्योंका एक चित्र, चार्ट या नक्शा (Treasure Map) तैयार किया जाय और सदा हमारे नेत्र चलते-फिरते, उठते-बैठते उसपर पड़ते रहे, तो ये प्रेरक विचार हमारे गुप्त मनमें दृढ़तापूर्वक स्थायीरूपसे जम जाते हैं। नकारात्मक संकेतोका दूषित प्रभाव उनपर नहीं पड़ता। जिस प्रकार आपको शारीरिक रोग दूर करनेके हेतु औषधालयकी दवा कई दिन बादतक चालू रखनी पड़ती है कि शरीरके विषैले कीटाणु मर जायॅ, उसी प्रकार हमे नक्शे, चार्ट या चित्रके रूपमें प्रेरक विचार घरमें यत्र-तत्र (पूजागृहमें विशेषरूपसे) रखने चाहिये जिससे वातावरण प्रेरक, महत्त्वाकाङ्क्षी, शक्तिपूर्ण और उत्साहवर्द्धक रहे। जैसे ही जिधरको नेत्र फिरें, हमारी दृष्टि आत्मप्रेरक चार्ट अथवा चित्रपर पड़े। ये भव्य विचार हमारे शरीरके कण-कणमें विद्युत्‌की भॉति समा जायँ। हम ऐसा अनुभव करें, मानो परमात्माका दिव्य अंश हमारे रोम-रोममें प्रविष्ट हो रहा है, श्वास-श्वासमे रमकर रक्तमे प्रवाहित हो गया है।

एक आत्मवादीका आत्मप्रेरक चार्ट इस प्रकार है—

'मैं अभय हूॅ, मैं बलवान् हूँ, मैं साहसी हूॅ, मैं आरोग्य हूॅ, मै आनन्दमय हूॅ, मैं ज्ञान हूॅ, मैं विजय हूॅ, मै सफलता हूॅ, मैं प्रेम हूॅ, मै

सच्चिदानन्दरूप हूँ और नित्य मुक्त स्वभाववाला हूँ । ऋद्धि-सिद्धि, विजय, लक्ष्मी मेरी दासी है। मैं सर्वशक्तिसम्पन्न हूँ ।'

यह चित्र आपने दीवालपर लगा रक्खा है । अब जब आप घरमे प्रविष्ट होंगे, तुरंत आपका सम्बन्ध इन शब्दोंके पीछे रहनेवाले दिव्य साहसी भावोंसे हो जायगा । ये शब्द आपके गुप्त मनमें पैठकर साहसी स्वभावकी सृष्टि करेंगे । इन शब्दोंको तो बार-बार दृढ़तासे उच्चारण करना ही चाहिये, साथ ही मनमें भावके साथ अपनी तद्विषयक कल्पनाके चित्र भी खींचने चाहिये । जब आप कहें—'मैं अभय हूँ' तो मनमें अपनेको एक परम साहसी, बली, शक्तिमान्, बलवान् व्यक्तिके रूपमें देखिये । जब 'आनन्दमय' कहें तो मनमें एक शान्तिपूर्ण मुखमुद्रासे हँसते हुए, मीठी मुसकान बिखेरते हुए व्यक्तिका मानस चित्र लाइये । जब आप 'सफलताका विचार' लायें तो अपनेको उसी अवस्थामें देखनेका भी अभ्यास करते चले । मनकी भावना वैसे ही चित्रके रूपमे आनेसे अधिकाधिक दृढ़ होती है और हम साहसपूर्ण आत्मप्रेरक विचारोंको विस्मृत नहीं कर पाते । इन आत्मप्रेरणाओंमे रमण करते समय अपने प्रति अविश्वासके भाव मनमें प्रविष्ट न होने दें । हठपूर्वक दिव्य प्रेरणाओंमें निवास करें ।

कुछ आत्मप्रेमीगण गायत्री, आरती, राम-राम या ॐके चित्र खरीदकर घरकी शोभावृद्धि किया करते हैं । यह उत्तम वातावरण निर्माण करनेका एक अच्छा उपाय है । इनपर दृष्टि पड़नेसे उत्तम भावनाएँ स्वयं दृढ़ होती हैं । सकल्प शुद्ध और बुद्धि निर्लिप्त होती है ।

पाश्चात्त्य देशोंमें इसे 'ट्रेजर मैप' कहकर पुकारते हैं । प्रत्येक महत्त्वाकाङ्क्षी एक कागजपर भिन्न-भिन्न शब्द काटकर चिपकाता जाता है, तसवीरें चिपका लेता है और इस नक्शेको उस स्थानपर टाँगता है जहाँ उसकी दृष्टि उसतक पहुँचती और गुप्तरूपसे उन शब्दोंके पीछे रहनेवाले विचारोंको ताजा बनाये रखती है । वहाँ शीशेके एक कोनेपर इन

प्रेरक सकल्पोको चिपकानेकी भी प्रथा है। उनके 'ट्रेजर मैप' बड़े सुन्दर होते हैं। ये हमारी महत्त्वाकाङ्क्षाओको सदा चेतनाकी सतहपर रखते और उन्नत जीवनके लिये प्रेरित किया करते हैं। नेत्रोके सम्मुख पुनः-पुनः आनेसे वे ही दिव्य विचार सासारिक व्यापारोसे मनको हटाकर साहस और सामर्थ्यकी वृद्धि करते और आध्यात्मिक व्यक्तित्वकी भावनाको दृढ़ करते हैं। जब सदा-सर्वदा शुभ, सत्य और सुन्दर विचार मानसमे बसते हैं, तब वैसा ही मानसिक संस्थान बन जाता है; वही भाव सर्वत्र—भीतर-बाहर झलकता है। घातक विचारोकी धाराएँ फीकी पड़ जाती हैं और साहस, निर्भयता, प्रेम, दया, मैत्रीभावनाकी दिव्य धाराएँ समस्त मानसिक केन्द्रोसे प्रवाहित होने लगती हैं।

प्रेम, दया, मैत्री, साहस, निर्भयता, मधुरता, प्रसन्नता आदि रचनात्मक या निर्माणकारी धाराएँ हैं। इसके विपरीत क्रोध, लोभ कायरता, भय, घृणा, द्वेष, विषाद, ध्वंसात्मक या विनष्टकारी विषैली धाराएँ हैं। ट्रेजर मैप सामने रहनेसे हमारी सर्जनात्मक धारा सशक्त रहती है और भव्य विचारकी सूक्ष्म विचारतरङ्गे उन्नत वातावरणकी सृष्टि करती हैं। हम स्पष्ट मानसिक चित्र बनाकर अपनी परिस्थितियोमे आश्चर्यजनक वृद्धि कर लेते हैं।

मूर्तरूपमें आत्मप्रेरणाएँ अपने चर्म-चक्षुओंके समक्ष रखनेसे हम अपने दिव्य और साहसी स्वरूपको सदा चेतनाकी सतहपर रख पाते हैं। अतः दीवारोंपर, शीशेपर अथवा चित्रोंके रूपमे यत्र-तत्र प्रेरक आत्म-प्रेरणाएँ लिखकर सदा उनमें रमण करते रहना आत्मोन्नतिका एक साधन है। गायत्री-मन्त्र तथा भगवान्की आरतीके चित्र नेत्रोंके सम्मुख रहनेसे दिव्य भावोकी तरङ्गे मनमे फैलती रहती हैं।

मौन वाणी और मनका संयम

हिंदू-शास्त्रोंमें इन्द्रिय-व्यापारोंको संतुलितकर काम, राग-द्वेष आदि विकारोंसे मुक्तिके हेतु मौनका विशेष महत्त्व है। जिस प्रकार उपवासद्वारा शरीरकी शुद्धिका विधान है, उसी प्रकार मौन रखकर वाणीकी शुद्धिका विधान रक्खा गया है। हमारी जिह्वा रात-दिन कैंचीकी तरह चलती है; हम निरन्तर अच्छा-बुरा, सच-झूठ उच्चारण करते रहते हैं। दूकानदार, वक्ता, अध्यापक, उपदेशक, वकील—जिसे देखिये मतलब-बेमतलब बातें उच्चारण करता है। स्त्रियाँ तो शोर मचाने और व्यर्थकी बकवाद करनेके लिये बदनाम हैं। उनकी बोलनेकी इन्द्रिय कभी विश्राम नहीं करती। परस्पर एक-दूसरेकी आलोचना, पर-छिद्रान्वेषण, चुगली असंयत

उक्तियाँ निरन्तर उनके मुखसे झड़ती रहती हैं। आजका मानव निष्प्रयोजन बातचीतमें बहुत-सा समय यों ही नष्ट कर रहा है। व्यर्थका बकवास शक्तिका अपव्यय है। अतः जीवनमें मौन-धारणका महत्त्व अत्यधिक है।

'मौन' की गणना मनके पाँच तपोंमें की गयी है—

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥

अर्थात् मनकी प्रसन्नता, सौम्य-स्वभाव, मौन मनोनिग्रह और शुद्ध विचार—ये मनके तप हैं। इनमें मौनका स्थान मध्यमे है। मनके परिष्कार तथा संयमके लिये पहले मनकी प्रसन्नता धारण की जाय, सौम्यता धारण की जाय, तत्पश्चात् मौनका प्रयोग किया जाय। इसके प्रयोगसे मनोनिग्रह और शुद्ध विचार उत्पन्न होते हैं। मनका परिष्कार होता है। इन्द्रिय तथा मनकी शुद्धिमें मौन एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इससे इन्द्रियोंकी भागदौड़, मनकी चञ्चलता और व्यर्थ चिन्तनसे मुक्ति प्राप्त होती है।

मनोविज्ञानका नियम है कि हम जो अच्छा या बुरा उच्चारण करते हैं, वैसा ही पहले मनमें सोचते हैं। वह पहले विचाररूपमें हमारे मनमें उदित होता है। अतः व्यर्थकी बकवाद करते रहनेसे मन अनेक निष्प्रयोजन विचारोंसे परिपूर्ण हो उठता है। अपने मानसिक जीवनपर दृष्टि डालिये, देखिये—कितने व्यर्थके विचार, शङ्काएँ, थोथी चिन्ताएँ उदित होती हैं। ये क्षणिक और काल्पनिक विचार वाचालता उत्पन्न कर देते हैं। वाचाल समय-कुसमयका विचार न कर हर समय कुछ-न-कुछ व्यर्थ बोलता रहता है। मौनसे वाणी और मन दोनोको शान्ति प्राप्त होती है। वाक् इन्द्रियका संयम करनेसे मनको भी शान्ति प्राप्त होती है, आत्मा विश्राम प्राप्त करती है।

जो व्यक्ति जितना अधिक बोलता है, उसमें तथ्यकी बात भूसेमें गेहूँके एक दानेके समान होती है। बकवादीमें गम्भीर दृष्टिका अभाव होता है; क्योंकि उसका मन, मस्तिष्क और जिह्वा थक जाती है। वह पापपूर्ण और व्यर्थकी बातोंमें अटक जाता है। इससे शक्तिका अपव्यय होता है और बेहूदा मनोरंजनको आश्रय मिलता है।

मौनके दो प्रकार हैं। एक तो जिह्वासे कुछ भी न उच्चारण करना, दूसरे मनकी गतिको भी रोक देना। वाणीसे कम बोलनेका अभ्यास धीरे-धीरे करना पड़ता है। जो अधिक बोलते हैं, वे धीरे-धीरे कम करें; सारयुक्त बातें उच्चारण करें तथा आवश्यकताके समय ही चुने हुए शब्दोंमें बोलनेका अभ्यास करें। पहले मनमें वृथा बोलनेका प्रलोभन होगा, दूसरोंकी बातोंमें हस्तक्षेप करनेकी इच्छा होगी, किंतु धीरे-धीरे जरूरतके अनुसार बोलनेका अभ्यास होता जायगा। केवल आवश्यकताके समय ही चुने हुए सारयुक्त शब्दोंका प्रयोग करनेवाला साधक भी वाणीको वशमें रखनेवाला कहा जायगा। वह अपनी बहुत-सी शक्तिको अपव्यय होनेसे बचा सकेगा।

किंतु केवल वाणीसे शब्दोंका उच्चारण मात्र न करना मौन नहीं है। यह तो एक अधूरी-सी बात है। यदि मनकी चञ्चलता दूर न की जाय, उसे शान्त स्थिर संतुलित गम्भीर न बनाया जाय, तो मौनव्रत पूर्ण नहीं होता। अतः पूर्ण मौनमें वाणीके साथ-साथ मनकी स्थिरता, मनमें व्यर्थ चिन्तनका अभाव, आत्म-तत्त्वपर एकाग्रता, अन्तर्मुखी होना भी अनिवार्य है। मनको विवेकके अनुशासनमें करना अनिवार्य है।

यथासम्भव चुप रहकर मौनका अभ्यास करें। धीरे-धीरे बकवास करनेकी आदतसे मुक्त हो सकते हैं। सतत अभ्यास और मनकी एकाग्रता अपने उद्देश्यके प्रति सचाई और सतत उसीका ध्यान मौनके सहायक

हैं। व्यर्थके विचार मनसे निकालकर आनन्दकन्द प्रभुका ध्यान करना चाहिये।

मौनावस्थामें आत्मसंकेतका प्रयोग

मौन धारण करना है तो कठिन, किंतु है बड़ा लाभप्रद। मौनमें संकेतका स्थान भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मौनमे ऐसी क्रिया होती है, जो सूक्ष्म होनेके कारण देखनेमें तो नहीं आती पर हृदय एवं मनका कार्य होनेसे अत्यन्त महत्त्वकी होती है। मौनमें साधक सच्चिदानन्द परमात्माके चिन्तनमें तल्लीन हो जाता है जिससे उसके हृदयमें परमात्माके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है और श्रद्धासे जिज्ञासाका जन्म होता है।

जिज्ञासा आलस्य नहीं है प्रत्युत वह हृदयकी महत्त्वाकाङ्क्षा है और मनका प्रबल उद्वेग है। जिज्ञासु परमात्माको जानना चाहता है, अपनी आत्माके वास्तविक स्वरूपसे परिचित होना चाहता है। संकेत वह साधन है जिससे वह अपने कार्यमें सिद्धि प्राप्त कर सकता है। इसीसे मौनमें संकेतका स्थान है।

संकेतोंका स्थूलरूप चिह्न है और सूक्ष्मरूप विचार है, जिनसे किसी सत्यका निरूपण किया गया है। हमे अपने दैनिक जीवनमे नित्य इसके प्रभावोंका अनुभव हुआ करता है। हम हँसमुख सूरतको देखकर हँस पड़ते हैं और रोनी सूरतको देखकर रो देते हैं। ऐसे ही हर्षके विचारोंसे हर्षित होते हैं और दुःखके विचारोंसे दुःखित होते हैं। हम संकेतोंका प्रयोग भी करते हैं, परंतु हमारे प्रयोग वैज्ञानिक नहीं होते और इसलिये उनसे हमको इतना लाभ नहीं होता जितना कि होना चाहिये। फ्रासके प्रसिद्ध डाक्टर क्यू (Cue) ने उनको वैज्ञानिक रूप प्रदान किया है जिससे रोगियोंको विशेष लाभ पहुँच रहा है। आध्यात्मिक उन्नतिमें भी इन संकेतोंसे बहुत सहायता प्राप्त हो सकती है।

मौनमें जिन संकेतोंका प्रयोग किया जाता है उनका रूप सूक्ष्म होता

है। वे विचारात्मक होते हैं। इन संकेतोंकी प्राप्ति हमें तीन प्रकारसे होती है—

१—दूसरोंके कथित अथवा लिखित विचारोंसे।

२—अपने विचारोंसे, जिनमें किसी विशेष इष्ट-सिद्धिके लिये मानसिक कल्पनाद्वारा किसी विशेष सत्यका निरूपण किया गया है।

३—अन्तरात्माकी प्रेरणासे।

इनमें अन्तिम प्रकारके संकेत सबसे बलिष्ठ और शीघ्र फलप्रद होते हैं। औरोंके विचारोंसे जो संकेत हमे प्राप्त होते हैं, वे तबतक फलित नहीं होते जबतक कि हम उनके अर्थोंको भली प्रकार न समझ लें। जब हम उनके अर्थोंको भलीभाँति समझ लेते हैं, तब वे उपयुक्त फल प्रदान करते हैं। यदि वे विचार किसी आप्त पुरुषके हैं, जिसके ऊपर हमारा विश्वास है, तो हमारा हृदय उन विचारोंको तुरंत ग्रहण कर लेता है। अतः फलकी प्राप्ति भी तुरंत हो जाती है। उपर्युक्त संकेतोंसे जो संकेत हम अपने विचारोंसे उपस्थित करते हैं उनको हमारी आत्मा अधिक शीघ्र ग्रहण करती है। कारण हम उनको अपना मानते हैं जिससे न हमको उनके अर्थोंके समझनेकी आवश्यकता होती है और न विश्वास करनेका कोई प्रयोजन होता है, परंतु यदि यह 'अपना मानना', केवल हमारी मानसिक कहानीका परिणाम है तो इससे कोई काम न चलेगा। हमें अपने अभीष्टके अर्थोंको समझाना पड़ेगा और बुद्धिसे उनका निश्चय करना होगा। तब हमारे विचार युक्तियुक्त और स्वाभाविक बन पड़ेंगे। जिनको हमारी आत्मा स्वीकार कर सकेगी और हमारा काम बन पड़ेगा।

परंतु तर्कसिद्ध विचार अभीष्ट-सिद्धिके लिये गारंटी नहीं है। हमें स्मरण रखना चाहिये कि सफलता सत्यपर निर्भर रहती है। हमारे संकेत जितने ही सत्यके अनुकूल होंगे, उतनी ही अधिक सफलता प्राप्त करना हमारे लिये सम्भव होगा।

परमात्मा सर्वव्यापक हैं और सर्वशक्तिमान् हैं। उनकी सत्तासे हमारी सत्ता है और उनकी शक्तिसे हमारी शक्ति है। वह एक हैं अतः हम सब भी एक हैं। यदि हममे विचार इस महासत्यके अनुकूल हैं तो उनका फलीभूत होना निश्चित है और तदनुकूल इष्टसिद्धि अवश्यमेव होगी। कारण यह है कि उस समय परमात्माकी अनन्त शक्ति हमारी सहायता करेगी और सत्य स्वयं बिना प्रकट हुए रहेगा नहीं; चाहे बाह्य परिस्थितियाँ प्रतिकूल ही क्यों न हों। अतएव ऐसे सत्यको हमें अपने विचारोंका आधार बनाना पड़ेगा।

इन विचारोंसे जो संकेत प्राप्त होंगे वे सत्यप्राप्तिके साधन होंगे। सम्भव है कि इन प्रयोगोंको करते समय हम श्रमसे क्लान्त हो जायँ। उस समय हमें धैर्य और विश्वाससे काम लेना पड़ेगा। धैर्यपूर्वक प्रयोगोंके क्रमको जारी रखना होगा और विश्वाससे यह निश्चय करना होगा कि हमारा कार्य परमात्माका दिव्य कार्य है तथा सत्यके नियमोंके अनुसार है। इसलिये उसकी सिद्धि अवश्य होगी।

ऐसा करनेसे हममें नवीन शक्ति और नवजीवनका संचार होगा। हमें नूतन प्रेरणा मिलेगी। हमारे प्रयोग अधिक सजीव सबल होंगे। मौन पूर्णरूपसे आशामय बन जायगा। हम अपने आपको परमात्माके निकट पहुँचता हुआ प्रतीत करेंगे। उसके निकट सामीप्यको प्राप्त करते जायँगे; यहाँतक कि हममें और उनमें कोई भेद-भाव न रहेगा और सम्पूर्ण जगत्में परमात्माका—हमारी आत्माका प्रकाश पूर्णरूपसे दिखायी देगा। तब संकेतोंके सदुपयोगकी पराकाष्ठा होगी और उनका कार्य पूर्ण होगा।

आप निराश न हों

आनन्दकन्द परमेश्वरकी यह विशाल सृष्टि आनन्दमूलक है। सच्चिदानन्द भगवान् ही सर्वत्र प्रकट हो रहे हैं। उन आनन्दघनका आनन्दमय ज्ञान प्रत्येक वस्तुसे विकसित हो रहा है। भगवान् अपने आनन्दमय स्वरूपका सर्वत्र प्रसार कर रहे हैं। जब इस जगत्के निर्माण-कर्ताका प्रधान गुण आनन्दका प्रसार करना है, तब संसारमें आनन्दके अतिरिक्त अन्य क्या हो सकता है। प्रातःकाल हँसता हुआ सूर्य उदित होकर संसारको स्वर्ण-रश्मियोंसे स्नान करा देता है, शीतल-सुगन्धित वायु मस्ती बिखेरती फिरती है, पक्षीवृन्द आनन्दसे सने गीत गा-गाकर सृष्टिकर्ताकी उत्कृष्ट कलाका प्रकटीकरण करते हैं। विशाल नदियाँ कल-कल शब्द कर आनन्द बढ़ाती हैं। पुष्पोंपर गुंजारते हुए मदमाते भ्रमर आनन्दके गीत सुनाकर हृदय शान्त करते हैं। पृथ्वीका अणु-अणु सुख, ऐक्य, समृद्धि और प्रेमकी शक्तिको प्रवाहित कर रहा है। प्रत्येक वस्तु

जीवनको स्थायी सफलता और पूर्ण विजयसे विभूषित करनेको प्रस्तुत है। ऐसी सुन्दर सृष्टिमे जन्म पा लेना सचमुच बड़े भाग्यकी बात है। सतत तप, पुण्य इत्यादिके उपहारस्वरूप यह दुर्लभ मानव-जीवन इसलिये प्राप्त होता है कि हम इससे पूर्ण आनन्दका उपभोग कर जन्म-जन्मकी साध पूरी कर सके, फिर बतलाइये आप निराश क्यो हैं ?

निराशावाद उस महाभयकर राक्षसके समान है जो मुँह फाड़े हमारे इस परम आनन्द जीवनके सर्वनाशकी ताकमे रहता है, जो हमारी समस्त शक्तियोका ह्रास किया करता है, जो हमें आध्यात्मिक पथपर अग्रसर नहीं होने देता और जीवनके अन्धकारमय अंश हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया करता है। हमे पग-पगपर असफलता-ही-असफलता दिखाता है और विजय-द्वारमें प्रविष्ट नहीं होने देता।

इस बीमारीसे ग्रस्त लोग उदास—खिन्न मुद्रा लिये घरोके कोनेमें पड़े दिन-रात मक्खियाँ मारा करते हैं। ये व्यक्ति ऐसे चुम्बक हैं जो उदासीके विचारोको निरन्तर अपनी ओर आकर्षित किया करते हैं और दुर्भाग्यकी कुत्सित डरपोक विचारधारामे निमग्न रहा करते हैं। उन्हे चारों ओर कष्ट-ही-कष्ट दीखते हैं। कभी यह, कभी वह, एक-से-एक भयंकर विपत्ति आती हुई दृष्टिगोचर होती है। वे जब बाते करते हैं तो अपनी यन्त्रणाओं और विपत्तियोंका क्लेशपूर्ण अभद्र प्रसंग छेड़ा करते हैं। हर व्यक्तिसे वे यही कहा करते हैं कि 'भाई, हम क्या करे, हम कमनसीब है हमारा भाग्य फूटा हुआ है, दैव हमारे विपरीत है, हमारी किस्मतमे विधिने ठोकरोका ही विधान रक्खा है तभी तो हमे थोड़ी-थोडी दूरपर लज्जित और परेशान होना, अशान्त, क्षुब्ध और विक्षिप्त होना पड़ता है।' उनकी चिन्तित मुख-मुद्रा देखनेसे यही विदित होता है मानो उन्होंने उस पदार्थसे गहरा सम्बन्ध स्थिर कर लिया हो, जो जीवनकी सब मधुरता नष्ट कर रहा हो, उनके सोने-जैसे जीवनका समस्त आनन्द छीन रहा हो, उन्नतिके

मार्गको कण्टकाकीर्ण कर रहा हो, मानो समस्त संसारकी दुःख-विपत्ति उन्हींके सिरपर आ पड़ी हो और उदासीकी अन्धकारमयी छायाने उनके हृदय-पटलको काला बना दिया हो।

इसके विपरीत आशावाद मनुष्यके लिये अमृत-तुल्य है। जैसे तृषितको शीतल जलसे, रोगीको औषधिसे, अन्धकारको प्रकाशसे, वनस्पतिको सूर्यसे लाभ होता है, उसी भाँति आशावादकी संजीवनी बूटीसे मृतप्राय मनुष्यमें जीवन-शक्तिका प्रादुर्भाव होता है। आशावाद वह दिव्य प्रकाश है जो हमारे जीवनको उत्तरोत्तर परिपुष्ट, समृद्धिशाली और प्रगतिशील बनाता है। सुख, सौन्दर्य एवं सफलताकी अलौकिक छटासे उसे विभूषित कर उसका पूर्ण विकास करता है। उसमे माधुर्यका संचार कर विघ्न-बाधा, दुःख, क्लेश और कठिनाइयोंपर विजय प्राप्त करानेवाली गुप्त मनःशक्ति जाग्रत् करता है। आत्माकी शक्तिसे देदीप्यमान आशावादी आशाका पल्ला पकड़े प्रलोभनोंको रौंदता हुआ अग्रसर होता है। वह पथ-पथपर विचलित नहीं होता, उसे कोई बात असम्भव प्रतीत नहीं होती, उसे कोई कार्य असम्भव नहीं जान पड़ता, उसे कोई पराजित नहीं कर सकता, संसारकी कोई शक्ति उसे नहीं दबा सकती; क्योंकि सब शक्तियोंका विकास करनेवाली 'आशा' की शक्ति सदैव उसकी आत्माको तेजोमय करती रहती है।

संसारके कितने ही व्यक्ति अपने जीवनको उचित, श्रेष्ठ और श्रेयके मार्गपर नहीं लगाते। वे किसी एक उद्देश्यको स्थिर नहीं करते, न वे अपने मानसिक संकल्पको इतना दृढ़ ही बनाते हैं कि अपने प्रयत्नोंमें सफल हो सकें। सोचते कुछ हैं, करते कुछ और हैं। काम किसी एक पदार्थके लिये करते हैं, आशा किसी दूसरेकी ही करते हैं। करीलके वृक्ष बोकर आम खानेकी अभिलाषा रखते हैं। हाथमें लिये हुए कार्यके विपरीत मानसिक भाव रखनेसे हमें अपनी निर्दिष्ट वस्तु कदापि प्राप्त

नहीं हो सकती। बल्कि हम इच्छित वस्तुसे और भी दूर जा पड़ते हैं। तभी तो हमें असफलता, लाचारी, तंगी, क्षुद्रता प्राप्त होती है। अपनेको भाग्यहीन समझ लेना, बेबसीकी बातोंको लेकर झींकना और दूसरोंकी इष्ट-सिद्धिपर कुढ़ना हमें सफलतासे दूर ले जाता है, विरोधीभाव रखनेसे मनुष्य उन्नत अवस्थामें कदापि नहीं पहुँच सकता। संसारके साथ अविरोधी रहिये, क्योंकि विरोध संसारकी सबसे उत्कृष्ट वस्तुओंको अपने निकट नहीं आने देता और अविरोध उत्कृष्ट वस्तुओंका एक आकर्षक बिन्दु है।

तुम्हारे भाग्यमें आशावादका स्वर्ग आया है न कि निराशावादका नरक। तुम अपनी जीवन-यात्रामें मन्दगतिसे घिसटते हुए पशुवत् पड़े रहनेके लिये जगत्‌में प्रविष्ट नहीं हुए हो। अपनेको अशक्त—असमर्थ माननेवाले डरपोक व्यक्तियोंकी श्रेणीमें तुम नहीं हो। तुम दुर्बल अन्तःकरणवाले निराशावादियोंकी तरह निःसार वस्तुओंके कुत्सित चिन्तनमें निष्प्रयोजन अपनी शक्तियोंका अपव्यय नहीं करते। संसारमें तुम उस महान् पदपर आसीन होगे जिसपर संसारके अन्य प्रतापी पुरुष होते आये हैं, अभी तुम इस स्थितिमें पड़े हो तो क्या, शीघ्र ही उच्चतम विकासके दिव्य प्रदेशमें तुम प्रविष्ट होनेवाले हो। तुम सर्वेश्वरके पवित्र अंश हो और तुम्हें प्रकृतिने अपनी इष्ट-सिद्धिके लिये पर्याप्त साधन और सामर्थ्य प्रदान किये हैं। तुम एक बार प्रयत्न तो करो।

मनुष्यका स्वभाव ज्यों-ज्यों आत्मिक भाव और आत्मिक जीवनकी अभिवृद्धि करता है, त्यों-त्यों उसमें सामर्थ्य भी बढ़ते जाते हैं। जैसे-जैसे आप अपने शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें छिपे सामर्थ्योंको प्रकट करेंगे—आविष्करण करेंगे—वैसे-वैसे विशेषरूपसे महान् बनते जायँगे। उच्च विचारोंद्वारा जितने अंशोंमें आप अपने जीवनका विकास कर सकेंगे उतने ही अंशोंमें उसका यथार्थ उपभोग भी कर सकेंगे।

कहते हैं एक बार एक बड़े भारी व्यापारीकी पत्नी तार लिये दौड़ी हुई उसके कमरेमें, जहाँ वह बैठा व्यापारकी कुछ नवीन योजनाएँ सोच रहा था, आयी और हाँफते बोली—'प्यारे ! हमने सब कुछ खो दिया है। हमारे जहाज माल असबाब इत्यादि डूब गये हैं, सारी उम्रके किये-करायेपर पानी फिर गया है, हमारी सब बहुमूल्य वस्तुएँ जा चुकी हैं। उफ, अब क्या होगा ! हाय ! हाय ! हमें कौन पूछेगा ?'

पतिने धैर्य दिखाते हुए कहा—'क्या तुम्हें भी मुझसे छीन लिया गया है ?'

वह बोली—'पागलोंकी-सी बातें क्यों करते हो, मैं तो सदैव तुम्हारे पास हूँ।'

—और हमारी आदतें तो कहीं नहीं चली गयी हैं ?

—नहीं आदतें भला कहाँ जायँगी ?

तब तो निराश होनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। हमने अपनी आदतोंकी कमाई ही खो दी है। संसारकी सर्वश्रेष्ठ विभूतियाँ (आशावादिता, स्वास्थ्य, उत्साह, अध्यवसाय, परिश्रम और प्रेम) अब भी हमारे पास हैं। हम शीघ्र ही सब कुछ पुनः प्राप्त कर लेंगे, तुम धैर्य रक्खो।' कहते हैं कि कुछ ही वर्षों बाद उनका गृह पुनः धनधान्यसे पूर्ववत् पूरित हो गया। जब उनसे सफलताका रहस्य पूछा गया तो उन्होंने कहा, मैं कभी आशा नहीं छोड़ता, विपत्तिके काले बादलोंसे चिन्तित नहीं होता वरं हँसते-हँसते उनका सामना करता हूँ। कठिनाई आनेसे निराशाका चिह्न मुखमण्डलपर दिखाना अच्छे-से-अच्छे मनुष्यको विफल बना सकता है।'

अनेक व्यक्ति थोड़ी-सी कठिनाई आनेपर अत्यन्त अस्त-व्यस्त हो जाते हैं, घबराने लगते हैं और ठोकर-पर-ठोकर खाते हैं। निराशा उनके जीवनको भार बना देती है। हमारी असफलताएँ अधिकांशमें निराशाके

अभद्र विचारोंसे ही प्राप्त होती हैं और वे अयोग्य मन्त्रणाओं, भयपूर्ण कल्पनाओंके ही फल हैं। यदि हम पूर्णरूपसे कल्पनाको उत्तम वस्तुओंकी ओर चलाया करें और चिन्ता, दुर्बलता, शङ्का, निराशाके विचारोंसे हटाकर आशा और हिम्मतके उत्पादक वातावरणमे रखना सीख लें तो हमारे जीवनका स्रोत एक आनन्दमय जगत्में प्रवाहित होने लगे। निराशा एक भयंकर मानसिक रोग है। इससे मुक्ति पानेके लिये विचारोंका रुख बदलने-की परम आवश्यकता है। धीरे-धीरे अपने हृदयमे नाउम्मीदी, कमजोरी और निराशाके भावोंके स्थानपर इनके प्रतिपक्षी—साहस, हिम्मत, सफलता और आशाके उत्साह-वर्द्धक भावोंको जमाना चाहिये। उन्हे अङ्कुरित, पल्लवित एवं पुष्पित करनेके लिये अपनी सत्-इच्छाओंका अभिनय-पार्ट अवश्य करना चाहिये। हम जिस कार्य, उद्देश्य या मनोरथमे सफलता लाभ करनेकी चेष्टा कर रहे हैं, उसका अभिनय भलीभाँति करे। यदि हम एक विद्वान् बननेकी चेष्टा कर रहे हों तो अपने-आपको एक विद्वान्‌की ही भाँति रक्खें, वैसा ही वातावरण एकत्रित करे, निराशा निकालकर यह उम्मीद रक्खें कि मूर्ख कालिदासकी भाँति हम भी महान् बनेंगे। निराशा निकालकर हम इस अभिनयको पूर्ण करनेकी चेष्टा करें। हम अनुभव करें कि मैं विद्वान् हूँ, सोचे कि मैं अधिकाधिक विद्वान् बन रहा हूँ, मेरी विद्वत्ताकी निरन्तर अभिवृद्धि हो रही है। हमारे व्यवहारसे लोगोंको यह ज्ञात होना चाहिये कि हम सचमुच विद्वान् हैं। हमारा आचरण भी पूर्ण विश्वासयुक्त हो। शंका, संदेह या निराशाका नाम-निशान भी न हो। अपने इस विश्वासपर हमे पूरी दृढ़ताका प्रदर्शन करना उचित है। यह अभिनय करते-करते एक दिन हम स्वयमेव अपने कार्यको पूर्ण करनेकी क्षमता प्राप्त कर लेंगे।

<u>जिस वस्तुको हमें प्राप्त करना है उसके लिये जितनी मानसिक क्रिया होगी, जितना उसकी प्राप्तिका विचार किया जायगा, उतनी ही शीघ्रतासे</u>

वह वस्तु हमारी ओर आकर्षित होगी। प्रत्येक वस्तु पहले मनमें उत्पन्न की जाती है, फिर वस्तु-जगत्मे उसकी प्राप्ति होती है। हम अपने विषयमें अयोग्यताकी भावना रखते हैं, अतः उसी प्रकारकी हमारे अन्तःकरणकी सृष्टि होती जाती है। हमारी भयकी डरपोक कल्पनाएँ ही हमारे मनमे निराशाके काले बादलोंकी सृष्टि कर रही हैं। मनःस्थितिके ही अनुसार अन्य व्यक्ति हमसे द्वेष अथवा प्रेम करते हैं और संसारकी समस्त वस्तुएँ हमारे पास आकर्षित होकर आती या मुड़कर दूर भागती हैं।

तनिक विचार करें, एकलव्य यदि गुरु द्रोणके यहाँसे निराश होकर धनुर्विद्याका अभ्यास छोड़ देता और भ्रान्तिके विचारोंके सम्पर्कमें आकर क्षुब्ध हो जाता तो क्या वह सफलताको प्राप्त करानेवाली वाञ्छनीय मनः-स्थिति स्थिर रख सकता था। उसने निराशासूचक उनके शब्दोंको अपने अन्तःकरणकी स्थायी वृत्ति नहीं बनाया। उसके बलवान् मनपर भ्रान्तिका कोई विचार या संस्कार अपना प्रभाव न डाल सका। दुर्बल व्यक्तिके चित्तपर ही प्रतिकूल प्रसङ्गका कुप्रभाव पड़ता है। संसारके मनुष्य, चारों ओरसे निकम्मे संदेहात्मक दरिद्र विचार लाकर उसके अन्तःकरणमें डालते हैं और उसकी सफलता, प्रसन्नता और उत्साहको छिन्न-भिन्न कर देते हैं। यदि हम दूसरोंकी निराशोत्पादक बातोंपर ध्यान न दें और उधरसे हमेशाके लिये मुख मोड़ लें, आशाके प्रकाशकी ओर रुख कर लें तो अल्पकालमें ही विकसित पुष्पकी भाँति आनन्दित हो सकते हैं।

जब हम निश्चय कर लेंगे कि 'मेरा निराशासे यावज्जीवन कोई सम्बन्ध नहीं होगा, मुझे नाउम्मीदीसे कोई सरोकार नहीं है, मैं अबसे वस्त्र-भूषापर, शरीरपर, व्यवहारमें, अपने कार्योंमे निराशाका कोई चिह्न भी न रहने दूँगा, मैं पूर्ण शक्ति और मनोरथ-सिद्धिमें प्रवृत्त रहूँगा, निराशापूर्ण वातावरण-से मेरा कुछ लेना-देना नहीं है। मैंने तो अपनी मूल प्रवृत्ति ही उत्तम पदार्थोंकी ओर कर दी है। सफलता और मनोरथ-सिद्धि मेरे बाये हाथका

खेल है, मुझे संसारकी कठिनाई अपने श्रेयके मार्गसे विचलित नहीं कर सकती।' तब याद रक्खें हमारे हृदयमें एक दिव्य शक्ति—शासनकर्ता शक्ति उत्पन्न होगी। आत्मश्रद्धा और स्वाभिमान प्रबल होने लगेंगे और हम आश्चर्यपूर्वक कहेंगे कि यह परिवर्तन न जाने क्योंकर हो गया? तब हम भी यही कहेंगे कि मनको आशापूर्ण, प्रकाशित, उत्साहित और प्रसन्न रखनेसे सफलता प्राप्त होती है, आशावाद ही सफलता प्राप्त कराता है।

'हमारे किये कुछ न होगा' ऐसा निराशावादी विचार सफलताका विघातक शत्रु होता है। आशावाद बहुत बड़ी उत्पादक शक्ति है, जीवन-की जड़ है। इसके अंदर प्रत्येक वस्तु निवास करती है। यह मानसिक क्षेत्रमें प्रविष्ट करते ही बड़ा लाभ पहुँचाती है। अतः जिसे नाउम्मेदीसे छुट-कारा पानेकी आकाङ्क्षा हो उसे उचित है कि अपने मनकी स्थितिको उत्पादक, उत्साहपूर्ण, उदार, प्रवर्द्धक और उदात्त रक्खें।

तुम निराश इसलिये हो कि भयने और संदेहने तुम्हारे अन्तःकरणपर अधिकार कर लिया है। तुम्हे अपनी योग्यताके प्रति अविश्वास हो गया है, तुम्हे सफलता और दुर्भाग्यकी मानसिक प्रवृत्तियोंने परास्त कर दिया है और हीनत्वकी भावनाने तुम्हारे मानसिक जगत्‌मे तूफान लाकर तुम्हें अस्त-व्यस्त कर डाला है। विचारोंकी यह परवशता ही तुम्हे डुबो रही है। याद रक्खो—जबतक तुम किसी कार्यमें हाथ नहीं डालोगे, तबतक अपनी शक्तिका अनुमान कदापि न कर पाओगे। मनुष्य जबतक अपने-आपको यह न समझ ले कि वह कार्य करनेकी क्षमता रखता है, तबतक वह पंगु ही बना रहेगा। तुम्हे जो कुछ करना श्रेष्ठ जॅचता है, जो कुछ तुम्हारी अन्तरात्मा कहती है, उसे दृढ़ संकल्पपूर्वक अवश्यमेव प्रारम्भ करो। डरो नहीं। शङ्का, संदेह या अविश्वासकी कोई बात न सोचो, बल्कि कार्य शुरू कर ही डालो। प्रत्येक मनुष्य कुछ-न-कुछ जरूर कर सकता है और करेगा यदि अकृतकार्य होकर हिम्मत न हारे। हिम्मत हमेशा बाजी

मारती है। तुम अपने सामर्थ्य और निश्चय बलोंकी अभिवृद्धि करते रहो। संसारमें जो करोड़ों मनुष्य निराश हो रहे हैं, उसका प्रधान कारण आत्म-विश्वासकी कमी है। श्रद्धा खो बैठे हैं और दूषित निष्प्रयोजन कल्पनाओंके ग्रास बने हैं। तुम इनसे सदैव बचे रहो। सदा-सर्वदा आन्तरिक मनकी उन्नत भावनाओंके प्रति लक्ष्य किये रहो और अपनी समस्त शक्तियोंमें अखण्ड श्रद्धा और पूर्ण विश्वास रक्खो। किसी विशेष मर्यादातक केवल ऊपरी विश्वास ही मत रक्खो, परंतु भीतरी तहमें भी दृढ़तासे विश्वासकी अमिट छाप जमा दो। फिर विश्वासके सुमधुर फल देखो। तुम्हारी सब निराशा रफूचक्कर हो जायगी और अभ्यन्तर प्रदेशसे अनन्त शक्तिका आविर्भाव होगा।

आजसे तुम अपनी क्षुद्रताका चिन्तन छोड़ो। जब कभी विश्वकी विशालतापर विचार करने बैठो तो अपने मन, शरीर, आत्माकी महान् शक्तियोंपर चित्त एकाग्र करो। शक्तिके इस केन्द्रपर मन स्थित रखनेसे कोई दुर्बलता तुम्हारे अन्तःकरणमें प्रवेश नहीं कर सकती। जब तुम शक्ति-के विशाल बिन्दुपर समस्त शक्तियाँ केन्द्रित करोगे तो तुम्हें प्रतीत होगा कि पाषाणमें, धातुमें, वनस्पतिमें, प्रकृतिमें, पशुमें और जिस किसी वस्तुमें भी विशालता है, उस सबसे तुम्हारी विशालता कहीं अधिक है। इन सबकी विशालताकी एक सीमा निश्चित है, किंतु तुम्हारी शक्तियोंकी सीमा अपार है।

जीवनको एक दीप समझें। उसकी शिखामें सजीवता तभी आयेगी, किरणें तभी जगमगायेंगी जब आशा उसे सदा अपने तेलसे परिपूर्ण रक्खेगी। आशाके तेलके समाप्त होते ही या तो दुःख-दर्दके समुद्रमें विलीन हो जाना होगा या फिर मृत्युकी शीतल-सी गोदमें हमेशाके लिये समा जाना होगा।

प्रतिशोधमें प्रेमका सम्मिश्रण

मानवीय मानसिक दुर्बलताओंके अन्तर्गत प्रतिशोधकी भावना बड़ी विषैली है। प्रतिशोधकी अग्नि ज्यों ही आन्तरिक प्रदेशमें प्रज्वलित होती है, त्यों ही समग्र अन्तःकरणमे एक अस्तव्यस्तता उत्पन्न हो जाती है। जिस प्रकार प्रशान्त तालाबमें एक पत्थर फेंकनेसे जलकी ऊपरी सतहपर गोलाकार तरङ्गे उत्पन्न होकर सतहकी शान्तिको भङ्ग कर देती हैं उसी प्रकार दूसरेसे प्रतिशोध लेनेकी भावना मनमें उत्पन्न होते ही मनुष्य विचलित—विशृङ्खलित हो उठता है।

प्रतिशोधकी वासनाका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करें तो हमे विदित होता है कि इसमे तीन विकार काम करते हैं—

१—अपने प्रति किये गये अन्याय, अत्याचार-अनाचारका मानसिक आघात। प्रतिशोध लेनेवाला व्यक्ति एक भावुक, दुर्बल इच्छा और संकल्पवाला व्यक्ति होता है, जो दूसरेके विपरीत संकेतोंको सम्हाल नहीं पाता। उसका मन घोर मानसिक व्यथाका अनुभव करता है।

२—भय और ईर्ष्याका संघर्ष। वह चुपचाप अपने प्रतिद्वन्द्वीसे भयभीत रहता है और खुलकर उससे सामना नहीं कर पाता। ईर्ष्याके वशमे होकर वह ऐसे मार्ग ढूँढ़ता रहता है जिसके द्वारा अपने विरोधी

पक्षको शारीरिक, आर्थिक या कोई सामाजिक हानि पहुँचा सके। एक ओर प्रतिद्वन्द्वीकी शक्तियोंसे भय, दूसरी ओर ईर्ष्याकी प्रचण्डता उसे व्यथित किये रहती है। वह उचित-अनुचित मार्गोंसे वैरीकी क्षतिमें ही निरत रहता है।

३–तृतीय भावना क्रोधका आवेश है। प्रतिशोध क्रोधकी ही संतान है। यह क्रोध या तो क्षणिक उत्तेजनामें दूसरेकी शारीरिक क्षतिसे शान्त होता है; अन्यथा धीरे-धीरे सुलगनेवाली गीली लकड़ीके धुएँकी भाँति वैर बन जाता है। वैरमें मनुष्य ऐसे अनुचित साधनोंकी तलाशमें रहता है, जिनसे वह गुप्तरूपसे प्रतिद्वन्द्वीको क्षति पहुँचा सके। क्रोधकी उत्तेजित दशामें उसे औचित्यका जरा भी ध्यान नहीं रहता है। प्रायः देखा जाता है कि वह प्रतिशोध लेनेके लिये उस व्यक्तिसे सम्बन्धित अन्य अबोध बच्चों, असहाय स्त्रियोंको हानि पहुँचाकर मनका आवेश शान्त करता है।

प्रतिशोधकी भावना मनुष्यकी विवेक-बुद्धिको पङ्गु कर देती है। अस्थिर मनके व्यक्तिको जब बदला लेना होता है तो वह यह नहीं देखता कि उसका कार्य वास्तवमें बदला हुआ, अथवा नहीं। बैजू बावरेके पिताका वध तानसेनके संगीत-दर्पके कारण हुआ था। मृत्युसे पूर्व बैजूके पिताका आदेश था—'पुत्र! यदि तू वास्तवमें मेरी संतान है, तो तानसेनसे प्रतिशोध लेना। उसे नीचा दिखाना। उसका दर्प चूर्ण कर देना।' बैजू अबोध था। वह क्रोधके आवेशमें तलवार लेकर अपने पिताकी मृत्युका प्रतिशोध लेने चला। बादमें सत्-ज्ञानके सम्पर्कमें जब उसकी विवेक-बुद्धि विकसित हुई, तो उसे ज्ञान हुआ कि उसे स्वयं तानसेनसे भी ऊँचा सङ्गीतज्ञ बनकर तानसेनका दर्प चूर्ण कर उसे नीचा दिखाना चाहिये। उसे अपने आवेशपर बड़ा क्षोभ हुआ। उस दिनसे वह स्वयं एक महान् सङ्गीतज्ञ बननेमें संलग्न हो गया और अन्ततः अपनी सङ्गीतविद्यासे तान-

सेनको परास्तकर प्रतिशोध लिया। तानसेनको पराजित करनेकी भावनाने उसे महान् सङ्गीतज्ञ बना दिया।

अनेक व्यक्ति प्रतिशोधकी उत्तेजनामें दूसरेको कत्ल करते देखे जाते हैं। कुछ व्यक्ति एक गालीका उत्तर दस गंदी बातें उच्चारणकर करते हैं। खेलमें असावधानीसे डंडा लग जानेका बदला मार-कूटकर लिया जाता है। कोर्टमें आनेवाले अनेक मुकदमोंमें पचास प्रतिशत प्रतिशोधकी भावनाके कुफल हैं।

प्रतिशोध एक विष है, जो मनुष्यके अन्तःकरणको विक्षुब्ध करता है। ज्यो-ज्यों मनुष्य आध्यात्मिक जगत्‌में ऊँचा उठता है, त्यों-त्यों वह प्रतिशोधकी मूर्खताको समझता है। उच्च आध्यात्मिक प्रदेशमें पहुँचकर मनुष्य प्रेमकी अतुलनीय शक्तिका अनुभव करता है। वह क्षमाका महत्त्व जान जाता है। विवेकपूर्ण क्षमा आवेशमय हिंसक प्रतिशोधसे उच्चतर आध्यात्मिक प्रक्रिया है।

प्रतिशोधके स्थानपर प्रेम प्रदर्शन करनेसे स्वतः पापीमें पश्चात्ताप उदित होता है। जैसे ठंढे जलसे अग्नि शान्त होती है, वैसे ही क्रोधका आवेश आपके प्रेम तथा सौहार्दकी भावनाओंसे शान्त हो जाता है। प्रेम-द्वारा आप प्रतिशोध लें, तो स्वयं आप आध्यात्मिक जगत्‌में ऊँचे उठते हैं; साथ ही पापीका भी सुधार होता है। आप अन्य शक्तियोंका विकास करें, शक्तिशाली बनें जिससे आप इतने ऊँचे उठ जायँ कि किसीको आपके प्रति अत्याचार करनेका प्रलोभन ही न हो। यदि कभी आवश्यकता हो तो प्रेम, सहानुभूति एवं क्षमा-जैसे दिव्य आध्यामिक शस्त्रोंका चमत्कार देखें।

ईश्वर-प्रार्थनासे आत्मोन्नति

बाइबिलमें एक स्थानपर प्रार्थनाके विषयमें कहा गया है कि प्रार्थना श्रद्धावान् भक्तके हाथमें स्वर्गके दिव्य भण्डारोंको खोलनेकी कुंजी है। (Prayer is the key in the hand of faith to unlock Heaven's Store house.) प्रार्थनाद्वारा मानव निज हृदयको परमेश्वरके सम्मुख खोलकर रख देता है। आप यह न समझें कि परमेश्वर इसके इच्छुक हैं या वे चाहते हैं कि हम प्रार्थनाद्वारा उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टाएँ करते रहें। हृदय अर्पण करनेसे हमारा तात्पर्य यह होता है कि हम ईश्वरको उसमें प्रविष्ट होनेके लिये आमन्त्रित करते हैं। चन्द्रमाकी रश्मियोंको लेकर हम अपने नेत्र शीतल करते हैं। ईश्वरीय प्रकाशकी दिव्य किरणोंको हृदयमें प्रविष्ट कराकर हम समस्त कालिमा, वासना, विकार, ईर्ष्या, द्वेष, मद, मत्सरसे मुक्त होते हैं। प्रार्थना वह सर्वसुलभ मानवीय साधन है, जिसके द्वारा हमारा सहज सीधा परमेश्वरसे सान्निध्य हो जाता है!

प्रार्थना करनेका दूसरा अर्थ है, परमात्मासे सीधा बातचीत करना,

दैवी तत्त्वसे निकट सम्बन्ध स्थापित करना; अपने आपको नीची पाशविक स्थितिसे उठाकर उच्च आध्यात्मिक स्थितिमे रखना। सच्ची प्रार्थनासे मनुष्यकी पाशविक वासनाएँ, दुष्प्रवृत्तियाँ फीकी पड जाती हैं। हम अपने अंदर दैवीशक्तिका अनुभव करते हैं। गुप्त दैवी तेजोमण्डलसे हमारे अंदर सात्त्विक शक्तिका विकास होता है। श्रद्धासे की गयी प्रार्थनाका प्रभाव बिजली-जैसा होता देखा गया है। मनुष्यकी अन्तर्दृष्टि विकसित करने, अन्तरात्माको सशक्त करने, बुद्धिको कुशाग्र करने और चित्तको एकाग्र करनेका सहज साधन सच्ची प्रार्थना है।

आपकी आत्म-प्रार्थनाके आध्यात्मिक माध्यमद्वारा आप सृष्टि, जगत् तथा जीवमात्रके आदि केन्द्र परमात्मातक चढ़ जाते हैं। परमेश्वरसे आपका निकट साहचर्य इसी दिव्यसाधनके द्वारा होता है। कोई धर्म, कोई सम्प्रदाय, कोई मत उठा लीजिये; संसारके किसी कोनेपर देख लीजिये, सर्वत्र प्रार्थना-की प्रभावोत्पादकता एवं उपयोगिताको समझा और प्रयोगमें लाया गया है। युग-युगसे जीव इसी साधनद्वारा अपने मनके मैलको धोकर शुचिता और पवित्रता प्राप्त करते रहे हैं। कवियोंने अपनी कविताओंमें जिन प्रार्थनाओंकी अभिव्यक्ति की है, वे न केवल उन्हे प्रत्युत, निरन्तर आनेवाली अनेक पीढ़ियोंको प्रेरणा और आन्तरिक शान्ति देती रही हैं। भक्तप्रवर तुलसी, प्रेमविह्वल सूरदासजी, भक्तिविह्वला मीराँ, नानक, कबीर आदि असंख्य प्रेमी भक्तोंने विविध भजनोंके रूपमें जो आर्त पुकार की है, परमेश्वर-के दरबारमें उनकी निश्चित पहुँच हुई है।

प्रार्थनाका अर्थ है—शक्तिके अनन्त भण्डारसे शक्ति प्राप्त करना, प्रेरणा लेना। ईश्वर शक्तिका भण्डार है। उसमें हर तरहकी सहायता करने-की क्षमता है। वहाँसे सदैव आशा रक्खी जा सकती है, सब दशाओंमें निर्भर रहा जा सकता है, अन्तःप्रेरणा प्राप्त की जा सकती है। अतः जब आप प्रार्थनाद्वारा परमेश्वरके साथ सम्बन्ध जोड़ते हैं, तब दैवी शक्ति,

सहायता, प्रेरणा, अदृष्ट-बल और नवजीवन प्राप्त करते हैं। ईश्वरके गुप्त भण्डारमें किसी प्रकारकी कमी नहीं है। आप चाहे जिस स्थितिमें हों, चाहे जिस अवस्थाके हों, चाहे जैसे स्वास्थ्यमें हो, चाहे जिस देशमें हों, ईश-प्रार्थनासे जीवनका यथार्थ मार्ग अवश्य प्राप्त कर सकते हैं। संसारमें अनेक दवाएँ हैं; लेकिन प्रार्थनारूपी महौषधसे त्रितापोंका सहज ही निवारण होता आया है। सर्वश्रेष्ठ विचारकोंके जीवन-मन्थनका यही निष्कर्ष है।

महात्मा गाँधीजीने समग्र जीवनमें प्रार्थनाद्वारा शान्ति, उत्साह, प्रेरणा और नवशक्ति प्राप्त की थी। वे प्रार्थनाकी महत्ताके विषयमें लिखते हैं—

'प्रार्थना मेरे जीवनका ध्रुवतारा है। एक बार मैं भोजन करना छोड़ सकता हूँ, किंतु प्रार्थना करना नहीं। आत्माको परमात्मामें लीन करनेका एकमात्र साधन प्रार्थना ही है।'

गाँधीजीने प्रार्थनाको एक विज्ञानका स्वरूप दिया और स्वयं अपने कल्याणके साथ दूसरोंको शान्ति, मरणासन्न रोगियोंको नवजीवन तथा अदृष्ट सहायताके लिये निरन्तर इसी दिव्य माध्यमका प्रयोग किया। सामूहिक प्रार्थनाद्वारा गुप्त आध्यात्मिक लहरें फैलाकर उन्होंने जनतामें प्रार्थना-विज्ञानका प्रचार किया।

प्रार्थनाद्वारा जब भक्त प्रभुको आत्म-समर्पण कर देता है और ईश्वरको ही एकमात्र शक्तिका आधार मानता है, तब उसमें आध्यात्मिक बलका प्रादुर्भाव होता है। महाकवि सूरदासने आत्मसमर्पणकी इस दैवी सहायताका मार्मिक चित्रण बड़े सुन्दर रूपमें किया है—

सुने री मैंने निर्बलके बल राम।
पिछली साख भरूँ संतन की
अड़े सँवारे काम॥
जब लग गज बल अपनो बरत्यो
नेक सरथो नहि काम।

निर्बल है बल राम पुकार्‌यो
आये आधे नाम ॥
द्रुपदसुता निर्बल भइ ता दिन
तजि आए निज धाम ।
दुःसासनकी भुजा थकित भई
बसन रूप भए स्याम ॥
अपबल तपबल और बाहुबल
चौथो है बल दाम ।
सूर किसोर कृपा ते सब बल
हारे को हरिनाम ॥

संकट और विपद्में प्रार्थनाद्वारा अदृष्ट सहायता अवश्य प्राप्त करें। जब आप विनम्र भावसे गद्‌गद हो प्रभुको आत्म-समर्पण करते हैं तब गुप्तरूपसे आप दैवी तत्त्वोंसे अपना निकट सम्पर्क स्थापितकर आत्मिक उन्नति करते हैं।

दिनका प्रारम्भ प्रार्थनासे करें और दिनका अन्त प्रार्थनासे करें। प्रातःकाल प्रभुके स्मरणसे सारा दिन सात्त्विक विचारोंमें लगता है; मन, वचन, कर्मसे गंदगी दूर रहती है; रात्रिमे प्रार्थना करनेसे सुख-शान्तिमय निद्रा आती है। वह व्यक्ति धन्य है जो सदा ईश्वरमय रहता है।

पापी-से-पापीके लिये भी प्रार्थनाद्वारा अदृष्ट सहायताका अतुल भण्डार खुला पड़ा है। आवश्यकता इस बातकी है कि मनुष्य सच्चे मनसे उसका समुचित उपयोग करता रहे। यदि आप चारो ओरसे निराश हो चुके हैं, तो प्रार्थनाकी शक्तिसे अवश्य ही लाभ उठा सकते हैं।

प्रार्थनाका मार्ग सबके लिये खुला हुआ है।

मेरा कुछ नहीं ?

मेरे पास एक मकान है, जिसे मैंने खरीदा है और इधर-उधरसे सुधारकर खूबसूरत शिष्ट व्यक्तियोंके रहने योग्य बना लिया है। मैं इसपर प्रतिवर्ष पुताई और रोगन सफाई तथा चित्रोंमें खूब व्यय करता हूँ।

पर क्या यह वास्तवमें मेरा है ? नहीं, कदापि नहीं। मेरे इसमें आनेसे पूर्व न जाने वह जमीन, जिसपर यह खड़ा है, कितने व्यक्तियोंके अधिकारमें आकर निकली होगी। इस घरमें कितने ही व्यक्ति आते-जाते रहे होंगे, कोई मरकर, कोई गरीबीके कारण, कोई प्रकृतिके किसी आक्रमणद्वारा बिखर गये होंगे, और तब मेरे पास आया होगा यह मकान। मेरे जन्मसे पूर्व यह मकान किसी औरका था, मेरी मृत्युके पश्चात् न जाने इसका वासी कौन होगा ?

पर यह निश्चय है, यह मेरा नहीं है। मैं जबतक जिंदा हूँ इसमें आश्रय भर लेता हूँ, बस। केवल मेरा इससे इतना ही सरोकार है।

कृषकका खेत उसका सर्वस्व है। वह उसे रखनेके लिये असंख्य विपत्तियाँ मोल लेता है। सम्पूर्ण आयुपर्यन्त उसे अच्छा बनानेमें, उपजकी

वृद्धिमे प्रयत्नशील रहता है; पर वह यह नहीं सोचता कि उसका वास्तवमें कुछ नहीं ! न जाने वह खेत कितने व्यक्तियोके पाससे गुजर चुका है ! भविष्यमे न जाने कितने उसके मालिक बनेंगे !

मेरे हाथमें एक रुपया आ जाता है । मैं उसे अपना कहता हूँ, प्यार करता हूँ । प्यारसे बटुवेमें छिपाकर रखता हूँ । थोड़ी देरके लिये मै भूल जाता हूँ कि यह रुपया आवारा है । एक जगह नहीं टिकता । इसकी गति बडी तीव्र है । एकसे दूसरे, दूसरेसे तीसरे, तीसरेसे चौथे, पॉचवें, पचासों, हजारो हाथोमें वह चलता-फिरता रहता है । किसी एकका नहीं बनता । किसी एकका होकर नहीं रहता । फिर, मैं भी कैसा मूर्ख हूँ जो उसे अपना-अपना कहकर घमंडमें फूल उठता हूँ । मैं क्यों यह ध्रुव सत्य विस्मृत कर बैठता हूँ कि इससे मेरा क्षणिक सम्बन्ध है । न जाने कल यह किसके पास होगा ? इसका भावी कार्य-क्रम, गतिविधि क्या है ?

मेरे पास असंख्य पुस्तकें हैं, घरकी सैकड़ो छोटी बडी वस्तुएँ हैं; गाय और भैंसे है; साइकिल-मोटर है; अच्छे वस्त्र हैं; लेकिन क्या ये वास्तवमे मेरे हैं ? क्या इनसे मेरा सच्चा सम्बन्ध है; क्या ये सदा मेरी होकर रहनेवाली वस्तु हैं ?

मैं फिर भूलता हूँ । क्षुद्र सांसारिक वस्तुओंके लोभमे उन्हे 'अपना' कहनेकी मूर्खता करता हूँ । मैं प्रमाद एवं अज्ञानवश यह समझने लगता हूँ कि ये मेरे व्यक्तित्व, मेरी आत्माके अङ्ग हैं ? यही मेरी बड़ी गलती है । ये विविध वस्तुएँ भला क्योकर मेरी हो सकती हैं । न जाने किस-किसका इनपर कब कब अधिकार रहा होगा । थोड़ी देरके लिये ये मेरे पास एकत्रित हो गयी हैं । फिर न जाने कौन कहाँ बिखर जायगी ।

मैं बाल-बच्चोंका पिता हूँ । मेरी पत्नी बच्चोंसे अपनेको पृथक् नहीं कर पाती । 'हमारे बच्चे बड़े होंगे; हमे न जाने किस-किस प्रकारसे

सहायता प्रदान करेंगे, हमारे दुःख दूर करेंगे।' मैं भी कभी-कभी यही समझनेकी मूर्खता कर बैठता हूँ पर क्या वास्तवमें ये बच्चे हमारे हैं? क्या हमीं इनके सब कुछ हैं? क्या इनका कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व, आशा, अभिलाषा, इच्छाएँ नहीं हैं? नहीं, ये हमारे नहीं हैं। हमारा इनसे क्षणिक सम्बन्ध है। जिस प्रकार पक्षियोंके बच्चे समर्थ हो जानेपर उड़ जाते हैं, लौटकर फिर माँ-बापके पास आकर नहीं रहते; उसी प्रकार ये मानव-परिन्दे भी न जाने कब, कहाँ, किस ओर किस अभिप्रायसे उड़ जानेवाले हैं। फिर मै इन्हें क्योंकर अपना कह सकता हूँ?

मैं अपने शरीरको 'अपना' 'अपना' कहता हूँ। साज-श्रृङ्गारमें यथेष्ट समय व्यय करता हूँ? शीशेमें चेहरा देखकर फूला नहीं समाता। अपने नेत्र, कपोल, नासिका, मुखमुद्राको सर्वश्रेष्ठ समझता हूँ। अपने शरीरके प्रत्येक अवयवपर मुझे गर्व है। पर क्या वास्तवमें यह शरीर मेरा है?

शरीर मेरा नहीं। वह तो हाड़, मांस, रक्त, मज्जा, तन्तु, वीर्य इत्यादिका पुतलामात्र है। क्या मैं हाथ हूँ? क्या मैं उदर, मुख, पाँव, सिर इत्यादि हूँ? क्या मैं रक्त हूँ? मास हूँ? अस्थियोका पिंजर हूँ? क्या मैं श्वास हूँ, वाणी हूँ? क्या हूँ?

वास्तवमें उपर्युक्त वस्तुओंमेंसे मेरा कुछ भी नहीं है। इन सब सांसारिक पदार्थोंसे मेरा सम्बन्ध क्षणिक, अस्थायी और झूठा है। अज्ञान-तिमिरमे मुझे इन वस्तुओंसे अपना साहचर्य प्रतीत होता है। मै तो आत्मा हूँ। इस शरीररूपी पिंजरेमें अल्पकालके लिये आ बँधा हूँ। मैं ईश्वरका दिव्य अंश हूँ। संसारसे निर्लिप्त हूँ। सांसारिक वस्तुओंसे मेरा सम्बन्ध क्षणिक है। यदि मैं अल्प लोभके वश स्वार्थ और तृष्णामे लिप्त होता हूँ, तो यह मेरा अज्ञान है, मूढ़ता है।

सुखी रहनेका सर्वोत्तम साधन

जो व्यक्ति यह समझता है कि मुझे सदा ही इस संसारमें निवास करना है, वह अनेक प्रकारके अनावश्यक प्रपञ्चों, कृत्रिम आवश्यकताओं और व्यर्थके ऋणोंके भारसे आक्रान्त रहता है। स्थायित्वके साथ मनुष्यकी नीची वासनाएँ दूसरेपर छा जाना चाहती हैं। बड़े-बड़े राजा, महाराजा, शासक, अमीर, रईस, पूँजीपति सदा यह समझते रहते हैं कि उन्हें स्थायी-रूपसे संसारमें निवास करना है। वे बड़े-बड़े आलीशान महल, अट्टालिकाएँ, आमोद-प्रमोदकी वस्तुएँ, मनोरंजनके साधन एकत्रित करते हैं; अधिक धन-संग्रह करनेके हेतु वे प्रजापर अनावश्यक बोझ डालते हैं, जमींदार कृषकोंका शोषण करते हैं, व्यापारी ग्राहककी जेब काटनेको प्रस्तुत रहते हैं। वास्तवमें, जगत्‌में सदा-सर्वदा स्थायीरूपसे रहनेकी भावना अनाचार और अत्याचारकी मूल है। जो अपनेको जितना स्थायी समझता है, वह उतना ही अधिक आनन्द, मस्ती, शोषण कर लेना चाहता है। कितने ही व्यक्ति अनावश्यकरूपमें अपना अभाव बढ़ाते जाते हैं; क्योंकि उन्हें अपने उत्तरदायित्वका बोध नहीं होता!

हमें स्मरण रखना चाहिये कि जीवमात्रके लिये मृत्यु एक सहज सत्य हैं। प्रत्येक जन्मके साथ मृत्युका क्रम है। जो जन्मा है उसका मृत्युको प्राप्त होना अवश्यम्भावी है। जन्मके दिनसे ही हम धीरे-धीरे मृत्युकी ओर खिंचते चले जाते हैं। प्रत्येक क्षण हमें मृत्युके समीप लाता है।

और यह मालूम नहीं कि किस दिन मृत्युकी कुटिल काली मूर्ति प्रकट हो जाय। किस क्षण संसारसे चलनेकी तैयारी हो जाय। छोटे-छोटे बच्चोंसे लेकर भरे यौवनमें हँसते-खेलते जवान क्षणभरमें मृत्युके ग्रास हो जाते हैं। तनिक-से कारणसे मृत्यु हो सकती है; दुर्घटनाएँ वृद्धिपर हैं, नयी-नयी बीमारियाँ देखनेमें आ रही हैं। कलकी खैर नहीं, परसोंकी कौन कहे। वास्तवमें मानव-जीवन एक बुलबुलेके समान है, जो क्षणभरमें नष्ट हो सकता है।

सबसे अच्छी मनःस्थिति उस व्यक्तिकी होती है जो मृत्युके लिये अर्थात् संसारसे बिना रंजोगम, बिना मोहचक्र या अनावश्यक क्षोभके जानेको तैयार रहता है। जिसे जितना अधिक माया-मोह संसारके कृत्रिम वस्तुओंपर रहता है, वह उतना ही अधिक दुखी, अतृप्त रहता है। प्रत्येक मोह या लगाव एक जंजीर है, जो आपको संसारसे जकड़े हुए है। यदि आप ससारके पदार्थोंको काममें लेते हुए भी तटस्थ रहें, जब समय आये, उनका परित्याग करनेको प्रस्तुत रहें, तो आप सुखी-संतुष्ट रहेंगे। मोहका लगाव आपको विक्षुब्ध न कर सकेगा।

मेरी रायमें मृत्युके लिये सदैव तैयार रहना अर्थात् जगत्के झूठे लगाव और मोहके बन्धनसे मुक्त रहना, आनन्दित रहनेका सर्वोत्तम साधन है।

जब आप यात्रा करते हैं, तो आपसे कहा जाता है कि कम सामान लेकर यात्रा कीजिये (Travel light)। जिस यात्रीके पास अधिक सामान रहता है, वह अपनी छोटी-बड़ी पोटलियों, संदूक, बिस्तर और

थैलोको सम्हालनेमें सदैव चिन्तित रहता है। उसके पास जितने बंडल होते हैं, उसे उतना ही बन्धन होता है, वह उतना ही चिन्तित, व्यग्र और क्षुब्ध रहता है। कहीं कोई गठरी छूट न जाय ? कहीं कोई व्यक्ति चुरा न ले ? कहीं कोई ताला न टूट जाय ? ऐसी असंख्य छोटी-बड़ी दुश्चिन्ताएँ मनमें अशान्ति बनाये रखती हैं। इसके विपरीत जो कम-से-कम सामान लेकर यात्रा करता है, वह सहज रूपमें अपने सामानकी देख-रेख कर लेता है। उसे अपेक्षाकृत चिन्ता भी कम होती है। कठिन अवसरों-पर वह सरलतासे सम्हाल लेता है और मौका पड़नेपर उसे हाथमे स्वयं उठा लेता है। चूँकि उसके पास भार कम है, उसे यात्रामे अनावश्यक बोझ प्रतीत नहीं होता।

इसी प्रकार जीवनयात्रामें उठाने योग्य थोडा-सा सामान साथ लेकर चलनेवाला यात्री सुखी रहता है। जो अनावश्यक आवश्यकताएँ, व्यर्थका दिखावा, फैशनपरस्ती, वासनाके मोहजाल या ममत्वके बड़े परिवारमें लिप्त रहता है, सांसारिक वस्तुओंके निरन्तर संग्रहसे अपना भार बढ़ा लेता है, वह दुखी और अतृप्त बना रहता है।

स्मरण रखिये—मृत्यु आपके सिरपर खड़ी है। अनावश्यक मोह-बन्धन आखिरी घड़ीमें मानसिक कष्ट प्रदान करनेवाले हैं। अपने ऊपर परिवारका अधिक बोझ मत लीजिये। यदि सम्भव हो, तो अपने परिवार-के एक सदस्यको ऐसा अवश्य रखिये जो आपकी अनुपस्थितिमे घर-परिवारका भार सहज ही सम्हाल ले। और कोई न हो, तो पत्नीमें ही इस भारको वहन करनेकी सामर्थ्य उत्पन्न कीजिये। आपकी स्थिति ऐसी हो कि मौतका बुलावा आते ही आप बिना किसी रुकावट, मोह, उत्तर-दायित्वके तुरंत प्रस्थान कर सकें।

मृत्युके लिये सदैव तैयार रहना ही निर्बाध सुखी रहनेका साधन है।

राम-नाम दवा है

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

(धन्वन्तरि)

परमेश्वरका कोई नाम श्रद्धा और निष्ठापूर्वक पुनः-पुनः उच्चारण करनेसे समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं, यह उक्ति मैंने कई बार सुनी थी, पर विश्वास नहीं किया था, एक घटनाने मुझे इसकी सत्यताका ज्ञान करा दिया।

मेरे एक पचासवर्षीय प्रोफेसर मित्र हैं। नाम लिखनेसे कोई लाभ नहीं है। आमदनी अच्छी होनेके कारण वे मद्यपानकी ओर प्रवृत्त हो

गये और अपव्ययी जीवन व्यतीत करने लगे । सारे दिन सिगरेट न छूटती थी। शराब एवं सिगरेटके आधिक्यसे दस वर्षमे ही स्वास्थ्य जर्जरित हो गया। सूखकर अस्थियोंका ढाँचा मात्र रह गया। पेटमें मामूली दर्द रहने लगा। क्रमशः वह बढ़ा, अस्पतालमें डेढ़-दो वर्षतक चिकित्सा हुई, किंतु रोग असाध्य प्रतीत हुआ। रोगीकी पाचन-शक्ति इतनी निर्बल हो चुकी थी कि कुछ पचता ही न था। घरमें बाल-बच्चे, पत्नी सब विक्षुब्ध थे। करें तो क्या करें? डाक्टरोंने अपनी-सी कर देखी। ऑपरेशनसे भी कुछ लाभ न हुआ।

भाग्यकी महिमा, कुछ महात्मा एक दिन आ निकले। घरके ऊपर आयी हुई भयंकर आपत्तिका वृत्तान्त सुनकर उन्होंने इस लेखके ऊपर दिया हुआ श्लोक पढ़ा, उसकी विस्तृत व्याख्या की और उपदेश दिया। कुछ भभूत घोलकर पिलायी। रोगीको पूर्ण विश्वास दिलाया कि परमेश्वर-का कोई नाम श्रद्धा और निष्ठापूर्वक पुनः-पुनः दवाके रूपमें उच्चारण करने और प्रतिदिन दो घंटे प्रातः दो घंटे सायंकाल भजन-पूजन, प्रार्थना करनेसे बीमारी दूर हो जायगी। और कोई मार्ग न देखकर रोगीने यह प्रयोग प्रारम्भ किया। एक सप्ताहमें ही थोड़ा-सा लाभ दीखा। पेटका दर्द कम हुआ। मामूली भूख लगी। रोगीने प्रण किया कि चाहे कुछ भी हो वे भविष्यमें शराब और सिगरेट स्पर्श न करेंगे। राम-नामकी चिकित्सा छः महीने चलती रही। सबको यह देखकर अतीव आश्चर्य हुआ कि रोगीकी दशा सुधरती चली गयी। अब उन्हें अंदर-ही-अंदर यह प्रतीत होने लगा कि मनुष्यका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य आत्मभावोंपर निर्भर रहता है। मनुष्यके प्रत्येक विचारके पीछे आत्म-निर्णयकी शक्ति निहित रहती है, यदि वे आत्म-ध्वनि (अन्तरात्मा) के अनुकूल चलते रहें। आत्मशक्ति-की पुकार स्वयं हमें सन्मार्गपर ले जाती है। सद्भावना ईश्वरीय शक्ति है। भजन-पूजन-प्रार्थनाका प्रत्यक्ष यह लाभ होता है कि इनसे हमारी आत्म-

शक्तिमे अभिवृद्धि होती है; शुभ परिणाम एक साथ संयुक्त होकर समग्र रूपसे आगे बढते हैं; मस्तिष्कको शान्ति मिलती है।

अभी एक वर्ष हुआ, जब मैं उन रोगी प्रोफेसर महोदयके पास गया तो देखा, वे बिल्कुल स्वस्थ हो गये हैं। खाना भी पूरा खा लेते हैं, मुखपर प्रसन्नता रहती है। उनकी दिनचर्या सुनी तो उनके स्वास्थ्यका रहस्य स्पष्ट हो गया। वे कहने लगे—

'प्रातः शौचादिसे निवृत्तिके उपरान्त स्नानकर पूजामें बैठ जाता हूँ। सामने स्वामीजी (जो अब उनके गुरु हैं) का चित्र रहता है। मनमें श्रीकृष्ण भगवान्की मूर्तिका ध्यान कर 'हरे कृष्ण' का जाप करता हूँ। फिर भगवद्भजन-कीर्तनमें डेढ़ घंटा व्यतीत करता हूँ। मनमें ईश्वरप्रदत्त स्वास्थ्य-भावनाका विचार करता रहता हूँ। दिनमें जल या भोजन जो भी ग्रहण करता हूँ, परमात्माका प्रसाद मानकर लेता हूँ। जब मैं भोजनमें आत्मशक्तिका प्रादुर्भाव कर लेता हूँ, तब वही मुझे हितकर, कल्याणकर और लाभदायक हो जाता है। सायंकाल छःसे आठतक पुनः प्रार्थना, पूजा और सद्विचारका यह क्रम चलता है। दवा कोई नहीं, परमेश्वरका नाम ही मेरी एकमात्र ओषधि है। अब मेरे आत्मभावोंकी शक्ति क्रमशः बढती जा रही है। अभक्ष्य पदार्थोंकी ओरसे रुचि स्वतः हट गयी है। मानसिक द्वन्द्व दूर हो गये हैं, शान्तिका मधुर फल चखता रहता हूँ। मेरा तो यह विचार हो चला है कि किसी भी दुर्बल हृदयको अच्छे कार्यों और शुभ भावनाओंमें लगानेसे मनोबलकी वृद्धि होती है। मनके दुःख-दैन्य नष्ट हो जाते हैं।

राम-नाम दवा क्यों बन जाता है ?

क्या आपने कभी सोचा है कि परमेश्वरका नाम दवा क्योंकर बन जाता है ? क्या कारण है कि जहाँ कोई दवा काम नहीं करती, भगवन्नाम चमत्कार उत्पन्न करता है ?

मनुष्य केवल शरीर ही नहीं, आत्मा है। जहाँ शारीरिक शक्ति और मानसिक शक्ति काम नहीं करती, वहाँ मनुष्यकी आत्मशक्ति अपना चमत्कार दिखाती है। हमारा स्वास्थ्य और सुख केवल उस भोजन या व्यायामपर स्थिर नहीं जो हम लेते हैं। यह हमारे आत्मभावोंपर निर्भर रहता है। जिस कार्यके करनेमें हमारे आत्म-भावोंकी शक्ति प्रबलतासे लगती है, जो शुभ हैं, उन सुकार्योंमें मन लगानेसे हमारे मनोभाव समुन्नत होते हैं और आत्मशक्तिमें अभिवृद्धि होती है। अच्छाई ऐसा चमत्कार-मय भाव है कि उसके मनमे आते ही सद्वृत्तियाँ सुशृङ्खलित होकर नैतिक सामर्थ्यकी वृद्धि करती हैं। सत्कार्यका पुरस्कार मनोबलकी शक्तिवृद्धि है।

जो व्यक्ति अनुचित अनैतिक कार्योंमें प्रवृत्त हो जाते हैं, उनकी नैतिक शक्ति या आत्मबल क्षीण हो जाता है। पापमय होनेके कारण वे अंदर-ही-अंदर इस कलुषके द्वन्द्वका अनुभव किया करते हैं। मस्तिष्कको शान्ति नहीं मिलती। नैतिक दृष्टिसे अपराधी व्यक्ति अपने पापों और बुरे कार्योंसे अपने मस्तिष्कको कमजोर कर डालता है। प्रत्येक पाप-भावना विनाशकारी है। असत्-विचार, पापमय कार्य, बेईमानीका मार्ग, मदिरा-पान, वेश्यागमन आदि कुमार्ग मनुष्यको आत्म-वञ्चना प्रदान करते हैं। पापीका मन उसे चुभता रहता है; उसमे गुप्त भय, चिन्ता, निराशा, ईर्ष्या-जैसे महाभयंकर विकारोका ताण्डव होने लगता है। इस आन्तरिक बीमारीसे बाहरी बीमारी प्रारम्भ हो जाती है। कुविचार बीमारीका कारण है, तो सद्विचार आत्मचिन्तन, पूजा, भजन इत्यादि उसका इलाज।

पूजा, भजन, प्रार्थना, आत्मचिन्तन वे उपाय हैं, जिनसे मानवकी उच्चतम आध्यात्मिक एवं मानसिक शक्तियाँ एक केन्द्रबिन्दुपर एकाग्र होकर आन्तरिक गुप्त सामर्थ्यकी वृद्धि करती हैं। यह आन्तरिक सामर्थ्य मनुष्यको निम्न कोटिकी विचार-धाराओं और कुत्सित भावनाओसे रक्षा करता है। ये वे साधन हैं जिनसे दिव्य शक्तिका चमत्कार मनुष्यमे प्रकट होता है

और उसे ऊँचा उठाता है। अनादि-कालसे मानव इन दिव्य साधनोंद्वारा अपने दिव्य सामर्थ्यको प्रकट करता रहा है।

रोगविनाशकारी भावना

प्रतिदिन प्रातः-सायं १५ मिनिटके लिये शान्तचित्त निर्विकार निश्चिन्त होकर बैठ जाइये और आरोग्य, आनन्द, सुख, शान्ति प्रदान करनेवाली विचार-धारामें रमण कीजिये। बीमारीके विचार हटाकर निम्न भावनापर मनको दृढ़तासे एकाग्र कीजिये—

'मेरे भीतर आरोग्य एवं आनन्दका अजस्र स्रोत प्रवाहित हो रहा है। मेरे अन्तरालमें दिव्यामृतका महासागर है। मैं अनुभव कर रहा हूँ कि सारा सुख, आरोग्य, स्वास्थ्य और शक्ति मेरे भीतर है। मेरे मनमें अनन्त शक्ति, सामर्थ्य है। मैं स्वस्थ हूँ। पूर्ण प्रसन्न हूँ। आनन्दित हूँ। परमात्माका दिव्य प्रकाश मेरे भीतर-बाहर सर्वत्र फैला हुआ है।

मैं विक्षेपरहित हूँ, द्वन्द्वसे मुक्त हूँ, आनन्दमय हूँ। स्वर्गसुख मेरे भीतर है। मेरा हृदय परमात्माका गुप्त प्रदेश है। जहाँ परमात्माका निवास है, वहाँ रोग-शोक क्योंकर ठहर सकते हैं? मैं दैवी ओजके मण्डलमें प्रविष्ट हो गया हूँ। यह परमात्माका गुप्त प्रदेश मेरे आरोग्य और स्वास्थ्य-का प्रदेश है।

मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। तेजसे परिपूर्ण हूँ। शक्तिका पुञ्ज हूँ। परम सामर्थ्यवान् हूँ। मेरे अङ्ग-अङ्गमें शान्तिका निवास है। मैं मनकी चञ्चलता, बीमारीकी कल्पनासे सर्वथा मुक्त हूँ।

स्मरण रखिये—स्वास्थ्य, सुख, आनन्द, शान्ति सब आपके अन्तःकरणमें ईश्वरीय वरदानके रूपमें विद्यमान हैं। अपने अन्तःकरणकी ध्वनि सुनकर निःशङ्क जीवन व्यतीत कीजिये। अपने अंदर जो कल्पित रोगके विचार हैं, उन्हें निकाल दीजिये। अपने प्रत्येक विचार, भाव,

शब्द और कार्यको ईश्वरीय शक्तिसे परिपूर्ण रखिये। आरोग्य लाभ करनेका इससे उत्तम दूसरा मार्ग नहीं है।

स्वास्थ्यको दृष्टिमें रखकर जब आप आरोग्यविषयक साधना एवं प्रार्थना करते हैं, तब परमेश्वरकी उस दिव्य शक्तिसे अपना सम्बन्ध जोडते हैं, जो सर्वथा विकारशून्य, अकलुष और कल्याणकारिणी है। स्वास्थ्यकारी प्रार्थनाका सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि वह मनुष्यके मनको जहाँ एक ओर पवित्र और विशुद्ध बनाती है, वहाँ दूसरी ओर सबल और दृढ़ कर देती है।

ईश्वर-चिन्तन हमारी समस्त भव-बाधा, चिन्ता एवं अनिष्टोंको दूर करनेवाली महौषधि है। आन्तरिक प्रफुल्लताके लिये सद्विचारोंका प्रवाह इसी केन्द्रविन्दुसे प्राप्त हो सकता है। योगी, महात्मा तथा समुन्नत आत्माएँ आरोग्यके आदि-स्रोत परमेश्वरसे ही आनन्द, आरोग्य एवं प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। सच्चा बल परमेश्वरका बल है।

एक ब्रह्मवादीने सत्य लिखा है—हे दुखी आत्मा! यदि तू संसारसे सब प्रकारसे निराश हो चुका है, सब ओरसे क्लेशोंसे घिरा हुआ है और तुझे संसारमें विश्रामका कहीं स्थान नहीं मिल रहा है, तो उठ, जाग्रत् हो और दृढ़ होकर ईश्वरीय मार्गपर आरुढ़ हो। प्रातःकाल सूर्योदयके पूर्व जाग्रत् होकर परम पिता परमात्मा—तेरे हृदयस्थ आत्माका नियमितरूपसे नियत समयपर एकान्तमे अति आनन्ददायक सर्वोपरि कर्तव्य समझकर स्तुति, प्रार्थना-उपासना और ध्यान कर। अपनी चिन्ताओं, क्लेशों, दुःखों और अपने-आपको सर्वथा भूल जा। ध्यानावस्थित होकर परमात्मामे लीन हो जा। हृदय-मन्दिरमें प्रवेश कर परमपिता परमात्मासे साक्षात्कार कर। यह प्रवाह तेरे रोम-रोमको पवित्रता और शान्तिसे भर देगा। जीवन, बल, बुद्धि, सुख, आनन्द प्रदान करेगा।

आप कितने भाग्यशाली हैं

आप चाहे जैसी स्थितिमें क्यों न हों, आपको ऐसी अनेक वस्तुएँ या गुण अपने अंदर मिल जायँगे, जो दूसरोंके पास नहीं हैं। आपकी ये चीजें आपको दूसरेकी अपेक्षा उन्नत, भाग्यशाली और उच्च बनाती हैं। एक उदाहरण लीजिये—

एक बार हैराल्ड एबोट नामक एक व्यक्तिकी अपने सम्पूर्ण जीवनकी कमाई नष्ट हो गयी; ऋण चढ़ गया, जिसे साफ करनेमें उन्हे सात वर्षोंकी आवश्यकता थी। वे नयी दूकान खोलनेके लिये और रुपया कर्ज लेने जा रहे थे। मन आर्थिक चिन्ताओंसे भरा हुआ था। किस प्रकार ऋण उतरे? गृहस्थीका कार्य कैसे चले? सामाजिक प्रतिष्ठा कैसे कायम रहे? वे एक पराजित व्यक्तिके समान दुखी हुए भारी मनसे सड़कपर चले जा रहे थे कि उन्हे सड़कके किनारे बैठा हुआ एक व्यक्ति

मिला, जिसके टाँगें नहीं थीं। कट गयी थीं। वह हाथोंके सहारे चलता था। उसने हँसते हुए हैराल्ड साहबका स्वागत किया। उसने हृदयका उत्साह और प्रसन्नता उँड़ेलते हुए कहा—'प्रणाम! क्या सुहावना प्रभात है। कहिये, अच्छे तो हैं?' इस व्यक्तिके प्रसन्न जीवनने, भीषण कठिनाई तथा अङ्ग-भङ्गमें भी उल्लास और हर्षसे परिपूर्ण जीवनने उनका जीवन बदल दिया। उन्हें अपनी चिन्तापर आत्मग्लानि प्रतीत हुई। उन्हे प्रतीत हुआ कि उनकी टाँगें परमेश्वरका कितना बड़ा वरदान थीं। उन्हें अपनी निराशा और चिन्तापर हार्दिक क्षोभ हुआ। उन्होने सोचा कि जब वह कटी हुई टाँगोंवाला गरीब व्यक्ति प्रसन्न, उल्लसित हो सकता है और जीवनका रस लूट सकता है, तो वे तो उससे भी अधिक अंशोंमें मजा ले सकते हैं। इस भावने उनकी चिन्ताको उल्लासमें बदल दिया और वे उन सम्पदाओंको देखने लगे, जो अब भी उनके पास परमेश्वरकी देनके रूपमें सुरक्षित थीं।

आप स्वयं देखिये—क्या आपका स्वास्थ्य वह चीज नहीं है कि आप उसके ऊपर गर्व कर सकें। आपका घर, खेत, वस्त्र इत्यादि यदि कीमती नहीं हैं, तो न सही, क्या परवा है? आपकी आय यदि थोड़ी है तो कोई हर्ज नहीं। उन करोड़ों गरीबोंको देखिये जो रोज मजदूरीसे पेट पालते हैं। रुपया जोड़कर क्या कीजियेगा? आगे आपके बाल-बच्चे आपकी सहायता करेंगे। फिर क्यों चिन्ता करते हैं?

हमारे जीवनमें नब्बे प्रतिशत बातें ठीक हमारे स्वभावके, हमारे पक्षके, हमारी सुख-सुविधा-प्रसन्नता-लाभके लिये होती हैं। केवल दस प्रतिशत ऐसी होती हैं, जिनके विषयमे हमें कुछ सोचनेकी आवश्यकता है, चिन्ताकी नहीं। हमें प्रसन्न होनेके लिये इस बातकी जरूरत है कि हम अपने पक्षकी इन नब्बे प्रतिशत भाग्यशाली चीजोंको देखें और उनपर चित्तको एकाग्र करें और दस प्रतिशत विपक्षकी वस्तुओंको त्याग दें। उनके बारेमें न सोचें।

अपने अभावका, अपनी कमजोरियोंका, अपने पास जो-जो वस्तुएँ नहीं हैं उनका चिन्तन करना अपनी उत्पादक और सृजनात्मक शक्तियोंका क्षय करना है।

बिगड़ी बात बनायी जाय

जो-जो हानियाँ, दुःख, तकलीफे आप जीवनमें उठा चुके हैं, उन्हें लेकर झींकने, कलपने या आँसू बहानेसे कोई लाभ नहीं है। हानिपर दुःख और निराशा तो हरेक व्यक्ति प्रकट कर सकता है। रोना, चीखना और कायरता दिखाना तो मामूली-सी बात है। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हानिसे अधिकतम लाभ उठाया जाय, बिगड़ी बातको बनाया जाय, टूटेको दुरुस्त किया जाय, रूठेको मनाया जाय और अणु-अणु एकत्रित कर विशृङ्खलित चीजको सम्पूर्ण बनाया जाय। बिगड़ीको बनानेके लिये बुद्धि और चातुर्यकी आवश्यकता है। हानिपर रोनेके लिये आलस्य, कायरता और मूर्खताकी जरूरत है। फिर क्यों मूर्ख बनें? क्यों न अपनी चिन्ताके कारणको दूर कर उसे आशा, उत्साह और प्रेरणामें परिवर्तित कर ले।

सूर और मिल्टन अन्धे हो गये थे, किंतु उन्होंने अपने अन्धेपनका सदुपयोग किया और अन्तश्चक्षु खोल लिये। बड़े भारी कवि बने। भीष्म और ईसामें वंशकी कमी थी; अष्टावक्र, चाणक्य और सुकरातमें शारीरिक सौन्दर्यकी कमी थी; नेपोलियन और हिटलरके धन और पारिवारिक प्रतिष्ठाकी कमी थी; ध्रुव, बुद्धको सम्बन्धियोंके प्रेमकी कमी थी, लेकिन ये महापुरुष इन कमजोरियों और सामाजिक त्रुटियोंके बावजूद कभी चिन्तित नहीं हुए। इन्हें कितनी कठिनाइयाँ और प्रतिद्वन्द्व मिले, कितने कष्ट मिले, लेकिन अपनी दृढ़ता, आत्मशक्ति एवं सतत उद्योगके द्वारा इन्होंने चिन्ता और नैराश्य-भावनाको समीप न आने दिया। ये कष्टदायक परिस्थितियोंमें भी महान् बने।

फिर आप क्यों अपनी मामूली-सी बातोके लिये चिन्तित हैं ? क्यों आप तिलका ताड़ बनाते हैं ? ऊपर लिखे व्यक्तियोंके मुकाबलेमें आपकी चिन्ताका कारण कुछ भी तो नहीं है। व्यर्थकी चिन्ता त्याग दीजिये।

दूसरोंको प्रसन्न करनेका उद्योग करें

चिन्तासे मुक्तिका एक उपाय यह है कि आप अपने-आपको दूसरोंकी प्रसन्नता, सेवा, सुख पहुँचानेमें लगाकर अपने दुःख-कष्टोको विस्मृत कर दे। आप अपने मित्रोंकी संख्या निरन्तर बढ़ायें और उनमें, उनके हास्य-रुदन और जीवनके सब प्रसङ्गोंमें तन्मय हो जायँ।

सेवाका मार्ग ढूँढ़ निकालें। संसारमें पीड़ित, रोगी, निरालम्बोंकी कमी नहीं है, जो आपकी सहायताके लिये खड़े हैं। उन्हे प्रोत्साहन देनेवाले पत्र लिखिये, मुसकराकर बातें कीजिये, उनके काममे दिलचस्पी दिखाइये। अपनी रुचि तथा दिलचस्पीको दूसरोंमें जोड़ लेनेसे मनुष्य अपनी चिन्ताएँ भूल जाता है। आप अपने कुटुम्बके बच्चोंकी शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरञ्जनमें दिलचस्पी ले सकते हैं, अपनी पत्नीके आत्मविकास, शिक्षा, कारीगरी, कढ़ाई-बुनाई या भोजनके प्रति प्रोत्साहन देकर उन्हे आगे बढ़ा सकते हैं। मनुष्यको इस पृथ्वीपर कुटुम्बसे जो सहानुभूति, समवेदना, मधुरता और प्रेमका प्रतिदान प्राप्त हो सकता है, वह चिन्ताके बोझको हलका कर देता है। अतः प्रतिदिन आप एक ऐसा भला कार्य किया करें, जिससे किसी दूसरे व्यक्तिके मुखपर प्रसन्नता आये और उसे आन्तरिक सुख उत्पन्न हो। दूसरोंमें दिलचस्पी लेकर अपनी चिन्ता दूर करें।
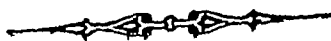
मनकी शान्ति

जिसकी आज सबसे अधिक आवश्यकता है

संसारमे अनेक प्रकारके धन हैं, नाना प्रकारकी शक्तियाँ तथा चेतनाएँ हैं, किंतु सबसे बड़ी विभूति है—मनकी शान्ति। जो भीतरसे शान्ति-जैसी अमृतदायिनी शक्तिका रसास्वादन करता है और भौतिक जगत्‌में व्याप्त क्षण-क्षणमे परिवर्तित होनेवाले कोलाहलसे विचलित नहीं होता, वही मानव स्थितप्रज्ञ है। मनकी शान्ति मिल जानेसे क्रोध, बेचैनी, चिन्ता, उद्वेगके विषैले तन्तु उत्पन्न नहीं होते। इसको पा लेनेसे घबराहट, उत्तेजना और व्यर्थकी शीघ्रता उत्पन्न नहीं होती; अपचन, मन्दाग्नि, सिरदर्द आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

आन्तरिक शान्तिका तात्पर्य यह है कि आपकी शरीररूपी मशीनको अपना कार्य स्वाभाविक रूपमें करनेका अवसर प्राप्त हो रहा है, उसमें कोई अप्राकृतिक या अनुचित दबाव या खिंचाव नहीं है। कोई भी विकार—भय, चिन्ता, वासना, उत्तेजना, घृणा, ईर्ष्या—जब मनमे जटिलतासे प्रविष्ट हो जाता है, तब वही स्थिति होती है, जो मशीनमें मैल, कंकड़, पत्थर या लोहेका कोई टुकड़ा यकायक अटक जानेसे हो जाती है। जैसे मशीनका सुचारु-रूपमे कार्य करना अवरुद्ध हो जाता है, वैसे ही किसी भी विकारके मनमें प्रविष्ट होते ही एक अजीब थरथराहट, कम्पन, द्रुतगति, उसकी स्वाभाविक गतिको अस्त-व्यस्त और पङ्गु कर देती है। घबराहटसे मनकी शान्ति भङ्ग हो जाती है तथा मनुष्यका विवेक भयके आतङ्कसे दब जाता है। चिन्ताका भार मनुष्यको निराशासे भर देता है। क्रोधकी उत्तेजनामें वह आग-बबूला होकर कर्तव्य, मान-मर्यादा विस्मृत कर बैठता है। कामोत्तेजनाकी मलिनता सर्वत्र छा जाती है। इस अस्थिर मनःस्थितिपर काबू पाना मनःस्थिरताका द्वार खोलना है। प्रायः देखा जाता है मनकी अस्थिर अवस्थामें हम ऐसे गर्हित, निन्द्य, अशोभनीय कार्य कर बैठते हैं, जिनपर हमें बहुत पछताना

पड़ता है। जितनी देर मनका विक्षोभ हमारे ऊपर सवार रहता है, उतनी देरतक हम क्या-से-क्या हो जाते हैं! मनोवैज्ञानिकोंका कथन है कि मनुष्यके अतल (Un-conscious) क्षेत्रमे मानवके पुराने संस्कार दबे पड़े हैं। उत्तेजनाकी ठेस पाते ही ये अभद्र प्रवृत्तियाँ अनायास ही जाग्रत् हो उठती हैं, और मनुष्यकी विवेक-बुद्धिपर हावी होकर अपना गंदा मायाजाल बुनना प्रारम्भ कर देती हैं। यदि हम मनपर अपना नियन्त्रण त्याग दें तो यह स्पष्ट है कि यह पापी हमें कहीं-से-कहीं खींचकर ले जा सकता है। कहीं हम अपवित्रता या वासना, ईर्ष्या, स्वार्थकी बातें सोचने लगें तो सम्भव है, यह हमे शैतान ही बना डाले और हम मान-मर्यादा-कर्तव्यज्ञान-से शून्य हो जायँ। हमें इस बातका सदैव ध्यान रखना चाहिये कि कहीं हमारा शैतान न जाग्रत् हो जाय, हमारी दुष्प्रवृत्तियाँ न भड़क उठें, हम कोरी भावनामें न बह जायँ।

हमारे मनःप्रदेशमें कँटीदार भयंकर वन हैं तो सुमधुर सुगन्धित पुष्पोंसे परिपूर्ण उद्यान भी हैं। शैतानी प्रवृत्तिको जाग्रत् कर लेनेसे मनमें भयंकर वन निर्मित होते हैं और दैवी प्रवृत्तिको जाग्रत् कर लेनेसे हरेभरे उद्यानोंका निर्माण होता है, सुख-शान्तिका शीतल मन्द समीर बहता है, प्रेमके पुष्प हँसते हैं और संतोषकी कोकिल कूजती है। जिस चतुर मालीने अपने मनरूपी उद्यानमें सहानुभूति, दया, करुणा, प्रेमके वृक्ष लगाये हैं, वह उसीकी प्रतिछाया बाह्य-जगत्मे सर्वत्र देखता है। उसे संसार शान्त प्रतीत होता है। उसे सब ओरसे सहानुभूति, दया और प्रेम ही मिलते हैं।

आपको संसारमें इतना शोर-गुल, कोलाहल, मार-काट, दुःख-दैन्य, पीड़ा, अविश्वास क्यों दीखता है? आप संसारके कुटिल संघर्षकी बुराई करते क्यों नहीं थकते?

कारण, स्वयं आपके मानस-जगत्में अव्यवस्था है। अहंकार और संघर्ष भरा है। आपकी कुटिल शक्तियाँ जाग्रत् हैं, जो आपके दृष्टिकोणको धूमिल बनाये हुए हैं। शैतानी दुर्गुणोंके कारण आप विषाद, चिन्ता,

भय, द्वेष, ईर्ष्याके अपने बुरे विचारोंको दूसरोंपर थोप देते हैं। दोष स्वयं आपमें, आपके आन्तरिक प्रदेशमें है, वस्तु-जगत्में नहीं।

आपको यह मान लेना चाहिये कि शैतानी दुष्प्रवृत्तियोंसे आपका कोई सरोकार नहीं है। आप सुख-शान्तिस्वरूप परमात्माके अंश हैं और अपने हृदयमें स्थित परमात्माके दैवी गुण ही अन्तःकरणसे बिखेर सकते हैं। आप सुखस्वरूप आत्मा हैं। परमात्माके अनन्त उपकारोंकी छाप आपके व्यक्तित्वपर है। प्रसन्नता, आनन्द और हितके विचार ही मन-मन्दिरमें रख सकते हैं। हितैषी भावनाएँ मनमें शान्ति उत्पन्न करती हैं, विरोधी भावनाएँ अशान्तिका प्रमुख कारण हैं।

'मैं सबके प्रति प्रेमकी विचार-लहरें छोड़ता हूँ। मेरा किसीके प्रति शत्रुभाव नहीं है। सब मेरे हितैषी हैं। सब मुझे आनन्द और उत्साहकी दैवी सम्पदाएँ देते हैं। मेरे अंदर शान्ति है। मेरे बाहर शान्तिका प्रकाश है। मैं स्वयं शान्त रहता हूँ तथा दूसरोंको शान्त रखता हूँ। मेरे चारों ओरका वातावरण प्रशान्त है।' इस प्रकारके विचार मनमे दृढ़तासे जमानेसे मनुष्य धीरे-धीरे शान्त प्रकृति प्राप्त कर लेता है।

हमें चाहिये कि हम शान्तिसे बातें करना सीखें। शान्तिपूर्वक सब कार्य सम्पन्न करें, जिससे हम अपने मन तथा शरीरसे सर्वाधिक कार्य ले सकें। मन शान्त रहेगा तो शरीर स्वस्थ रहेगा। शान्त रहो! शान्त!!

शरीरपर विचार तथा दृढ़ संकल्पका तीव्र प्रभाव होता है। यदि हम शान्त रहनेका संकल्प मनमें धारण कर लें तो यह हमारी प्रकृतिका एक अविभाज्य अङ्ग बन सकता है।

जो-जो बातें, आपको उलझन या उत्तेजनामें फँसाती हैं, उन्हें ठंडे दिमागसे करनेकी आदत डालिये। ठंडा जल पीकर शान्त हो जाइये, कुछ विश्राम कर लीजिये, प्रसङ्ग बदल दीजिये या किसी रुचिकर कार्यमें निरत हो जाइये; उत्तेजनाका उफान शान्त हो जायगा। जैसे ही चित्त शान्त हो, वैसे ही अपनी पहली समस्यापर विचार करने लगिये।

पत्नीसे नाराजगी, बच्चोंके झगड़े, नौकरोंकी त्रुटियाँ या मातहतोंकी अप्रियकर बातोंपर चिन्तित रहनेके स्थानपर शान्तिसे उन्हे सुलझानेसे काम चल सकता है। जबतक शान्ति मनमें न आ जाय और विवेक पूरी तरह जाग्रत् न हो जाय, किसी प्रमुख समस्याका अन्तिम निर्णय मत कीजिये।

मातहतोंकी प्रताड़नापर, ग्राहककी आलोचनापर या गुरुजनोंद्वारा दी गयी सजापर मनकी शान्तिको कदापि हाथसे न जाने दीजिये। घरमें आये हुए मेहमानोंके द्वारा दी गयी तकलीफोंपर उत्तजित हो यकायक अशान्त न हो जाइये। धैर्यसे उसे सहन कीजिये। उत्तेजनाकी आँधीमे सम्भव है कुछ ऐसी अप्रिय बात आप उच्चारण कर डालें, जो छूटे हुए तीरकी भाँति कभी वापस न आ सके और आपको आगे चलकर पछताना पड़े। चित्तकी शान्ति हाथसे न जाने दीजिये।

मानस शान्तिके अमोघ साधन

मनोविज्ञानका यह नियम है कि हम अपने कार्योंद्वारा जैसा अभिनय करते हैं, वैसा ही भाव अंदर मनमें अनुभव भी करते हैं। बाह्य प्रसन्नताका अभिनय हमें मानसिक जगत्में आनन्द देता है। कभी-कभी हम दूसरोंको दिखानेके लिये आनन्द, उल्लास, प्रसन्नताकी मुख-मुद्रा बनाते हैं, मुसकराते हैं या खिलखिलाकर हँस उठते हैं, तो हम अंदर मनमे भी उस आनन्दकी अनुभूति प्राप्त करते हैं। जैसा बाह्य स्वरूप, वैसी मनःस्थितिका निर्माण—यही सिद्धान्त है।

फिर आप क्यों निराशा, दुःख, कष्टकी मुखमुद्रा बनाते हैं? क्यो बाहरसे मुहर्रमी लिबासमें रहते हैं? प्रसन्नताका बाना पहनिये। प्रसन्नताके कार्य कीजिये। इष्ट-मित्रोंके साथ रहकर दो क्षण हँसी-खुशीसे व्यतीत कीजिये। जब चार मित्र हँसेंगे, बोलेंगे, उनके साथ आप भी प्रसन्नताका अनुभव करेंगे। आज आप प्रसन्न रहें; कल देखा जायगा। सम्भव है, यह आजकी प्रसन्नताका अभिनय आपके स्वभावका एक अङ्ग बन जाय।

कम-से-कम आज यह करें

आपको चाहिये कि आप यह प्रतिज्ञा करें—'मैं स्वयं आनन्दित होऊँगा और अपने सम्पर्कमें आनेवाले दूसरे व्यक्तियोंको आनन्दित करूँगा। कम-से-कम आजके लिये मैं जैसी परिस्थितियोंमें हूँ, उन्हींमें बिना चिन्ता-के आनन्द और संतोषके साधन एकत्रित करूँगा। मैं अपने परिवार, पेशा या व्यापार और भाग्यसे—जैसा मुझको मिले हैं, उन्हींको सुन्दर बनाने और उन्हींमे प्रसन्न रहनेका प्रयत्न करूँगा।

कम-से-कम आज मैं अपने शरीरकी उचित देख-रेख करूँगा। उसमें कहाँ टूट-फूट, कमजोरी या शैथिल्य आ रहा है, उसे दूर करनेका प्रयत्न करूँगा; पौष्टिक तत्त्व दूँगा, विश्राम और मनोरञ्जन दूँगा, शरीरकी ओरसे लापरवाही नहीं करूँगा। शरीररूपी इस बहुमूल्य मशीनका उचित संचालन और उन्नतिके साधन काममें लाऊँगा।

कम-से कम आज मैं अपने मनको बलवान् बनानेकी चेष्टा करूँगा। मैं आज कोई महत्त्वपूर्ण उपयोगी कार्य करूँगा। नीरस और शुष्क विषयके अध्ययनसे मनको हटाऊँगा। मैं दृढ़तासे अपने मनको गम्भीर उच्च विषयक तत्त्वोंमें संलग्न रक्खूँगा।

मैं आज अपनी आत्माको मजबूत बनानेका काम शुरू करूँगा। मैं किसीके प्रति आज कोई अच्छा सहायताका कार्य करूँगा, मैं प्रसन्न रहूँगा और दूसरोंको आकर्षित करूँगा। मै आज इतना सुन्दर बनने-का प्रयत्न करूँगा, जितना कि मैं सम्भवतः हो सकता हूँ! मैं दूसरोंकी चुगली न करूँगा, मिथ्या दोषदर्शनमें न पड़ूँगा। गुणोंकी उदारतापूर्वक प्रशंसा करूँगा; दूसरोंके सुधारकी व्यर्थ चिन्ता नहीं करूँगा। मैं आज दिन भर एक आदर्शरूपमें जीवनको व्यतीत करूँगा, सारे जीवनके जंजाल या समस्याओंमें एकदम न फँस जाऊँगा। मैं दो शत्रुओंको मार भगाऊँगा—जल्दबाजीको तथा अनिश्चितताको, इनका वास मेरे चरित्रमें न रहेगा।'

शत्रुभावसे मुक्त रहिये

जब हम अपने शत्रुओसे घृणा करते हैं, तब हम उन्हे अपने मानसिक जगत्पर हावी कर लेते हैं। आन्तरिक मनमे उनका डर हमे सदा सर्वदा बना ही रहता है। वे हमारी निद्रा, हमारी भूख, हमारे रक्त-संचालन, हमारे स्वास्थ्य और हमारी प्रसन्नताको नष्ट कर धूलमे मिला देते हैं। यदि आपके शत्रुओको मालूम हो जाय कि आप उनके बारेमें यह सोचा करते हैं या चिन्तित रहते हैं तो उन्हें इतनी प्रसन्नता हो कि वे खुशीसे नाच उठें। हमारी घृणा—केवल उन्हींको हानि नहीं पहुँचाती, वरं यह घृणा-पिशाचिनी हमारे रात-दिनको भी नरक बना देती है।

यदि स्वार्थी व्यक्ति आपसे अनुचित लाभ उठाना चाहे तो उन्हें अपनी मित्र-मण्डलीकी सूचीसे पृथक् कर दीजिये, किंतु उनसे लड़ाई-झगड़ा कर कटुता उत्पन्न न कीजिये; अन्यथा यह कटुता आपकी मानस-शान्ति भङ्ग कर देगी। जब आप उनके प्रति कटुताकी भावनाएँ मनमें रखते हैं तो आप अपने-आपको हानि पहुँचाते हैं। जिन व्यक्तियोंको 'हाई ब्लड-प्रेशर' होता है, उसका कारण प्रायः उनके मनमे अपने शत्रुओंके प्रति क्रोध और घृणासे उत्पन्न अनुचित तनाव है। जब क्रोध और ईर्ष्या पुराने मानसिक रोग हो जाते हैं तब हृदयकी अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं।

यही कारण है कि ईसा महान्ने कहा है—'अपने शत्रुओंसे प्रेम करो।' ईसा तत्कालीन नीतिकी ही बात नहीं कर रहे थे, वरं वे मानसिक रोगोंकी दवा बता रहे थे। जब उन्होंने कहा—'सौमें निन्यानबे बार क्षमा कीजिये' तो वे हमे हृदयरोगों, पेटके घावों तथा पाचनसम्बन्धी अनेक रोगोसे बचनेका मार्ग बता रहे थे। जो व्यक्ति निरन्तर क्रोध या घृणामें फँसा रहता है, उसके मुखपर स्थायी झुर्रियाँ और वृद्धावस्थाके चिह्न प्रकट हो जाते हैं। असमयमें ही उसका यौवन विलुप्त हो जाता है।

यदि हम अपने शत्रुओंसे प्रेम नहीं कर सकते, तो कम-से-कम हमें

अपने-आपसे तो प्रेम करना चाहिये । हम अपने आपसे इतना प्रेम करे कि हमसे शत्रुता माननेवाले भी हमारी मानस-शान्ति भङ्ग न कर सकें । अतः आइये, हम उन्हे भूल जायँ । उनकी हमारे प्रति की गयी अशिष्टताओंको क्षमा कर दें ।

इस चिन्तासे मुक्ति पानेका एक उत्तम उपाय यह है कि आप उन व्यक्तियोंके विषयमें सोचें ही नहीं, जिन्हे आप नापसंद करते हैं । सबसे दोस्ती, सबसे प्रेम रखनेका दृष्टिकोण मैत्री-भावनाका अभ्यास हमारे मनके क्रोध, स्वार्थ, ईर्ष्या, अभिमान, राग, द्वेष, छल-प्रपञ्चको नष्ट कर मानस-शान्ति प्रदान करता है । मैत्रीभावना एक अमोघ अमृत है । मैत्रीभावनाको हृदयके अन्तःस्थलमें बसा लेनेसे ईर्ष्या, प्रतिशोध, दुर्भावना, उद्वेग दूर हो जाते हैं । सबसे मैत्री रखनेवाला संयमी सबका प्रिय होता है । रात्रिमे वह मधुर निद्राका आनन्द प्राप्त करता है । धीरे-धीरे उसके शत्रु भी उससे शत्रुता भूलकर प्रेम करने लगते हैं । मैत्री-भावना मनुष्यको सबके प्रति—चाहे मित्र हो या शत्रु, पापी हो या पुण्यात्मा—सौहार्द, प्रेम, बन्धुत्व, सहानुभूतिका पवित्र भाव रखना सिखाती है । मैत्रीभावके अभ्याससे हम इन्हीं सद्गुणोंकी फुलवारी अपने मनरूपी उद्यानमें लगाते हैं ।

महाभारत शान्तिपर्वमे क्षमा, तितिक्षा, इन्द्रियदमन और सहिष्णुताके जो महत्त्वपूर्ण उपदेश भरे पड़े हैं, उनमे गहरी मनोवैज्ञानिक सत्यता है—

किसीके मर्ममें चोट न पहुँचावे, कठोर वचन न बोले । नीच मनुष्य-को श्रेष्ठ वस्तु समझानेका प्रयत्न न करे । जिसे सुनकर दूसरोको उद्वेग हो, ऐसी नरकादि पापलोकमें डालनेवाली अमङ्गलमयी बात न कहे । कटुवचनरूपी बाण जब मुँहसे निकल पडते हैं, तब उनकी चोट खाकर मनुष्य दिन रात शोकमें डूबा रहता है । अतएव विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह किसीपर भी वाग्बाणका प्रयोग न करे । दूसरा कोई भी यदि विद्वान्को कटुवचनरूपी बाणोसे खूब घायल करे, तो भी शान्त रहनेमे

ही श्रेष्ठता है। दूसरोंके क्रोध करनेपर भी जो बदलेमें प्रसन्न रहता है, वह उसके सब पुण्योंको ग्रहण कर लेता है।

जो जगत्में निन्दा करनेवाले और आवेशमें डालनेवाले प्रज्वलित क्रोधका दमन कर लेता है, जिसका चित्त दोषरहित और प्रमुदित रहता है तथा जो दूसरोंके दोष नहीं देखता; वह पुरुष अपनेसे द्वेष रखनेवाले व्यक्तिके सब पुण्य छीन लेता है। आर्यपुरुष क्षमा, सत्य, दया, सरलताको श्रेष्ठ बतलाते हैं।

वाणीका वेग, मनका वेग, क्रोधका वेग, तृष्णाका वेग, उदरका वेग और उपस्थका वेग—इन प्रचण्ड वेगोंको जो सह लेता है, उसीको मुनि कहा जाता है।

क्रोधीसे क्रोध न करनेवाला, असहनशीलसे सहनशील, अमानवसे मानव और अज्ञानीसे ज्ञानी श्रेष्ठ है। जो दूसरेकी गाली सुनकर भी बदलेमे उसे गाली नहीं देता, उस सहनशीलका दबा हुआ दुःख ही गाली देनेवालेको भस्म कर सकता है और उसके पुण्यको भी ले लेता है।

मानव-शान्तिका मजा लेनेका एक उपाय यह है कि हम अपने शत्रुओंके विषयमें न सोचें, न विचारें, प्रत्युत उन्हे मनःपटलसे निकाल दें। जब हम उनके प्रति घृणा और प्रतिशोधकी भावनाओंमें डूबे रहते हैं, इससे उनकी अपेक्षा हमारी घृणा और प्रतिशोधका विष हमे अधिक हानि पहुँचा देता है।

कृतज्ञताकी आशा न रक्खें

अनेक व्यक्ति इस भावनासे परेशान और चिन्तित रहते हैं कि दूसरोंने उनकी सेवा, कृपा, भलमनसाहत या अच्छाईका कोई पुरस्कार नहीं दिया। कृतज्ञताके दो मीठे शब्द भी न कहे। दूसरोंकी उनके प्रति कठोरता, शुष्कता, सख्ती उन्हे हमेशा चिन्तित रखती है। वे प्रायः कहा करते हैं—

दुनिया भी कैसी स्वार्थी और खुदगर्ज है। हमने अमुकके साथ

कितनी भलाई की। रुपये-पैसे, शरीर, सद्भावनाओंसे सहायता की, पर हमारी जरूरतके समय उसने आँखें फेर लीं। हमारी सज्जनताका यह शुष्क स्वागत !

कृतज्ञता प्राप्त करनेके लिये, पुरस्कारकी प्राप्तिके लिये की गयी सेवाका मूल्य अत्यन्त अल्प होता है। कृतज्ञताकी आशा रखकर सेवा करनेवाला सेवाको भूलकर कृतज्ञताकी खोजमें लग जाता है और इस प्रकार सेवासे तो वञ्चित होता ही है, कृतज्ञता न मिलनेपर दुःख और द्वेषको भी बुला लेता है। दूसरेकी सेवासे कृतज्ञ होना चाहिये। पर सेवा करके किसीसे कृतज्ञताकी आशा नहीं रखनी चाहिये।

आप किसीसे नमस्ते या सलामकी भी आशा मत रखिये। यदि किसीके साथ आपने भलाई की भी है तो उसे भूल जानेमें ही श्रेष्ठता है, क्योंकि उसका प्रतिदान यदि उसी अनुपातमे आपको प्राप्त न हुआ, तो आप वृथा ही मनमें दुखी रहेंगे। मुझे किसीकी कृपा, प्रोत्साहन, कृतज्ञताकी आवश्यकता नहीं। मेरी आत्मप्रेरणा ही सब कुछ है—यही आत्मविश्वास सर्वत्र विजयी होता है और सुख प्रदान करता है।

डेल कार्नेगीका विचार है, यदि हम आनन्द लूटना चाहते हैं तो हम कृतज्ञता-अकृतज्ञताको बिल्कुल भुला दें और जिसे देना हो, उसे कुछ भी इस भावसे दें कि वह हमें इसका कोई प्रतिदान नहीं देगा। हम दूसरोंसे बदलेमें कुछ भी पानेकी आशा न रक्खे—यही उत्तम है।'

अतः स्मरण रखिये, प्रसन्न रहनेका मार्ग यह है कि आप दूसरोंकी कृतज्ञता, उत्साह, प्रेरणा, प्रोत्साहन या किसी प्रकारकी भी सहायताकी भावना मनसे निकाल डालें। मुझे दूसरेकी किसी प्रकारकी भी सहायता नहीं चाहिये। मेरे पास सब कुछ है—यह भावना मनमें रखकर कार्य करें। जिसे कुछ देना है उसे निःस्वार्थभावसे बिना कुछ प्रतिदान पानेकी कामना किये ही दें।

आध्यात्मिक आनन्द

भारतीय संस्कृतिकी मूल भावना आध्यात्मिक है । अनन्तकालसे जीवित और सर्वव्यापी भारतीय मनोभावों, संस्कारों और शान्तिका रहस्य हमें प्रभुकी भक्ति, पूजन, कीर्तन, भजनमे प्राप्त होता है । भक्ति तथा उसका उच्च आनन्द हमारी भावनाओं, मान्यताओं, विचारों एवं आदर्शोंको रसमय बनाता है । भक्तिसे स्निग्ध वचन गीतिकाव्यके रूपमे प्रवाहित होकर साहित्यकी अमूल्य निधि बने हैं । भगवान्‌के नाम, रूप, लीला, धाम, प्रेमतत्त्व, अध्यात्म-रहस्य, गुण और प्रभावका वर्णन करते-करते सूर, तुलसी, मीराँबाई, नानक और कबीर इत्यादि ऐसी काव्य-सम्पदा हमारे लिये छोड़ गये है कि जिसके गायनमात्रसे हमारे प्रमाद, आलस्य, भोग और पापका सर्वथा निवारण हो जाता है; काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या और अन्य दुर्विचार नष्ट हो जाते हैं ।

जब आप सासारिक दौड़-धूप एवं कुटिल संघर्षसे थक जायँ तब लोकहितकारी परमानन्द प्रदान करनेवाली प्रेममयी भक्तिका आनन्द लीजिये । भक्तिरससे परिपूर्ण दो-चार सात्त्विक भजन धीमी-धीमी प्रेममयी वाणीसे गुनगुनाइये । कीर्तनमें ऐसे रम जाइये, जैसे प्रत्यक्ष भगवान्‌के सम्मुख ही बैठे हुए हैं । भगवद्भजनमें आपको सच्ची आन्तरिक शान्ति प्राप्त होगी ।

भजनके आनन्दकी तुलना संसारका कोई आनन्द नहीं कर सकता। प्रभुके प्रेमरसके कीर्तनमें संसारके समस्त कल्मष, संघर्षपूर्ण चिन्ताएँ, दुरभिसन्धियाँ प्रक्षालित हो जाती हैं। मनुष्यकी कुछ ऐसी प्रवृत्ति है कि भगवद्भजनमें रमण करनेसे उसे सर्वाधिक आनन्द प्राप्त होता है। इन्द्रियाँ तृप्त हो जाती हैं और मन शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

हृदयकी सच्ची प्रार्थनामें जो आन्तरिक आनन्दानुभूति होती है, हृदय जिन सात्त्विक भावनाओंसे परिपूर्ण होकर आत्मविभोर हो जाता है, उसे भोले भक्तका अकलुष हृदय ही अनुभव कर सकता है। भक्तिरससे स्निग्ध व्यक्ति आत्माकी ज्योतिके प्रकाशमें रहता है। आत्मा, जो परमात्माका अंश है, सारे शरीरकी स्फूर्ति, आनन्द, आह्लादका उद्गम है। अपने दूषित विचारोंका दमन करो, तुम्हारे आनन्दोपभोगमें विश्वकी कोई शक्ति बाधा नहीं डाल सकती।

जो जिस स्तरपर है, वह अपनी शिक्षा, बुद्धि, विवेक तथा भावनाके अनुसार मनोरञ्जनका साधन प्राप्त करता है। जो पशुत्वकी कोटिके हैं, वे खान-पान, भोग-विलास, इन्द्रियलोलुपता तथा साधारण वस्तुओंमें आनन्द खोजते हैं; किंतु जो आत्माके आनन्दको समझते हैं, वे साधारण कोटिपर नहीं रुकते। निरन्तर आत्मचिन्तनमें निरत रहते हैं।

विषयोंकी लालसा करनेवाले व्यक्ति कभी सच्चा आनन्द प्राप्त नहीं कर पाते। गीतामें कहा गया है—

'विषयोंकी चिन्ता करनेसे उनमें सङ्ग (आसक्ति) होता है, सङ्गसे काम या उनको भोगनेकी कामना उत्पन्न होती है, कामसे (यदि इच्छा पूर्ण न हो तो) क्रोध होता है, फिर क्रोधसे मोह और मोहसे स्मृतिका नाश होता है—भले-बुरेका ज्ञान नहीं रह पाता। स्मृति-नाशसे बुद्धिकी हानि और बुद्धिकी हानिसे सर्वनाश हो जाता है—मनुष्यकी अधोगति होती है। वह विषयोंमें आनन्द ढूँढ़ता हुआ विनाशको प्राप्त होता है।'

भगवान्की भक्ति, अध्यात्म-चिन्तन परमतत्त्वकी खोजमे उच्चतम आनन्दकी उपलब्धि होती है। गीतामे भगवान्ने कहा है—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

अर्थात् 'यदि मनुष्य राग और द्वेषका परित्याग करके मन-इन्द्रियोको वशमे करके उनके द्वारा विषयोका ग्रहण करे, तो वास्तविक आनन्द प्राप्त होता है।'

इन्द्रियाँ जब हमारे वशमे न होकर दूषित विषयोंकी ओर हमें ले जाती हैं, मन जब हमारे वशमें न होकर नाना प्रकारकी चिन्ताओ, ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिशोधकी विचार-धाराओंमे संलग्न रहता है, तब मनमे चञ्चलता और अस्त-व्यस्तता आती है और फलतः हम आनन्दसे दूर होकर दुःखके गहरे गड्ढेमें गिर जाते हैं; परंतु जब हम आध्यात्मिक दृष्टिकोणको अपनाकर सर्वत्र एक ब्रह्मके दर्शन करते हैं, तब मन सदा आनन्दस्वरूप परमात्मामें मग्न रहता है, तब हमें सर्वत्र भगवान्का रूप ही दृष्टिगोचर होता है। सर्वोत्तम आनन्द जो हमारे मन, आत्मा और शरीरको अखण्ड आनन्द प्रदान करता है, आध्यात्मिक आनन्द ही है।

आध्यात्मिक सुख एवं आनन्दकी महिमा समझाते हुए भगवान्ने निर्देश किया है—

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥

(गीता ६। २१)

अर्थात् 'इन्द्रियोसे अतीत केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा ग्रहण करने योग्य जो अनन्त आनन्द है, उसको जिस अवस्थामें अनुभव करता है और जिस अवस्थामे स्थित हुआ योगी भगवत्-स्वरूपसे चलायमान नहीं होता है।'

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥

(गीता ६ । २२)

'और परमेश्वरकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है और भगवत्-प्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे विचलित नहीं होता है ।'

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥

(गीता ६ । २३)

'और जो दुःखरूप संसारके संयोगसे रहित है तथा जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिये । वह योग न उकताये हुए चित्तसे अर्थात् तत्पर हुए चित्तसे निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है ।'

भगवान्‌ने प्रतिज्ञापूर्वक कहा है—'हे अर्जुन ! स्त्री, वैश्य और शूद्रादि तथा पापयोनिवाले भी जो हों, वे भी मेरी शरणमें आकर परम गतिको प्राप्त होते हैं । फिर क्या कहना है कि पुण्यशील ब्राह्मण तथा राजर्षि भक्तजन परमगतिको प्राप्त होते हैं । इसलिये तू सुखरहित और क्षणभङ्गुर इस मनुष्य-शरीरको प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर ।' अतएव भगवद्भजन, हरिनाम-कीर्तन, सद्ग्रन्थावलोकन, सदाचारी सत्पुरुषों-का सत्सङ्ग, इन्द्रियोंपर पूर्ण अधिकार कर उन्हें ब्रह्मानन्दमें लीन करने तथा इन्द्रियों एवं मनकी विषय-भोगसे निवृत्तिके द्वारा ही सबसे श्रेष्ठ आनन्दकी उपलब्धि हो सकती है । जिस साधकको परमेश्वरके जिस रूपमें अधिक प्रीति और श्रद्धा हो, निरन्तर उसीका भजन, पूजन और चिन्तन करना चाहिये ।

आत्माका आदेश पालन करें

१—एक छोटे बालकने, जो बड़ा होकर एक प्रसिद्ध आत्मवेत्ता बना, चार वर्षकी अल्पायुमे प्रथम बार एक छोटा-सा कछुआ देखा, उसे इस छोटे-से जानवरको रेंगते देखकर विस्मय हुआ। उसके मनमें आया कि तनिक लकड़ीसे मारकर देखूँ तो सही यह अपना नन्हा-सा मुँह, हाथ, पाँव कहाँ छिपाता है? उसने मारनेके लिये लकड़ी उठायी, लेकिन......'न जाने मनके अंदरसे किसीने लकड़ी मारनेसे उसे रोक लिया। वह कछुएको न मार सका, तनिक भी चोट न पहुँचा सका। इस घटनाका वर्णन स्वयं करते हुए बादमे उन्होंने लिखा—

'न जाने मन, आत्मा या हृदयकी किस अज्ञात शक्तिने मेरा हाथ जकड़ लिया। मैं उस अबोध पशुको कुछ भी हानि न पहुँचा सका। मैं मुश्किलसे लकड़ी कछुएकी पीठतक लाया होगा कि किसी अज्ञात शक्तिने मेरे हृदयमें कहा—'यह क्या करते हो? अबोध कछुएको हानि पहुँचाना तो पाप है। कहीं ऐसा महापाप मत कर बैठना। देखो, सम्हलो, हाथ सम्हालो, अनजान गरीब कछुएको मारकर पापके भागी न बनना। जो किसीको हानि न पहुँचाये ऐसे जीवको मारना महापाप है।' इन विचारोंसे मै ऐसा भर गया कि इच्छा होते हुए भी उस कछुएको मार न सका। शरीरपर जैसे मेरा प्रभाव न था, वह किसी अज्ञात शक्तिके काबूमे था। मैं भागा-भागा घर माँके पास पहुँचा और उनसे पूछा कि 'यह कर्म बुरा है, यह पाप है, पापसे दूर हटो' कहनेवाला कौन था? माताजीने अत्यन्त प्रेमसे मेरे अश्रु पोंछते हुए मुझे समझाया—

'बेटा! कोई इस शक्तिको अन्तरात्मा कहता है, कोई इसे आत्मध्वनिके नामसे पुकारता है, किंतु सत्य बात तो यह है कि यह मनुष्यके अन्तरमें स्थित परमेश्वरकी आवाज है, जो भले-बुरेका विवेक करती है। यदि तुम आत्मध्वनिके आदेशको ध्यानसे सुनोगे और उसके आदेशानुसार कार्य करोगे तो यह ध्वनि तुम्हें अधिक साफ, अधिक स्पष्ट और अधिक ऊँची सुनायी पड़ेगी। सदैव सीधा और कल्याणमय मार्ग प्रदर्शित करेगी। किंतु यदि तुम इसकी उपेक्षा करोगे, तो धीरे-धीरे यह लुप्त हो जायगी और तुम्हें विना पथ-प्रदर्शनके गहन अन्धकारमे भटकनेके लिये छोड़ देगी।'

२—आत्म-ध्वनि या अन्तरात्माका आदेश मनुष्यका एक दैवी गुण है। मनुष्यकी आत्मा ही उसे उचित-अनुचित, सत्-असत्, नीर-क्षीरका विवेक करनेवाली शक्ति है। अन्य पशुओंमें औचित्य दिखानेवाली कोई शक्ति नहीं पायी जाती।

संसृतिजात प्रत्येक मनुष्य-देहधारीका शिशुत्व अत्यन्त पवित्र एवं निर्लेप होता है। बालकके हृदयमें भगवान् बोलता है। उसकी निर्दोष ऑखोंसे दैवीतत्त्व झलकता है। स्वार्थ या ईर्ष्याका नृत्य उसके मनमें नहीं होता। सांसारिक लोभ, स्वार्थ या दुरभिसन्धि उसपर अपना प्रभुत्व नहीं जमा सकती, कुवासनाऍं उसे अस्त-व्यस्त नहीं कर सकतीं। बालकका निर्लेप मन नैसर्गिकरूपसे किसी भी क्रियाके अनुकरणमें तत्पर रहता है। बचपनकी प्रत्येक दलित इच्छा या गुप्त मनमें बैठी हुई वासना अपनी प्रतिक्रिया किये विना नहीं रहती। इन क्रियाओंकी अच्छाई-बुराईके बारेमें प्रायः हम अपरिचित होते हैं। आत्मध्वनि ही वह दैवी संकेत है जो हमें पग-पगपर बुराई और पापसे रोकती है। ज्यो ही हम कोई गंदा काम या पाप-कर्म करनेकी ओर प्रवृत्त होते हैं, त्यों ही आत्मा हमें धिक्कारती या कचोटती है कि हम अनिष्ट मार्गपर न जायँ, पापसे बचें, दुष्कर्मसे अपनी रक्षा करें।

आत्माकी आवाज प्रत्येक मनुष्यमें सुन पड़ती है। हो सकता है अधिक पापोंके अथवा बार-बार उपेक्षित होनेके कारण इसपर मैल-मिट्टी जम जाय और यह कुछ क्षीण-सी पड़ जाय, किंतु यह रहती है अवश्य ! किसीमें तीव्र तो किसीमें मन्द। धर्मभीरु, ईश्वरनिष्ठ भक्तोंके हृदयमें अन्तर्ध्वनि बड़ी तेजीसे बोलती है। उनकी रक्षा करती तथा पथ-प्रदर्शन करती है। दुष्ट, पापी व्यक्तियोंमें अनाचारके कारण यह मोह, स्वार्थ और हिंसामें दब-सी जाती है।

आत्म-आदेश मनुष्यको मिला हुआ एक दैवी वरदान है, जो आनन्दकन्द परमेश्वरकी ओरसे मनुष्यको सत्पथपर अग्रसर होनेके लिये दिया गया है। हमारी आत्मा निर्विकार और अलिप्त है। उसमें किसी प्रकारका मल नहीं। यही आत्मा हमारे शुभ कार्यों, सात्त्विक विचारों, भव्य भावनाओं और उत्कृष्ट इच्छाओंकी प्रेरक शक्ति है। सर्वोत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप परमात्मा सबमे विराजमान है। यही आत्मज्योति है।

मनुष्यके स्वभावका परिष्कार, आत्मोन्नति, सत्प्रवृत्तियोंका विकास, आध्यात्मिक आनन्द सब कुछ इस आत्मतत्त्वपर निर्भर है कि हम अपनी आत्मध्वनिका कितना विकास करते हैं। आत्मध्वनि हमारे द्वारा विकासकी चीज है। निरन्तर इसे सुनने तथा इसके अनुसार ध्यानपूर्वक काम करनेसे हमारी यह आत्मध्वनि और भी स्पष्टतर और तीव्रतर सुनायी देने लगती है। यदि हम आत्मध्वनिकी अवहेलना किसी कार्य या कालमे करते हैं, तो आत्मनिर्देश धीरे-धीरे धीमा पड़ जाता है और हमारे पाप-कर्म उसपर अपनी कालिमा जमा लेते हैं। चोर, डकैत, खूनी, कातिल प्रायः सभीमें उच्चतर आत्माका निवास होता है; किंतु पुनः-पुनः आत्माके विरुद्ध जघन्य कार्य करने, आत्मध्वनिकी अवहेलना करनेसे वह धीमी पड़ जाती है। कालान्तरमे कोई दुष्कर्म, चोरी, डकैती, खून करते हुए उन्हें आत्माकी प्रताड़ना प्रतीत नहीं होती। बार-बार आत्माकी अवहेलनासे अन्तमे यह मृतप्राय हो जाती है। वह व्यक्ति दयाका पात्र है, जिसकी आत्मा दुष्कर्मों और पापोंके कारण मर गयी है।

३—आत्मध्वनि क्या है—यह वास्तवमें हमारे हृदयमें विराजमान परम प्रभु हैं। परमेश्वरका अस्तित्व प्रत्येक व्यक्तिके हृदय-मन्दिरमें है। विशुद्ध भावसे सुननेवालेको हमारे हृदयमें बैठे-बैठे भगवान् हमें उचित राहपर चलनेका आदेश दिया करते हैं। जो व्यक्ति धार्मिक कृत्यों, साधनों, इन्द्रियोंके संयमद्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करते हैं और अनन्य शरणागतिको प्राप्त होते हैं, उन्हें अन्तर्ध्वनि स्पष्ट सुन पड़ती है। आत्माकी आवाजका उठना स्वयं एक शुभ लक्षण है। उसपर भगवत्कृपा समझनी चाहिये। यही आत्मध्वनि जीवात्माको संसार-बन्धनसे मुक्त कर सकती है। जो आत्मध्वनि हमें सत्पथ-पर अग्रसर करती है वही आत्माका आदेश है। परमात्मतत्त्वकी प्रतीति इसी तत्त्वसे होती है।

आत्मध्वनि अंदर रहनेवाले ईश्वरका आदेश है। हमारा हृदय एक देवालय है, जिसमें परमेश्वरका निवास है।

'तुम नहीं जानते हो कि तुम देवताके मन्दिर हो और परम देवता तुम्हारे हृदयमें है।' (बाइबिल)

'उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्ता, भोक्ता, महेश्वर और परमात्मा नामसे अभिहित पुरुषोत्तम देहके भीतर स्थित रहते हैं।' (गीता १३। २३)

'हे मरणधर्मशील मानव! तुम अपनेको जानो, क्योंकि तुम्हारे भीतर तथा अन्य सभीके भीतर एक अद्वितीय देवता है, जो बाहर आकर संसारके रंगमञ्चपर नाना प्रकारसे अभिनय करता है तथा प्रमाणित करता है कि ईश्वर है।'

यदि तुम वास्तविक आध्यात्मिक उन्नति चाहते हो, तो आत्माकी आवाजको ध्यानपूर्वक सुनो और तदनुसार कार्य करो। प्रत्येक शुभ सात्त्विक देवोचित शक्तिका उद्गम-स्थान स्वयं तुम्हारे अन्तरमें विद्यमान है। संसारकी सर्वश्रेष्ठ वस्तुएँ केवल इसी तत्त्वमें समायी हैं कि मनुष्य आत्मिक

शक्तियोंका कितना विकास करता है। यदि आत्मध्वनिके निर्देशपर चलता रहे तो उसकी उन्नति निश्चित है।

जो मनुष्य संसारमें सफल-जीवनके अभिलाषी थे, उन भक्त आध्यात्मिक पुरुषोंने प्रथम कार्य अपनी आत्माको जाग्रत् करनेका किया था। अन्तःकरणद्वारा ध्यानसे सुननेपर हम परमात्माकी आज्ञाको जान सकते हैं। यदि आप अन्तःकरणकी आज्ञाका पालन सीख ले, तो मोटी-मोटी धार्मिक पुस्तकोंमे अटके रहनेकी कोई आवश्यकता न रहे, क्योंकि वे भारी भरकम ग्रन्थ भी अन्तरात्माके सदुपयोगके ही परिणाम हैं। अन्तःकरणकी आवाजका आदेश-पालन ही दुनियाँके तमाम धर्मोका मूल है।

कहते हैं एक बार एक रोमन राजनीतिज्ञ बलवाइयोंके साथ पकड़ा गया। बलवाइयोंने उससे व्यंगपूर्वक पूछा—'अब तेरा किला कहाँ है? अब तू किसके बलपर अकड़ेगा?' उसने हृदयपर हाथ रखकर कहा, 'यहाँ मेरा परमात्मा मेरे अंदर है। वह मेरा रक्षक है। उसके बलपर मैं सदा ऊँचा रहूँगा।' ज्ञानके जिज्ञासुओंके लिये यह उत्तर बड़ा मर्मस्पर्शी है। जो दूसरोंका सहारा चाहते हैं, जो सदा एक-न-एक अगुआ ढूँढ़ा करते हैं, उनसे मैं कहूँगा, ओ थोथी विचारधारावाले हलके मनुष्यो! तुम अपनी अन्तरात्माके हृदयमें स्थित परमेश्वरके दृढ़ आश्रयको ढूँढो, उसीपर डटे रहो, उसीपर विश्वास लाओ, उसका सम्मान करो।

संसारमे ऐसे अनेक दृढचित्त महापुरुष हो गये हैं जिन्होंने मरते-दमतक अन्तरात्माकी टेक नहीं छोड़ी। सत्यवादी हरिश्चन्द्र, महाराणा प्रताप, वीर हकीकतराय, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महात्मा गांधी अन्तरात्माके पथपर अग्रसर रहे। ये आत्मिक बल-विकासके अनुकरणीय आदर्श हैं। इन-जैसे दृढ आत्माज्ञाकारी पुरुष होने कठिन हैं।

पाप यथार्थमे कहाँ है? कोई बात हमारी अन्तरात्मामे चुभे और हम उसे करे तो बस, यही पाप है। क्या आत्मध्वनिकी उपेक्षा परमात्मध्वनिकी

अवहेलना नहीं है ? क्या यह अपमान उस परमेश्वरकी प्राकृतिक नियम-सीमाका उल्लङ्घन करना नहीं है ?' आत्माकी पुकारकी अवहेलना अवनतिकी ओर अग्रसर होना है। आत्महननसे हम अपने ही लिये बुरा नहीं करते हैं, प्रत्युत स्थानीय वातावरणको कुचेष्टा तथा कुविचारसे कलुषित कर देते हैं। आत्म-ध्वनिकी हत्या करना मानो स्वयं अपनी हत्या कर लेना है। जिनकी अन्तरात्मा नष्ट हो चुकी है, हाय ! उन्होंने अपने सबसे बड़े हितैषी, मित्र और पथ-प्रदर्शकको खो दिया है। वे वास्तवमे उन अंधोंके समान हैं, जो बिना लाठीके गहरे और ऊँचे गारेमे छोड दिये गये हैं। उस व्यक्तिका पाप-पङ्कसे उद्धार होना कठिन है; क्योंकि बिना अन्तरात्माके विकास--धर्म-अधर्मका ज्ञान नहीं हो सकता और न धर्मपर दृढ़ विश्वास ही हो सकता है।

४—आत्माके आदेशकी अवमाननाका परिचित चिह्न क्या है ? हम किस प्रकार जाने कि हम आत्माज्ञा नहीं मान रहे हैं ? इसके चिह्न हैं—भय, लज्जा और विषाद तथा भूल सुधारनेपर प्रसन्नता। प्रथम तीनों मनोभावोंकी उत्पत्ति तब होती है जब हम किसी अनाचार या कुचेष्टाके करनेमें आत्माज्ञाका उल्लङ्घन करते हैं। जहाँ हमने दुष्कर्ममें हाथ डाला कि तुरंत मनमे एक संकोचकी उत्पत्ति होती है जो उस कुकर्मके करनेमें निषेधक सिद्ध होती है। तदनन्तर यह निषिद्ध कार्यका परिणाम भी प्रकाशित करती है कि 'यदि तू ऐसा पापकर्म करेगा, तो तेरा भविष्य अन्धकारमय हो जायगा, तेरी प्रतिष्ठा और कीर्तिमे कलंकारोप होगा।'

जो व्यक्ति अन्तरात्माकी हत्या करता है, उसके मनमे एक गुपचुप पीड़ा सदा चुभती रहती है। वह दैवी प्रकोपसे भयभीत रहता है। तत्पश्चात् लज्जा उसकी कायामें प्रवेश करती है और वह किसी प्रतिष्ठित पुरुषसे चार आँखें नहीं कर पाता। यदि उसके पुण्य एवं सत्-संस्कार जोर मारते हैं, तो एक दिन वह जाग्रत् हो उठता है और उसे अपनी भयंकर भूलका ज्ञान होता है। आत्माज्ञाके पालनमें वह पुनः अपनी भूल सुधारकर सुख तथा

आत्मिक प्रसन्नता प्राप्त करता है। महर्षि वाल्मीकि डाकू बन गये थे। एकाएक एक दिन उनकी अन्तरात्मा जाग्रत् हुई और वे परम विद्वान् तथा भक्त बन गये थे।

यह पश्चात्ताप, जो आत्माके आदेशके पालन न करनेके कारण मनमें उत्पन्न होता है, अनुभवशीलोंके जीवनको सुन्दर बनानेमें सहायक होता है। गंदगी, पाप, कुपथकी कुरूपतासे परिचित जो व्यक्ति जीवनकी विपत्तिकी कसौटीपर कसा जा चुका है और खरा है, ऐसा व्यक्ति फिर पापपङ्कमें नहीं फँसता।

प्रिय पाठक ! यदि आप शान्ति, सामर्थ्य और शक्ति चाहते हैं तो अपनी अन्तरात्माका सहारा पकड़िये। आप सारे संसारको धोखा दे सकते हैं, किंतु अपनी आत्माको कौन धोखा दे सकता है ? आप दुनियाँकी आँखोंमें धूल झोंक सकते हैं, पण्डित, विद्वान्, धनी, महात्मा सब कुछ बन सकते हैं, पर यदि आपकी अन्तरात्मा शक्तिमान्, प्राणवान्, जाग्रत् नहीं है, यदि आप उसकी अवहेलना करते हैं, तो आपके हृदयमें एक गुपचुप पीड़ा अवश्य होती रहेगी। यह है आपकी अन्तरात्माकी महान् शक्ति। इसे साधनेसे सब सध जायगा।

अन्तःकरणको बलवान् बनानेका उपाय यह है कि आप कभी उसकी अवहेलना न करें। वह जो कहे, उसे सुनें और कार्यरूपमें परिणत करें, किसी कार्यको करनेसे पूर्व अपने अन्तरात्माकी गवाही अवश्य लें। यदि प्रत्येक कार्यमें आप अन्तरात्माकी सम्मति प्राप्त कर लिया करेंगे तो विवेक-पथ नष्ट न होगा। दुनियाँभरका विरोध करनेपर भी यदि आप अपनी अन्तरात्माके आदेशका पालन कर सकें, तो कोई आपको सफलता प्राप्त करनेसे नहीं रोक सकता।

मनको बाँधनेमें आत्मकल्याण है

मन ही मनका बोधक होता है, मन ही मनका साधक होता है, मन ही मनका उत्प्रेरक और रक्षक होता है। हमारे मनमे अद्भुत उत्पादक शक्तियाँ भरी हुई हैं, जिनके द्वारा प्रतिपल हमारा अस्थि-चर्ममय शरीर संचालित हुआ करता है। मन जैसा जिधर जिस प्रकारका आदेश देता है, अनुचरकी भाँति हमारा शरीर वही करता है। संचालन एवं नियन्त्रणका समग्र कार्य हमारे मनमे ही चलता रहता है।

शरीरमे मन केन्द्रिय-विभाग है, जिसमें सैकड़ों उपविभाग कार्य करते हैं। किसी विभागमें निरीक्षण होता है, तो किसीमे दर्शन, मनन, चिन्तन; सम्बोधन इत्यादि। कहीं कल्पना अपना रुपहला स्वरूप चित्रित करती है, तो कहीं विवेक सर्वत्र अपना नियन्त्रण करता है। कहीं वासनाओंका विभाग है, जो नाना प्रकारके प्रलोभन-आकर्षणका केन्द्र बनकर हमारे असंतोष और अन्तर्ज्वालाका कारण बनता है।

मन बोधक है। अर्थात् इसीके विवेकद्वारा हमें आत्म-बोध होता है। हम धन-जन-तन आदिकी निस्सारता, क्षणभंगुरताका ज्ञान प्राप्त करते हैं और सबसे बड़े शक्ति-केन्द्र परमात्मामे आकर केन्द्रित हो जाते हैं। हम परमात्माके ही सनातन अंश है। जो हममें है वही परमात्मामे है, जो परमात्मामें है वही हममें व्याप्त है—इस तत्त्वका बोध कराने और जीवनके लक्ष्यके प्रति उन्मुख करनेवाला हमारा मन ही है। उच्चतम विवेक, सर्वोच्च ज्ञानका भण्डार, शक्ति और सामर्थ्यका मूल केन्द्र मनमे है। इससे हम वह प्रोत्साहन प्राप्त करते हैं जिससे हमें आनेवाली परिस्थितियोंसे युद्ध करनेकी प्रेरणा मिलती है। हम आत्मनिर्भरता और निर्भीकता प्राप्त करते हैं।

मन हमारे पथको साधता अर्थात् उचित दिशामें रखता है, भटकने, पथ-भ्रष्ट होने नही देता। जीवन तो एक यात्रा है। हम साधनाद्वारा, कर्मद्वारा निरन्तर अपनी-अपनी यात्राएँ करते चलते हैं। जिसको जहाँ जाना है, जो कार्य करनेका निर्देश है, वह शक्तिके अनुसार करता चलता है। उद्देश्यपर आरूढ़ रहनेका अभ्यास मनकी एकाग्रताद्वारा ही सम्पन्न होता है। मनकी दृढ़तासे आप जो चाहे, जैसे चाहे कर सकते है। शरीरको एक स्थानपर अचल, अटल खड़ा करके कार्य ले सकते हैं। हम पुस्तकोमे पुराने ऋषि-मुनियोंके वृत्तान्त पढ़ते हैं जो इतनी कड़ी साधना करते थे कि शरीरपर मिट्टी जम जाती थी और दीमक या पक्षी उसमे अपने घर-घोंसले बना लेते थे। मन फिर भी पूरी गति और शक्तिसे कार्य करता चलता था। हमारी साधनाओंमे सम्पूर्ण दृढ़ता हमारे मनकी है।

मनमे आसक्ति उत्पन्न होती है, हम नाना मधुर वस्तुओंकी ओर आकृष्ट होकर मोहरज्जुमें आबद्ध हो जाते हैं, पर यह मन ही उचित दशामें आकर हमें मोह, वासना, आलस्य, तामस सुख, प्रमाद आदिसे मुक्त करता है। वैराग्य-जैसे दिव्यभावकी उत्पत्ति करता है।

मन चञ्चल है। विक्षिप्त बंदरकी भाँति एक डालसे दूसरी, फिर तीसरी, चौथीपर कूदता-फाँदता फिरता है। यह कभी एक वस्तुसे तृप्त नहीं होता, एक बार किसी विषय या वस्तुसे क्षणिक तृप्ति पाकर नयी वस्तु, नयी स्थितिकी कामना करता है। यह फूल-फूलपर विचरनेवाली तितलीकी भाँति सक्रिय है।

मन ही उत्प्रेरक है। नयी उमङ्ग, नयी प्रेरणा, नयी स्फूर्ति हमे बाहरसे नहीं, अंदरसे ही प्राप्त होती है। नये उत्साहवर्द्धक सपनोका निर्माता हमारा मन ही है।

ये मनकी एक स्थितिके भाव हैं दूसरी ओर यही मन राग-द्वेष, निन्दा-स्तुति, लोभ-मोह, काम क्रोध, विषाद-चिन्ता, भय-बाधाकी भ्रमात्मक

कल्पनाओंमें डालकर अनेक कुटिल द्वन्द्वोंमे आबद्ध करता है और हमारा पतन कर देता है। कुटिल बनकर हमे अनेक विपदाओंमें, मानसिक दुश्चिन्ताओमें डाल देता है और अनेक छोटे-बड़े पापकर्मोंमें प्रवृत्त कराता है। हमारे अहंभावको उभार देता है। हम भ्रममें पड़कर स्वार्थमय जीवन व्यतीत करने लगते हैं। मन ही विकारोंको उत्पन्न कर जीवनको कलुषित बनाता है।

मनुष्यके जीवनका कोई भाग मनके नाना उत्पातोंसे मुक्त नहीं है। बाल्यावस्थामें बिना विचारे ये मूर्खतापूर्ण कार्य, गलतियाँ उसे घेरे रहते हैं, यौवनमें कामवासनाओंकी व्याधि, इन्द्रियलोलुपता, मदान्धता, मत्सर उसे अशान्त बनाये रहते हैं। बुढ़ापेमें इन्द्रियशैथिल्य और शारीरिक-मानसिक बीमारियाँ उसे दुखी रखती है। ये सब मनके विकार हैं।

मन ही मनका बाधक होता है। मन पथभ्रष्ट हो माया और तृष्णामें बहकता है। एक तृष्णाके पश्चात् दूसरीको जन्म देता है। तृष्णामे लगे रहना एक ऐसी भूलभुलैयामें भटकते रहना है, जिसमेंसे जीवनपर्यन्त निकलना कठिन ही नहीं, असम्भवप्राय है। मन ही भयके नाना रूप-प्रतिरूप उत्पन्न कर हमारे असंख्य बन्धनोंका कारण बनता है।

हमारी अतृप्ति मनकी ही एक संकटपूर्ण, अस्वस्थ और अनिष्ट वृत्ति है जिसमें मनुष्य हर क्षण नयी-नयी आवश्यकताएँ अनुभव करता और उनमे शान्ति प्राप्त करनेका विफल प्रयत्न करता है। मनको इधर-उधर दौड़ानेसे अन्तस्तलमें वासनाका वेग, लालसाएँ, कामनाएँ, आशाएँ और तृष्णाएँ भयंकर विप्लव उत्पन्न कर देती हैं। हमारा आन्तरिक जीवन एक समरस्थलीके सदृश अशान्त, अस्थिर हो जाता है।

मन ही मनका घातक होता है। यदि उचित निरीक्षण न किया जाय, तो मन पापका आगार, कुत्सित कल्पनाओंका भण्डार और असंयमका आलय बन सकता है। कलुषताके प्रश्रयसे यह हमारा शत्रु बन जाता है।

हमसे ऐसे अनेक दुष्कर्म करवा डालता है कि बादमें पश्चात्तापकी अग्निमें जलना पडता है। अतः प्रत्येक विवेकशील व्यक्तिकी मूल समस्या मनोनिग्रह-की समस्या है। उसीको वशमें करना चाहिये।

मनको नियन्त्रित करनेकी महत्ता देखिये—

दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थ कामिनि पातिनो।
चितस्स दम यो साधु चित्त सुखावह ॥

अर्थात् 'जो कठिनाईसे निग्रहयोग्य, शीघ्रगामी, जहाँ चाहे जानेवाला हमारा यह चञ्चल मन है, उसका दमन करना ही उत्तम है। दमन किया हुआ चित्त ही सुखप्रद होता है।'

मन ही आत्मनिरीक्षण करता अर्थात् मनकी सृष्टिके भद्र-अभद्र, उचित-अनुचित, सार-निस्सार कार्योंकी देख-रेख रखता है। आत्मनिरीक्षणसे मनुष्य मनकी क्रियाओंपर अनुशासन करना और उसे ठीक मार्गपर आरूढ़ करना सीखता है।

मनको स्थिर करनेके लिये नित्य स्थायी और शाश्वत ब्रह्म आत्मा तथा अपने इष्टदेवके गुणोंपर उसे केन्द्रित रखनेका अभ्यास कीजिये। अभ्यास करते-करते मन एकाग्र होने लगेगा। इस एकाग्रतासे ही अन्त-र्द्वन्द्वोंसे मुक्ति हो सकती है। चेतन तत्त्वके सान्निध्यसे ही मुक्ति है।

आपका मन जब धन, यौवन, परिवारमे मदमस्त होकर नृत्य कर उठे तो उसे रोकिये। उसे यह समझाइये कि ये सब सांसारिक वस्तुऍ अनित्य और क्षणभङ्गुर हैं। पलक मारते ही क्षणभरमे विनष्ट हो जाती हैं। संसारके मिथ्या आकर्षण, मोह-मायाका परित्याग कर ब्रह्मपद, अध्यात्म-चिन्तन और समाजसेवामें अपना जीवन व्यतीत कीजिये।

व्यर्थ ही दूसरोंपर संदेह करना, संशयमें रहना छोड़ दीजिये। गीता कहती है—'संशयात्मा विनश्यति' सदा संशय करनेवाला, दूसरोको संदेह-दृष्टिसे निरखनेवाला अविश्वासी, अनियन्त्रित व्यक्ति क्षयको प्राप्त

होता है। न दूसरोंके विषयमें क्षुद्रता तथा दुर्भावनाएँ लाइये, न स्वयं अपने विषयमें हीनत्वकी भावनाएँ उत्पन्न कीजिये। ये दोनों ही आपके मनकी विकारमय स्थितियाँ हैं।

दुःख क्या है? चिन्ता किस महाराक्षसीकी संतान है? काम-क्रोध, अभिमान-अहंकार, गर्व-मद, भेद-घृणा, वैर-विरोध, अश्रद्धा-अविश्वास, दुराचार-अनाचार आदि अनर्थ कहाँ उत्पन्न होते हैं? वास्तवमें संसारमें इन विकारोंके आधार हमें भिन्न-भिन्न रूपोंमें मिल जाते हैं। हमारा मन ही उन छोटे-बड़े आधारोंको लेकर अपना ताना-बाना बुना करता है। मनुष्यको कोई भी दुःख-सुख नहीं देता, दुःख-सुख तो हमारा मन ही देता है। मैत्रीभाव अथवा द्वेष-वैरका भाव, कुकल्पनाएँ या सद्भावनाएँ—सबका कारण मन ही है। इसलिये मनको वशमें करके, भोगोंसे हटाकर सुख-दुःखसे निर्लिप्त रहकर जीवन व्यतीत करना ही जीवनका शान्तिमय मार्ग है।

यौवन, आनन्द, उत्फुल्लता, उत्साह—ये सब आपके मनकी उच्चतम स्थितियाँ हैं। आयुसे किसी व्यक्तिका जवानी-बुढ़ापा नहीं नापा जा सकता। यौवन हमारी इच्छाकी निष्ठा, सुकल्पनाकी एक विशिष्टता, सामर्थ्य एवं पराक्रमकी एक साहसिक मनःस्थितिमात्र है।

वृद्धत्व कल्पनाकी, हीन दशाकी स्थिति है। जिस व्यक्तिमें इच्छाशक्ति और सामर्थ्यका ह्रास हो जाता है, वही वृद्ध है। जिसमें इच्छाशक्ति और सामर्थ्यका अभाव नहीं है, ऐसी मनःस्थितिवाला व्यक्ति चाहे शरीरसे झुर्रियोंवाला ही क्यों न हो, मनसे आशावान् और उत्साहपूर्ण है।

स्मरण रखिये—चिन्ता, संदेह, विषाद, आत्म-संशय, भय और निराशा आदि वे कुत्सित मनःस्थितियाँ हैं, जो किसी भी विकासोन्मुख व्यक्तिको धूलि-धूसरित कर देनेमें समर्थ हैं। इसके विपरीत जिसे उच्च विषयों, उन्नति तथा शक्तिवर्द्धन, ब्रह्मचिन्तनमें उत्साह है, वह एक स्वस्थ मनःस्थितिमें निवास कर रहा है। ऐसा व्यक्ति विषम परिस्थितियोंकी भयावनी चुनौतीको बच्चोंकी अतृप्त जिज्ञासाके समान उल्लास और जीवनकी

क्रीड़ा समझता है। आप उतने ही युवक हैं जितना आपमे विश्वास है, उतने ही वृद्ध हैं जितना अपने तथा अपनी शक्तियोके प्रति संदेह है। आप उतने ही जवान हैं जितनी आपमे आत्मदृढ़ता है और उतने ही बूढ़े हैं जितना आपमें भय है। आशा जवानीकी प्रतीक है, निराशा बुढ़ापेकी निशानी। जबतक पृथ्वीपर आपका हृदय सौन्दर्य, उल्लास, साहस, वैभव और शक्तिका संदेश देता है, तबतक आप युवक हैं, उन्नतिशील हैं।

अपने जीवनमें कुछ समय एकान्त-चिन्तनके लिये अवश्य रखिये और उसमे सोचिये कि आपके सम्पूर्ण दिनका विचार-प्रवाह, शुभ-चिन्तन अथवा अशुभ चिन्तन कैसा रहा है ? आज आपने कितना स्वयं अपना, तो कितना दूसरोंका शुभ-चिन्तन किया है ? कितना समय व्यर्थके बकवाद, पर-निन्दा, दोषदर्शनमे नष्ट किया है ? दूसरोंसे कब-कब और क्यों लड़े-झगड़े हैं ? शान्तिके लिये क्या किया है ? वासनाके कुचक्रमे पड़कर आप क्या करते रहे हैं ? आपकी आजकी भावनाएँ, आवेग, अन्तर्द्वन्द्व कैसे रहे हैं ? नव-निर्माणके हेतु आपने क्या किया है ? इन प्रश्नोंके उत्तरसे आपको विदित होगा कि आप कितने भले अथवा बुरे हैं।

मनको स्वस्थ रखिये; सद्भावो और शुभ विचारोंसे परिपूर्ण सरस बनाये रहिये। स्वस्थ मन स्वयं अपनी उन्नति और श्रमकी शुभ कामनाएँ रखता है। नयी शिक्षा, नया अनुभव ग्रहणकर श्रेष्ठ नागरिक बननेका प्रयत्न करता है।

अपने मनको ऐसा नियन्त्रित कीजिये कि वह शुभ-दर्शन, सत्कामना, हिनचिन्तनमे ही संलग्न होता रहे। अपने 'अह'को सद्विचारमे लगाना स्वस्थ मनकी निशानी है। दूसरोंकी व्यर्थ टीका-टिप्पणी, व्यर्थ आलोचना, नीचा दिखानेकी मनोवृत्ति अस्वस्थ मनके प्रतीक हैं। परच्छिद्रान्वेषणसे हमारे अहंकी प्यास तृप्त नहीं होती वरं हम अधिकाधिक अतृप्त, दुखी और अशान्त बनते हैं। यह विषम रोग है। मानसिक संतुलनमे ही मनका स्वास्थ्य है।

सफलता और मनःशान्ति

आजके युगमे आत्मोन्नतिकी दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं। १—स्वयं अपनी उन्नति, अपना कल्याण। हमे दूसरोसे क्या प्रयोजन, हमे तो अपना सुधार करना है। ऐसे ऋषि जगत्-समाजकी उपेक्षा कर पर्वत और जंगलोंकी कन्दराओंमें एकान्त साधना करते हैं। उन्हें अन्य व्यक्ति, समाज, देशसे, उसकी उन्नति आदिसे मतलब नहीं। २—दूसरी विचारधारा है कि समाजको सुन्दर बनाओ, समाजका हित देखो, अपनी परवा न करो। समाजका हित ही सर्वोपरि है। समाजके हितमे ही अपना हित निहित है। वास्तवमें ये दोनों विचारधाराएँ पृथक्-पृथक् अपनेमे अपूर्ण हैं। एकान्त साधना करना और जिस समाजमे रहते है, उसकी उपेक्षा करना बड़ा अन्याय है, दूसरी ओर केवल समाज-सेवाका ही ध्यान रखना और 'स्व' की उपेक्षा करना बड़ी भारी मूर्खता है। सफलता और सुखके नियम ऐसे होने चाहिये जिनमे उपर्युक्त दोनों विचारधाराओका समन्वय हो। 'स्व' और 'पर' दोनोंका उपकार हो। व्यक्ति और समाज—दोनोंका समानरूपसे अभ्युदय हो। नीचे लिखे नियमोंका निर्माण एक ज्ञानी संत महात्माने इसी दृष्टिको सम्मुख रखकर किया है—

नियम (१)

प्रात विवेकके प्रकाशमे अपने दोषोंको देखना और उन्हे मिटानेमें सतत प्रयत्नशील रहना। इस नियमके अन्तर्गत आत्मनिरीक्षणका महत्त्वपूर्ण कार्य आता है। मनुष्यके मनमें वासना और विवेकमें सतत संघर्ष चलता रहता है। वासना तो जीवमात्रका भयंकर शत्रु है। कहा भी है—

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्ग-
मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते
यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च॥

अर्थात् 'हरिण, हाथी, पतंग, भौंरा और मीन—ये पाँचों जीव एक-एक विषय-वासनाके कारण मारे जाते हैं फिर जो प्रमादी अकेले ही अपनी पाँचों इन्द्रियोंसे पाँचों विषयोका सेवन करता है, वह क्यो न मारा जायगा ?'

विवेक ही वह दिव्य शक्ति है जो हमे वासनाओंके भयंकर जालसे मुक्त रखती और सत्पथ प्रदर्शित करती है। आत्मनिरीक्षणद्वारा हमारा विवेक स्पष्ट होता है, अपनी दुर्बलताएँ साफ-साफ दृष्टिगोचर होती हैं, उत्तेजना और आवेशमें प्रायः हम उचित-अनुचितका विवेक नहीं कर पाते। इन्द्रिय-संयोग या वासनातृप्तिमें जो सुख अनुभव होता है, वह क्षणिक है। वह पहले अमृत-सा प्रतीत होनेपर भी परिणाममें प्रत्यक्ष विषका कार्य करता है (गीता १८ । ३८)। आत्मनिरीक्षणमे जाग्रत् विवेक हमें इन्द्रिय-तृप्ति और असत् भावुकताके दुष्परिणाम दिखाता है। अतः हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम आत्मपरीक्षणके द्वारा अपने मनकी कालिमाको दूर करें, दोषोंको मिटानेके लिये सतत प्रयत्नशील रहे। यह कार्य सहज नही, वर्षोंकी साधना और प्रयत्नका परिणाम है। एक बार व्रत ले लें कि हम अवश्य अपने दोषोंको दूर करेंगे, पनपने न देंगे। कुसङ्ग, कुविचार तथा असत् साहित्यके संसर्गमे नहीं रहेंगे, विवेकके अनुसार कार्य करेंगे। इस व्रतको निभाये। प्रलोभनके समक्ष दृढ़ बने रहें।

नियम (२)

यो च पुब्बे पमज्जित्वा पच्छा सो न पमज्जति।
सोमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो व चन्दिमा॥

'जो पहले भूल करके फिर सँभल जाता है, पीछे भूल नहीं करता, वह मेघसे मुक्त चन्द्रमाकी भाँति इस लोकको प्रकाशित करता है।' अतः दूसरा नियम है—की हुई भूलको दुबारा किसी भी रूपमें न करनेका व्रत लेकर उसे निभाना तथा उसके परिहारके लिये सरल विश्वासपूर्वक प्रार्थना करना। भूल दुबारा न करेंगे, सत्पथपर ही चलेंगे, चाहे कितनी भी

कठिनता क्यों न हो। यह विश्वास आत्मपरीक्षण करनेके लिये रामबाण ओषधि है। विषयोंके प्रपञ्च, इन्द्रियोंके संचालन, मनकी चञ्चलतासे मुक्ति पानेके लिये सरल विश्वासपूर्वक प्रार्थनाको अपने दैनिक जीवनका क्रम बना लेना चाहिये। हम अपनी वृत्तियोंको अन्तर्मुखी करें—'कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः' प्रार्थनासे भगवान्‌में बुद्धि लीन होती है और सद्भाव, सत्प्रेरणाएँ उत्पन्न होती हैं। भगवान्‌का सहारा लेने, उनकी भावना सदा-सर्वदा मनमें रखने और मनको निश्चयपूर्वक भगवत्कार्यमें लगानेसे वृत्तियाँ ऊँची उठती हैं, अधोगामिनी प्रकृति दूर हो जाती है। प्रार्थना एक प्रकारका आध्यात्मिक व्यायाम है, जिससे अन्तरात्माकी सफाई और पुनर्निर्माण होता है। मनुष्य ब्रह्ममें लीन हो जाता है और बुराईसे उसका सम्बन्ध टूट जाता है।

नियम (३)

दूसरोंके कर्तव्यको अपना अधिकार, उनकी उदारताको अपना गुण, निर्बलताको अपना बल न मानना चाहिये। हम केवल अपने कर्तव्योंको पूर्ण करनेका ध्यान रक्खे, अधिकार लेनेकी रट न लगावे। दूसरे जो उदारतापूर्वक हमें दें, उसे स्वयं अपने गुणोंद्वारा प्राप्त वस्तु न समझ ले। दूसरोंकी निर्बलताको अपना बल मानकर उनपर मनमाना अत्याचार अथवा स्व-शासन न करने लगे। यह हमारे मनमें मिथ्या अहंकार उत्पन्न कर हमें सीमित (सङ्कीर्ण) कर देता है। हम मदमस्त होकर समाजमें उच्छृङ्खलता उत्पन्न करते हैं। यदि ऐसे नियमका ध्यान न रक्खा जायगा, समाज अहंकारी, अभिमानी, दम्भी, हिरण्यकशिपु-जैसे व्यक्तियोंसे परिपूर्ण हो जायगा। दर्प उसे अंधा बना देगा।

नियम (४)

जितेन्द्रियता, सेवा और भगवच्चिन्तनद्वारा सत्यकी खोज करना। इस नियमके अनुसार व्यक्तिको समाजकी सेवा करनेका अवसर दिया गया है, किंतु उसे अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर पहले आत्म-विजय कर लेना चाहिये। ब्रह्मचर्यसे जितेन्द्रियता आती है। मनको ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंको उचित सेवा-कार्यमें लगाना सरल हो जाता है।

नियम (५)

अपने प्रति सदा-सर्वदा मस्तिष्कके पक्षपातरहित न्यायका तथा दूसरोंके प्रति हृदयजन्य (क्षमा) का व्यवहार रखना। यदि हम अपने प्रति भावना या सहृदयताका व्यवहार करें, तो सम्भव है अपनी गलतियोंको भी माफ कर दें, भावुकतामें बह जायँ। कहीं भावुकतामें आकर अपनी गलतियोंकी ओर उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। विवेक तथा अन्तरात्मा जैसा न्याय करे, वैसा ही व्यवहार उत्तम रहता है।

नियम (६)

निकटवर्ती जन-समाजकी मन-वचन-कर्मसे जैसे भी, जितनी बन पड़े क्रियात्मकरूपसे सेवा करनी चाहिये। दूसरेकी सेवा करनेसे मनुष्यका अहं तथा स्वार्थ दूर होते हैं। समाजसेवासे हमारा स्वार्थ और संकुचितता दूर होते हैं और आत्मिक बलकी वृद्धि होती है। दूसरोंके सम्पर्कमें आने, उनसे सहयोग और सहायता करनेसे हम संयम, सहिष्णुता, धैर्य और सहानुभूति सीखते हैं। हमारी उच्छृङ्खलता, चपलता और संकुचितता दूर हो जाती है। निन्दा-वृत्ति दूर होती है।

द्वेष-वृत्ति छोड़ दीजिये। चित्तमें द्वेष उत्पन्न करनेवाली विचार-तरङ्गोंकी गति चक्राकार होती है। द्वेषका प्रत्येक विचार ऐसे ही विचारोंका मण्डल चारों ओर बनाता है और स्वयं चारों ओर घूमकर पुनः पूरा मण्डल बनाकर द्वेषी और ईर्ष्यालुको हानि पहुँचाता है।

समाज-सेवाका कार्य करनेवालेको सारी सकुचित भावनाओंका परित्याग कर देना चाहिये। सेवाके अधिकारीको निरन्तर दलितों, गिरे हुए मनुष्यों, अशिक्षित, पिछड़े हुए व्यक्तियोंको ऊँचा उठाने, गलेसे लगाने और अन्य लोगोंके समकक्ष स्थान दिलानेमें प्रयत्नशील रहना चाहिये।

दूसरोंको अपनी सेवा, प्रेम, धन जो भी दे सकें, प्रचुरतासे देते रहिये। हम जो देते हैं, वह वास्तवमें नष्ट नहीं होता, वरं दुगुना-चौगुना होकर, एकत्रित होकर हमें प्राप्त होता है। दान एक प्रत्यक्ष लाभका व्यापार है।

नियम (७)

कार्य और गुणोंमें भिन्नता होते हुए आपके दूसरोंके प्रति स्नेहमें एकता होनी चाहिये। आप कोई भी कार्य करें, जीवन-यापनके लिये कुछ भी गुणोंका विकास करें, किंतु दूसरोंके प्रति स्नेहमें एकता-समता रखिये। अपना प्रेम प्रचुरतासे औरोंको दीजिये। आपका प्रेम दूसरोंके लिये प्रेरक मधु होगा। आपकी छोटी-सी प्रशंसासे जनता और समाज सत्पथ-पर तेजीसे चलेंगे। एक विद्वान्ने लिखा है—

'क्या तुम जानते हो कि सत्य शिव सुन्दर और मुक्त आत्मा इस हड्डियोंकी कोठरीमें बद्ध होनेके लिये क्यों राजी हुआ है ? सुनो, वह प्रेमका अमृत चखनेके लिये ही इस मल-मूत्रकी गठरीमें बँधा है। उसीका जीवन धन्य है, वही सौभाग्यशाली है, जो प्रेमका आस्वादन करता है। उसने मनुष्य-जन्म धारण करनेका सच्चा फल पाया, जिसे परमेश्वरने प्रेमका अलौकिक उपहार प्रदान किया है। प्रेमकी बूँद हृदयकी सीपमें पड़कर कैसे अमूल्य मोती उपजाती है, इसे कुंजड़े नहीं, जौहरी ही जान सकते हैं। प्रेमी अपने लिये नहीं जीता; वह दधीचिकी तरह अपनी हड्डियाँ भी दूसरोंको दे देता है। क्यों ? इसीलिये कि वह दूसरोंको प्यार करता है। वे मूर्ख हैं जो कहते हैं कि सज्जनोंके साथ प्रेम और दुष्टोंके साथ द्वेष करना चाहिये। वे नहीं जानते कि द्वेषका हथियार इतना पैना नहीं है, जितना प्रेमका। बिना हड्डीके जीवोंका अस्तित्व अस्थिर है, इसी प्रकार प्रेमरहित मनुष्यका जीवन डावाँडोल है। आँधीमें उड़नेवाली रूईकी तरह वह परिस्थितियोंके वशमें होकर इधर-से-उधर नाचता फिरता है और अन्तमें नष्ट हो जाता है। सौन्दर्य बाहर कहाँ ढूँढ़ते फिर रहे हो ? अपने हृदयको टटोलो, जरा देखो तो सही उसमें कितना सुन्दर प्रेमका रस भरा हुआ है, अन्यथा मनुष्य क्या है ? मुट्ठीभर हड्डियोंका ढाँचामात्र।'

वास्तवमें प्रेमका दान देकर ही मनुष्य अपना और दूसरोंका जीवन निर्माणकर अपनी आत्माको उन्नत बनाता है, अपनी उदारताका विकास करता है, दूसरोंका प्रेरणा-स्रोत बनता है।

नियम (८)

अपने आहार-विहारमे संयम और दैनिक कार्योंमें स्वावलम्बन होना चाहिये।

असंयमी व्यक्ति जानवरोंसे भी गया-बीता है। जानवर भी भोजन तथा वासनापूर्तिमे कुछ संयम रखते हैं, किंतु कुछ अविवेकी व्यक्ति आहार-विहारमे बड़े असयमी होते हैं। फलतः बीमार पड़कर अल्पायुमें ही जीवन-लीला समाप्त करते हैं! संयम एक ऐसा अंकुश है, जो हमें विवेक और सत्यके पथपर आरूढ़ रखता है। अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर लो, तुम विजयी कहलाओगे!

अपने दैनिक कार्योंमे पूर्ण स्वावलम्बन रखिये। स्नान, अपने स्थानकी सफाई, वस्त्रोंकी धुलाई, वस्तुओंकी सुव्यवस्था, पठन-पाठन, बाजारसे वस्तुओका क्रय तथा हिसाब रखनेमे दूसरेका आश्रय मत देखिये! स्वयं अपना काम करनेसे हमे अपनी आवश्यकताओ तथा उनके विस्तारका सही अनुमान होता रहता है।

आपको अपने मनको मजबूत बनाना चाहिये। भय, चिन्ता, घबराहट और व्याकुलताको दूर कर अपनेको दृढ़ और आत्मविश्वासी बनाना चाहिये। विपत्तिकालमे मनका संतुलन स्थिर रखनेका अभ्यास रखना चाहिये!

नियम (९)

सुन्दर बनिये! सच्चे अर्थोंमें सुन्दर वह है जिसका शरीर श्रमी है, मन संयमी है, बुद्धि विवेकवती है और अहं अभिमानशून्य है।

इस दृष्टिसे सौन्दर्य हम सबके लिये परम पूज्य उपासनाका हेतु है। जो ऊपरसे आकर्षक, पर अंदरसे कलुषित विचार, गंदी वासना, लोलुप भावना, बुरे स्वभावसे भरा हुआ है, जो दूसरेका बुरा चाहता है, वह कुरूप और बदसूरत है, वह सुन्दरतासे दूर है; जिसका मन स्थान-स्थान-पर भागता फिरता है, वह कुरूप है। जिसकी बुद्धि अविवेककी दलदलमें फँसी है, भ्रममे भटक रही है, वह कुरूप विचारधाराके बन्धनमे फँसा हुआ

है। सावधान! अपनेको आरामतलब, विलासी और कामचोर बनानेवाला कुरूप है। आचरणकी श्रेष्ठता ही सुन्दर बननेकी सच्ची कसौटी है।

नियम (१०)

सिक्केसे वस्तु, वस्तुसे व्यक्ति, व्यक्तिसे विवेक और विवेकसे सत्यको अधिक महत्त्व प्रदान किया कीजिये। हमारा आजका धर्म 'टका-धर्म' बन गया है। यह सर्वथा त्याज्य है।

सिक्का मनुष्यने अपनी सेवा, जीवनकी परिपुष्टि, विकास और सहायताके लिये निकाला था। खेद है कि आज वही सिक्का हमें नाना प्रकारके कुत्सित नाच नचा रहा है। सिक्केके क्षणिक प्रलोभनमें हमारे धर्म, कर्म न्याय, सत्यता, निष्ठा, प्रेम तथा समस्त सम्बन्ध नष्ट हो जाते हैं। यह मनुष्यका दुर्भाग्य ही है।

सिक्का हमारे मनको बेईमानीकी ओर ले जाता है। हम सोचते हैं कि तनिक-सी बेईमानी, चोरी, अनीतिको कौन देखता है? बेईमानीसे पैसा मिल सकता है, कुछ लोगोंको भ्रममे डाला जा सकता है, किंतु वह क्षणिक है। उससे मनुष्यकी महत्ताका कोई ज्ञान नहीं हो सकता।

सिक्केसे वस्तुको अधिक महत्त्व है। वस्तुसे व्यक्तिको अधिक महत्त्व मिलना चाहिये। व्यक्तिसे विवेक और विवेकसे सत्य महत्त्वपूर्ण है। सावधान! आपको अपनी आत्माके सत्यस्वरूपको ही ग्रहण करना है। आपका जीवन सत्यके लिये एक लम्बी यात्रा है। सिक्केके झूठे रंगीन खिलौनोंमे मत बहक जाना।

नियम (११)

व्यर्थ चिन्तन त्याग कर वर्तमानका सदुपयोग कर भविष्य उज्ज्वल बनानेका सतत प्रयत्न करना चाहिये। ईर्ष्या, द्वेष, बुरी योजनाओंको मनमे रखनेसे मानसिक संस्थान गंदा होता है। राक्षसोंकी सम्पत्ति घृणा है। सत्यसे मन पवित्र होता है, भक्ति और पुण्यसे आत्मा बलवती बनती है। सतत प्रयत्नसे अपना विकास समृद्ध ज्ञानमय जीवनकी ओर रखिये। तभी कल्याण है।

जीवन एक खुली पुस्तक-जैसा होना चाहिये

आप अपने जीवनको दुराव-छिपावसे दूर रखिये। आपका जीवन एक ऐसी खुली पुस्तक होना चाहिये जिसका प्रत्येक पृष्ठ खुला हुआ हो, जिसकी प्रत्येक पङ्क्ति स्पष्ट हो और पढ़ी जा सके। उसका एक-एक शब्द साफ-साफ हो। जिस व्यक्तिका जीवन स्पष्टरूपसे पढ़ा, समझा और साफ-साफ देखा जा सके, जिसमें छिपानेयोग्य कुछ शेष ही न रह जाय, वही अनुकरणीय है।

जैसे ही आपका मन किसी बातको दूसरोंसे छिपानेको करे, तो सावधान हो जाइये। जिसका तिरस्कार आपकी आत्मा करती है, वह त्याज्य है।

—इसी पुस्तकसे

❀ श्रीहरिः ❀

आशाकी नयी किरणें

(शक्ति, सामर्थ्य और सफलता)

[शिथिल और निर्बल जीवनमें शक्ति, साहस और नवप्रेरणा देनेवाले जीवनपूर्ण निबन्ध]

लेखक—

डा० रामचरण महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०

श्रीहरिः

आशाकी नयी किरणें

(शक्ति, सामर्थ्य और सफलता)

[शिथिल और निर्बल जीवनमें शक्ति, साहस और नवप्रेरणा देनेवाले जीवनपूर्ण निबन्ध]

लेखक—

डा० रामचरण महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०

मुद्रक तथा प्रकाशक
मोतीलाल जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०१९ प्रथम संस्करण १०,०००

मूल्य १.२५ (एक रुपया पचीस नये पैसे)

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

शक्तिका केन्द्र आपमें है

आप्नुहि श्रेयांसम् अति समं क्राम । (अथर्व० २ । ११ । ४)

आओ, जिनके बराबर तुम खड़े हो, उनसे आगे बढो । आओ, जो तुमसे बढे हुए हैं, उनतक पहुँचनेका प्रयत्न करो ।

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है 'अपना उद्धार तुम स्वयं करो ।' अपने आपको हीन मत समझो । मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र अथवा शत्रु है । जब मनुष्य अपनी हिंसा स्वयं नहीं करता तभी वह अपनी उन्नति कर सकता है । अतः अपनेको हीन समझना निकृष्टतम हिंसा है ।

सच मानिये, आप अनन्त शक्तियों, सिद्धियों और सफलताओंके भंडार हैं। संसारकी उच्चतम योग्यताएँ आपके हिस्सेमें आयी है । परमेश्वरने सबको समान उच्च शक्तियाँ प्रदान की हैं। यह बात नहीं कि किसीको कम और किसीको अधिक मिल गयी हों । किसीके साथ रियायत या पक्षपात नहीं किया गया है। परमेश्वरके यहाँ अन्याय नहीं है। समस्त अद्भुत शक्तियाँ आपके शरीर, मन और आत्मामें विद्यमान हैं । आप केवल आलस्यवश उन्हें जाग्रत् और विकसित करनेका कष्ट नहीं करते, कितनी ही शक्तियोंसे कार्य न लेकर आप उन्हे कुंठित कर डालते है, जब कि अन्य कुशाग्रबुद्धि व्यक्ति उसी शक्तिको किसी विशेष दिशामें अभ्यास कर परिपुष्ट कर लेते हैं । अपनी शक्तियोंको जाग्रत् तथा विकसित कर लेना या काम न कर उन्हें पंगु बना लेना स्वयं आपके हाथमें है ।

स्मरण रखिये, प्रत्येक उत्तम वस्तुपर आपका अधिकार है । यदि आप अपने पुरुषार्थ, उद्योग और सतत अभ्याससे अपने गुप्त सामर्थ्योंको जाग्रत् कर लें, तो निश्चय ही अपने क्षेत्रमें सफल हो सकते हैं। यदि दृढ़ प्रयत्न चलता रहे, तो मनुष्य जिस वस्तुकी आकांक्षा करता है, वह अवश्य प्राप्त कर सकता है। अतएव प्रतिज्ञा कर लीजिये कि आप चाहे जो कुछ हों, जिस स्थिति या जिस वातावरणमें हों, आप एक कार्य अवश्य करेंगे, वह यही कि अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंको ऊँची-से-ऊँची बनायेंगे । कहा भी है—

"पौरुषं श्रय, शोकस्य नान्तरं दातुमर्हसि"

हे मानव ! पुरुषार्थका आश्रय ले । शोकको अवसर मत दे ।

—रामचरण महेन्द्र

एम्० ए०, पी-एच्० डी०

विषय-सूची

श्रीहरिः

आशाकी नयी किरणें

(शक्ति, सामर्थ्य और सफलता)

अपने-आपको हीन समझना एक भयंकर भूल

आपके हृदय-सरोवरमें जिन शुभ या अशुभ विचारों, भद्र या अभद्र भावनाओं या उच्च अथवा निकृष्ट कल्पनाओंका प्रवाह चलता रहता है, वही अप्रत्यक्ष रूपसे आपके व्यक्तित्वका निर्माण करता रहता है। आपका एक-एक विचार, आपकी एक-एक आकाङ्क्षा, एक-एक कल्पना वे दृढ़ आधारशिलाएँ हैं, जो धीरे-धीरे आपके गुप्त मनको बनाया करती हैं।

जैसा अच्छा-बुरा आप स्वयं अपने-आपको मानते हैं, वैसा ही मानस-चित्र आपके हृदयपटलपर अंकित होता है; फिर तदनुरूप गुप्त मनोभाव आपकी नित्यप्रतिकी क्रियाओंमें प्रकट होकर समाजके समक्ष प्रकट होते हैं। अपने विषयमें जैसी आपकी अपनी राय है, वस्तुतः वैसी ही धारणा संसार आपके विषयमें बनाया करता है। विश्वके सर्वोत्कृष्ट महापुरुष अपनी योजनाओं और शक्तिके विषयमें जो कुछ स्वयं अपनेको मानते थे, उसी उत्कृष्ट भावनाके अनुसार उन्होंने संसारमें सफलताएँ प्राप्त की हैं। आपके गुप्त निश्चय एवं प्रिय आदर्श ही आपका पथ उच्च और प्रशान्त करते हैं।

यदि आपके ये आधारभूत विचार या अपने सम्बन्धमें बनायी हुई गुप्त धारणाएँ ही निर्बल होंगी तो निश्चय ही आप निर्बल बनेंगे। आपका आत्मबल, आपका साहस और आपका पौरुष भी कमजोर ही रहेगा। आपकी शक्तियाँ भी उसी अनुपातमें कार्य करेंगी और क्रमशः जीवनके प्रति आपकी वैसी ही मनोवृत्ति भी बनेगी।

दुर्बलता शरीरकी नहीं होती। उसका केन्द्र मनमें रहनेवाले विचार हैं। कमजोर व्यक्ति पहले मनमें अपनेको दीन-हीन विचारोंमें डुबाता है; उसका दूषित मानसिक चित्र उसकी तमाम उत्पादक शक्तियोंको पंगु बना देता है। उसके चारों ओर इसी प्रकारका निर्बल वातावरण निर्मित होता जाता है। स्वयं अपने ही विचारोंकी क्षुद्रताके कारण वह पतित या दीन-हीन दुःखद अवस्थाको प्राप्त होता है।

तनिक उस मूर्खके मनकी स्थितिका अनुमान कीजिये जो स्वयं अपने विषयमें अपनी योग्यताओं और भाग्यके विषयमें तुच्छ विचार

रखता है, अपने अंदर निवास करनेवाले सत्-चित्-आनन्दस्वरूप आत्माकी बेकदरी करता है। स्वयं अपने विषयमें हीनत्वकी भावना रखनेसे वह मानो सच्चिदानन्द ईश्वरकी निन्दा करता है। ऐसा अदूरदर्शी व्यक्ति स्वयं मानो अपने ही हाथोंसे अपना भाग्य फोड़ता है। संसारभरकी चिन्ताओं, कठिनाइयों एवं कल्पित भयोंको आमन्त्रित करता है।

याद रखिये, अपनेको तुच्छ या नगण्य समझनेवाला व्यक्ति संसारमें कभी कुछ नहीं कर सकता, वह सुस्त और निराश दिखायी देता है; उसे सब अपनेसे बड़े और सशक्त दिखायी देते हैं; वह बोलते भी डरता है। सदा सबके पीछे ही चलता है।

यदि इस प्रकार आप पिछड़ते गये, हीनत्वको पालते-पोसते गये तो आपको कंधेपर उठाकर कोई नहीं ले चलेगा। यदि स्वयं आपने अपने-आपको ठोकर मार दी, तो स्मरण रखिये, प्रत्येक व्यक्ति आपको ठोकर ही लगाता जायेगा, गाली देगा और कुचलता हुआ आगे बढ़ता चलेगा। यह संसार, यह समाज, यह युग हँसते हुएके साथ हँसता है, रोतेको छोड़ देता है। बढ़ते और दौड़तेका साथी है, मरे हुएको फूँककर अथवा दफनाकर शीघ्र ही भुला देता है। दीन-हीनके लिये यहाँ कोई स्थान नहीं है।

मनोविज्ञानका यह सिद्धान्त है कि चिन्तनसे उसी भाव या गुणकी वृद्धि होती है, जिसके विषयमें आप निरन्तर सोचते-विचारते रहते हैं। यदि आप जीवनके कष्टप्रद, कटु, त्रुटिपूर्ण पक्षों या अपनी निर्बलताओंमें विचरण करते रहेंगे तो अपने दोषोंकी ही वृद्धि करेंगे।

कुछ मनुष्योंमे ऐसा विश्वास जम जाता है कि मेरा अमुक दोष, मेरी अमुक त्रुटि, अमुक न्यूनता मेरे पूर्वजोंसे आ गयी हैं और मैं विवश हूँ। यह गलत विचारधारा है। मनुष्य स्वभाव, गुण और चरित्रको जब, जैसे, चाहे आत्मबलसे नये मार्गोंमें मोड़ सकता है। ऐसी गलत विचारधारा मनसे निकाल देनी चाहिये। कुत्सित कल्पनासे धीरे-धीरे मानसिक रोग उत्पन्न होकर मनुष्यका नाश कर देते हैं।

यदि कोई व्यक्ति आपको दीन-हीन कहता है, तो कभी उसकी बातोंको स्वीकार न कीजिये। उसे नम्र भाषामें किंतु साहस तथा विश्वासके साथ ऐसा जवाब दीजिये जिससे उसे पुनः कभी वैसी ओछी बात मुँहसे उच्चारण करनेका प्रलोभन न हो।

एक बार किसी राजासे एक व्यक्तिने कहा कि 'आपके राज्यमें अमुक पुरुष ऐसा है, जिसका मुख देखनेसे दिनभर भोजन भी नहीं मिलता।' राजाने कहा—

'यदि ऐसा है, तो हम कल सबसे पहले उसका मुख देखकर तुम्हारे कथनकी परीक्षा करेंगे। देखें हमें भोजन मिलता है या नहीं ?'

राजाने उस अभागेका मुँह देखा। संयोग ऐसा हुआ कि उस दिन राजाको दिनभर भोजन करनेका सुभीता न हुआ।

राजाने सोचा कि यह व्यक्ति सचमुच मन्दभागी है। हमारे राज्यके लिये अहितकर है। ऐसा बदकिस्मत आदमी राज्यमें नहीं रहना चाहिये। अतः राजाने उससे कहा—

'देखो तुम अभागे हो। सुबह हमने तुम्हारा मुँह देखा तो दिन

भर हमें भोजन न मिला । यदि तुम हमारे राज्यमे रहोगे, तो न जाने तुम्हारा दर्शन करनेकी सजाके रूपमें कितनोंको भूखा रहना पड़ेगा । हम तुम्हें फाँसीकी सजा देते है ।'

वह व्यक्ति सजा सुनकर स्तब्ध रह गया । पर वह अपनेको कभी हीन माननेके लिये तैयार नही था ।

उसने धैर्यसे कहा—'राजन् ! मै तुच्छ नहीं हूँ । अपने मनसे मेरे प्रति यह दुर्भावना निकाल दीजिये । आपका मेरे ऊपर यह मिथ्या आरोप है कि मेरा मुख देखनेसे आपको भोजन नहीं मिला । मुझे आपका मुँह देखकर फाँसीका हुक्म मिला है । मेरी अपेक्षा तो आप तुच्छ और अभागे प्रमाणित हो रहे हैं ।'

राजाने इस सूक्तिपर विचार किया, तो संदेहके काले बादल छँट गये । आत्मग्लानिके दिव्य प्रकाशमें उन्हें यह आत्मबोध हुआ कि किसीको तुच्छ नही समझना चाहिये । जैसे हम अपने-आपको हीन न समझें, वैसे ही हम दूसरोंको भी तुच्छताका भ्रम न करायें, न गलत अनर्थकारी संकेत ही दे ।

जिस प्रकार अपनेको दीन-हीन समझना आत्महत्याके समान है, उसी प्रकार दूसरोंको तुच्छताका भ्रम कराना पाप है ।

बहुत-से शिक्षकों तथा माता-पिताओमें यह बुरी आदत होती है कि वे अपने बच्चो तथा शिष्योंकी तनिक-तनिक-सी भूलें निकाला करते हैं और विस्तारसे उनका वर्णन करते हैं । क्रोधसे कहते है, 'तुम यह काम न कर सकोगे । तुममें बुद्धि और प्रतिभा कहाँ है ? तुम्हारा जीवन तो बेकार है । तुम तो हमेशा नीचे ही पड़े रहोगे ।'

इन बुरे संकेतोंका कोमलमति सुकुमार हृदयोंपर या अल्पवयस्क किशोर-किशोरियोंके मनपर बहुत गहरा और हानिकर प्रभाव पड़ता है। बच्चे भावुक होते हैं, बातको पकड़ लेते हैं और उसे अनायास ही नहीं भूल पाते। वह संस्कार गहराईसे उनकी चेतनामें अंकित हो जाता है। परिणामस्वरूप वे निराश होकर बुरा बननेको कटिबद्ध हो जाते हैं अथवा अन्तश्चेतनाके इस कुसंस्कारके कारण निष्क्रिय विद्रोह करते हैं। किसी भी कामको आत्मविश्वासजनित उत्साहसे वे नहीं कर पाते। असफलता, निराशा, कसक और वेदनाके निश्चित चित्र, लोकनिन्दाका मिथ्या भय उनके मनकी दृढ़ता और कार्यकारिणी शक्तियोंको निर्जीव बनाता रहता है। फलत. उनकी शारीरिक, मानसिक, नैतिक शक्तियोंकी उन्नतिका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और जीवन नीरस हो जाता है। यह है आपके द्वारा दूसरेको तुच्छताका भ्रम करानेका दुष्परिणाम। अतएव यह प्रतिज्ञा कर लीजिये कि चाहे कुछ भी हो, आप निन्दाके विषाक्त व्यंग्य-बाण न चलाकर किसीका भविष्य अन्धकारमय नहीं बनायेंगे।

जैसा तुच्छ, दीन, हीन, निर्बल या घृणित आप अपने-आपको समझते हैं, वैसे ही अलक्षित गुप्त मानसिक वातावरण आपके इर्द-गिर्द निर्मित होता है; वैसी ही आपकी शक्ल-सूरत, मनोभाव, कार्य और चरित्रका निर्माण होता है। वैसे ही चरित्रवाले व्यक्ति आपके चारो ओर आकर्षित होकर आते हैं। आपके गुप्त विश्वासो, संकल्पो, मन्तव्योंसे आपके आन्तरिक जगत्‌का निर्माण होता है और उन्हींके अनुसार बाहरी परिस्थितियोंका निर्माण होता है। बाहरी

दुनियाँ आपकी आन्तरिक दुनियाँका चित्र मात्र है। आपके मनमें जैसी भावनाएँ घुमड़ती हैं बाहरी परिस्थितियाँ उन्हींके अनुकूल तैयार होती है। दीन-हीन भाव रखनेसे शरीर, मन और आत्माका विकास रुक जाता है। जैसे रक्तमें विषैले प्रभाव बढ़ जानेसे शरीरमें फूट निकलते हैं, उसी प्रकार आत्महीनताके भय, संदेह, अविश्वास, असंतोष, रोष, ईर्ष्या, प्रतिशोध और प्रतिस्पर्धाके विषैले मनोभाव भयंकर रूपमें फूट पड़ते है। रक्तमें जिस प्रकार जबतक विष है, तबतक नीरोगता नही रह सकती, इसी प्रकार अन्यायमूलक हीनत्वकी दुर्भावनासे मानसिक स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है।

अपना जैसा अच्छा या बुरा मानस-चित्र आप अपने अन्तः-करणमें निर्माण करते हैं, वही आपका यथार्थ रूप हो जाता है। यदि आप अपने-आपको संसारमें निम्न पाते है, दब्बू पाते है, दूसरोंसे अन्यायपूर्वक दबते हुए पाते हैं, तो इसके उत्तरदायी आप स्वयं ही है। बाह्य शक्तियाँ आपके ऊपर इतना प्रभाव नहीं डालती, जितना आपके अपने गुप्त मनोभाव, आन्तरिक कल्पनाएँ, मानसिक चिन्तन और विचार डालते हैं। अपने चारों ओर जो वातावरण आप देखते है, वह स्वयं आपके मानसिक जगत्‌की ही प्रतिच्छाया है। दोषी आप स्वयं ही है, बाह्य जगत् नहीं। मनमें हीनत्वकी बुरी भावना रखकर ही आपने अपनी यह अधोगति की है, आप इस दयनीय स्थिति तक गिर गये हैं और अपनी आत्माका तिरस्कार किया है। इस घृणित दलदलसे आज ही अपनेको निकालिये।

क्या हुआ यदि आपके पास धन नहीं है। संसारके अनेक

महान् व्यक्ति बिना धनके पूज्य हुए। धनका महानतासे बहुत कम सम्बन्ध है। क्या हुआ यदि आपके पास आलीशान मकान, तड़क-भड़कके वस्त्र, आभूषण, मोटर, बँगला आदि विलासके साधन नहीं हैं। संसारमें बहुत कम ऐसे व्यक्ति हैं जिनके पास ये सब है। क्या हुआ आप कुरूप हैं। महानता रूपमें नहीं है। यदि बाहरी रूपसे ही कोई ऊँचा उठा करता, तो वेश्याएँ पूज्य होती और प्रतिष्ठित समझी जातीं। लेकिन नहीं; यह कभी नहीं हुआ। वे कभी प्रतिष्ठित नहीं समझी गयीं। चरित्रशीलता, विद्वत्ता, ठोस कार्य, परिश्रम, इन्द्रिय-निग्रह आदि ऐसी विभूतियाँ हैं जिनसे महानता प्राप्त होती है और मनुष्य प्रतिष्ठित समझा जाता है।

आचार्य श्रीराम शर्माने सत्य ही लिखा है कि 'मनुष्य अनन्त ईश्वरीय शक्तियोंका महाभण्डार है। उसके अंदर ऐसी महानता संनिहित है, जिसके एक-एक कणद्वारा एक-एक जड-जगत्‌का निर्माण हो सकता है। जितना बल उसके अंदर मौजूद है, उसका लाखवाँ भाग भी वह अपने प्रयोगमें नहीं ला पाता।'

इस छिपे हुए महाभण्डारमें अगणित अतुलित रत्न-राशि छिपी पड़ी है। जो कोई इसमेंसे जितना निकाल लेता है, वह उतना ही धनी बन जाता है। परमात्माका अमर राजकुमार अपनेमें अपने पिताकी सम्पूर्ण दिव्य शक्तियोंका सच्चा उत्तराधिकारी है। इच्छा और प्रयत्न करनेपर सब कुछ उसे मिल सकता है। कोई भी दिव्य गुण ऐसा नहीं है, जो वह अपने परम पिताके खजानेसे न पा सके। जितनी सिद्धियाँ अबतक सुनी गयी है या देखी गयी है, वे सब बहुत थोड़ी

हैं; अभी इनसे भी अनेकगुनी, अनन्तगुनी शक्तियाँ छिपी पड़ी है। जब मनुष्य विकसित होते-होते परमात्माको प्राप्त कर सकता है, स्वयं परमात्मा बन सकता है, तो उन सब महानताओं और शक्तियोंको भी प्राप्त कर सकता है, जो परमात्माके हाथमें है। सिद्धियाँ असम्भव हैं, ऐसा कहना भ्रममूलक है। एक-से-एक आश्चर्यजनक चमत्कारी कार्य मनुष्योंके द्वारा हुए हैं, हो रहे हैं और आगे भी होंगे।

आपकी क्षमताओ, आपकी योजनाओं, आपके गुणों और आपकी शक्तियोंकी सम्भावना इतनी ऊँची है कि साधारण बुद्धिसे उनकी कल्पना सम्भव नहीं है। हरएक असम्भव बात मानव-प्रयत्नके द्वारा सम्भव हुई है और आपके सम्बन्धमें भी अवश्य सम्भव हो सकती है।

आप अपनी उन्नति चाहते हैं, दुनियाँमें सम्मान चाहते है, आत्मसंतोष चाहते हैं तो गुप्त विचारोंको आजसे ही बदल दीजिये। मानसिक दृष्टिसे अपने हितैषी बनिये अर्थात् अपने विषयमें उच्च नैतिक बौद्धिक मनोधारणाएँ और नये विश्वास ही जमाइये। दूसरोंके अनिष्टकर सकेतोंको कदापि स्वीकार मत कीजिये। जितना दूसरोकी बेइज्जती करनेमें पाप है, उससे अधिक अपनी बेइज्जती करनेमें पाप है।

निश्चय जानिये, आप तुच्छ नही हैं। आप परमात्मस्वरूप है। आप महान् शक्तियोंके स्वामी है। आप उन्नतिके लिये बने हैं। आप स्वाधीन है। आप उन सिद्धियोके स्वामी हैं, जो दुनियाँको आश्चर्यमें डालनेवाली हैं।

आपकी अपने प्रति जैसी श्रद्धा है, वैसा ही रूप बननेवाला है। आत्मश्रद्धा ही निर्माण करनेवाली महाशक्ति है। अपनी श्रद्धा अर्थात् अपने विषयमें जैसी भी धारणा है, वही आपके स्वरूपका, आपकी शक्तियोंका, आपके चरित्रका निर्माण करनेवाली है। आत्म-श्रद्धा ही वह आधार है जो आपको ऊँचा उठानेवाली है। अतः खोयी हुई आत्मश्रद्धाको एक बार फिर जगाइये।

भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु॥
सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

(अध्याय १७, श्लोक २, ३)

'मनुष्योंकी वह बिना शास्त्रीय संस्कारोंके केवल स्वभावसे उत्पन्न हुई श्रद्धा सात्त्विकी, राजसी और तामसी ऐसे तीन प्रकारकी होती है। हे भारत! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है इसलिये जैसी जिसकी श्रद्धा है, वैसा ही उसका स्वरूप भी है।'

श्रद्धा व्यक्तिके चरित्रको प्रकट करती है। ईश्वरमें, उनकी कृपामें, उनके नामकी शक्तिमें सच्चा, पूर्ण, जीवन्त और अटल श्रद्धा रक्खो। ध्यान करो और अपनेको दिव्य प्रकाशकी ओर अनावृत कर दो।
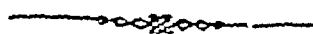
दुर्बलता एक पाप है

हिंदूधर्ममें तीन शक्तियों—लक्ष्मी, सरस्वती तथा दुर्गामें गुप्त-रूपसे धन, ज्ञान और शारीरिक शक्तियोंकी साधना करनेका गुप्त संकेत छिपा हुआ है। हिंदूधर्ममें शक्तिका बड़ा महत्त्व है। दुर्बल-को मुक्ति नहीं मिलती। जबतक साधक शक्तिमान् न बने, तबतक उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। शक्तिमान्का ही संसारमें आदर होता है। शक्तिकी इतनी उपयोगिता देखकर ही हमारे यहाँ शाक्त-धर्मतक-की स्थापना हुई है। शक्तिकी देवीको महत्त्व प्रदान करनेके लिये उनके नाना नाम रक्खे गये—दुर्गा, देवी, चण्डी, काली, भवानी। उन्हे असुरोंको पराजित करनेवाली देवी माना गया है। वे धर्मकी

स्थापनाके लिये युद्ध करती और अत्याचार, अन्याय, विलास और कामुकताका विनाश करती हैं। तात्पर्य यह है कि इन सब रूपोंके विधानमें शक्तिके नाना रूपोंका महत्त्व जनताके हृदयतक पहुँचाया गया है। एक युग था जब भारतवासी सुशिक्षित थे और इन प्रतीकों-का अर्थ समझते थे। खेद है कि अब इनका गुप्त भेद विस्मृत हो गया है और केवल बाह्य पूजाकी भावनामात्र शेष रह गयी है, फिर भी इससे शक्तिका महत्त्व स्पष्ट हो जाता है!

बलवान् बनो! शक्तिकी पूजा करो। जब हम यह सलाह देते हैं, तो हमारा गुप्त मन्तव्य यह होता है कि दुर्बल मत बनो। कमजोर मत बनो! जिधरसे कमजोरी आती है, उधर ध्यान दो और निर्बलताको दूर भगाओ। अपने शरीर, मन, आत्मामें शक्ति भर लो।

संसारमें अनेक पाप हैं। आप गौको मार देते हैं, तो गोहत्या-का जघन्य पाप आपके सिरपर पड़ता है। किसी बच्चेको मार देते हैं, तो बालहत्याके अपराधी होते हैं। किसी ब्राह्मणका वध कर डालते हैं, तो ब्रह्महत्याका पाप लगता है। इसी प्रकार हमारे शास्त्रोंमें अन्य भी अनेक पापोंका उल्लेख है, किंतु एक बहुत बड़ा पाप दुर्बलता है। शरीर, मन या आत्माका कमजोर होना मनुष्यका बहुत बड़ा पाप है। इसका कारण यह है कि दुर्बलताके साथ अन्य भी समस्त पाप एक-एक करके मनुष्यके चरित्रमें प्रविष्ट हो जाते हैं। दुर्बलता सब प्रकारके पापोंकी जननी है।

यदि आप दुर्बल हैं, शरीरसे कृशकाय और मनमें साहसविहीन हैं, तो अपने या अपने परिवार-पड़ोस इत्यादिपर किये गये अत्याचार-

को नहीं रोक सकते, न उसके विरुद्ध आवाज ही उठा सकते हैं। पातकी वह है, जो अत्याचार सहता है; क्योंकि उसकी कमजोरी देखकर ही दूसरेको उसपर जुल्म करनेकी दुष्प्रवृत्ति आती है।

मनुष्यो! दुर्बलतासे बचो! दुर्बलतामें एक ऐसी गुप्त आकर्षण-शक्ति है, जो अत्याचारीको दूरसे खींचकर आपके ऊपर अत्याचार करानेके लिये आमन्त्रित करती है। मजबूत तो हमेशा ऐसे कायरकी तलाशमें रहता है। वह प्रतीक्षा करता रहता है कि कब अवसर मिले और कब मै अपना आतंक जमाऊँ। दूसरे शब्दोंमें यदि आप निर्बल न रहे, तो सबलको अत्याचार करनेका प्रलोभन ही न हो, बेइन्साफीको पनपनेका अवसर ही प्राप्त न हो। जहाँ प्रकाश नहीं होता, वहाँ अन्धकार अपना आसन जमाता है। इसी प्रकार जहाँ निर्बलता, अशिक्षा, अंध रूढ़िवादिता या किसी प्रकारकी कमजोरी होती है, वहींपर अत्याचार और अन्याय पनपता है।

शक्ति ऐसा तत्त्व है, जो प्रत्येक क्षेत्रमें अपना अद्भुत प्रकाश दिखाता है और संसारको चमत्कृत कर देता है। व्यापार, शिक्षा, स्वास्थ्य, योग्यता—चाहे किसी क्षेत्रमें आप शक्तिका उपार्जन प्रारम्भ कर दें, आप प्रतिभावान् बन जायँगे।

एक विद्वान्के ये वचन अक्षरशः सत्य हैं—'शक्तिकी विद्युत्-धारामें ही बल है कि वह मृतक व्यक्ति या समाजकी नसोंमें प्राण संचार करे और उसे सशक्त एवं सतेज बनाये।'

शक्ति एक तत्त्व है, जिसका आह्वान करके जीवनके विभिन्न

विभागोंमें भरा जा सकता है और उसी अङ्गमें तेज और सौन्दर्यका दर्शन किया जा सकता है। शरीरमें शक्तिका आविर्भाव होनेपर देह कुन्दन-जैसी चमकदार, हथौड़े-जैसी गठी हुई, चन्दन-जैसी सुगन्धित एवं अष्टधातु-सी नीरोग बन जाती है। बलवान् शरीरका सौन्दर्य देखते ही बनता है। मनमें शक्तिका उदय होनेपर साधारण-से-साधारण मनुष्य कोलम्बस, लेनिन, गाँधी-जैसी हस्ती बन जाते हैं और बड़े-बड़े महापुरुषोंके समान असाधारण कार्य अपने मामूली शरीरोंद्वारा ही करके दिखा देते हैं। बुद्धिका बल महान् है। तनिक-से बौद्धिक बलकी चिनगारी बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानोंकी रचना करती है और वर्तमान युगमें वैज्ञानिक आविष्कारकी भाँति चमत्कारिक वस्तुओंमें अनेकानेक वस्तुएँ निर्माण कर डालती है। अधिक बलका थोड़ा-सा प्रसाद हमारे आस-पास चकाचौंध उत्पन्न कर देता है। आत्माकी मुक्ति भी ज्ञान, शक्ति एवं साधनासे होती आयी है। अकर्मण्य और निर्बल मनवाला व्यक्ति आत्मोद्धार नहीं कर सकता। तात्पर्य यह है कि लौकिक और पारलौकिक सब प्रकारके दुःखद्वन्द्वोंसे छुटकारा पानेके लिये शक्तिकी ही उपासना करनी पड़ेगी।

शक्तिमान् बनिये। जीवनके हर क्षेत्रमें लोग पुकार-पुकारकर आपको शक्ति अर्पित करनेकी सलाह दे रहे हैं। जो जिस मात्रामें शक्ति प्राप्त कर लेता है, वह उतना ही समुन्नत समझा जाता है। उन्नतिका रहस्य शक्ति-संचयका ही मार्ग है।

भगवान् शंकराचार्यके ये वचन स्मरण रखिये, 'शक्तिके बिना (अर्थात् बलवान् बने बिना) शिवका स्पन्दन नहीं होता। शिवकी

उन्नति देहकी सहायतासे होती है, वैसे ही शिव-तत्त्वका स्पन्दन शक्तिद्वारा होता है। यदि भक्तिके बिना ईश्वर नहीं, तो शक्तिके बिना शिव नही मिलते—अर्थात् कल्याणका मार्ग प्राप्त नहीं होता। ब्रह्मप्राप्तिमें—आत्मिक उन्नतिमें भगवती आद्या-शक्तिकी सहायता आवश्यक है।'

मित्रो! आपके शरीरमें, मनमें, आत्मामें उच्च कोटिकी शक्तियाँ भरी पड़ी है। सतत परिश्रमसे इनका विकास कीजिये। ये अतीव आवश्यक है, ये आपकी वैयक्तिक सम्पत्तियाँ है। पर इनके अतिरिक्त दो शक्तियाँ और हैं, जिनकी आपको विशेष आवश्यकता है—(१) अर्थ-शक्ति, (२) संगठन-शक्ति। हम जिस युगमें रह रहे हैं, वह रुपये-पैसेका युग है। पैसेके बलसे समस्त उन्नतिके साधन सुख-समृद्धि इस भूलोकमें मिल सकती है। संगठन-बलमें गजबकी ताकत है। आज जो प्रान्त, जो देश संगठित है, वही शक्तिशाली है। एक-एक सूत मिलकर मोटी मजबूत रस्सी बनती है, एक-एक बूँदसे तालाब बनता है, एक-एक पैसेके संग्रहसे मनुष्य सम्पत्तिमान् बनता है; एक-एक व्यक्तिका बल संगठित होकर ग्यारह मनुष्योका बल बन जाता है। अतः सच्चे दिलसे, सच्चे कामोंके लिये, सद् उद्देश्यों-की प्राप्तिके लिये संगठित हूजिये। मित्रताएँ कायम कीजिये और जितने अधिक लोगोसे सम्भव हो एकता, मेल या सम्पर्क स्थापित कीजिये। बस, आप उसी अनुपातमें शक्तिशाली बन जायँगे। मेलसे एक ऐसा केन्द्र स्थापित होता है, जिसमें सब एक दूसरेको सेवा, सहयोग और सहायता देते है। इस पारस्परिक आदान-प्रदानसे

मनुष्यकी शक्ति बहुत बढ़ जाती है।

आचार्य श्रीराम शर्माजीके ये शब्द बहुमूल्य हैं—'जो व्यक्ति किसी विशेष दिशामें महत्त्व प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि अपने इच्छित मार्गके लिये शक्ति-सम्पादन करे। सच्ची लगन और निरन्तर प्रयत्न—यही दो महान् साधनाएँ हैं, जिनसे भगवती शक्तिको प्रसन्न करके उनसे इच्छित वरदान प्राप्त किया जा सकता है। आपने अपना जो भी जीवनोद्देश्य बनाया है, उसे पूरा करनेमें जी-जानसे जुट जाइये। सोते-जागते उसीके सम्बन्धमें सोच-विचार करते रहिये और आगेका मार्ग तलाश करते रहिये। परिश्रम, परिश्रम, घोर परिश्रम आपकी आदतमें शामिल होना चाहिये। स्मरण रखिये, अपना कोई भी मनोरथ क्यों न हो, वह शक्तिद्वारा ही पूर्ण हो सकता है। इधर-उधर बगले झाँकनेसे कुछ नहीं हो सकता।'

वेदोंने शक्ति-उपार्जनका दिव्य संदेश दिया था, जो आज भी इस भारतभूमिके कण-कणसे गुंजरित हो रहा है।

यजुर्वेदमें कहा गया है—'**क्षिपो मृजन्ति**' अर्थात् पुरुषार्थी लोग ही पवित्र होते हैं और पवित्र कार्य करते हैं।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसः। (शु० य० २५। २१)

अर्थात् बलवान् अवयवोंद्वारा ही ईश्वरकी उपासना करेंगे।

आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्यो अतिव्याधी महारथो जायताम्। (शु० य० २२। २२)

अर्थात् 'हमारे राष्ट्रमें शूरलोग उत्तम प्रभावशाली वीर बनें।'

उग्राय तपसे सुवृक्तिं प्रेरय।

'श्रेष्ठ बलके लिये उत्तम भाषण और उत्तम कर्म करो।'

आप्नुहि श्रेयांसमति समक्राम।

'हे मनुष्य! अपने समान लोगोंमें आगे बढ़ और श्रेयको प्राप्त कर।'

असश्चतः शतधारा अभिश्रियः (ऋ० ९।२९।२७)

'सतत परिश्रम करनेवालेको सैकड़ों प्रवाहोंसे यश प्राप्त होता है।'

दृते दृꣳह मां, ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्। ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्॥ (शु० य० ३६।१९)

'हे समर्थ परम दृढ़ परमेश्वर! मुझे दृढ़ बना दे, जिससे मैं तेरे संदर्शनमें, तेरी ठीक दृष्टिमें चिरकालतक जीता रहूँ। तेरे सम्यक् दर्शनमें दीर्घ आयुतक जीता रहूँ।'

अन्तमें एक बार फिर हम आपको यही सलाह देंगे कि इस संसारमें आप जहाँ हों, जिस परिस्थितिमें हों, जीवनके किसी क्षेत्रमें अग्रसर हो रहे हों, उसी प्रकारकी शक्ति अर्जन कीजिये। इस संसारमें दुर्बलता सबसे बड़ा महाघोर पाप है। दुर्बलको सब कोई दबाता है। कमजोर सर्वत्र नारकीय यन्त्रणाएँ भोगते देखे जाते हैं। यहाँतक कि निर्बलकी मुक्तितक नहीं होती—

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' (मु० उ० ३।२।४)

'यह आत्मा निर्बलोंको प्राप्त नहीं होता।'
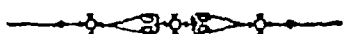
आप और आपका संसार

दार्शनिक स्पिनोज़ाने मनुष्यकी तुलना रेशमके कीड़ेसे की है। उनका कथन है कि जिस प्रकार रेशमका कीड़ा अपने चारों ओर एक छोटा-सा घर बुनता है और स्वयं उसके मध्यमें रहता है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपने इर्द-गिर्द विचारों, मान्यताओं, विश्वासो तथा शुभ-अशुभ भावनाओ और कल्पनाओंका एक अलक्षित मानसिक वातावरणका निर्माण करता है।

चाहे बाहर नगर और समाज कैसा ही क्यों न हो, व्यक्तिका यह मानसिक' भावात्मक और काल्पनिक संसार छायाकी तरह सदा-सर्वदा उसके चारो ओर लगा रहता है। जानकर अथवा अनजानमें वह सदैव इसी संसारमें सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, कसक, पीड़ा, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, शान्ति या असंतोषका अनुभव किया करता है।

मनुष्यके चारो ओर अलक्षित और सतत प्रभावित करनेवाला यह वातावरण क्या है? क्या हमारे घर-बार, वस्तुएँ, व्यक्ति अथवा नाना निकट सम्बन्धी इसका निर्माण करते हैं?

नहीं, हमारे मनमें रहनेवाले विचार, मान्यताएँ, जीवनसम्बन्धी मूल्य, हमारा आत्मबल और हमारे निश्चय ही वे मानसिक सूक्ष्म तत्त्व हैं, जो हमारे अलक्षित वातावरणमें विचरण कर हमारे संसारका निर्माण करते हैं।

मनुष्य स्वयं ही इस अलक्षित वातावरणका स्रष्टा है। वह एक ऐसा कलाकार है, जो चुपचाप बिना जाने-पहिचाने अपने चारों ओर सुखद, उत्साहप्रद अथवा दुःखद, परितापमय मानसिक वातावरणकी सृष्टि किया करता है। मानसिक वातावरणका प्रभाव रहस्यमय होता है। वह न वायुमें, न आकाशमें, न पातालमें, न घर-बार अथवा आसपासमें अथवा आसपास निवास करनेवाले व्यक्तियोंमें है, उसका केन्द्र प्रत्येक व्यक्तिके मस्तिष्कमें है, आत्मामें है।

कार्ट राइट नामक विद्वान्‌ने लिखा है—'हम सबके मनके भीतर ऐसी शक्ति है, जो कष्ट-क्लेशोंको दूर करती है; आशा-निराशा, उत्साह एवं वेदना देती है।'

स्वेट मार्डन लिखते हैं—'मनके हीन विचारोंके कारण ही हम दीन बने रहते हैं। दरिद्रतासे अधिक बुरा हमारा दरिद्रतापूर्ण विचार है; क्योंकि यह चारो ओर एक कुत्सित वातावरणकी सृष्टि करता है।

दैवी शक्ति जो हमारे ध्येयोंको निर्मित करती है, हमारे भीतर है और वह हमारी सत्, चित्, आनन्दमय आत्मा है। हमारा भाग्य हमारे विचारोंके साथ परिवर्तित होता रहता है। विचारोको स्वेच्छानुसार बदलकर हम जैसे चाहे बन सकते है।'

तो क्या हम अपने संसारका स्वयं निर्माण कर सकते हैं?

अवश्य । आप स्वयं अपने चारो ओर रहनेवाले इस अलक्षित मानसिक संसारके निर्माता हैं । जब चाहे यह कार्य प्रारम्भ कर सकते हैं । इस परिवर्तनका प्रारम्भ आप मनमें शुभ संकल्प और अपने प्रति हितैषी भावनाओंसे धारण करें । वेदमें कहा गया है—

'यद्भद्रं तन्न आसुव'—जो शुभ हो उसीकी हमारे लिये सृष्टि करें । 'श्रद्धे श्रद्धापयेह नः'—श्रद्धे हमें श्रद्धा-सम्पन्न बनाओ । हम अपने मनको अपवित्र, अहितैषी घातक विचारोंसे रोकें और आत्म-बलसे पूर्ण पवित्र हितैषी, उन्नति और प्रेमपूर्ण सद्भाव धारण करें ।

'सत्यपूतां वदेद्वाचं'—वाणीको सत्यद्वारा शुद्ध करके बोलें । दूसरोंसे ऐसा ही व्यवहार करे ।

अपने विषयमें हितैषी भावनाएँ रक्खें । अपनेको ईश्वरका दिव्य रूप समझें, अपनी निन्दा या अपमान न करें; क्योंकि अपनी निन्दा-का दूसरा मतलब अपनी आत्मा ईश्वरका अपमान है ।

आपके विचार जितने शुभ, सात्त्विक, आशावादी होते चलेंगे और हितैषी भावनाओंसे जितने स्निग्ध बनेंगे, उतना ही उत्तम आपका संसार होगा ।

आपका अधिक बल क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष और दूसरोंसे प्रतिशोध लेनेकी कटु भावनामें क्षीण होता है । यह न केवल अस्वास्थ्यकर और हानिकर है, प्रत्युत आपके संसारको भी रोग-शोकमय बनाने-वाला है । तेज और मुखकान्तिको नष्ट करनेवाला है । अतः ईर्ष्या, द्वेष, निन्दा, घृणा-जैसे विषैले तत्त्वोंको मनमें स्थान न दें ।
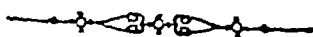
अपने वास्तविक स्वरूपको समझिये

मानव-जगत्‌का एक विशाल भाग इस कारण अधोगतिको प्राप्त हो रहा है कि उसे जो कार्य सम्पादन करना चाहिये, वह नहीं करता। अहो! शोक है कि हम पूर्ण परिपक्व और बुद्धिमान् होकर भी उस मार्गका अनुसरण नहीं करते, जो कल्याणकारी है और जो जीवनमें सुखकी वृद्धि कर सकता है। थोड़े-से मोहके चक्करमें फँसकर हम अयोग्य कार्योंकी ओर प्रेरित होते हैं, उन्हें ही वास्तविक उन्नतिका मूल समझ अपने वास्तविक स्वरूपको भूले रहते हैं। माया-मोहका जाल हमें अविवेककी गलियोंमें इधर-उधर भटकाया करता है। इसी भोग और ऐश्वर्यमें हम निज जीवनकी इतिश्री कर देते हैं। कभी गहराईमें उतरकर आत्म-तत्त्वपर विचार नहीं करते। उफ! यह हमारी कैसी मूढ़ता है!

अनेक व्यक्ति इसी कारण उन्नति नहीं कर सके; क्योंकि उन्होंने अपने-आपको समझनेका प्रयत्न नहीं किया। वे स्वयं ही एक विषम प्रहेलिका बने हुए हैं। उन्होंने स्वयं अपनेको

ऐसे बन्धनोंसे जकड़ रक्खा है कि इधर-उधर हिलने-डुलने, फैलनेके सब अवसर खो दिये हैं । वे अपने चारों ओर ऐसी दीवारें खड़ी किये हुए हैं कि उन्हें उन्मुक्त वायु उपलब्ध नहीं होती । मायाकी सृष्टि करनेवाली महान् शक्तिने प्रत्येक व्यक्तिके अन्तरमें एक ऐसी निगूढ इच्छाकी रचना की है, जिसका अनुसरण करनेसे वह अपने लक्ष्यपर शीघ्र पहुँच सकता है । यदि हम अत्यन्त एकाग्र होकर श्रद्धासहित इसे श्रवण करनेका प्रयत्न करें तो यह ईश्वरीय इच्छा स्फुरणके रूपमें हमें अवश्य प्रतीत होगी । सम्पद्में, विपद्में तथा प्रतिकूलताओंसे आबद्ध रहनेपर हमारी रक्षा करेगी और सदा-सर्वदा सन्मार्ग प्रदर्शित करती रहेगी । अन्तरात्माकी दिव्य प्रेरणामें बड़ा भारी बल है; जो भौतिक अवस्थाओंकी किञ्चित् भी परवा नहीं करता । जो व्यक्ति संसारके भोग-विलासकी प्रेरणाका निरस्कार कर परमेश्वरको सर्वत्र उपस्थित मानता हुआ अन्तःप्रेरणाके मार्ग-पर आरूढ़ रहता है, उसे सहारेके लिये किसीका हाथ पकड़ने या टेकनेके लिये लाठी माँगनेकी आवश्यकता नहीं है ।

सफल जीवन व्यतीत करनेके अभिलाषीको तीन तत्त्वोंका अध्ययन करना अपेक्षित है । ईश्वरको प्रत्यक्ष करनेके हेतु उसे प्राचीन धर्मग्रन्थ, सृष्टि और अध्यात्मकी खोज करनी चाहिये । अपने-आपको पहचाननेके लिये उसे अपनी आत्मा, मनोवृत्तियाँ, स्वभाव तथा विचारोंका निरीक्षण करना चाहिये तथा अपने निकटवर्ती व्यक्तियोंसे स्नेह करनेके लिये समभाव उत्पन्न करनेवाली पुस्तकोंका पठन-पाठन करना चाहिये । इस प्रकारके अध्ययनसे आशा, विश्वास तथा उत्कृष्ट मानस स्थिति प्रकट होगा ।

इन तीनों विषयोंमें अपना अध्ययन सबसे अधिक महत्त्वका है। इसी कारण प्राचीन ग्रीक लोगोंने Know Thyself (अपने आपको पहचानो)—इसपर विशेष जोर दिया है।

जीवनमें अनेक बार ऐसे विषम अवसर उपस्थित होते हैं, जब मनुष्य यह निश्चय नहीं कर पाता कि वह क्या करे, किस ओर प्रवृत्त हो। ऐसे अवसरपर अन्तरात्माकी प्रेरणा ही सच्चे पथ-प्रदर्शकका कार्य करती है। जो मूढ़ व्यक्ति अपनी इस दिव्य शक्तिको जाग्रत् नहीं करते वरं अन्तर्ध्वनि होते ही उसका गला घोट देते हैं, उनमें यह निस्तेज हो जाती है। ऐसे मनुष्यका कोई स्वतन्त्र विचार नहीं होता, उनका विकास भी रुक-सा जाता है। ऐसे लोग साधारणतः खा-पकाकर ही जीवन-लीला समाप्त कर दिया करते हैं। वे उसी नारकीय स्थितिमें पड़े रहते हैं, जिसमें वे जन्म लेते हैं।

हे अविनाशी आत्माओ ! तुम्हारे जीवनका ध्येय केवल खा-पकाकर जीवनकी इतिश्री कर देना ही नहीं है। तुम इस अस्थि-चर्मयुक्त शरीरमें प्रतीत होनेवाले क्षणिक आवेशोंके झमेलोंमें फँसे रहनेके लिये नहीं बने हो। तुम इस चञ्चल एवं अस्थिर मनकी छीना-झपटीमें लगे रहनेके हेतु पृथ्वीपर नहीं आये हो। तुम्हारा जन्म स्वेच्छानुसार निरङ्कुश होकर विषय-वाटिकामें विचरनेके लिये नहीं हुआ है। तुम अपनी इन्द्रियोंके दास नहीं हो। तुम्हारी आदतें तुम्हें अपने हाथका खिलौना नहीं बना सकतीं। निम्न प्रवृत्तियोंमें इतनी शक्ति नहीं कि वे तुम्हारे ऊपर शासन कर सकें। प्रकृतिने तुम्हें यथेष्ट साधन अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये

प्रदान किये है। तुम जितना उच्च बनना चाहो, बन सकते हो। अपनेको दीन-हीन माननेसे तुम अपने उज्ज्वल भविष्यको कालिमामय बनाते हो। उठो, जाग जाओ और निज महत्ताको पहचानो। अपना अध्ययन करो। मनसे अलग होकर निरन्तर अपने मनके कार्योंको सूक्ष्म रीतिसे देखो। यह मनकी उछल-कूद ही तुम्हें अस्त-व्यस्त करती है—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

(गीता ६। ३४)

विचारोंको उत्पन्न करनेवाली कल्पनाशक्ति मनकी सर्जनशक्ति है—यदि तुम्हें उत्कृष्ट, स्वस्थ एवं दिव्य-विचारका सर्जन करना है और विशेष विशाल वस्तुओंकी रचना करनी है, तो तुम्हें अपनी कल्पनाशक्तिको निर्मल, हितकारक तथा विस्तृत बना लेना चाहिये। जब तुम स्वयं अपने विषयमें खोज करने निकलो तो आत्मतत्त्वको समझनेमें, खोजनेमें और प्राप्त करनेमें तत्परतापूर्वक जुट जाओ। तुम दैवी अशयुक्त सत्, चित्, आनन्द हो। अपने असली स्वरूपको हृदयङ्गम करो। निष्फलता, आधि-व्याधियाँ अधिकांशमें निम्न विचारों, दूषित कल्पनाओंके ही फल हैं। अतएव अपने वास्तविक स्वरूपकी खोज करते समय कल्पनाशक्तिको पूर्णरूपसे निरामय रखनेके हेतु तुम्हें भय, क्रोध, तिरस्कार, शङ्का तथा अन्य दुर्विचारमय मानसिक स्थितियोंका परित्याग करना होगा।
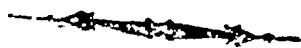
तुम अकेले हो, पर शक्तिहीन नहीं !

पक्षी फल न रहनेपर वृक्षको छोड़ देते हैं, सारस जल सूख जानेपर सरोवरका परित्याग कर देते हैं, मृग दग्ध वनको छोड़कर भाग जाते हैं, वेश्या मनुष्यको तभीतक प्रेम करती है जबतक उसके पास धन रहता है, मन्त्री-गण श्रीहीन राजाको छोड़ देते हैं, आपको अपना मित्र कहनेवाले व्यक्ति आपत्तिकाल आनेपर हाथ झाड़कर दूर खड़े हो जाते हैं। परिवारके व्यक्तितक जब उनका स्वार्थसिद्ध नहीं होता, तो मनुष्यका परित्याग कर देते है। सब लोग सांसारिकता, मिथ्या प्रदर्शन तथा झूठे सम्बन्धोंमें स्वार्थवश प्रेम करते हैं। वास्तवमें कौन किसका प्रिय है ? तुम अकेले हो !

कितने ही व्यक्ति इस संसारका यह अकेलापन न जानकर दूसरोंसे कटु या असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार पाकर बड़े दुखी होते हैं। माता-पिता अपने पुत्र-पुत्रियोंकी गलतियाँ गिनाते हैं, उपदेशक अपने श्रोताओंकी, दूकानदार अपने ग्राहकोंकी खराबियाँ बखानते हैं, लेकिन ससारके अकेलेपनका अनुभव नही करते। जो व्यक्ति दूसरोंसे अनावश्यक झूठी आशाएँ लगाये रहते है, वे निराश होकर अन्तमें संसारकी कठोरताका अनुभव करते हैं।

अमुकको हमने पढ़ाई करायी थी, वह अब हमारी सहायता करेगा, अमुकसे हमें ऋण प्राप्त हो जायगा, अमुक चीज हमने माँगी हुई दी है, अब वह दुगुनी वापस आ जायगी। ये आशाएँ प्रायः पूर्ण नहीं होतीं।

लोग अपने दुःखों, तकलीफों तथा कठिनाइयोंके कटु अनुभव दूसरोंको सुनाते नहीं थकते। अपने ये अनुभव सुनाकर वे यह आशा लगाये रहते हैं कि दूसरे उनसे सहानुभूति प्रदर्शित करेंगे, रुपये-पैसेसे सहायता करेंगे, पुत्रीके लिये वर खोजनेमें मदद कर देंगे। ऐसी आशाएँ संसारकी कठोर चट्टानोंपर टकराकर चूर-चूर हो जाती हैं।

किसे पड़ी है कि आपके आँसू पोंछे! किसे आपकी हृदय-विदारक यन्त्रणाएँ सुननेका अवकाश है? किसके पास इतना रुपया है कि आकर आपके ऋणको उतार देगा और आपकी जीविकामें सहारा लगायेगा! कौन आपकी पुत्रीके लिये वर तलाश करनेका सरदर्द मोल लेगा? कौन बैठे-बिठाये व्यर्थ आपकी समस्याओंमें उलझेगा?

आप अकेले हैं! आप कहेंगे कि आपके पिता, माता, पुत्र, भाई, बहिन, परिवार, कुटुम्बी तथा इष्ट-मित्र हैं, फिर हम क्योंकर अकेले हैं?

आपका तर्क ऊपरी दृष्टिसे ठीक है। तत्त्वकी तहमें जाइये तो आपको धीरे-धीरे उनका स्वार्थ दिखायी देने लगेगा। जबतक आपके द्वारा उनकी स्वार्थ-सिद्धि होती है, ऊपरी रिश्ता चलता है। जिस दिन यह स्वार्थ-रज्जु टूट जायगी, सब अलग हो जायँगे!

मनुष्यका अकेलापन इस बातसे प्रकट होता है कि वह इस पृथ्वी-पर अकेला ही आया है। अकेला ही माताकी गोदमें पलता रहा और बड़ा हो गया। बड़ा होनेपर उसे भाई-बहिन, माता-पिता-परिवार-का ज्ञान हुआ; किंतु फिर भी वह अनेक दृष्टियोंसे अकेला ही रहा।

अपने स्वास्थ्य, विचार, चुनाव इत्यादिके विषयमें वह अकेला है। जब आपके स्वास्थ्यमें विकार होता है तो कौन आकर अपना अङ्ग उधार दे सकता है ? आपके कान, नाक, मुँह, हाथ, पाँव बेकार होनेपर कौन उनकी जगह दे सकता है ? आपके पाप, पुण्य, उत्कर्ष या सत्कार्योंका भार आपको छोड़कर किसके अन्तःकरणपर हो सकता है ? आप जो असत्य भाषण करते हैं, उसके द्वारा होनेवाले मिथ्याचारका कौन उत्तरदायी है ? हठात् उत्तेजना या प्रमादवश जब आप कुछ नासमझीका कार्य कर बैठते हैं, तो उसके द्वारा आपपर आयी हुई आपत्तियोंके केवल आप ही जिम्मेदार हो सकते हैं।

अपने पापमें आप अकेले हैं ! अपने पुण्योंका सुख भोग करनेमें भी आप अकेले हैं। अपने जीवनके दुःख, तकलीफ, लाभ, हानि, ज्ञान, अज्ञान, धन, गरीबी, बन्धन, मोह, स्वतन्त्रता, रोग, शोक, विवेक-दृष्टि, मन्दमतिके आप अकेले ही जिम्मेदार है। दूसरोंको अपनी असफलताओंका कारण मत समझिये। स्वयं आपकी बुद्धि, मनोविकार, सूझ-बूझ ही आपकी सफलता-असफलताके लिये जिम्मेदार है।

यदि आप अकेले हैं तो घबराने, दिल छोटा करने, निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है। अकेले हैं, तो स्वयं अपने ऊपर भरोसा रक्खा कीजिये। अपने कार्यको दूसरेपर मत छोड़िये। 'मैं स्वयं ही इस कार्यको कर सकता हूँ। मेरे अंदर परमेश्वरकी शक्तियाँ जाग्रत् हैं। मैं ईश्वरीय नियमोंके अनुसार ही विश्वमें निज कर्तव्यकी पूर्ति कर रहा हूँ। मेरी शक्तियाँ असीम हैं।' इस भावनाको दृढ़ करनेकी आवश्यकता है।

तुम अकेले ही सब कुछ कार्य सफलतासे पूर्ण करनेमें सम्पन्न हो; तुम्हें किसीका आश्रय नहीं खोजना है। अनेक जन्मोंके उपरान्त इस परम पुरुषार्थके साधनरूप नरदेहको, जो अनित्य होनेपर भी परम दुर्लभ है, पाकर धीर पुरुषको उचित है कि स्वयं आगे बढ़ता रहे। दूसरोंका आश्रय ग्रहण करनेके लिये किसीकी प्रतीक्षा न करे।

तुम अकेले होते हुए भी परमेश्वरकी शक्तियाँ लेकर अवतरित हुए हो। तुम जगत्में व्याप्त हो। तुम ही जगत् हो, तुम्हीं ब्रह्म हो। तुम अजर, अमर, आत्मा हो; सच्चिदानन्द रूप हो, परमेश्वर तुममें बोलता है। तुम्हारे हृदय-मन्दिरमें विराजता है। प्रत्येक कीर्तनमें तुम्हारी प्रभुसे तदाकारवृत्ति होती है और प्रत्येक वृत्तिमें तुम्हें सच्चिदानन्दका अनुभव होता है। धैर्य जिसका पिता है, क्षमा माता है, नित्य शान्ति स्त्री है, सत्य पुत्र है, दया भगिनी है तथा मनःसंयम भ्राता है, ज्ञानामृत जिसका भोजन है, वह अकेला होकर भी निर्भय है, शक्तिमान् है।

तुम अकेले हो, पर शक्तिहीन नहीं! हे अविनाशी आत्माओ! तुम तुच्छ नहीं हो; कायर नहीं हो; तुम्हें कोई सता नहीं सकता। तुम्हें किसी अशक्तताका अनुभव नहीं करना है, कुछ माँगना नहीं है। तुम्हें आदिकर्ताने उन सभी शक्तियोंसे विभूषित करके पृथ्वीपर भेजा है, जिनके बलपर तुम आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकते हो?

'तुम अनन्त शक्तिशाली हो. तुम्हारे बलका पारावार नहीं। जिन साधनोंको लेकर तुम अवतीर्ण हुए हो वे अचूक ब्रह्मास्त्र हैं।

इनकी शक्ति अनेक इन्द्रबलोंसे अधिक है । सफलता और आनन्द तुम्हारे जन्मजात अधिकार हैं । उठो ! अपनेको, अपने हथियारोंको, भलीभाँति पहचानो और बुद्धिपूर्वक कर्तव्यमार्गमें अग्रसर होओ । दूसरे-की सहायता या प्रोत्साहनकी प्रतीक्षा मत करो । दूसरा कोई तुम्हारी सहायता नहीं करेगा । तुम स्वयं कल्पवृक्ष हो, पारस हो, अमृत हो और सफलताकी साक्षात् मूर्ति हो । तुम शरीर नहीं हो; जीव नहीं हो; वरं आत्मा हो, परम आत्मा हो । तुम इन्द्रियोंके गुलाम नहीं हो; गंदी वासनाएँ तुम्हे मजबूर नहीं कर सकतीं । पाप और अज्ञानमें इतनी शक्ति नही कि वे तुम्हारे ऊपर शासन कर सकें । अपनेको दीन-हीन, पतित, पराधीन और दूसरोंपर आधारित मानना एक प्रकारकी आत्महत्या है । हे महान् पिताके महान् पुत्रो ! अपनी महानताको पहचानो ! उसे समझने, खोजने और प्राप्त करनेमें तत्परतासे जुट जाओ ।'

अपनी वास्तविकताको पहचानना, अपनी कमजोरियों तथा शक्तियोंसे परिचित हो जाना ही स्वाधीनताका मार्ग है । गीताका यह वचन स्मरण रक्खो—

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

अर्थात् 'हमें स्वयं अपना उद्धार करना चाहिये । अपनी हिम्मत हम कभी न हारें, क्योंकि हमारी आत्मा ही हमारा मित्र है और हमारी आत्मा ही हमारा शत्रु है । कोई दूसरा शत्रु-मित्र नहीं है ।'

कथनी और करनी ?

(१)

कथनी मीठी खाँड सी, करनी विष की लोय ।
कथनी तज करनी करे, नारायण सो होय ॥

(२)

कहते तो करते नहीं, मुँह के बड़े लबार ।
तुलसी ऐसे नरन को, बार बार धिक्कार ॥

आचार्य श्रीराम शर्माके ये शब्द देखिये कितने मार्मिक हैं—
'कहीं आप भी तो शेखचिल्ली नहीं हैं ?'

एक शेखचिल्लीने मधुर कल्पनाओंमें मस्त होकर अपने सिरपर रक्खे हुए तेलके घड़ेको फोड़ दिया था और मजूरीके पैसे मिलना तो

दूर, उलटे लात-घूँसोंसे पिटा था। वह शेखचिल्ली कहता तो बहुत था, बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाता था, पर करता कुछ भी न था और उसकी बेवकूफीकी हँसी उड़ायी जाती थी। कहीं आप भी तो शेखचिल्ली नहीं हैं? हम देखते हैं कि हम सब भी प्रकारान्तरसे शेखचिल्लीका अभिनय कर रहे हैं। कहते बहुत हैं, योजनाएँ बड़ी-बड़ी बनाते हैं, पर व्यवहारमें कुछ भी नहीं लाते। वस्तुतः हम जहाँके तहाँ पड़े रह जाते हैं।'

वास्तवमें समस्या यह नहीं कि हमारे पास उपयोगी विचार या सुन्दर योजनाएँ न हों। हमें क्या करना चाहिये? किन बातोंसे बचना चाहिये? क्या उचित है, क्या अनुचित है? हम सब उस सम्बन्धमें बहुत कुछ जानते हैं। समस्या यह है कि अन्ततः हम कार्य कितना करते हैं। व्यवहारमें, उन्नतिकी योजनाओंको दैनिक जीवनमें कहाँतक उतारते हैं? नवीन विचारोंपर व्यवहार कितना करते हैं? जो हम सोचते हैं, क्या वह करते भी हैं। गुप्त भावनाओं-को कार्यरूपी प्राण कितना प्रदान करते है?

वास्तवमें हम शुभ योजनाएँ तो बहुत बनाते हैं। उत्तमोत्तम विचारोंसे प्रसन्न होते हैं, किंतु उनपर कार्य नहीं करते। यही दुर्बलता है। हमें विचारके पश्चात् सतत कार्य करना चाहिये। कार्यसे ही सिद्धि प्राप्त होती है। कार्य ही सफलताका मूल मन्त्र है।

मनभर ज्ञानसे एक सेर क्रिया अधिक है। मनुका वचन है—

मनःपूतं समाचरेत् ।

उन्नतिके लिये विचारपूर्वक कार्य करो। कार्यमें आलस्य करना मृत्युपद है।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।

मन, वाणी और कार्यमें जो एक हो, वही सच्चा महात्मा है। जो काम नहीं करते, जो कार्यके महत्त्वको नहीं जानते, कोरा चिन्तन-ही-चिन्तन करते रहते हैं, वे निराशावादी हो जाते हैं। कार्य करनेसे आपका विचार अपना पूर्ण स्वरूप प्राप्त करता है। पुष्पित फलित होता है—

शेक्सपीयरने एक स्थानपर कहा है—

'The flighty purpose never is overtook unless the deed go with it.' 'मनमें जो भव्य विचार या शुभ योजना उत्पन्न हो, उसे तुरंत कार्यरूपमें परिणत कर डालिये, अन्यथा वह जिस तेजीसे मनमें आया है, वैसे ही एकाएक गायब हो जायगा और आप उस सुअवसरसे लाभ न उठा सकेंगे।'

'काल्ह करे सो आज कर, आज करे सो अब्ब' वाली कहावतमे क्रियाशीलताका ही अमर संदेश छिपा हुआ है। जब कोई उत्तम योजना मनमे आये तो उसे कार्यान्वित करनेमें देरी नही करनी चाहिये, अन्यथा अन्य बहुतसे कार्य आ जायेंगे और वह भव्य विचार नष्ट हो जायगा। अपनी अच्छी योजनाओंमें लगे रहिये जिससे आपकी प्रवृत्तियाँ शुभ कार्योंमें लगी रहें। कथनी और करनीमें सामञ्जस्य ही आत्मसुधारका श्रेष्ठ उपाय है।

शक्तिका ह्रास क्यों होता है ?

यदि जीवन-यापन ठीक तरह किया जाय तथा जीवन-तत्त्वोंको ह्राससे बचाया जाय, तो मनुष्य दीर्घकालतक जीवनका सुख लूट सकता है। प्रत्येक व्यक्तिको उन खतरोंसे सावधान रहना चाहिये, जिनसे जीवन-शक्तिका ह्रास होता है। सर्वप्रथम मनुष्यकी शक्तिका ह्रास करनेवाली चीज अधिक भोग-विलास है। संसारके समस्त पशु-पक्षियोंकी प्रजनन-शक्ति अत्यन्त परिमित है। वे केवल आनन्द, क्षणिक वासनाके वशीभूत होकर रमण नहीं करते, विशेष ऋतुओंमें ही प्रजनन-कार्य होता है। प्रकृति उन्हें विवश करती है, तब उनका गर्भाधान होता है। आजके मानव-समाजने नारीको केवल वासना-तृप्तिका साधनमात्र समझ लिया है। पति-पत्नीके संयोगकी मात्रा अनियमित हो रही है। हम संतानोत्पत्तिका उद्देश्य, आदर्श तथा प्रकृतिका आदेश नही मान रहे हैं। फलतः समाजमें आयुष्य-हीन, अकर्मण्य, निकम्मे बच्चे बढ़ रहे है। इन्द्रियोंकी चपलता, कामुकता बढ़ रही है। अधिक भोगविलाससे मनुष्य निर्बल होते जा रहे है। कामुक और कामुकतामें लगे रहनेवाले जीव या व्यक्तियोंके बच्चे कभी बलवान्, आचारवान्, संयमी, धीमान्, विचारवान् नही हो सकते। प्रत्येक वीर्यका विन्दु शक्तिका विन्दु है। एक विन्दुका भी ह्रास शक्तिको नष्ट करना है। यदि शक्ति, जीवन तथा आरोग्यकी रक्षा करना चाहते हैं तो भोगविलाससे दूर रहिये।

शक्तिका ह्रास अधिक दौड़-धूपसे होता है। आधुनिक मनुष्य

जल्दीमें है। उसे हजारों काम हैं। प्रात:से सायंकालतक वह व्यस्त रहता है। उसका काम ही जैसे समाप्त होनेमें नहीं आता। बड़े नगरोंमें तो दौड़-धूप इतनी बढ़ गयी है कि मनुष्यको दम मारनेका अवकाश नहीं मिलता। वह क्लबों-होटलोंमें गपशप करता है, आफिसमें कार्य करता है, घरके लिये सामान लाता है, बाल-बच्चोंको मदरसे भेजता है, अस्पतालसे दवाई लाता है। यदि आप व्यापारी हैं तो व्यापारके चक्करमें प्रात:से सायंकालतक दौड-धूप करनी है। आजके सभ्य व्यक्तिको शान्तिसे बैठकर मनको एकाग्र करनेतकका अवसर नहीं मिलता। संसारके कोने-कोनेसे अशान्ति और उद्विग्नताकी चिल्लाहट सुनायी दे रही है। चित्तकी चञ्चलता इतनी बढ़ती जा रही है कि हम क्षुब्ध एवं संवेगशील बन रहे हैं। इस दौड़-धूपमें एक क्षण भी शान्ति नहीं। यदि हम इसी उद्विग्न एवं उत्तेजित अवस्थामें चलते रहे, तो जीवनमें कैसे आनन्द, प्रतिष्ठा एवं शान्ति पा सकते हैं। हमारे चारों ओरका वायुमण्डल जब विक्षुब्ध है, तो आत्माकी उच्चतम शक्ति क्योंकर सम्पादन कर सकते हैं। जो व्यक्ति शक्ति-संचय करना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि वे अधिक दौड़-धूपसे बचें, केवल अर्थ-उत्पादनको ही जीवनका लक्ष्य न समझें, शान्तिदायक विचारोंमें रमण करें। जिस साधकके हृदयमें शान्तिदेवीका निवास है, जिसके हृदयमें ब्रह्मनिष्ठा एवं संतोष है, उसकी मुखाकृति दिव्य आलोकसे चमकती है। जो ब्रह्मविचारमें लगता है, वह अपने आपको निर्बलता, प्रलोभन, पापसे बचाता है।

शक्तिके ह्रासका तीसरा कारण है अधिक बोलना। जिस

प्रकार अधिक चलनेसे जीवन क्षय होता है, उसी प्रकार अधिक बोलने, बाते बनाने, अधिक भाषण देने, बड़बड़ाने, गाली-गलौज देने, चिढ़कर काँव-काँव करनेसे फेफडे कमजोर बन जाते है। पुनः-पुनः तेज आवाज निकालनेसे फेफड़ोंका निर्बल हो जाना स्वाभाविक है। यही नहीं, गलेमें खराश तथा खुश्कीसे खाँसी उत्पन्न होती है? खाँसी बनी रहनेसे क्षयरोग होकर मनुष्य मृत्युका ग्रास होता है। प्रायः देखा गया है कि व्याख्याता, अध्यापक, लेकचरार, पतले-दुबले रहते है। यह शक्तिके क्षयका प्रत्यक्ष लक्षण है। अधिक बोलनेसे शारीरिक शक्तिका ह्रास अवश्यम्भावी है। यह अपनी शक्तिका अपव्यय है। अधिक बोलनेकी आदतसे मनुष्य बकवासी बनता है, लोग उसका विश्वास नहीं करते, ढपोरशंख कहते हैं। वह प्रायः दूसरोंकी भली-बुरी-खोटी आलोचना करता है, अनावश्यक बातें बनाता है, निन्दा करता है, अपनी गम्भीरता खो बैठता है। प्रायः ऐसा करनेवालोंका आदर कम हो जाता है। शक्तिको अपव्ययसे बचानेकी इच्छा रखनेवालोंको चाहिये कि मितभाषी बनें, मिष्टभाषी बनें। कम बोले; किंतु जो कुछ बोले, वह मनोहारी और दूसरे तथा अपने हृदयको प्रसन्न करनेवाला हो, सारयुक्त हो, शब्द-योजना सुन्दर हो, प्रेम तथा आनन्दका, आदर और स्नेहका परिचायक हो, शक्ति-संचयके लिये मितभाषी बनिये। अध्यात्म-चिन्तन, पठन-पाठन, अध्ययन, मौन, लिखना, मितभाषी बननेके सुन्दर उपाय है।

उन्नतिमें बाधक कौन ?

अमुक व्यक्ति हमारे कार्य, उद्देश्य और साधनोंसे ईर्ष्या-वैर करता है और हमारी उन्नतिमें बाधक हो रहा है । यदि अमुक व्यक्ति हमारी सिफारिश कर दे, तो हम उच्च पद प्राप्त कर लें । यदि पिछले जीवनमें हमें अमुक-अमुक सुविधाएँ प्राप्त हो जातीं, तो हम अवश्य उन्नति कर जाते । यदि हमारे पास पर्याप्त धन होता, तो हम उन्नतिके अनेक साधन एकत्रित कर लेते । संसारके स्वेच्छाचारने हमारी महत्त्वाकाङ्क्षाएँ कुचल दी हैं; हमारे उच्च अधिकारियोंने हमारी उन्नतिमें रोड़े अटकाये हैं । हमारा भाग्य खराब था, जो किसीने हमें आगे नहीं बढाया, जहाँ-का-तहाँ रक्खा । रोज तेल-लकड़ीकी जटिल गुत्थियोंमें ही हम अटके रहे । संसार और समाजने हमें निराशा, द्वन्द्व, उत्पीडन, जलन और अविश्वास ही दिया । इन-जैसे अनेक बाह्य कारणोंसे हम जो कुछ करना चाहते थे, जहाँ पहुँचना हमारा उद्देश्य था, वह पूर्ण नहीं हो सका ।

वास्तवमें ये विचार ऐसे कारण हैं, जो केन्द्रित होकर मनुष्यके

गुप्त मन, चरित्र और व्यवहारमें समा जाते हैं। संसारमें कोई भी आपकी उन्नतिमें बाधक नहीं है। बाधक कौन है ?

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता॥

अर्थात् निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता—ये चरित्रके छः दोष मनुष्यकी उन्नतिके बाधक हैं। अतः उन्नति चाहनेवाले पुरुषको इनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

निद्रा मनुष्यकी एक स्वाभाविक आवश्यकता है। छः-सात घंटेकी शान्त निश्चित निद्रा सभीको लेनी चाहिये; किंतु जब यह अधिक बढ़ने लगती है, तो अपने पाँव फैलाती ही जाती है। आठ, नौ, दस घंटेतक सोकर लोग बेकार नष्ट करते हैं। दिनमें अलग सोते रहते हैं। अधिक सोनेसे आलस्य एक जटिल आदतका रूप धारण कर लेता है। अधिक सोनेवाले बच्चे और व्यक्ति कभी भी फुर्तीले नहीं रह पाते। उनकी आँखोंमें सदा नींदकी खुमारी भरी रहती है। रातको देरतक मित्रोंमें गप्पे मारेंगे या सिनेमा देखेंगे। फिर सुबह आठ बजेतक सोते रहेंगे। दिनभर उनींदे रहेंगे। मन और शरीर भारी-भारी रहेगा। अतः उचित समयपर छः-सात घंटेकी नींद युवकोंके लिये पर्याप्त है। शेष समय काम करनेके लिये निकालना चाहिये। अधिक नींद एक तामसिक प्रवृत्ति है। उन्नतिके इच्छुकोंको व्यर्थकी निद्राका त्याग कर देना चाहिये।

निद्रा और पूर्ण जागरण अवस्थाके बीचमें जो ऊँघहि या हलकी बेहोशी होती है, जिसमें मनुष्यकी बुद्धि विवेकपूर्ण रूपसे काम

नहीं कर पाती, तन्द्रा कहलाती है। तन्द्रा मनुष्यकी वह अवस्था है, जिसमें नींद मालूम पड़नेके कारण मनुष्य कुछ सो जाय। तन्द्रामें वह व्यक्ति फँसा हुआ है, जो अल्पबुद्धिके कारण कार्य और साधना कुछ नहीं करता, श्रमसे दूर भागता है, पर मनमे यह समझता रहता है कि मै बहुत काम कर रहा हूँ। तन्द्रामें न फँसकर विघ्नोंको साहससे हटाते हुए खूब दृढ़तासे साधन और प्रयत्नमें लगे रहना चाहिये। उन्नतिका मार्ग सच्चा परिश्रम है। सच्चे परिश्रमके अभ्याससे शक्तियोंका विकास होता है। अभ्यासमें धैर्य रखना आवश्यक है। अभ्यास पूरी श्रद्धाके साथ निरन्तर दीर्घकालतक करना चाहिये। जबतक अभीष्ट वस्तु न मिले, अधिक निद्रा और तन्द्राको समीप न आने देना चाहिये। इनके आक्रमणसे न सांसारिक फल मिलता है, न परमार्थकी ही प्राप्ति होती है।

भय जीवनका शत्रु है। बीमारीका भय, गरीबीका भय. दिवाला निकलनेका भय, व्यापार-हानिका भय, परीक्षामें फेल होनेका भय, मृत्युका भय—मनुष्यका जीवन इन नाना भयोंसे भरकर चिन्ता उत्पन्न करता है। इससे निराशा उत्पन्न होती है, इन्द्रियोंका स्वाभाविक कार्य रुक जाता है, हृदयकी गति बढ़ जाती है, लार बनानेवाली झिल्लियाँ अपना नियत कार्य बंद कर देती हैं और मनुष्यकी उत्पादक शक्तियाँ नष्ट हो जाती है। मनमें रहकर गुप्त भय नाना मानसिक विरूपताओंमें प्रकट होता है। अतः अनुचित भय मनमेंसे निकाल देना चाहिये।

क्रोध हमारी उन्नतिमें बाधक है। कबीरजीने कहा है—

कोटि करम लागै रहैं, एक क्रोध की लार।
किया कराया सब गया, जब आया अहंकार ॥
दसों दिसासे क्रोध की उठी अपरबल आगि।
सीतल संगति साधु की तहाँ उबरिये भागि ॥

क्रोध आनेपर मौन ही रहना उचित है। जिसके प्रति क्रोध आया है, उसके समीप न रहिये। किसीके कुछ कहनेपर अथवा अन्य किसी कारणसे क्रोधके लक्षण दीखनेपर अलग जा बैठिये और राम-कीर्तन कीजिये।

महात्मा जेम्स एलनका विचार है कि मनुष्यका बहुत-सा बल क्रोधके उत्तेजनसे नष्ट हो जाता है। शरीरको भस्म करनेके लिये क्रोधसे बढ़कर अन्य कोई चीज नही है। क्रोधी मनुष्य दिन-रात अपनेको जलाता रहता है। सबेरेसे शामतक काम करके मनुष्य इतना नहीं थकता, जितना क्रोध अथवा चिन्ता करके थक जाता है। हमने देखा है कि कभी-कभी मनुष्य क्रोधके आवेशमें आकर बेहोश हो जाता है और आत्महत्या तक कर बैठता है।

गांधीजी कहा करते थे कि क्रोधके लक्षण शराब और अफीम दोनोंसे मिलते हैं। शराबीकी भाँति क्रोधी मनुष्य भी पहले लाल-पीला होता है; फिर आवेशके मन्द होनेपर भी क्रोध न घटा, तो वह अफीमका काम करता है और मनुष्यकी बुद्धिको मन्द बना देता है। अफीमकी तरह यह दिमागको कुरेद डालता है। क्रोधसे क्रमशः सम्मोह, स्मृतिभ्रंश और बुद्धिनाश माने गये हैं।

आलस्य या दीर्घसूत्रता मनुष्यकी शिथिलता और सुस्तीको बतानेवाली मानसिक अवस्थाएँ हैं। आलसीमें शक्तियाँ तो उतनी ही होती हैं, किंतु सुस्तीके कारण वह उनका पूर्ण उपयोग नहीं कर पाता। मनमें आया तीव्रतासे काम करने लगे, फुरसत मिली कुछ कर लिया। फिर आलस्यका प्रकोप हुआ, तो कई दिनोंतक कुछ भी साधना या श्रम नहीं किया। ऐसा व्यक्ति पूरी लगन और उत्साहसे काममें नहीं लगता। यदि दीर्घसूत्रता त्यागकर अध्यवसाय और लगनसे कार्य करे, तो वह निश्चय ही उन्नति कर सकता है।

कछुए और खरगोशकी पुरानी कहानी आपको स्मरण है। धीरे-धीरे चलनेवाला कछुआ और हवाकी तरह तीव्रगतिसे चलनेवाला खरगोश—दोनोंमें जमीन-आसमानका अन्तर था। खरगोशको निद्रा और आलस्यने पछाड़ दिया। 'मै वहुत आगे बढ़ आया हूँ। कुछ देर विश्राम कर लूँ, नींद ले लूँ। बादमें जल्दीसे आगे निकल जाऊँगा।'—यही सोचकर खरगोश एक नींद निकालने लगा। निरन्तर आगे बढ़नेवाला धीमा कछुआ उससे आगे निकल गया। खरगोश हार गया। कछुएमें प्रमाद नहीं था। आलस्यको उसने पास नहीं फटकने दिया। निद्राको त्याग दिया। सुस्तीके तामसिक दोषोंसे सजग रहा। फल यह हुआ कि उसने आलस्य-निद्रा-रत खरगोशको प्रतियोगितामें पछाड़ दिया।

विद्वान् श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारने इस दुर्गुणका उल्लेख करते हुए उचित ही लिखा है,—'आजकल लोगोंमें गाँजा-भाँग आदि पीने, व्यर्थ गप्पें मारने, इधर-उधरकी बातें करनेकी जो प्रवृत्ति देखी जाती

है, उसका प्रधान कारण यही है कि उनके पास समय बहुत है, पर काम नहीं है; इसीसे कुसंगतिमें पड़कर वे लोग नाना प्रकार-के बुरे व्यसनोंके वश हो जाते हैं। अमीरोंके लड़के ज्यादा बिगड़ते हैं; क्योंकि उनके पास समय बहुत रहता है, पर काम नहीं रहता। समय बितानेके लिये उन्हे व्यर्थके काम करने पड़ते हैं। नहीं तो क्या मनुष्य-जीवनका अमूल्य समय ताश, चौपड़, शतरंज खेलने, व्यर्थकी गप्पे उड़ाने, तीतर-बटेर लड़ाने, पर-चर्चा करने, दिनभर सोने, प्रमाद करने और पापोंके बटोरनेके लिये थोड़े ही मिला है ? अतएव साधकको चाहिये कि किसी-न-किसी जिम्मेदारीके कार्यमें अपनेको अवश्य लगाये रक्खे। वह काम परो-पकारका हो या घरका हो, ईश्वरार्पित-बुद्धिसे आसक्ति छोड़कर किये जानेवाले सभी सत्कार्य ईश्वर-भजनमें शामिल हैं। काममें लगे रहनेसे मनको व्यर्थ चिन्तन या प्रमादके लिये समय नहीं मिलेगा। काम करते समय ईश्वर-चिन्तन नहीं छोड़ना चाहिये।'

दीर्घकाल साधन, निरन्तर उद्योग, अपनी शक्तियोंमें श्रद्धा, पापोंसे सावधानी, प्रभुपर विश्वास वे गुण हैं, जिनसे साधारण व्यक्ति भी समुन्नत हो सकता है। ईश्वरकी इच्छा है कि मनुष्य आगे बढ़े, विकसित हो और निरन्तर उन्नति करता चले। प्रकृति-का हर एक अणु-परमाणु, पशु-पक्षी आगे बढ़ रहा है। उन्नति-पथपर निरन्तर आगे बढ़नेकी क्षुधा ईश्वरप्रदत्त है। उसे पूरा कीजिये। विकसित हूजिये।

अभावोंकी अद्भुत प्रतिक्रिया

अंग्रेज उपन्यासकार चार्ल्स डिकेन्स अपने हाथोंकी अँगुलियोंमें कई अँगूठियाँ पहिनता था। प्रायः आभूषण धारण कर वह मन-ही-मन अपनी महत्ताकी धाक आस-पासवालों और मित्रोंपर जमाया करता। मनोविज्ञानवेत्ताओंने जब उसके मनका अध्ययन किया, तो ज्ञात हुआ कि यह उसके प्रारम्भिक गरीबी और अभावोंके जीवनकी एक प्रतिक्रिया मात्र थी। सम्पन्न होनेपर भी वह इस समृद्धिके प्रदर्शनमें दिलचस्पी लेता रहा। उसका गुप्त मन यह नहीं चाहता था कि कोई उसे दीन-हीन या गरीब कहे।

प्रारम्भिक जीवनमें वस्त्रों या आभूषणोंका अभाव पानेवाली नारियाँ प्रायः सस्ती सिल्क या रंग-बिरंगे वस्त्रों और नकली गहनोंसे अपनेको सुसज्जित रखनेका प्रयत्न करती हैं। इसी प्रकार इत्र-फुलेल, अधिक बनाव-शृंगार भी पुराने अभावोंको ढकनेके विविध प्रयत्न हैं।

जिन बच्चोंको स्वच्छन्दता, प्रेम या सहानुभूतिका अभाव मिलता है, या जिन्हें कोई पर्याप्त प्यार और स्नेह नहीं देता, वे बड़े होकर उद्दण्ड, जिद्दी, झगड़ालू और दूसरोंपर अत्याचार करनेवाले बनते पाये गये हैं। जीवनभर वे दूसरोंसे अपने प्रति किये गये नाना दुर्व्यवहारोंका बदला निकालते रहते हैं।

जो बहू सासके अत्याचारोंको सहती रहती है, वह स्वयं बड़ी होकर जब सासका पद प्राप्त करती है, तो उससे भी कहीं कठोर, निर्मम, कटु और बुरे स्वभावकी बन जाती है। सज्जनताके व्यवहारका प्रारम्भिक अभाव उसकी इस कठोरताका कारण बन जाता है।

इसी प्रकार जो मातहत क्लर्क या छोटा अध्यापक अपने अफसरकी घुड़कियाँ या ताड़ना पाता है, वह स्वयं अफसर बनकर बड़ा कठोर निकलता है।

जो व्यक्ति अपने धर्मवालोंकी ताड़ना, उपेक्षा या अत्याचारके शिकार बनकर धर्म-परिवर्तन करते है, वे उम्रभर अपने ही धर्म-वालोंसे बदला लेते रहते हैं।

हमारे एक पचास वर्षीय सम्पन्न प्रोफेसर मित्र है। उनका शरीर स्थूल, बुद्धि परिपक्व, अभिरुचि साहित्यिक है। जब कभी उनके यहाँ जाते हैं, तो वे मिठाई अवश्य खिलाते है। स्वयं भी मिठाईके प्रगाढ़ प्रेमी हैं। जब घरमे कुछ मीठा नहीं होता, तब शक्कर ही फाँकते रहते हैं। अधिक मीठेके उपयोगके कारण गर्मियोंमें उनके शरीरमे फोडे-फुन्सियाँ फूट निकलती है। बड़ी बुरी हालत हो जाती है। फिर भी वे मित्र अपनी मिठाई खानेकी प्रवृत्तिको नहीं छोड़ पाते। इन्जेक्शन लगवाते हैं और बड़ी मुश्किलमें स्वस्थ हो पाते है।

कारण? एक दिन उनसे बातें चल निकलीं, तो अतीतकी स्मृतियोंसे मालूम हुआ कि एक गरीब-परिवारमे उनका जन्म हुआ था। खाने-पीने, विशेषत: मिठाईका नितान्त अभाव रहा। महीनों मीठा न मिलता। उनका मन मिठाई खानेको अति इच्छुक रहता। होते-होते मिठाईका अभाव उनके गुप्त मनमें एक भावनाग्रन्थि बन गया और वृद्धावस्था तक उसकी प्रतिक्रिया उनके जीवनपर चलती रही। आजतक वे मिठाई और शक्कर खा-खाकर उस पुराने अभावकी पूर्ति करते है।

वे प्रत्यक्ष रूपसे स्वीकार नहीं करते, पर वास्तवमें गुप्त मनका यही अद्भुत रहस्य है। एक बार किसी रूपमें जिस बातकी कमी या न्यूनता मनको झकझोर देती है, उसकी ठेस पूरी आयुभर बनी रहती है और वह हमारे अनेक कार्यों, वर्तावों, आचार-व्यवहारों, वस्त्र और आभूषणोद्वारा कृत्रिम समृद्धि-प्रदर्शनमें अभिव्यक्त होती रहती है।

अस्वास्थ्यकर परिस्थितियोंमें रहनेवाले बच्चोंका जीवन अस्त-व्यस्त रहता है। उनके कमरेकी वस्तुएँ इधर-उधर बुरी तरह बिखरी रहती हैं। वस्त्र मैले रहते हैं। स्नानसे उन्हें आलस्य होता है। कई-कई दिनतक वे शरीर स्वच्छ नहीं करते, कमरोंमें झाड़ू नहीं देते, मेज, कुर्सी, कमरेकी पुस्तकें, चित्र, जूते इत्यादिकी सफाईकी ओर ध्यान नहीं देते, दाँत साफ नहीं करते।

बालोंको साबुनसे नहीं धोते। उनमें जुएँतक पड़ जाती हैं। खुजली आती है। रस्सीकी तरह बट जाते हैं, पर उन्हें बुरा नहीं मालूम होता। कुछ व्यक्ति बड़े हो जानेपर भी नाककी सफाई बिना रूमालके अपने हाथ या कमीजकी आस्तीन या पाजामेंसे करते रहते हैं। ये तथा इसी प्रकारसे और कार्य प्रारम्भिक जीवनके छोटे-छोटे अभावों—कम वस्त्रोंका होना, धोबीसे वस्त्र धुला सकनेकी सुविधा न होनेके कारण होते हैं।

चिन्ताकी आहटके कारणोंको खोजनेपर भी हमें प्रारम्भिक अभाव ही मिलते हैं। हमारे एक सम्पन्न मित्र सदैव यही चिन्ता करते रहते हैं कि कहीं वे गरीब न हो जायँ, उनकी नौकरी न छूट

जाय या जिस बैंकमें उनकी समस्त पूँजी जमा है, कहीं वह फेल न हो जाय। इस चिन्ताका कारण उनका प्रारम्भिक अभावपूर्ण जीवन है, जिसमें उन्हें निर्धनतासे भयंकर संघर्ष करना पड़ा था।

जिन स्त्री या पुरुषोंका सेक्स भाव संतुष्ट नही होता, वे जीवनमें चिन्तित और विक्षुब्ध रहते है और अतृप्त कामेच्छाकी तृप्तिके अनेक साधन ढूँढ़ते हैं। हँसी-मजाक करते और प्रायः गाली दिया करते हैं; फिल्मोंकी पत्रिकाएँ या प्रेम-कहानियाँ खूब पढ़ते हैं।

चार्ल्स डिकेन्सके 'ग्रेट एक्स्पेक्टेशन्स' में एक स्त्री प्रमुख पात्र है। नाम है मिस हैवीशाम। धनसम्पन्न और ऐश्वर्ययुक्त; हर तरह-की सुख-सुविधासे युक्त, लेकिन उसकी आदत है कि वह बड़ी उम्र होनेपर भी दुलहिन-जैसी पोशाक पहनती है। सजी-बजी रहती है, जैसे अभी-अभी उसका विवाह होनेवाला है। एक सजे हुए कमरेमें बैठी रहती है। बाजेका स्वर सुनते रहना चाहती है। घरसे बाहर नहीं निकलती। वह एक सुन्दर कन्याको गोद लेती है। उसे पढ़ा-लिखाकर रंग-बिरंगी तितली बनाये रहती है। इस कन्याका नाम है मिस ऐस्टला।

मिस ऐस्टलाको शिक्षा दी गयी है कि वह अधिक-से-अधिक युवकोसे प्रेम करे; उनसे घनिष्ठता बढ़ाये, पर किसीसे विवाह न करे और इस प्रकार उनका हृदय तोड़ती रहे। उन्हे तरसाती-कलपाती रहे। ऐस्टला जितने अधिक युवकोंका हृदय तोड़ती है, उतनी ही मिस हैवीशाम प्रसन्न होती है।

इसका क्या कारण है?

मिस हैवीशामका एक अस्थिर चित्तवाले व्यक्तिसे प्रेम हो गया था। घनिष्ठता बढ़ी और बढ़ते-बढ़ते इस हदतक पहुँची कि एक दिन विवाहके लिये निश्चित किया गया। विवाहकी सब तैयारियाँ हो चुकी। दुलहिनने बढ़िया वस्त्र पहने, साज-शृंगार किये, लेकिन ऐन समयपर मालूम हुआ कि उसके प्रेमीने किसी दूसरी युवतीसे विवाह कर लिया। इस धोखेका ही मिस हैवीशामको यह धक्का लगा कि वह सदा दुलहिनके ही वस्त्र पहिने रही; मानो अभी विवाहके लिये जा रही है। फिर मिस ऐस्टलाके रूपमें वह अपने प्रति किये गये धोखेका सदा युवकोंसे बदला लेती रही। यह प्रेम न पानेके अभावकी प्रतिक्रियाका एक अच्छा उदाहरण है।

शारीरिक हो या मानसिक, सभी प्रकारके अभाव मनुष्यके संतुलित विकासमें बाधक है। अभावोंमें पलनेवाले बच्चे बड़े होनेपर भीरु बने रहते हैं। उनमे न बुद्धि रह पाती है, न स्फूर्ति और न प्रेरणा!

यदि जीवनमें संयोगवश उन्हें वे अभाव दूर करनेका अवसर आ भी जाता है, तो उनके सब ज्ञान-तन्तु गुप्त दलित भावकी इच्छाको पूरा करनेके लिये दौड़ते हैं। उस अवस्थामें मनुष्य न पाप देखता है न पुण्य, न बुरा न भला!

अधिक चिन्ता, कल्पित भयकी भावना, भ्रान्ति, आत्महत्याकी प्रवृत्ति, मतिभ्रम और आत्महीनताकी भावना हमारे प्रारम्भिक जीवनमें अभावपूर्ण परिस्थितियोके दुष्परिणाम हैं।

बालकोंको अभावकी स्थितियोसे बचाना परिवार और समाजका सर्वप्रथम कर्तव्य है।

अभावोंको चुनौती दीजिये

मिस हेलन केलर अंधी और गूँगी देवी हैं, जिनके मार्गमें प्रकृतिने नाना अभावोंकी अड़चने डाली थीं; लेकिन हेलन केलर उनसे न डरी और न घबरायीं, प्रत्युत कठोर संघर्ष किया और अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व प्राप्त किया। अपने जीवनके बारेमें उन्होंने लिखा है—"I have found life so beautiful". अर्थात् मुझे जीवन सौन्दर्यसे परिपूर्ण मिला है। हेलन केलरका दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक था। इसीलिये वे अभावोंपर विजय प्राप्त कर सकी। आपके जीवनमें भी ऐसे ही अभाव हो सकते है, पर आप मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणसे इन्हें दूर कर सकते हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण क्या है? अभावोंको अड़चनें न मानना, प्रत्युत उन्हे आत्मविकासमें एक चुनौतीके रूपमें स्वीकार करना। अभाव वास्तवमें हमारे व्यक्तित्वकी परीक्षा लेने आते हैं। हमें चाहिये कि हम इन्हें मार्गमें बाधक नही, सहायक समझे। ये एक प्रकारके अस्थायी अंधकार हैं, जो प्रयत्न करनेपर मानसिक क्षितिजसे दूर हो सकते है।

आप जीवनमें यह मानकर चलिये कि आपमें अभावोंसे युद्ध कर उनपर विजय प्राप्त करनेकी क्षमता है। आप अपने आपको संकेत या सजेशन देकर यह कल्पना किया कीजिये कि धीरे-धीरे आप उन संकेतोंको ग्रहण करते जा रहे हैं। सोनेसे पूर्व या पश्चात् ये संकेत दिये जायँ तो गुप्त मनपर स्थायी प्रभाव डालते हैं।

अपने चरित्रके मजबूत पहलुओं, गुणों, सम्पदाओंको मालूम

कीजिये और निरन्तर उन्हें बढ़ाते जाइये। ये सद्गुण परमेश्वरकी ओरसे विशेष रूपसे आपको प्राप्त हुए हैं। इसी क्षेत्रमें आपको महत्ता प्राप्त करनी चाहिये।

मनुष्यको जब अपने चरित्रकी कोई विशेषता मालूम हो जाती है, तो उसे एक ऐसा मार्ग प्राप्त हो जाता है, जिसके द्वारा वह सरलतासे आगे बढ़ सकता है। विकसित रुचिका ज्ञान मनुष्यको एक ऐसी दिशा प्रदान कर देता है, जो परमेश्वरने जन्मसे ही किसी व्यक्तिको दी है। स्मरण रखिये, यदि आपके व्यक्तित्वमें एक अभाव है, तो उसके साथ कई उत्तम गुण भी हैं। प्रकृति कमी पूरा करनेके लिये किसी अन्य गुणको और भी चमका डालती है। निश्चय ही आपमें कुछ विशेष गुण भरे पड़े हैं। सावधानीसे शान्तिपूर्वक उनकी खोज कीजिये और सतत अभ्यासद्वारा उन्हें विकसित कीजिये, अभाव दूर हो जायगा।

अभाव हमें संसारकी वास्तविकताके साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलनेका साहस प्रदान करते हैं। अभाव हमारे परीक्षक हैं। क्या हम अपने परीक्षकोंसे भयभीत होते रहे? नहीं, उन्हे तो हमें अपनी सफलताओंका पत्थर मानना चाहिये।

हो सकता है कि आप निर्धन हों, विषम परिस्थितियाँ आपको घेरे हुए रहें, शरीरसे पीडित हों, मित्रोंसे शून्य हों, लेकिन इससे घबराना नहीं चाहिये। वरं दृढ इच्छाशक्तिसे बदलनेका प्रयत्न करना चाहिये। इसीमें मनुष्यकी महत्ता है कि कोई ऐसा क्षेत्र चुनिये, जो आपकी रुचि, प्रतिभा या परिस्थितिके अनुकूल हो। फिर हिम्मत

और विश्वासके साथ आगे बढ़िये । अपने अभावकी बात न सोचिये वरं अबाध गतिसे आत्मविश्वास धारण किये बढ़ते चले जाइये । भीरुता-की भावनासे लड़िये । साहस एक अमोघ शस्त्र है जो निरन्तर आगे बढ़नेकी प्रेरणा प्रदान करता है । शक्तिका स्रोत तो मनुष्यके अंदर छिपा हुआ है । उसीको खोज निकालिये ।

आपके अभाव और अधूरापन

प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां
पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः ॥

अर्थात् 'ब्रह्माजीका स्वभाव सब गुणोंको एक ही स्थानमें एकत्र करनेके विरुद्ध है—वे कही कुछ रचते हैं तो कही कुछ ।'

आपके जीवनमे अतृप्ति, अभाव एवं असंतोष उत्पन्न होनेका एक कारण यह है कि आप अपनी स्थिति और जीवनको, अपने गुण या अभावोंको दूसरोंसे—विशेषतः अपनेसे अच्छी सामाजिक और आर्थिक स्थिति एवं अधिक योग्यतावालोंसे तथा हैसियतमें उच्च पद पानेवालोंसे तुलना करते हैं ।

आप दूसरोंके समान उच्च स्थिति, सुन्दर वस्तुएँ और नाना समृद्धियाँ तो ले नही पाते, उलटे अपनेको तुच्छ, निर्बल, दीन-हीन समझने लगते हैं । अपनी अपेक्षा उच्च-स्थिति, बड़े ओहदे और समृद्धिवालोंसे तुलना करनेपर आपमें ईर्ष्याभाव उत्पन्न होता है । आप उनकी सुन्दर वस्तुएँ, उन्नत स्थिति और जीवनकी सुविधाएँ देखकर ईर्ष्याकी अग्निमें निरन्तर दग्ध होते रहते हैं ।

आपका मन चुपचाप आपसे कहा करता है, 'हाय ! हम न हुए वड़े-वड़े मकानोके मालिक ! जमीनों-जायदादोंके अधिपति, मोटरकार और रेडियोके स्वामी । हे परमेश्वर ! इस दुनियामें एक-से-एक बड़ा आदमी पड़ा है, किंतु क्या हमारे भाग्यमें यही गरीवी, यही वेवसी और अभाव लिखा है । हमारा यह पड़ोसी मजेमें रोज मेवा-मिष्टान्न उड़ाता है; फलोंके ढेर लगे रहते हैं, इसके यहाँ एक-से-एक उत्तम वस्त्र और फैशनेवल वस्तुएँ हैं और इसकी पत्नी कितनी सुन्दर है । हमारे भाग्यमें फूहड़ नारी ही लिखी है । हमारे पास ठीक तरह लज्जा ढकनेतकको वस्त्र नहीं हैं, दूसरा दर्जनों कपड़ोंको संदूकोंमें सड़ा गला रहा है; उफ् ! हमारी कैसी विषम स्थिति है । हमारे पड़ोसीके दो पुत्र हैं, उधर हमारे तीन-तीन पुत्रियाँ है और सो भी निम्न मानसिक गुणोंवाली । हमारे चारों ओर वैभवका अमित भंडार विखरा दीखता है, किंतु हमारे भाग्यमे टूटा मकान और रूखी-सूखी रोटियाँ ही बदी हैं । काश ! हम भी ऐसे ही ऊँचे पद, ऐसे ही समृद्धिके स्वामी, ऐसे ही स्वस्थ, सर्वगुणसम्पन्न, अमीर, प्रतिष्ठित और वैभवशाली होते ।'

आपके इन उद्गारोंमें ईर्ष्या वोल रही है । सावधान ! आप अपनी निम्न स्थितिको—जो आपके वशकी वात नहीं है—दूसरोंकी अच्छी स्थितिसे मिलाकर हीनत्वकी भावनाका अनुभव कर रहे हैं । सम्भव है, उनकी समृद्धिका कोई ऐसा गुप्त कारण हो, जो आपके वशकी वात नहीं है । अनेक गुप्त कारणोंसे चली आती हुई उस समुन्नत स्थितिसे तुलनामें आप अपनेको साधारण पाकर दुखी हो

रहे हैं। तुलना करनेमें आप उनकी केवल अच्छाई-ही-अच्छाईको तथा अपने जीवनकी बुराई-ही-बुराईको देख रहे है। आपका निर्णय एकपक्षीय है।

अभाव, बुराइयाँ और निर्बलताएँ किसमें नहीं होती? कौन हर दृष्टिसे पूर्ण है? ये कमजोरियाँ मनुष्यमात्रमें सर्वत्र है। किसीमें शारीरिक, किसीमें नैतिक, तो किसीमें मानसिक या बौद्धिक निर्बलताएँ हैं। आपने अपनी अच्छाइयों, उत्तमताओं और गुणोंको छोड़ अपने विपयमें तुच्छ तथा उसके मुकाबलेमें दूसरेके साधारण-से गुणोंको बढ़ा-चढ़ाकर देख लिया है।

दूसरेका धन आपको बढ-चढ़कर दीखता है तो अपनी गरीबीमें अभाव-ही-अभाव नजर आता है। दूसरेके पैसोंमें भी आपको अशर्फियाँ दीखनी हैं, तो अपने रुपयोंमें भी पाइयाँ ही दृष्टिगोचर होती हैं।

दूसरेके साधारण स्वास्थ्यमें भी आपको पहलवान दीखता है। दूसरेके बच्चे आपको बल, पराक्रम और शक्तिसे भरे-पूरे नजर आते है तो अपने कुशाग्रबुद्धि बच्चे भी मन्दबुद्धि दीखते है। उनमें कोई बुद्धि, सौन्दर्य अथवा विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती।

दूसरेकी साधारण-सी पत्नीमें आप उच्चकोटिका सौन्दर्य, नवीनता, अपूर्व आकर्पण देखकर मुग्ध हो उठते है, तो अपनी शील-गुणसम्पन्न सती-साध्वी धर्मपत्नीमें फूहड़पन, अशिक्षा और मूर्खता देखते है। उसके द्वारा बनाया हुआ भोजन, सफाई, शिष्टाचार, बोलचालमे आपको कोई विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती।

अपना पेशा आपको सबसे बुरा, नीरस और श्रमसाध्य प्रतीत

होता है; किंतु दूसरोंके कठोर पेशे भी बहुत अच्छे, आमदनीसे परिपूर्ण और आरामदायक लगते हैं। हम चाहते हैं कि दूसरों-जैसे हम भी सुख और सुविधाओंसे पूर्ण रहें। हम संगीतज्ञके मधुर संगीतपर विमुग्ध हो उठते हैं और स्वयं चाहते हैं वैसा ही गाया करें, जब कि उनके द्वारा उठाये हुए श्रम और बलिदानका हमें कोई ज्ञान नहीं होता।

संक्षेपमें यों कहें कि दूसरा व्यक्ति, उसका जीवन, परिवार, साधन, स्वास्थ्य, बाल-बच्चे आदि सभी हमें आकर्षक प्रतीत होते हैं। उसका जीवन हमें बाहरसे सर्वगुणविभूषित, सर्वाङ्ग-सुन्दर प्रतीत होता है जब कि हमें अपना सब कुछ अति साधारण, तुच्छ और बेकार-सा प्रतीत होता है। वास्तवमें ऐसा नहीं है। अपने विषयमें, अपने परिवारके प्रति हम कितना बड़ा अत्याचार कर रहे हैं—यह हम नहीं जानते।

हम दूसरोंके जीवनके बाह्य पहलूमात्रको ही देखते हैं। हमारा निर्णय एकपक्षीय होता है। हम केवल ऊपरी निगाहसे कुछ तत्त्वोंको देखकर दूसरोंके विषयमें बहुत ऊँची-ऊँची भ्रमात्मक कल्पनाएँ करने लगते हैं। हमारी आँखें दूसरोंकी खूबियोंमें मस्त हो जाती हैं। हमारी त्रुटि यह है कि हमारी वृत्ति बहिर्मुखी है। हम अपने जीवन और साधनोंको दूसरोंके मापदण्डोंसे नापते और दुखी होते रहते हैं। अभाव और ईर्ष्याकी अग्नियोंमें निरन्तर दग्ध होते रहते हैं।

तुलनात्मक दृष्टिसे उत्पन्न होनेवाले दुःख तथा चिन्तासे मुक्त होनेका एक उपाय पुराने शास्त्रकारोंके मतानुसार यह समझ लेना है कि,

संसारमें एक ही स्थानमें समस्त गुणोंका एकत्र होकर रहना सम्भव नहीं है। किसीमें कोई एक गुणविशेष है तो किसीमें कोई दूसरा। इसी प्रकार दोष भी विभिन्न प्रकारसे न्यूनाधिक सभीमें हैं।

वास्तवमे हर दृष्टिसे पूर्ण संसारमें कोई भी नहीं है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, मनुष्य सभीमें एक सुन्दरता या गुण है, तो कई अवगुण भी हैं। मोर कितना सुन्दर पक्षी है। उसके सुन्दर रंगोंको देखकर मन अनायास ही प्रसन्न हो उठता है, किंतु तनिक उसके पॉव देखिये, कितने गंदे और कुरूप होते है। मुर्गेके सिरकी कलॅगी कितनी रंगीन और शानदार प्रतीत होती है, पर कैसा घृणित है उसका भोजन। वह अभक्ष्य पदार्थ खाता है। बारहसिंगेके सींग कितने अच्छे मालूम होते हैं, पर वह कैसा दुर्बल होता है। सिंहका चमड़ा खूबसूरत, धारियाँ मुलायम देखने योग्य होती है, पर उसका खूँखारपन तथा हिंसक दुष्प्रवृत्ति भयावह है। हाथीकी चाल शानदार है, पर उसका आलस्य निन्दनीय है। निष्कर्ष यह कि ससारके हर जानवरमें (और इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यमें भी) कोई-न-कोई अभाव है। एक अच्छाई है तो दो बुराइयॉ भी हैं। पूर्णरूपसे सुन्दर और उपयोगी कोई नही है। परंतु इन अभावोंके बावजूद अपने विशिष्ट गुणके कारण सब पशु-पक्षी प्रसन्न रहते है और अपने गुणप्रदर्शनसे दूसरोंके नैराश्यको दूर करते है। खेलते-कूदते, मधुर संगीतका उच्चारण करते और मस्त रहते हैं।

मानव-जगत्में भी प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी अभावसे पूर्ण है। किसीके पास स्वस्थ शरीर है तो

सौन्दर्य नहीं है। सौन्दर्य है तो शक्ति नहीं है। शक्ति है तो चरित्र नहीं है। चरित्र है तो खाने-पीनेके लिये पैसा नहीं है, सामाजिक प्रतिष्ठा या उच्च पद नहीं है। कोई शरीरसे स्वस्थ है तो अनेक पारिवारिक अड़चनोंसे घिरा हुआ है। किसीको बच्चों-की शिक्षा-विवाह आदिकी चिन्ता है तो किसीके बाल-बच्चे है ही नहीं। किसीको सौ-सौ बीमारियाँ लगी हुई हैं। कोई समाजमें निम्न वर्णमें पड़ा सवर्णोंसे ईर्ष्या कर रहा है। कोई नौकरीके लिये परेशान है तो किसीका व्यापार नहीं चल रहा है। किसीमें अच्छी स्थिति होते हुए भी बचत नहीं है, समृद्धि नहीं है। कोई मादक द्रव्योंके मादक संसारमें सुखके लिये भटक रहा है। जितने मनुष्य हैं, उतने ही उनके अभाव हैं। प्रत्येक व्यक्तिमें कहीं-न-कहीं अधूरापन है—अपूर्णता है। कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो सामाजिक, शारीरिक, आर्थिक, पारिवारिक या आध्यात्मिक सभी दृष्टियोंसे सर्वगुणसम्पन्न हो, चिन्तामुक्त हो, सर्वोत्तम स्थितिमें हो या हमेशा प्रतिष्ठित रहा हो।

जीवनका पथ समतल भूमि नहीं है। कहीं उसमें सपाट भूमि है तो कहीं कंकड़-पत्थर, काँटे बिखरे हुए हैं; कहीं पुष्पोंसे युक्त सुन्दर सुगन्धित हरे-भरे वृक्ष हैं तो कहीं काँटोंसे भरे बीहड़ जंगल भी हैं। कहीं कठिनाइयोंके दुर्वह पर्वत हैं तो कहीं सुख-सुविधा-प्रतिष्ठाके सुन्दर रमणीक दृश्य भी हैं।

अपने अभावोंको ही देखते रहना और अपनी दुर्दशापर रोना-कलपना, गिरी हुई स्थितिपर कुढ़ना, दोष देना अपनी उन्नतिमें बाधा

उपस्थित करना है। अपनी दुर्बलता देखनेसे दुर्बलता और दोषोंकी ही वृद्धि होती है। अभाव, दुःख, कमजोरी, गरीबीके कुविचारोंसे वैसी ही दुःखदायक विषम स्थिति उत्पन्न होती है। अपना सत्-चित्-आनन्दस्वरूप आत्मरूप—ही देखना न्याय है।

ईश्वरको धन्यवाद दीजिये कि आपके पास स्वास्थ्य है, शक्ति है, सामर्थ्य है, रूप और गुण है। निश्चय जानिये, आपकी योग्यताएँ बहुत हैं। केवल उनपर आलस्य, कुविचार और अज्ञानका गहरा पर्दा पड़ा हुआ है। आपको ऊँचा उठकर सद्विचार, सद्ग्रन्थावलोकन, शुभचिन्तन और दृढ़ संकल्पद्वारा अपनी गुप्त शक्तियोंको पहचानना है, विकसित करना है। आप अपने सद्गुणों, सत्प्रवृत्तियोंको देखिये और उसी दिशामें अपना विकास कीजिये।

अधूरापन, अभाव तथा अशान्ति दूर करनेके लिये आप अपनेसे नीचेवालोंकी स्थितिसे अपनी तुलना कीजिये। उनसे तुलना करनेपर आपको अपनी शक्तियों, सुविधाओं और अच्छाइयोंका ज्ञान हो सकता है। आपके भाग्यमें उच्चतम शक्तियाँ आयी हैं। इनके लिये परमपिता परमेश्वरको धन्यवाद देते हुए आगे बढ़ने, विकसित होनेके लिये निरन्तर संघर्ष कीजिये।

अवैध काम, क्रोध, लोभ, भय, विषाद, निराशा, दम्भ, अभिमान, मद, डाह, आलस्य और प्रमाद—इन बारह दोषोंसे बचे रहनेका प्रयत्न करते रहिये।

आपकी संचित शक्तियाँ

जिन तोप-बंदूकोंको जलयानके लिये रक्खा जाता है, चुनावसे पूर्व उसकी परीक्षा होती है। उनमें उनकी शक्तिसे कुछ अधिक बारूद भरकर चलाया जाता है। यदि उस बढ़ी हुई शक्तिके भारको वे वहन कर लेती हैं, तो उन्हे युद्धके लिये उपयुक्त समझकर चुन लिया जाता है। अनेक तोप-बंदूकें इस परीक्षामें ही विनष्ट होकर खण्ड-खण्ड हो जाती हैं। इनमेंसे अनेक ऐसी होती हैं, जो साधारण स्थितियो, तथा दैनिक कार्योंमें मामूली तौरपर काम चला सकती है। पर अधिक काम या बोझ पड़नेपर टूट सकती हैं।

पुलोंका भी यही हाल है। काममें लानेसे पहले उनपर भारी इंजिनको चलाकर देखा जाता है कि कहीं अधिक भारसे टूट तो न जायँगे ? प्रत्येक इंजिन या लोकोमाटिवमें कुछ हार्स पावरकी शक्ति सुरक्षित रक्खी जाती है। यदि आप २० हार्स पावरका इंजिन चाहते हैं, तो कम्पनी आपको ३० हार्स पावरका इंजिन भेजेगी। यह दस हार्स पावरकी अधिक शक्ति काममें नहीं आयेगी, पर कभी अडचन या जरूरी मौकेके लिये उसे संचित रखना अति आवश्यक है। मौके-बे-मौके कभी भी उसकी जरूरत पड़ सकती है। सम्भावित आवश्यकताओंके लिये इसे संचित रखना जरूरी है।

ऐसा ही हाल मनुष्यकी शक्तियोंका होना चाहिये। अनन्त मानसिक शक्तिसे परिपूर्ण, सुसंचालित विवेक, संतुलित चरित्रवाला व्यक्ति आपत्तिकाल या जरूरतके समय किंकर्तव्यविमूढ नहीं होता। अधिक काममें भी वह अपनी शक्तियोंका पूर्ण परिचय देता

है, जब कि ऊपरी दृष्टिसे मोटे-ताजे व्यक्ति पीछे रह जाते हैं। जरा कार्याधिक्य हुआ कि उनके प्राणोंपर आ बनती है।

बड़े व्यापारी उन व्यक्तियोंको पसंद करते हैं जो आपत्तिकालमें, जब मजदूरी भी कम हो, उसी उत्साहसे कार्यमें संलग्न रहते हैं, जितने वे आरामके समृद्धिशाली दिनोंमे थे। प्रारम्भिक कालमें जब व्यापार प्रारम्भ ही किया जाता है, उसे आगे विकसित करनेके लिये बड़े परिश्रमी, संयमी और शक्तिशाली व्यक्तियोंकी आवश्यकता पड़ती है। व्यापारमें न मनुष्यका पुस्तकीय ज्ञान, शक्ति या अनुभव कार्य करता है, प्रत्युत उसे समुन्नत बनानेवाला वह भाव है जो उसके मनमें पुनः-पुनः यह भावना उत्पन्न करता है कि खतरेके समय भी वह अपने कार्यको सँभाल सकेगा। बची हुई शक्ति, संचित सम्पत्ति, एकत्रित ताकते वे चीजे हैं जो मनुष्यको सफल व्यापारी बनाती हैं।

आपमें संचित शक्तियाँ कितनी है ? जरूरतके समयके लिये आपने कितनी शक्तियाँ इकट्ठी कर रक्खी हैं ? जो व्यक्ति जरूरतके समयके लिये अपनी शक्तियाँ एकत्रित नहीं रखता, वह मूर्ख है।

वे कौन-सी शक्तियाँ है, जिनके संचयकी आवश्यकता है। इसके उत्तरमें कहा जायगा कि सर्वप्रथम हमें अपनी प्राणशक्तिका अधिकाधिक संचय करना चाहिये। प्राणशक्तिके द्वारा ही हमारा इस जगत्‌से नाता है। जबतक प्राण तबतक संसार। प्राणोंका जो कोष आपको मिलता है, उसकी रक्षाके लिये सदा-सर्वदा जागरूक रहनेकी आवश्यकता है।

प्राणका अर्थ मनुष्यकी शारीरिक शक्ति, सामर्थ्य और क्रिया-शक्तिका विकास है। मनुष्यके शरीरमें दो प्रधान शक्तियाँ है—(१) शरीरका विकास-पोषण एवं क्रियान्वित करनेकी शक्तियाँ, (२) रोगोसे युद्धकर शरीरको स्वस्थ रखनेकी शक्ति। प्रथम शक्तिके द्वारा हमारे हाथ-पाँव आदि शरीरके सब अवयव अपनी पुष्टि प्राप्त करते हैं, रक्तके द्वारा उनमें बल-ओज-वीर्यका संचार होता है। दूसरी शक्तिसे गदगी तथा सब प्रकारके विजातीय विषोंका निष्कासन होता है। यह शक्ति हमें जीवनको स्थिर रखनेके हेतु संघर्ष करना सिखाती है। शरीरकी रक्षाके लिये हमें इन दोनो ही शक्तियोका एक बृहत् संचित कोष अपने पास रखना चाहिये।

स्वस्थ जीवनीशक्तिवाले व्यक्तिके लक्षण इस प्रकार हैं—उसकी त्वचा वीर्ययुक्त लाल स्निग्ध होती है, पाचन-शक्ति सुव्यवस्थित होती है, मलद्वार मल-निष्कासनकी क्रिया सहज, बड़े उत्तम तरीकेसे करता है, नेत्र निर्मल और तेजस्वी रहते हैं, घाव लगनेपर आसानीसे ठीक हो जाता है, निद्रा स्वस्थ और गहरी आती है। हमें चाहिये कि ऋषियोंद्वारा प्रतिपादित सूर्यस्नान, प्राणायाम, उपयुक्त पौष्टिक भोजनद्वारा प्राणशक्तिका संचय करते रहे, वीर्य-नाश न करें। व्यर्थकी छोटी-बडी चिन्ताओंमें लगे रहनेसे असंतोष, अतृप्त, विषादमय मनःस्थिति रखनेसे प्राणशक्तिका अपव्यय होता है। मनमे आह्लाद तथा आशाका सुखद वातावरण बनाये रक्खें। जैसे शरीरको पुष्ट करनेसे प्राणशक्ति संचित होती है, वैसे ही निर्भयता, ईमानदारी, प्रसन्नता और आत्मनिर्भरता-जैसे सद्गुणोंको चरित्रमें उतारनेसे प्राणशक्तिको स्थिर रक्खा जा सकता है।

प्राणशक्तिका निरन्तर संग्रह करना चाहिये। यह वह सम्पदा है, जिसकी रक्षासे संसारका सुख हमारे लिये सम्भव है।

अर्थशक्ति अर्थात् संचित पूँजीकी शक्ति महान् है। हम ऐसे सामाजिक युगमें निवास कर रहे हैं, जिसमें हमारे सामाजिक सम्बन्ध अर्थसे संचालित होते हैं। जिसके पास जितनी संचित पूँजी है, समाजमें उसको उतनी ही मान-प्रतिष्ठाका अधिकार है। संचित पूँजीका तात्पर्य है संचित श्रम। जो व्यक्ति श्रमको संचितकर पूँजी-की शक्लमें रखता है, उसके मनमें एक आन्तरिक शान्ति विद्यमान रहती है, जो समय-समयपर उसके काम आती रहती है। हमारे समाजका विधान कुछ ऐसा है कि जबतक जीवन है, तबतक रुपये-पैसेकी आवश्यकता रहती है। यौवनकालकी संचित पूँजी वृद्धावस्था-की एक शक्ति बन जाती है।

जो व्यक्ति अर्थ-शक्तिको संचित रखता है वह अपने साथ एक ऐसा सेवक रखता है, जो हर समय, हर अवस्था, हर स्थितिमें सेवा-सहायताको प्रस्तुत रहता है। अर्थ एक जीती-जागती शक्ति है। इस सम्बन्धमें बड़ा जागरूक रहनेकी आवश्यकता है। लक्ष्मीको चञ्चला कहा गया है। यह एक व्यक्तिके पास स्थिर नहीं रहती। तनिक-सी असावधानीसे वर्षोंकी संचित पूँजी अनायास ही हाथसे निकल जाती है। इस शक्तिको संचित करनेके लिये अधिक जागरूक रहिये।

ईश्वरकी अनुकम्पा, सहायता, प्रेरणामें विश्वास ऐसी शक्ति है, जो मनुष्यको बाल्यकालसे लेकर मृत्युपर्यन्त सहायता देती है।

आस्तिकवाद हमारी सम्पदा है ! ईश्वरीय सत्तामें निष्ठा हमें सदा-सर्वदा समुन्नत करती और संकटके समय आन्तरिक शान्ति प्रदान करती है । ईश्वर हमारे जीवन तथा कर्मका आदि-स्रोत है, हमारे हृदय-मन्दिरमें प्रकाश करनेवाला तेजःपुञ्ज है, हमारे जीवनमें प्राण और श्वास है । ईश्वरीय आशाविहीन व्यक्ति उस सूखी पत्तीकी तरह है जो विपरीत हवामें यत्र-तत्र मारी-मारी फिरती है । निराशा और वेदनाएँ उसे एक ओर खींचती हैं, तो व्यर्थके प्रलोभन, लोभ, अतृप्ति दूसरी विपरीत दिशामें आकर्षित करती है ।

मै ईश्वरके तेजकी एक रश्मि हूँ । ईश्वरीय सत्तामें मुझे अन्ततः विलीन हो जाना है । मैं जहाँसे जन्मा हूँ, वहीं पहुँच जाऊँगा । मेरी आत्मा सत्, चित्, आनन्दस्वरूप परमेश्वरका अंश है । मुझमें उस प्रभुके गुण ही प्रकाशित हो सकते हैं । अनीति, अन्याय, अनर्थसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं—ऐसी आस्तिक भावना मनःप्राणमें संचित रखनेवाला व्यक्ति सदा-सर्वदा कमलके समान उत्फुल्ल रहता है ।

संकटमें, विपदामें, निराशाके अवसरोंपर दैवी सत्ताका तादात्म्य आपको वह अन्तर्बल देगा, जिसके द्वारा आप आन्तरिक शक्ति पाते रहेंगे । ईश्वर शक्तिके आदिस्रोत हैं । उनसे हमारी आत्माको सहन-शक्ति प्राप्त होती है । इस अन्तर्बलसे व्यक्ति सब परिस्थितियोमें बाह्य जगत्‌के संकटोंसे सुरक्षित रहता है । ईश्वरकी सद्‌योजनाओंमें अपने विश्वासको निरन्तर बढ़ाते चलिये । पूजन, गायत्री-जप, भजन, संध्या तथा नाना साधनाएँ आपको सदा दैवी-तत्त्वसे संयुक्त रखती हैं ।
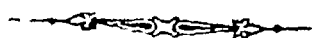
शक्तियोंका दुरुपयोग मत कीजिये

सौन्दर्य, शक्ति, यौवन और धन संसारकी चार दिव्य विभूतियाँ हैं। ईश्वरने इन शक्तियोंकी सृष्टि इस मन्तव्यसे की है कि इनकी सहायता एवं विवेकशील प्रयोगके द्वारा मानव सुखी रहे और धीरे-धीरे उत्थान एवं समृद्धिके शिखरपर पहुँच जाय। वास्तवमें इन दैवी विभूतियोंके सदुपयोगद्वारा मनुष्य शारीरिक, बौद्धिक एवं मानसिक शक्तियोंका चरम विकास कर सकता है। मानव-व्यक्तित्वके विकासमें ये पृथक्-पृथक् अपना महत्त्व रखती हैं।

भगवान्‌के गुण-स्वरूपकी कल्पनामे हम सौन्दर्यशक्ति एवं चिरयौवनको महत्ता प्रदान करते हैं। हमारी कल्पनामें परमेश्वर सौन्दर्यके पुञ्ज हैं, शक्तिके अगाध सागर हैं, चिर-युवा हैं, अक्षय हैं। लक्ष्मी उनकी चेरी हैं। ये ही गुण मानव-जगत्‌में हमारी सर्वतोमुखी उन्नतिमें सहायक है। जिन-जिन महापुरुषोंको इन शक्ति-केन्द्रोंका ज्ञान हुआ और जैसे-जैसे उन्होंने इनका विवेकपूर्ण उपयोग किया, वैसे-वैसे उनकी उन्नति होती गयी; किंतु जहाँ इनका दुरुपयोग हुआ, वहीं पतन प्रारम्भ हुआ। वह पतन भी इतना भयंकर हुआ कि अन्तिम सीमातक पहुँच गया और उनका सर्वनाश इतना पूरा हुआ कि बचाव सम्भव न हो सका!

इतिहास इस चिर सत्यका साक्षी है कि सौन्दर्यका दुरुपयोग मानवके रक्तपात, युद्ध, लूट-पाट और संघर्षोंका एक कारण बना है। सुन्दर स्त्रियोंको प्राप्त करनेके हेतु विश्वके इतिहासमें युद्धोंके उदाहरणोंकी कमी नहीं है। सुन्दरी सीता रामायणके युद्ध एवं द्रौपदी महाभारतके युद्धोंका कारण बनी। ट्रायका युद्ध एक सुन्दरीके कारण वर्षों चलता रहा। आजके युगमें भी सुन्दरी स्त्री उत्पातोंका एक कारण मानी गयी है। समाजमें सौन्दर्यके गलत दृष्टिकोणको लेकर आये दिन अनेक प्रकारके झगड़े चला करते है।

आजके व्यक्तियोंकी सौन्दर्यभावना केवल ऊपरी चमक-दमक तक ही सीमित रहती है। वे शारीरिक आकर्षणमात्रको ही सौन्दर्य-का मापदण्ड मानकर उत्पात करते रहते हैं। बाह्य आकर्षण बनाये रखनेके हेतु अपार धन व्यय किया जाता है। इस अत्यधिक शृङ्गार-प्रियताने समाजमें वासना-लोलुपताकी तथा व्यर्थके भयानक अपव्ययकी अभिवृद्धि की है। आज भी निरन्तर यह कार्य हो रहा है। उस सौन्दर्यको जो पानीसे धुलकर नष्ट हो जाता है, लोग सर्वोपरि मान बैठे हैं।

युवकोंमें सौन्दर्यभावनाका निन्द्य स्वरूप बुरी तरह फैला हुआ है। कृत्रिम सुन्दरता बनाकर दूसरोंको ठगा जाता है। बनाव-शृङ्गार कर अपनी त्रुटियों या चरित्रगत दुर्बलताओंपर आवरण डाल लिया जाता है। सौन्दर्यका स्वाँग भरनेवाले, सुन्दर आकर्षक, वस्त्र तथा चटकीले-भड़कीले वस्त्र पहिननेवाले व्यक्ति प्रायः चरित्रके दुर्बल, स्वभावके रसिक, वासना-लोलुप और चञ्चल प्रकृतिके होते हैं। इनमें न स्वयं अपना भला हो पाता है, न समाजका ही कुछ लाभ

होता है। सुन्दर व्यक्ति कोमलताका स्वाँग करते देखे जाते हैं। किसी भी कष्टसाध्य कार्यमें उनका मन नहीं रमता।

यौवन मनुष्यकी परिपक्वताका समय है। मनुष्यकी सब शक्तियाँ उभरी रहती हैं। मनमें आशा, शक्ति और उत्साह रहता है। मुँहपर मुस्कराहट खेलती रहती है। यौवनमें मन—उचित-अनुचित, जिस ओर झुक जाता है, जीवनभर उसी ओर झुका रहता है। जब ये आदतें पक जाती हैं, तब मनुष्य उन्हें बदल नहीं पाता।

यौवनमें कामभावना (सेक्स) का उभार आता है। मन वासनाओंसे भर जाता है। यदि युवावस्थामें इन वासनाओंका नियन्त्रण न किया जाय या कार्य, कला, अध्ययन, संगीत या अन्य किसी मार्गद्वारा इन्हें निकलनेका मार्ग प्रदान न किया जाय, तो वे गंदे घृणित मार्गोंसे निकलने लगती हैं। वासना एक शक्ति है, जिसका दुरुपयोग मनुष्यको पशुकोटिमें ला पटकता है। पतनकी चरम सीमामें पहुँचनेपर उसे ज्ञान होता है कि उसने अपने मनुष्यत्व, पौरुष, वीर्यका कितना नाश किया!

पथभ्रष्ट युवक सबसे दयनीय जीव है। वह उस अमीरकी तरह है, जो जीवन-सम्पदाको मिट्टीमें मिला रहा है। उसे उन सत्-सामर्थ्योंका ज्ञान नहीं जो उसके चरित्रमें छिपे हैं।

शक्तिका दुरुपयोग मनुष्यको राक्षस बना सकता है। रावण जातिका ब्राह्मण, बुद्धिमान्, तपस्वी राजा था, किंतु शक्तिका मिथ्या दम्भ उसपर सवार हो गया। पण्डित रावण, राक्षस रावण बन गया। उसकी विवेक-बुद्धि क्षय हो गयी। वासना उत्तेजित हो

गयी। वासना तो एक प्रकारकी कभी न बुझनेवाली अग्नि है। जितना उसने वासनाओंकी पूर्ति करनेका प्रयत्न किया, उससे दुगुने वेगसे वह उद्दीप्त हुई। शक्ति उसके पास थी। वासनाकी पूर्तिके लिये रावणने शक्तिका दुरुपयोग किया। अन्तमें अपनी समस्त शक्तियोंके बावजूद रावणका क्षय हो गया। दुर्योधनने शक्तिके दम्भमें अपने सब भाई-बन्धुओंका नाश किया।

मुसलमान शासकोंके असंख्य उदाहरण हमारे सामने हैं। संयमी, कष्ट-सहिष्णु, सतत जाग्रत् रहनेवाले शक्तिसम्पन्न सम्राटोंने बड़े-बडे राज्योंकी नींव रक्खी। बाबरने अपनी वीरतासे मुगल साम्राज्य-की नींव पक्की की; किंतु उसके पुत्र धीरे-धीरे असंयमी, विलासी, लोलुप बने। फलतः मुगल साम्राज्यका क्षय हो गया।

शक्तिका सदुपयोग किया जाय, तो वह मानवमात्रके लिये कल्याणकारी संस्थाओ, आश्रमो, नये-नये नियमोका निर्माण करने, समाज-सेवा तथा नारी-जागृतिके पुनीत कार्योंमें प्रयुक्त हो सकता है। दुष्टोंका दमन किया जा सकता है।

शक्तिके दुरुपयोगसे न्यायका गला घुट जाता है, विवेक दब जाता है, मनुष्यको निज-कर्त्तव्यका ज्ञान नहीं रहता, वह बुद्धिभ्रष्ट हो जाता है और उसे सत्-असत्का अन्तर प्रतीत नहीं होता।

अंग्रेजीमें एक कहावत है, 'सिंहकी तरह बलवान् बनो, किंतु उस शक्तिका पशुओंकी तरह दुरुपयोग न करो।' तुम्हारी शक्तिसे निर्धनोंको आर्थिक सहायता, निर्बलोंको बल, असहायोको सहारा मिलना चाहिये। इसीमें शक्तिकी उपयोगिता है।

लक्ष्मी जहाँ सुखकी प्राप्तिका साधन है, वह पथभ्रष्ट भी करनेवाली है—

श्रीः सुखस्येह संवासः सा चापि परिपन्थिनी।

(महा० उद्योग० ४२ । ४५)

अमीर लोगोंके पुत्र उच्छृङ्खल, अपव्ययी, विलासी और व्यसनी होते हैं। उनके मनमे धनका मद और प्रमाद इतना अधिक छाया रहता है कि उसके कारण उनकी गुप्त शक्तियाँ विकसित नही हो पाती। वे मनके भीतरी स्तरमें सुप्त पड़ी रहती हैं।

धन आलस्य उत्पन्न कर मनुष्यको निकम्मा, निरुत्साह और निश्चेष्ट बना देता है। उच्च वृत्तियाँ वासनाकी आँधीमें दब जाती हैं। जिस धनसे हम समाज-सेवा, लोकोपकार, दीनोंको प्रोत्साहन प्रदान कर सकते हैं, वही हमारी वासना-पूर्तिमें स्वाहा होने लगता है। धनकी शक्तिसे मनुष्य उचित-अनुचितकी परवा न कर अपनी इच्छाओंको पूर्ण करना चाहते हैं। दूसरे व्यक्ति धनका लोभ पाकर पतनके समस्त साधन जुटा देते है और भोग-विलासकी घातक निद्रामें मनुष्य सो जाता है। धन वह निद्रा है, जिससे धुँधलेमें ज्ञानकी ज्योति भी क्षीण हो जाती है।

अतः उपर्युक्त चारों पदार्थोंका उपभोग बहुत सोच-विचारकर करना चाहिये। उचित उपयोगसे विष भी अमृतका कार्य करता है, जब कि मूर्खके हाथमे अमृत भी विप बन सकता है।

अपनेसे पूछिये आप इस विषको अमृत बना रहे है, अथवा इस अमृतको विप बनाकर मरनेकी तैयारी कर रहे है?

महानताके बीज

(१)

यूनान देशके ग्रेस प्रान्तमें अब्डेरा नगरमें एक अनाथ बालक लकड़ियाँ काटकर लाता और बाजारमें बेचकर अपना पेट भरता था । दिनभर जीविका-उपार्जनमें ही उसका समय व्यतीत हो जाता था ।

एक दिन एक भला आदमी लकडियोंके बाजारसे होकर निकला । उसने देखा एक बालक अपने सामने लकड़ियोंका एक छोटा गट्ठड रक्खे हुए बेचनेका प्रयत्न कर रहा है । एक बातने उसे विस्मित कर दिया । उसने देखा कि यह गट्ठड़ अन्योंकी अपेक्षा बड़ी सुन्दरता और कलापूर्ण ढंगसे बँधा हुआ था । भला आदमी

तनिक ठहर गया और लड़केकी बुद्धि-परीक्षा लेनेके मन्तव्यसे उसने पूछा—

'लड़के ! इस गट्ठड़को तुमने स्वयं बाँधा है ?'

'जी हाँ; मै लकडी स्वयं काटता, स्वयं गट्ठड़ बाँधता और प्रतिदिन इस बाजारमें बेचकर जीविका उपार्जन करता हूँ ।'

'क्या तुम इसे खोलकर फिर इसी कलापूर्ण ढंगसे बाँध सकते हो ?'

'जी हाँ, यह लीजिये अभी बाँधे देता हूँ ।'

यह कहते-कहते लड़केने लकड़ीका गट्ठड़ खोल डाला । लकड़ियाँ इधर-उधर बिखेर दीं । फिर तत्परता और सावधानीसे एक बड़ी लकड़ीको आधार बनाकर उसके इधर-उधर छोटी-छोटी लकड़ियाँ सजायी । अन्तमें वैसे ही सुन्दरतापूर्ण ढंगसे लकड़ियोंका गट्ठड बाँध दिया । यह कार्य वह स्फुर्ती और बड़ी लगनसे कर गया । उतनी देरके लिये यह तक भूल गया कि वह किसी व्यक्तिके सम्मुख खड़ा है और कोई उसकी क्रियाओ और आदतोंको सूक्ष्मतासे देख रहा है ।

भले आदमीपर इस कलापूर्ण ढगका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा । उन्होने देखा कि बालकमें छोटे कामको भी पूरी दिलचस्पी और कलापूर्ण ढंगसे पूरा करनेके दुर्लभ संस्कार हैं । ऐसे संस्कारो-वाले व्यक्ति ही विकसित होकर संसारके महापुरुष बनते है । उन्होंने सोचा 'इस लडकेके चरित्रमें जो महानताके बीज हैं, उन्हे विकसित होनेका अवसर देना चाहिये । हो सकता है कि यह बालक संसारका कुछ लाभ कर सके ।' वे बोले—

'तुम हमारे साथ चलोगे ? हम तुम्हे पढाना चाहते हैं सम्पूर्ण व्यय, भोजन, निवास आदिका भार हमारे ऊपर रहेगा।'

बालक कुछ देरतक सोचता रहा। उसकी तीव्र इच्छा थी कि वह किसी प्रकार पढ़े-लिखे। उसने कुछ विद्याध्ययन किया भी था। जीविका-उपार्जनसे जो समय बचता था, उसमें वह कुछ पढ़ा भी करता था। उसने अपनी स्वीकृति दे दी।

भले आदमीने उस बालकको अपने साथ ले लिया और उसकी सारी शिक्षा-दीक्षाका प्रबन्ध स्वय किया। वह उसकी आदतोपर मुग्ध था। स्वयं उसकी शिक्षाकी देख-रेख करते-करते वह बालक विद्वान बन गया। बड़ा होनेपर वह यूनानका महान् दार्शनिक पैथोगोरस कहलाया और भला आदमी जिसने एक दृष्टिमें बालकके अंदर छिपी हुई महानताको पहचाना था, वह था यूनानका विश्व-विख्यात तत्त्वज्ञानी डेमोक्रीटस !

पैथोगोरसके बचपनके जिस गुणपर डेमोक्रीटस मुग्ध हुआ था, (छोटे कार्योंमे भी पूरी दिलचस्पी और कलापूर्ण ढंगसे महानताका प्रदर्शन) वह देखनेमें साधारण-सा था, पर वास्तवमे महानताका बीज उसीके अंदर छिपा हुआ था। जो मनुष्य अपने छोटे-छोटे कार्योंको पूरी रुचि और कलापूर्ण ढंगसे करता है, वह बड़े कार्योंको और भी सावधानीसे पूरा करेगा और प्रशंसनीय होगा। जो छोटे-छोटे कामोंमें भी अपनी महानताकी छाप लगा देता है, दुनिया उसीको महत्त्व प्रदान करती है।

(२)

महानताके गुणोंके प्रदर्शनके लिये यह आवश्यक नहीं कि बडे पैमानेपर ही आपके पास सामान हो, या नाना प्रकारकी कला-सामग्री हो, विपुल विस्तार हो। कलाकारकी आत्मामें यदि सच्ची कलात्मकता वर्तमान है, तो वह अल्प साधनोंसे ही अपनी महानताका परिचय देने लगता है।

महात्माजीने एक बार एक लेख लिखा था 'झाड़ू देनेकी कला।' भला झाड़ू देने-जैसे क्षुद्र कार्यमे भी क्या कोई सौन्दर्य हो सकता है? उन्होंने दिखाया कि इस साधारणसे कार्यमें भी सावधानीकी आवश्यकता है।

आप अपने कार्योंको देखिये। सुबहसे शामतक किये जानेवाले कार्योंकी परख कीजिये और फिर स्वयं ही निर्णय कीजिये कि क्या उनमें आपने अपनी छिपी हुई महानताका परिचय दिया है? क्या उससे आपके चरित्रकी कलात्मकता, सुरुचि, सुव्यवस्था और संतुलन प्रकट होता है? क्या आपका कार्य आपके चरित्रके गौरवके अनुकूल है? क्या उससे आपकी असाधारण योग्यता, बुद्धि और सूझ-बूझ प्रकट होती है? क्या उसमें आपके व्यक्तित्वकी विशेषताएँ भरी हुई हैं?

एक बार एक इन्टरव्यू हो रहा था। इन्टरव्यू करनेवाले एक मेजको सामने रक्खे बैठे थे, सामने उम्मीदवारोंके लिये कुर्सियाँ रक्खी हुई थीं। एक-एक कर उम्मीदवार आते थे और कुर्सीपर बैठकर पूछनेवालोंके प्रश्नोंके उत्तर देते थे। उम्मीदवार एक-से-एक

सुन्दर और आकर्षक वस्त्र, चमचमाते हुए पालिशदार जूते डाटे चले जाते थे। एक उम्मीदवार साधारण कपड़े पहिने हुए था। वह जब कमरेमें प्रविष्ट हुआ तो उसने देखा कि सामने मार्गमें एक पुस्तक पड़ी हुई है। उसने उस पुस्तकको उठाया और मेजके एक किनारेपर शिष्टतापूर्वक रख दिया। उसकी यह मनोवृत्ति देखकर इन्टरव्यू करनेवालोंको उसकी सावधानीपर विश्वास हो गया और वह चुन लिया गया। यह एक साधारण-सा कार्य था, पर इसीसे उसके चरित्रकी महानता प्रकट होती थी।

इसी प्रकार हमारी अनेक आदतों, कार्यों, वस्त्रों, शिष्टाचार, व्यवहार आदिसे हमारा व्यक्तित्व प्रकट हुआ करता है। जहाँ हमारी ये आदतें महानता दिखाती हैं, वहीं हमारे आनेवाले पतनकी भी सूचक हो सकती हैं।

मान लीजिये, बाजारमें बढ़िया केले बिक रहे हैं। हमारी तबीअत उनपर चल उठती है, पर जेब खाली! आदत हमारे ऊपर चढ़ बैठती है। दूकानदार हमारी जान-पहचानका है। उधार दे देगा। आइये, खरीद लें। हम मनोविकारपर नियन्त्रण न कर उससे चार केले उधार ले लेते हैं और देखते-देखते खा डालते हैं। केलेवालेके चार आने कितनी कम देरमें हमारे सिर चढ़ जाते हैं। अब उधार देते हुए हमें मन-ही-मन कुछ संकोच-सा होता है। जब कभी केलेवालेके पाससे निकलते हैं, कतरा जाते हैं, बचनेकी कोशिश करते हैं, उधार देना भूल जाते हैं, पैसे देनेको मन नहीं करता। इसी प्रकार छोटी-छोटी चीजें लेनेसे हमारी

उधारकी आदत बढ़ती जाती है । यही बढ़कर हमारे घरबार, जमीन, जायदाद, इज्जत आदिको नष्ट कर डालती है । ऋण आपका घातक शत्रु है, जो तनिक-सी शिथिलतामें आपको ले बैठता है ।

इसी प्रकार और भी गंदी आदतें हैं । आपका मित्र सिगरेट पीता है । आपको भी पेश की जाती है । आप अनचाहे मनसे दो कश लगाते हैं । उन्हीं मित्रोंके साथ आपको यह आदत लग जाती है । सिगरेटके बाद पान, बीड़ी, मद्य इत्यादि एकके बाद एक गंदी आदत आपको शिथिल करती जाती है । आप प्रतिमास १५-२० रुपये पान-बीड़ीवालेको दे डालते है । फिर व्यभिचार आकर सर्वस्व नष्ट कर देता है ।

यही बात और मनोविकारोंकी भी है । किसीने हमारा कहना न माना कि हम आवेशमें आकर गरम हो उठे । नाराजीसे हम घर भर डालते हैं । सबको खरी-खोटी सुनाते है । क्रोधका भूत हमारे साथ है । हम दूकानदार हैं, तो यह दुष्ट हमारी जिह्वाको उछालकर ग्राहकोंको बहका देता है । वे दूरसे ही भाग जाते हैं । यदि हम अफसर है, तो यह हमारे मातहतोंको असंतुष्ट रखता है । यदि हम रेलगाड़ीमें सफर कर रहे है, तो यह दुष्ट हमें चैनसे यात्रा नही करने देता । ऐसे ही अड़ियल, उत्तेजित या शक्की स्वभाव भी हमारा शत्रु ही है ।

इस प्रकार हमारे चरित्रकी असंख्य छोटी-छोटी भूले हमें नीचे गिराती रहती हैं । इनपर हम कोई ध्यान नहीं देते, पर वास्तवमें ये ही हमारे चरित्रके वारे-न्यारे करती रहती हैं ।

महानता हमारे चरित्र और स्वभावमें प्रचुरतासे भरी पड़ी है। हमें चाहिये कि इसी पक्षपर मनन-चिन्तन कर इसे विकसित करें। तमोगुण हमारे अन्तःकरणमें मलिनता उत्पन्न करता है जिससे अशुभ विचार आते हैं। अत अपने शुद्ध, सत्, चित्, आनन्दस्वरूपका ही ध्यान करना चाहिये। चित्तमें शान्त, पवित्र और उच्च विचारोंको ही दृढ़तासे जमाइये। अपना महत्ता, अपनी शक्ति, अपने दैवी गुणोंका चिन्तन करनेसे मस्तिष्क बलशाली बनता है और हृदयसे प्रफुल्लताका झरना प्रवाहित होने लगता है। अपने सत्त्वगुणपर विचार करनेसे आत्मबलकी वृद्धि होती है। आपकी सफलता इसी बातपर निर्भर करती है कि आप कितने अंशोमें अपनी महत्ताका अनुभव करते हैं, अपने प्रति आपका कितना विश्वास है, आप उसको कितना व्यवहारमें प्रत्यक्ष करते है।

'उच्च तिष्ठ महते सौभगाय' (अथर्व० २।६।२)

श्रेष्ठ बनना ही महान् सौभाग्य है। जो महानता खोजने और महापुरुष बननेमें प्रयत्नशील हैं, वही वास्तवमें धन्य है।

डा० दुर्गाशङ्कर नागरने महान् बननेके सूत्र इस प्रकार दिये हैं। एक-एक शब्द ध्यान देने योग्य है—

'क्या तुम संसारमें अपना अमर नाम छोड़ना चाहते हो? यदि ऐसा है तो आजसे ही महत्ताकी, बड़प्पनकी कल्पना अपने मनमें स्थापित कर दो और भावना करो कि तुम दिन-प्रतिदिन उच्च स्थितिमें प्रवेश कर रहे हो…… प्रतिक्षण अपनी कल्पना अधिकाधिक पुष्ट करते रहो और निरन्तर दृढ़ प्रयत्नसे अवश्य तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा। प्रत्येक सत्संकल्पमें आत्मशक्ति

ओतप्रोत रहती है। हमारे महान् बननेका कारण हमारी आत्मामें ही विद्यमान है। बाहर कहीं खोजनेकी आवश्यकता नही है। मनुष्यकी महत्ताका लक्षण आत्मविश्वास है। महान् लक्ष्योंका चित्र मनमे रखनेसे कल्पना-शक्ति अधिकाधिक दृढ़ होकर विशाल और बलवान् होती है। अपनी आत्माकी विशालताका चिन्तन करो। महानता ही तुम्हारा आदर्श है। अतः अपनी कल्पनाका मानसिक चित्र अपने विषयमे विशाल, महान् एवं सुन्दर बनाओ और दृढ प्रयत्न करो।

अपनी महानताके विचार मनमें दृढ़तासे जमा देना मनोभूमिमें महानताके बीज बो देना है। यही विचार-बीज कालान्तरमें अङ्कुरित, पल्लवित और पुष्पित होते हैं और आपकी महत्ताकी छाप आपके कुटुम्बियों, मित्रो, पड़ोसियो और मिलने-जुलनेवालोपर जमा देते है। महानताका आन्तरिक विश्वास आपको आगे ढकेलनेवाली शक्ति है। इसे दृढ़तासे धारण कीजिये। जिस क्षेत्रकी महानता इष्ट हो, उसीका सर्वोत्कृष्ट रूप मनमें धारण कीजिये और अपने दैनिक जीवनसे प्रत्यक्ष कीजिये।

अपने-आपको तुच्छ समझना एक पाप है, आत्मपतन है। इसके भागी न बनिये। अपना तिरस्कार करना आत्महत्याका ही एक भेद है। अपनेको तुच्छ और नीच समझनेवाला व्यक्ति अपने चरित्रकी सर्वोच्च तथा परमोत्कृष्ट वस्तुकी जड काट रहा है। आत्मतिरस्कार-सम्बन्धी प्रत्येक विचार व्यक्तित्वकी शक्ति एवं उन्नतिको नष्ट करनेवाला भयानक मानसिक रोग है।
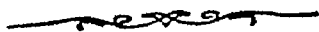
उठो, पुरुषार्थ करो !

अप्राप्यं नाम नेहास्ति धीरस्य व्यवसायिनः।

पुरुषार्थी धीरके लिये कोई भी वस्तु अप्राप्य नही ।

भाग्य और प्रारब्ध मनुष्यके गुप्त मनमें एकत्रित नये-पुराने संस्कारोका परिणाम है । जो संस्कार साधारण है, वे प्रत्यक्ष फल देनेवाले नहीं हैं और उन्हे संचित कर्म कहते है । इनका एक कोष निरन्तर मनमे रहता है । जो तीव्र और गहरे संस्कार है, वे जन्म-जन्मान्तरके फल देनेवाले हैं तथा उन्हींके बलपर जीवको जन्म मिलता है । इन्ही गहरे संस्कारोसे प्रारब्ध बनता है और निरन्तर हमें अप्रत्यक्ष रूपसे प्रभावित किया करता है । इस प्रकार हमारी आयु, पुरुषार्थ एवं उद्योग निश्चित होता है ।

इस शरीरसे हम जो नये संस्कार डालते है उन्हे क्रियमाण संस्कार कहते है । यदि उनमे हमारा अहं रहता है, तो संचित संस्कारोमें इनका भी योग बढ़ता जाता है । इनमेंसे प्रबल संस्कारोके बलपर हमें अगला जन्म प्राप्त होगा । इस प्रकार संस्कार मिलते रहते है और नये-नये शरीर बनते जाते है ।

शरीरसे यह प्रारब्ध लेकर हम जगत्में आते है । कुछ व्यक्तियोंके पास अच्छा भाग्य नहीं होता । इन्हें अपने पुष्ट और दृढ प्रयत्नोसे कार्य लेना पड़ता है । इसे पुरुषार्थ कह सकते हैं । इसे दूसरे रूपमे यो कह सकते हैं कि विश्वमें तीन प्रमुख शक्तियाँ है—एक उत्पन्न करनेवाली, दूसरी पोषण करनेवाली, तीसरी संहार करनेवाली । इन तीनो

शक्तियोंको ब्रह्मा, विष्णु, महेश कह सकते हैं। इन शक्तियोंके और छोटे-छोटे भागोंकी कल्पना की गयी है। जिन्हे तैंतीस करोड़ देवता कहते हैं। इनका संकेत हमारे ऋषि-मुनियोंने किया है। इन असंख्य शक्तियोंसे कार्य लेनेको पुरुषार्थ कहते हैं। मन्त्रोंद्वारा भी इन शक्तियोंको अपने अनुकूल किया जा सकता है। इसे भी पुरुषार्थ कहते है।

प्रारब्ध संस्कार (संचित संस्कार नही) प्रेरणाके अनुसार सत्त्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी वृत्तिके अनुसार उद्यम चुनेगे। आजन्म कार्य करेंगे और स्वभावके अनुसार उसी उद्यमका कम या अधिक फल प्राप्त होगा। सत्त्वगुणीका सम्बन्ध दैवी शक्तियोंके साथ है, अतः उसे सर्वाधिक फल मिलेगा; रजोगुणीको मध्यम फल प्राप्त होगा। तमोगुणीको न्यून फल प्राप्त होगा। रजोगुणी और सत्त्वगुणीको जो फल होगा, वह थोडे-बहुत अन्तरसे समान-सा होगा, पर रजोगुणी असंतुष्ट बना रहेगा। पुरुपार्थसे निर्बल संस्कार नष्ट किये जा सकते है और तीव्रतर संस्कारोंसे बहुत कुछ बदला जा सकता है।

उद्योग एक साधारण प्रयत्नमात्र है। जीवन-यात्राको सुखद और स्तर ऊँचा करनेके सब प्रयत्न उद्योगमें शामिल हैं।

पुरुपार्थहीन व्यक्तिको लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती। निठल्ले और आलसी एक प्रकारके पापी है; क्योंकि वे अपने पुरुषार्थका हनन करते है। उद्यमीका मित्र परमेश्वर है। उद्यम करनेसे अर्थात् मन, बुद्धि और शरीरसे निरन्तर कार्य लेनेसे मनुष्यके पुरुषार्थका विकास होता है।

जो चलता रहता है अर्थात् सक्रिय और प्रगतिशील जीवन

व्यतीत करता है, उसका शरीर और जाँघें पुष्ट होती हैं। फल-प्राप्तिमें उसकी आत्मा संतुष्ट होती है। पुरुषार्थीके पाप, दुश्चिन्ताएँ और भय पसीनेके साथ बह जाते हैं। पुरुषार्थ कर्मयोगीकी प्रार्थना है।

जो सब ओरसे प्रयत्न-विहीन, भयग्रस्त या आलस्यमें बैठ गया है, निश्चय जानिये, उसका भाग्य भी बैठ जाता है। जो मजबूतीसे श्रम करने और जीवन-संघर्षमें युद्ध करनेको तैयार है, उसका भाग्य भी खडा हो जाता है, सोनेवालेका भाग्य भी सो जाता है जब कि पुरुषार्थीका भाग्य निरन्तर गतिशील रहता है।

प्रकृतिकी ओर देखिये। उन्नत और आकर्षक प्रतीत होनेवाले सब प्राणी भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। मधुमक्षिका पुरुषार्थसे असंख्य पुष्पोंपर विचरणकर कण-कणसे मधु संचय करती है। पक्षी एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर उड-उड़कर अपने प्रयत्नोंके ही फल चखते हैं। न उनके बाल-बच्चे ही कुछ देते हैं और न अनाजके कोठे ही भरे हुए हैं। प्रतिदिन पुरुषार्थका सहारा लेकर वे पंख फड़फड़ाते हैं और परमेश्वर उनके सच्चे प्रयत्नोंका उपहार प्रदान करते हैं। सूर्यके पुरुषार्थको देखिये—चलते-चलते थकनेकी बात कभी मनमें नहीं लाता। उसका जीवन पुरुषार्थका ज्वलन्त उदाहरण है। सरिताएँ नित्य नये वेग और उत्साहसे प्रवाहित होती रहती हैं। फिर आप निराश क्यों? आप अपनी महत्त्वाकांक्षाओंका क्यों दम घोट रहे हैं? अपने शरीर और इन्द्रियोंको क्यों अशक्त बना रहे हैं?

उठो, पुरुषार्थ करो। अपने लक्ष्यकी ओर सीधे चले चलो।

पुरुषार्थ कीजिये !

मनुष्य संसारमें सबसे अधिक गुण, समृद्धियाँ, शक्तियाँ लेकर अवतरित हुआ है। शारीरिक दृष्टिसे हीन होनेपर भी परमेश्वरने उसके मस्तिष्कमें ऐसी-ऐसी गुप्त आश्चर्यजनक शक्तियाँ प्रदान की हैं, जिनके बलसे वह हिंस्र पशुओंपर भी राज्य करता है, दुष्कर कृत्योंसे भयभीत नहीं होता, आपदा और कठिनाईमें भी वेगसे आगे बढ़ता है।

मनुष्यका पुरुषार्थ उसके प्रत्येक अङ्गमें कूट-कूटकर भरा गया है। मनुष्यकी सामर्थ्य ऐसी है कि वह अकेला समयके प्रवाह और गतिको मोड़ सकता है। धन, दौलत, मान, ऐश्वर्य, सब पुरुषार्थद्वारा प्राप्त हो सकते हैं।

अपने गुप्त मनसे पुरुषार्थका गुप्त सामर्थ्य निकालिये। वह आपके मस्तिष्कमें है। जबतक आप विचारपूर्वक इस अन्तःस्थित वृत्तिको बाहर नहीं निकालते तबतक आप भेड़-बकरी बने रहेंगे। जब आप इस शक्तिको अपने कर्मोंसे बाहर निकालेंगे, तब प्रभावशाली बन सकेंगे।

संसारके चमत्कार कहाँसे प्रकट हुए? संसारके बाहरसे नहीं आये और ब्रह्मशक्ति आकर उन्हें प्रस्तुत नहीं कर गयी है। उनका जन्म मनुष्यके भीतरसे हुआ था। संसारकी सभी शक्तियाँ, सभी गुण, सभी तत्त्व, सभी चमत्कार मनुष्यके मस्तिष्कमेंसे निकले हैं। उद्गमस्थान हमारा अन्तःकरण ही है।

संसारमें छोटे-मोटे लोगोंके तुम क्यों गुलाम बनते हो? क्यों मिमियाते, भौंकते या बड़बड़ाते हो? दुःख, चिन्ता और क्लेशोंसे क्यों विचलित हो उठते हो? नहीं, मनुष्यके लिये इन सबसे घबरानेकी कोई आवश्यकता नहीं। वह तो अचल, दृढ़, शक्तिशाली और महाप्रतापी है।

इसी क्षणसे अपना दृष्टिकोण बदल दीजिये। अपने आपको महाप्रतापी, पुरुषार्थी पुरुष मानना शुरू कर दीजिये। तत्पर हो जाइये। सावधानीसे अपनी कमजोरी और कायरता छोड़ दीजिये। बल और शक्तिके विचारोंसे आपका सुषुप्त अंश जाग्रत् हो उठेगा।

सामर्थ्य और शक्ति आपके अंदर है। बलका केन्द्र आपका मस्तिष्क है। वह नित्य, स्थायी और निर्विकार है, फिर किस वस्तुके

अभावको महसूस करते हैं ? किस शक्तिको बाहर ढूँढ़ते फिरते है ? किसका सहारा ताकते हैं ? अपनी ही शक्तिसे आपको उठना और उन्नति करनी है। उसीसे प्रभावशाली व्यक्तित्व बनाना है। आपको किसी भी बाहरी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। आपके पास पुरुषार्थका गुप्त खजाना है। उसे खोलकर काममें लाइये।

मनुष्यको संसारमें महत्ता प्रदान करनेवाला पुरुषार्थ ही है। उसीकी मात्रासे एक साधारण तथा महान् व्यक्तिमें अन्तर है। पुरुषार्थकी वृद्धिपर ही मनुष्यकी उन्नति निर्भर है। सामर्थ्यसम्पन्न मनुष्य ही सुख, सम्पत्ति, यश, कीर्ति एवं शान्ति प्राप्त कर सकता है।

पुरुषार्थका निर्माण कई मानसिक तत्त्वोंके सम्मिश्रणसे होता है। (१) साहस—इन सबमें मुख्य है। नये कार्योंमें तथा कठिनाईके समय हमें कोई भी बाह्य शक्ति आश्रय प्रदान नहीं कर सकती। साहसी वह कार्य कर दिखाता है जिसे बलवान् भी नहीं कर पाते। साहसका सम्बन्ध मनुष्यके अन्तःस्थित निर्भयताकी भावनासे है। उसीसे साहसकी वृद्धि होती है। (२) दृढता—दूसरा तत्त्व है जो पुरुषार्थ प्रदान करता है। दृढ़ व्यक्ति अपने कार्योंमें खरा और पूरा होता है। वह एकाग्र होकर अपने कर्तव्यपर डटा रहता है। (३) महानताकी महत्त्वाकांक्षा पुरुषार्थीको नवीन उत्तरदायित्व—जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनेका निमन्त्रण देती है और मुसीबतमें धैर्य एवं आश्वासन प्रदान करती है। स्वेट मार्डेन साहबके अनुसार बड़प्पनकी भावना रखनेसे हमारी आत्माकी सर्वोत्कृष्ट शक्तियोंका विकास होता है, वे जाग्रत् हो जाती

है। इस गुणके बलपर पुरुषार्थी जिस दिशामे बढता है, उसीमें ख्याति प्राप्त करता चलता है। वह अपने महत्त्वको समझता है और अपनी सभी शक्तियोंके द्वारा सदा आत्ममहत्त्वको बढाता रहता है।

धीमन्तो वन्द्यचरिता मन्यन्ते पौरुषं महत्।
अशक्ताः पौरुषं कर्तुं क्लीबा दैवमुपासते॥

अर्थात् 'वन्दनीय चरितवाले बुद्धिमान् जन पुरुषार्थको ही प्रधान मानते हैं और जो नपुंसक एवं पुरुषार्थहीन जन हैं, वे भाग्यकी ही उपासना करते हैं।'

और भी कहते है—

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

अर्थात् 'उद्यम अथवा पुरुषार्थसे सम्पूर्ण कार्य सफल होते हैं मनोरथसे नहीं; क्योकि सोते हुए सिंहके मुखमें मृग प्रवेश नही करते।' इससे सिद्ध होता है कि पुरुषार्थ श्रेष्ठ है।

गोस्वामी तुलसीदासजी अपने रामचरितमानसमें लिखते है—

दैव दैव आलसी पुकारा।

अर्थात भाग्यको पुरुषार्थहीन लोग पुकारा करते हैं।

भगीरथके पिताने गङ्गाजीको लानेका बहुत प्रयत्न किया; किंतु वे सफल न हुए। उनके पुत्र भगीरथ भाग्यपर निर्भर न रहते हुए पुरुषार्थद्वारा पतितपावनी गङ्गाजीको अपने पितरोंको तारनेके लिये लानेमें समर्थ हुए। इससे सिद्ध होता है कि पुरुषार्थसे सब कुछ सिद्ध होता है।

तू स्वयंप्रकाश है,

तू स्वयं आनन्द है,

तू स्वयंद्रष्ट, सर्वपरिपूर्ण है,

तू पूर्ण और स्वतन्त्र है,

शिवानन्द कहते हैं—

मृत्यु तुझे छू नहीं सकती,

तू देश, काल, वस्तुसे अतीत है;

कह चिदानन्दरूप शिवोऽहं शिवोऽहम् ।

तू शरीरसे भिन्न है

हे राम ! तू अमर आत्मा है,

सर्वव्यापक, अक्षर, अमर है,

यह शरीर नारियलकी खालके सदृश है,

नारंगीके छिल्केकी नाई है ।

तू तीनों शरीरोंसे भिन्न है,

तू पंचकोषोंसे भिन्न है,

तू तीनों अवस्थाओंका साक्षी है,

तू बुद्धिका साक्षी है ।

नेति-नेति साधनाका अभ्यास करो,

अपवाद युक्तिके सहारे

उपाधियोंका परित्याग करो,

सार तत्त्वको प्राप्त करो ।
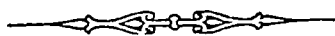
आलस्य न करना ही अमृत पद है

बुद्ध भगवान्‌ने एक स्थानपर कहा है कि 'अप्रमाद ही अमृत पद है।' अप्रमाद अर्थात् आलस्य न करना ही उन्नतिके इच्छुकके लिये श्रेष्ठ है। आलस्य करनेसे बडे-से-बड़े शक्तिशाली व्यक्ति, सम्पन्न व्यापारी, समृद्ध देश, समुन्नत जातियाँ विनष्ट हो जाती हैं। कारण, आलस्यसे मनुष्यका मन, बुद्धि और शरीर तीनों ही दुर्बल बन जाते हैं और उच्च शक्तियाँ पंगु हो जाती हैं।

गीतामें कहा है—'श्रद्धावाल्लँभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः' कार्यमें तत्पर, संयमी एवं श्रद्धालुको ही ज्ञान प्राप्त होता है। जो आलस्यमें

जीवन व्यतीत नहीं करता और निरन्तर कर्त्तव्य-रत रहता है, उसे दीर्घायु प्राप्त होती है।

आलसी व्यक्तिके लिये किसी भी प्रकारकी उत्कृष्टता प्राप्त करना कठिन है। कारण, वह अपनी शक्तियोंको आलस्यकी केंचुलीमें ढके रहता है। उद्योग तथा परिश्रमद्वारा उन्हे विकसित नहीं कर पाता। जबतक उद्योग नहीं, परिश्रममें प्रवृत्ति नही, तबतक शक्तियोंका विकास नहीं हो सकता। आलस्य और उन्नति साथ-साथ नही चल सकते।

आलस्य एक प्रकारका अन्धकार है, जो आत्मापर, शक्तियोंपर और मनुष्यकी भावी उन्नति एवं प्रगतिपर तुषारापात कर देता है। आलसी पड़ा-पड़ा यही सोचा करता है कि मेरा काम कोई अन्य व्यक्ति कर दे, मेरी तरक्की करा दे। बाजारसे मेरे घरकी नाना वस्तुएँ ला दे; दफ्तरका काम भी अन्य कोई साथी ही कर दे। आलसी अफसर अपने छोटे मातहतोंके वशमे रहते है। वे जो पत्र या ड्राफ्ट लिख देते हैं, उसीपर हस्ताक्षर कर देते हैं। ठीक है या गलत, उचित है या अनुचित, क्या बाते लिख दी गयी है, यह भी नही देखते। बडे-बड़े व्यापारियोंके दिवाले प्रायः उनके हिसाब-किताब आय-व्ययका ठीक ब्योरा न रखनेके कारण निकलते है। वे उधारपर उधार दिये जाते हैं, पर उसे वसूल करनेमें आलस्य करते रहते है। रकमें उत्तरोत्तर बढती जाती है और अन्तमें सारी पूँजी ही उधार-वालोंमें बँट जाती है। आलसी माता-पिता अपने बच्चोंकी पढ़ाई-लिखाई, उन्नति आदिको नही देखते। फलतः बच्चे उतनी उन्नति नहीं कर पाते, जितनी वस्तुतः उन्हें करनी चाहिये। यदि वे अपना

आलस्य छोड़कर उनपर एक तीखी दृष्टि रक्खा करें, स्वयं भी काममें अपना सहयोग देते रहें, तो पर्याप्त प्रगति हो सकती है।

प्रकृतिको देखिये, उसका काम कैसा नियमबद्ध होता है। प्रत्येक वस्तु अपना-अपना निर्धारित कार्य निश्चित समयपर करती चलती है। आलस्यका नाम-निशान तक नहीं। आलसी सदस्योंके प्रति प्रकृति बड़ी निष्ठुर है। आलसीकी बड़ी दुर्गति होती है। अन्तमें सजाके तौरपर वहाँ मृत्युदण्ड तकका विधान है। प्रकृतिका प्रत्येक सदस्य अन्ततक अपना काम सक्रियतासे करता है।

पशु-पक्षियोंमें भी आलस्यको स्थान नहीं है। मधुमक्खियोंके छत्तेमें नर मक्खीका कार्य केवल संतानोत्पत्ति मात्र है। वह कोई कार्य नहीं करता। बैठा-बैठा खाता है। आलसी-अकर्मण्य पड़ा रहता है। आप जानते हैं, उसे इसकी क्या सजा मिलती है? तिरस्कार और व्यंग्य, ठोकरें और अन्तमें मृत्यु। मादा मक्खियाँ दिनभर जी तोड़कर परिश्रम करती हैं, कुछ-न-कुछ मधु संचित करती जाती हैं। फलत: उनके छत्तेमें समृद्धिका भंडार बना रहता है। पर्याप्त संग्रह होनेपर भी वे आलस्य नहीं करतीं। उनका श्रम उसी रफ्तारसे चलता रहता है। अन्य पशुओंमें भी आलसी पशु-पक्षियोंकी दुर्गति है।

अब मनुष्योंके समाजकी ओर देखिये। उद्योगी और परिश्रमी व्यक्ति ही आपको सुखी और समृद्ध दिखायी देंगे। मनुष्यका जन्म भले ही निर्धन परिवारमें हो, उसके पास जातिश्रेष्ठता या घरकी जमीन-जायदाद कुछ भी न हो, केवल उद्योग और श्रमकी आदतें

हों, आलस्यसे मुक्त हो, तो वह धनाढ्य और कीर्ति प्राप्त कर सकता है।

कीर्ति और लक्ष्मी श्रम और उद्योगके आधीन हैं। जो आलस्य नामक शिथिल करनेवाली और शक्तियोंको पंगु बनानेवाली आलसी वृत्तिको छोडेगा, वह निश्चय ही यश, प्रतिष्ठा और कीर्ति प्राप्त करेगा।

आलस्य एक प्रकारका तमोगुणसे उत्पन्न विकार है। बहुतसे मनुष्य अनापशनाप भक्ष्य-अभक्ष्य अनेक पदार्थ बड़ी तादादमें भक्षण कर लेते हैं। अधिक भोजनसे उन्हे निद्रा बहुत सताती है। राक्षसों-की तरह पड़े-पडे सोया करते हैं, अकर्मण्य बन जाते हैं और अपने दैनिक कर्त्तव्योंका भी पूरी तरह पालन नहीं कर पाते। दफ्तरमे, दूकानमें, अपने वायदोंमे तमोगुणी व्यक्ति सदा पिछडा रहता है। जैसे सर्प केचुलिमें लिपट कर निष्क्रिय हो जाता है; एक स्थानपर पड़ा रहता है, वैसे ही आलस्यमे फँसकर हमारा मन थोड़ी देरके लिये कामसे दूर भागता है। बस पड़े रहे, कुछ न करें, यही तबियत चाहती है। आपने अजगर देखा है। उसका बहुत बड़ा शरीर है। पूरेके पूरे जानवर निगल जाता है और फिर पड़ा-पड़ा सोया करता है। दस-दस दिन सोते हुए व्यतीत हो जाते है। सोते हुए उसपर नाना विपत्तियाँ आती रहती है। इन्द्रियसुख, अधिक भोजन, विषय-भोग, बलात्कार, व्यभिचार, अहंकार, क्रूरता, निष्ठुरता—इन सब बुरे विकारोका सम्बन्ध आलस्यसे है। फालतू पड़ा हुआ दिमाग शैतान-का घर है—यह सत्य अंक है। आलसी पड़ा-पड़ा बुरी वृत्तियोंका

शिकार बनता जाता है। उसकी आसुरी वृत्तियाँ उद्दीप्त हो उठती हैं। भोगकी इच्छा ही उसमें निरन्तर बढ़ती जाती है। आलसी इस कर्म-क्षेत्रके लिये तो किसी कामका रहता ही नहीं, उच्च जीवन, त्याग, प्रेम, तप, संयम भी नहीं साध पाता। आलस्य और परमार्थका वैर है। आलसी व्यक्ति नालीके कीड़ेकी तरह वासना-सुखको ही जीवनका लक्ष्य मानता रहता है।

ससारके इतिहासको उठा देखिये। वे जातियाँ नष्ट हो गयी, जो आलसी और विलासी बनीं। जिस जाति और समाजमें आलस्य भर जाता है—वह यश, प्रतिष्ठा और नेतृत्व तीनो ही दिशाओंमें अवनतिके मार्गपर अग्रसर होती जाती है। इन्द्रिय-सुख, विलास और आलस्य उसको जर्जर तथा अशक्त कर देते हैं।

एक विद्वान्‌ने सत्य ही लिखा है, 'सर्वतोमुखी उन्नतिके लिये यह जरूरी नहीं है कि मनुष्य धनी हो अथवा उसके पास सब प्रकारके साधन मौजूद हों। यदि ऐसा होता, तो ससार उन सब युगोंमे उन मनुष्योंका ऋणी न होता, जिन्होंने निम्न श्रेणीसे उन्नति की है। जो मनुष्य आलस्य और ऐश-आराममे अपने दिन बिताते है, उनको उद्योग अथवा कठिनाइयोंका सामना करनेकी आदत नहीं पड़ती और न उनको उस शक्तिका ज्ञान होता है, जो जीवनमें सफलता प्राप्त करनेके लिये परम आवश्यक है। गरीबीको लोग मुसीबत समझते हैं, परंतु वास्तवमें बात यह है कि यदि मनुष्य दृढ़तापूर्वक अपने पैरोंपर खड़ा रहे तो वह गरीबी उसके लिये आशीर्वाद हो सकती है। गरीबी मनुष्यको संसारके युद्धके लिये तैयार करती है, जिसमें यद्यपि

कुछ लोग नीचता दिखाकर विलासप्रिय हो जाते हैं, परंतु समझदार और सच्चे हृदयवाले मनुष्य बल और विश्वासपूर्वक लड़ते हैं और सफलता प्राप्त करते हैं ।'

आजका मनुष्य समय न मिलनेकी बड़ी शिकायत किया करता है। अध्ययन, समाचारपत्रका पठन-पाठन, पूजा-पाठ, सद्ग्रन्थावलोकन या प्रातःभ्रमण इसलिये नहीं करते; क्योंकि उनकी रायमें उन्हें इन कार्योंके लिये अवकाश ही नहीं मिलता । वास्तवमें ये व्यक्ति अपना अधिकांश समय आलस्यमें ही खो देते हैं । फुरसतमें अमुक काम करूँगा, अवकाश मिलनेपर अमुकसे मिलने जाऊँगा; पूजा शुरू करूँगा, जप-प्रार्थना इत्यादि प्रारम्भ करूँगा, अमुकको पत्र लिखूँगा—पर आलसी वृत्ति उन्हें निरन्तर टालती ही रहती है। ठोस काम करनेका अवसर ही नहीं आता । टालनेसे उत्साह मन्द पड़ जाता है और फल यह होता है कि आवश्यक कार्य भी सम्पन्न नहीं हो पाते ।

मान लीजिये आप प्रातः छः बजे उठनेके आदी हैं। यदि आलस्य त्यागकर आप किसी प्रकार प्रातः पाँच बजे उठ जाया करें, तो एक घंटा जीवनका और मिल सकता है । महीनेमें तीस घंटे मिल गये । अब यदि इन तीस घंटोंमें कोई नया काम प्रारम्भ किया जाय, तो निश्चय ही आप संसारको कोई नयी वस्तु देकर अपना नाम चिरस्थायी बना सकते है ।

प्रसिद्ध विचारक श्रीअगरचन्द नाहटाने आलस्यके इस पक्षपर विचार करते हुए लिखा है—'जो कार्य अभी हो सकता है, उसे घंटों बाद करनेकी मनोवृत्ति आलस्यकी निशानी है। एक कार्य हाथ-

में लिया और करते चले गये, तो बहुतसे कार्य पूर्ण हो सकेंगे। पर बहुतसे काम एक साथ लेनेसे किसे पहले किया जाय, इसी दुविधामें समय बीत जाता है और एक भी कार्य पूरा और ठीकसे नहीं हो पाता है। अतः जो कार्य आज और अभी हो सकता है, उसे कलके लिये न छोड तत्काल कर डालिये। दूसरी बात ध्यानमें रखनेकी यह है कि एक साथ अधिक कार्य हाथमे न लिये जायँ; क्योकि किसी भी कार्यमे पूरा मनोयोग एवं उत्साह न रखनेसे सफलता नहीं मिल सकेगी। अतः एक-एक कार्यको हाथमें लिया जाय और क्रमशः सब-को कर लिया जाय, अन्यथा सभी कार्य अधूरे रह जायेंगे और पूर्ण हुए बिना किसी भी कामका फल नहीं मिल सकता। जैन ग्रन्थोंमें बाधा डालनेवाली तेरह बातोंमें आलस्य पहली है। बहुत बार बना-बनाया काम तनिकसे आलस्यके कारण बिगड़ जाता है। क्षण-मात्र भी प्रमाद न करनेका भगवान् महावीरने उपदेश दिया है। अतः पुनः विचार कर प्रमादका परिहार कर कार्यमें उद्यमशील होना परमा-वश्यक है। जैन-दर्शनमें प्रमाद निकम्मेपनके ही अर्थमें नही है, परन्तु समस्त पापाचरणके आसेवनके अर्थमें भी है। पापाचरण करके जीवनके बहुमूल्य समयको व्यर्थ न गँवाइये। आत्माकी शक्तिका ठीक तरह उपयोग नहीं होता, तो पापाचारी व्यक्ति उसका दुरुपयोग करता है।'

आलस्यसे मुक्त कैसे हो? पहले तो आलस्यके विरोधमें मनमें दृढ संकल्प कीजिये कि 'हम अपने चरित्रमें आये हुए आलस्यको अवश्य दूर करेंगे, जब आलस्य आकर हमारे मन और इन्द्रियोंको शिथिल

करेगा, हम फौरन सचेत हो जायँगे। समयका उचित उपयोग करेंगे'—मनमें यह धारणा जम जानेके बाद सक्रियताकी आवश्यकता है।

मान लीजिये आपने निश्चय किया है कि आप बडे तड़के चार बजे ही उठ बैठेंगे। शौचादि-व्यायाम-स्नान-पूजन-प्रार्थना आदि नित्य-कर्म एक घंटेमें समाप्त करके और पाँच बजे ही अपने दैनिक कार्यमें पूर्ण मनोयोगसे जुट जायँगे।

किंतु, जब आप प्रातःकाल शय्यात्याग करनेका प्रयत्न करेंगे, तो मनका शैथिल्य आपको कुछ देर और सोये पडे रहनेके लिये खीचेगा। शरीर कोमल शय्यापर पड़ा रहना चाहेगा। यही आपकी परीक्षाका क्षण है। फौरन उठ पड़िये और आलस्य नामक राक्षसको पछाड़ दीजिये।

जिस कठिन कार्यको करनेके लिये तबियतमें आलस्य उत्पन्न हो, उसे जरूर किया कीजिये। मान लीजिये, आप मनमें यह अनुभव करते है कि अमुक व्यक्तिसे मिलने जाना आवश्यक है, तो मनको मोड़कर जरूर यह काम कीजिये। जिन-जिन पत्रोंका उत्तर लिखना है, अवश्य ही उनका उत्तर लिखिये। लिखनेमें आलस्य कभी न कीजिये।

सम्भव है आपको मानसिक श्रमसे आलस्य हो। आप कठिन विषयोंके अध्ययनमे चित्तको एकाग्र न कर पाते हों। दिलबहलावकी कहानियों, पुस्तकों, उपन्यासों या कामुक रुचि बढ़ानेवाले साहित्यमे ही दिलचस्पी लेते हों, यदि ऐसा है तो मनको दृढ़तासे इन रसीले घातक विषयोंसे हटाइये और यथार्थ ज्ञानप्रद गम्भीर विषयोंमें दिलचस्पी लेनेवाला बनाइये। सब ओरसे मन हटाकर एक ही विषयपर देरीतक मनको केन्द्रित कीजिये। जो समय आपने उक्त

विषयके अध्ययनके लिये निश्चित किया है, उतनी देर अवश्य पढ़िये अन्यथा एक बार शैथिल्य आनेसे आदत और अनुशासन भङ्ग हो जायगा और निश्चय बल भी कम हो जायगा।

हमें फासिस्ट-शिक्षा-पद्धतिकी कुछ उपयोगी बातें विशेषतः उनका अनुशासन और किसी समय भी बेकार न बैठनेका नियम अवश्य अपने राष्ट्रीय चरित्रमें उतारना चाहिये। तभी लोकतन्त्रकी रक्षा हो सकेगी। बालकोंको अभ्यास कराना चाहिये कि वे अपना-अपना दैनिक कार्य करे, वस्तुओं और विशेषतः कपड़ोंको सफाईसे तह करके रक्खे, जूतोंको पालिश करे, वस्तुओंको उनके लिये नियत स्थानोंपर ही रक्खा करें।

आलस्य एक प्रकारकी बुरी आदत मात्र है। मन, शरीर, दिमाग, वाणी—सभी प्रकारके आलस्य हमारी आदतोंके परिणाम हैं। यदि माता-पिता आरम्भसे ही बच्चोंमें अनुशासन रक्खें और उनका मानसिक और शारीरिक कार्य सतर्कतासे करानेकी आदतें डालें तो एक पीढ़ी ही सुधर सकती है।

स्मरण रखिये निकम्मेपन और आलस्यमें भी एक प्रकारका घृणित आकर्षण है। सैकड़ों व्यक्ति आलस्यके गन्दे कूपमें पड़े हैं और उसीको श्रेष्ठ समझ रहे हैं। उन्हें अपने जीवनसे अधिकसे अधिक कार्य लेनेके लिये कमर कसकर तैयार हो जाना चाहिये।

'आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः'

अर्थात् मनुष्योंका शरीरमें रहनेवाला सबसे बड़ा शत्रु आलस्य ही तो है।

विषम परिस्थितियोंमें भी आगे बढ़िये

मानव-जीवन परिस्थितियोंसे तो प्रभावित होता ही है—बनता-बिगडता और सजता-सँवरता है, किंतु फिर भी मानवको—सृष्टिके सर्वोत्तम प्राणीको—परिस्थितियोंके हाथकी कठपुतली या 'परिधि-जीव' मानना भूल है। मानवने नूतन परिस्थितियोंके निर्माण और विषम परिस्थितियोंपर विजय प्राप्त करनेमें सदा पहले कदम उठाया है। परिस्थिति-विजेता और नवयुगके प्रणेताको ही तो हम महापुरुष कहते हैं। हमारा आरण्यक दर्शन भी यही कहता है कि प्रकृति और पुरुषमें सदा संघर्ष ही न देखो, सहयोग और समन्वयात्मक सतत चेष्टाद्वारा समुन्नतिकी कामना करो—साधन है दृढ़ संकल्प-शक्ति। **'सतां सत्त्वे सिद्धिर्भवति महतां नोपकरणे'** ही अनुकरणीय सिद्धान्त है।

एक व्यक्ति किसी यात्रापर जानेकी सोच रहा था। कुछ चिन्तन

करनेके पश्चात् उसके मनमे आया कि मुझे खाने-पीने, खाद्य-सामग्रियोंको एकत्र करने, वस्त्र इत्यादि मोल लेने तथा थोड़े दिनोंके लिये विश्राम करने, गृह इत्यादिकी व्यवस्थाके लिये धनकी आवश्यकता है। यात्रासे पूर्व कुछ धन संचय कर लेना चाहिये। वह धन एकत्रित करनेमें संलग्न हो गया। वह सुबहसे शामतक अर्थ अर्जित करता, भोजन-वस्त्रोंमे व्यय करनेके पश्चात् कुछ संग्रह करता और यात्राके लिये अन्य आवश्यक वस्तुओंको इकट्ठा करने लगा। एक मासतक परिश्रम कर जब उसने अपना संचित कोष देखा तब उसे ऐसा लगा कि यह एकत्रित किया हुआ धन यात्राके लिये बहुत कम है। उसने पुनः वे ही कार्य जारी रक्खे। कुछ अन्य वस्तुएँ भी खरीदीं। साधारण-सी झोपड़ी बना ली, किंतु दूसरे मासमें भी उसके मनकी फिर वही स्थिति थी। अभी वस्तुएँ, धन और यात्राके उपकरण कम थे। उसने बहुत सोच-विचार कर यह तय किया कि यात्राके व्यय-भारको सम्हालनेके लिये एक वर्षतक परिश्रम और धन-संचय करनेकी आवश्यकता है। वह पुनः दुगुने उत्साहसे धन तथा अन्य उपकरणोंके संग्रहमें संलग्न हो गया। दिन-रात परिश्रम करता रहा; अपनी आत्मिक उन्नतिको भूल गया। शारीरिक सम्पदाको भी नष्ट करता गया। दूसरे वर्षमें फिर लेखा-जोखा देखनेके पश्चात् उसे उसी अभावका भान हुआ; अभी धन-सम्पदा, सांसारिक उपकरण, वस्तुएँ, घर-बार अपर्याप्त हैं। अभी और चाहिये। अभाव दूर करते-करते उसके जीवनका अन्त आ गया, किंतु वृद्धावस्थामें सब छोड़ते हुए उसने दर्दभरी आवाजमें कहा—'उफ्! जीवनभर अभावको दूर करनेमें व्यतीत हो गया और आज भी मैं अनेक प्रकारके अभावोंसे परिपूर्ण

हूँ। मैंने एक अभाव दूर किया, चार नये अभाव और सामने आ गये। उन्हें दूर किया तो सोलह नवीन अड़चनें प्रतीत हुई। जीवनमें एक-न-एक नयी उलझन आती ही रही। आज मृत्यु-शय्यापर भी मै अभावका अनुभव कर रहा हूँ।

आज यही हममेंसे अनेक व्यक्तियोंकी मनःस्थिति है। हम जीवनके उपभोगके लिये नाना वस्तुएँ एकत्रित करते हैं; धन भी पर्याप्त पा लेते है; अनेक वस्तुएँ हमारे पास होती हैं, किंतु हम उसीको साध्य मान बैठते है। वास्तवमें ये वस्तुएँ तो साधनमात्र हैं। हमारी स्थिति उस यात्रीके समान है जो यात्राके लिये नाना वस्तुओंका तो संग्रह कर लेता है, पर यात्रापर कभी नही निकलता। उसकी साधना तो वह यात्रा ही है। हम यह मानते रहें कि जब सब भौतिक अभाव दूर हो जायँगे, तब हम जीवनके महत्त्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ करेंगे, सर्वथा भ्रान्तिमूलक विचार है। अभाव हमारे जीवनकी एक सदा साथ चलनेवाली परछाई है। जहाँ हम जायँगे, जिस स्थितिमें हम रहेंगे, जिस देशकालमें निवास करेगे, अभाव हमारे साथ चलते रहेगे।

एक महाशय हैं, जो सदा इसी बातकी प्रतीक्षामें रहे कि तैरनेकी कलाके विषयमें जो कुछ प्राप्त हो सके, पुस्तकोंमें पढ़ लें। प्रत्येक आनेवाली अड़चनको सोच-विचारकर दूर कर लें। हाथ-पैरको व्यायामद्वारा पर्याप्त दृढ़ बना लें, तब नदीमें कूदकर तैरना प्रारम्भ करेंगे। पढ़ते-पढ़ते बहुत काल हो गया, किंतु उक्त महोदय मनमें रहनेवाले अभावको दूर नही कर सके और अभीतक तैरना भी नहीं सीख पाये हैं।

हमारे एक दूसरे मित्र हैं। बड़े योग्य और विद्वान् हैं, उच्च श्रेणीके प्रोफेसर हैं। उनकी इच्छा है कि पत्र-पत्रिकाओंमें अपने विचार लिखें। लेख और पुस्तकें तैयार करें। प्रायः कहा करते हैं—'अभी मुझमें ज्ञानका अभाव है। कुछ और ज्ञानार्जन कर लूँ, तब लिखना प्रारम्भ करूँगा। अभी तो मुझे बहुत कुछ सीखना है। व्यक्तियोंसे मिलकर उनके विचार लेने हैं, कई स्थानोंपर भ्रमण करना है। नवीनतम पुस्तकोंको पढ़ना है।' वह निरन्तर अपने ज्ञानके अभावको दूर कर रहे हैं। खेद है कि आज १५ वर्ष बाद भी वे अपने अभावोंको दूर नहीं कर सके है।

यदि मुझे अमुक-अमुक सुविधाएँ मिलतीं तो मैं ऐसा करता, समुन्नत होता, प्रतिष्ठित पद प्राप्त करता, अमीर बन जाता—ये उक्तियाँ उनकी हैं जो केवल झूठी शेखी बघारते हैं। ये वास्तवमें कोई ठोस कदम नहीं उठाना चाहते, एक झूठी आत्मप्रवञ्चनामें डूबे रहते हैं।

एक विद्वान्ने ठीक ही लिखा है—यह एक असम्भव माँग है कि यदि मुझे अमुक परिस्थिति मिलती तो मैं ऐसा करता। जैसी परिस्थितिकी कल्पना की जा रही है, यदि वैसी मिल जाय, तो वे भी अपूर्ण मालूम पड़ने लगेंगी और फिर उससे अच्छी स्थितिका अभाव प्रतीत होगा। जिन लोगोंको धन, विद्या, मित्र, पद आदि पर्याप्त मात्रामें मिले हुए हैं, हम देखते हैं कि उनमेंसे भी अनेकका जीवन बहुत अस्तव्यस्त और असंतोषजनक स्थितिमें पड़ा हुआ है।

धन आदिका होना उनके आनन्दकी वृद्धि न कर सका, वरं जीका जंजाल बन गया ।

अतः सुविधाओंके लिये रोते-पीटते मत रहिये । परमेश्वरको दोष न दीजिये और भाग्यको भी मत कोसते रहिये । ये सब न करनेकी बाते हैं । झूठी आत्मप्रवञ्चना है ।

जो थोड़ी-बहुत वस्तुएँ आपके पास हैं, जो थोड़ा-सा रुपया-पैसा आपको मिला है, जो स्वल्प साधन आपको प्राप्त हैं, उन्हींकी सहायतासे अपनी योग्यताएँ प्रदर्शित करना प्रारम्भ कर दीजिये । जिनके पास अभाव है, वे वास्तवमें अधिक उन्नति कर पाते हैं । अभाव भी मनुष्यकी गुप्त शक्तियाँ खोल देते हैं ।

वास्तवमें उन्नतिकी जड़ स्वयं मनुष्यके अंदर है, परिस्थितियोंमें नहीं है । अभावग्रस्त साधन-हीन व्यक्ति ही संसारमें महत्त्वपूर्ण कार्य कर सके हैं । कारण यह है कि विपरीत परिस्थितियों और प्रतिकूलताओंसे मनुष्यके गुप्त मनोबल, संकल्प और दृढ़तामें वृद्धि होती है । सुप्त शक्तियोंके जाग्रत् होनेसे ही मनुष्य आगे बढ़ता है और तदनुकूल परिस्थितियोंका भी निर्माण कर लेता है । प्राचीन भारतीय राजाओंके यहाँ यह परिपाटी थी कि वे अपने पुत्रोंको ऐसे ऋषियोंके पास भेज देते थे, जो वन-पर्वतोंमें रहकर अभाव-ग्रस्त जीवन व्यतीत करते थे । उस अभाव-पूर्ण जीवनमें मँज कर जो विद्यार्थी निकलते थे, वे जीवनमें सफल भी होते थे । अभावग्रस्त जीवन भी मनुष्यको मजबूत और युद्ध करनेके लिये सम्पन्न बनानेका साधन है ।

प्रतिकूलतासे घबराइये नहीं !

एक कांग्रेसी कार्यकर्त्ता १९४२में जेलके अनुभव सुनाते हुए बोले—जेलके कठोर दिन थे । राजनीतिक कार्योंमे लगे रहनेके कारण छः महीनेका कारावास मिला था । हमारे साथ कई व्यक्ति ऐसे सम्पन्न समृद्ध घरानोंके भी थे, जो भावावेशके कारण जेल-जीवनमें आ घुसे थे और उस कठोर अभावपूर्ण जीवनके अभ्यस्त न थे । विषम परिस्थितियाँ उन्हे विचलित कर रही थीं । जेलका भोजन क्या था, बस, पशुओं-जैसा चारा समझिये । गिनी हुई चार मोटे आटे-की अधसिकी, अधपकी रोटियाँ, पत्तियोका साग (जिसमें कभी-कभी कीड़ोंके कटे हुए शरीर भी उबले हुए मिलते थे) न शक्कर, न घी । न उसमें किसी प्रकारका स्वाद । मनमे अपने परिवार, बन्धुबान्धवोंसे वियोगका मानसिक आघात, घरकी, व्यवसायकी असंख्य चिन्ताएँ और मानसिक दु.खका बोझ । फल यह हुआ कि जेलसे कारावास-का समय पूर्ण कर जब वे निकले तो अस्थि-पिंजरवत्, शरीरपर जैसे मांसका नाम नहीं ।

दूसरी ओर हमारी मनोवृत्ति देखिये । जिस क्षणसे हम जेलमें दाखिल हुए, हमने समझ लिया कि जेल ही हमारा संसार है । हम इसी जेलमे जन्मे है; जेलके कैदी ही हमारे इष्ट-मित्र और

परिवारके सदस्य हैं । यहाँ जो असुविधाएँ, खान-पान तथा मिलने-जुलनेकी विषमता, दुःख या तकलीफे है; वे जन्मसे ही हमें मिली हैं । इन कठोर परिस्थितियोंमें ही हमें हँसी-खुशीसे रहना है । इस क्षेत्रसे परे और कुछ नहीं । जो भोजन हमें मिलता है, वही हमारा वास्तविक भोजन है; उसीमें हमें स्वास्थ्य और आनन्द प्राप्त करना है । अपने दैनिक कार्योंमें स्वावलम्बन रखना है। किसी अन्यके ऊपर निर्भर नही रहना है। यों सोचकर हम उन कठोर परिस्थितियों-के अनुकूल बन गये और कुछ दिनों बाद तो उस कठोर जीवनके इतने अभ्यस्त हो गये कि उसमें हमें कोई कष्ट या असुविधा ही नहीं मालूम होती थी । इस मनःस्थितिका प्रभाव यह हुआ कि जब हम जेलसे छूटे तो हमारा वजन छः पौंड बढ़ गया था । जेलमें इससे पूर्व हमारा वजन ११२ पौंड था, जब बाहर आनेपर तुले तो ११८ पौंड हो गया था ।

हमारे समाजमें दो प्रकारके व्यक्ति हैं—एक तो वे जो पग-पगपर किन्हीं विशेष परिस्थितियोंमें ही सुखी-संतुष्ट रहते है, पग-पगपर अपने आराम, व्यवस्था तथा जीवनके लिये दूसरोंपर ही अवलम्बित रहते है । संयोगवश यदि दूसरे उनके पाससे अन्यत्र चले जायँ, या उन्हे नवीन परिस्थितियों और नये वातावरणमें रहनेका अवसर आ पड़े, तो उनके लिये कष्टका समय उपस्थित हो जाता है । नयी परिस्थितियाँ उन्हे दुखी कर डालती हैं । वे मन-ही-मन नाना प्रकारकी मानसिक चिन्ताओं, गुप्त वेदनाओं और काल्पनिक कष्टोंका तूफान उठा लेते हैं ।

दूसरे वर्गमें वे व्यक्ति आते है, जो स्वयं अपने समस्त व्यक्तिगत कार्य विना किसी परावलम्बनके बखूबी पूरे करते है और समय पड़नेपर नयी परिस्थितियोमे ढलकर स्वयं सुखी-संतुष्ट रहते है और दूसरोंको भी यथाशक्ति सहायता प्रदान करते हैं, नयी-नयी प्रेरणाएँ देते हैं। जैसी परिस्थितियोमें रहनेकी विवशता हो, उसीमे प्रसन्न रहते है। इस स्वावलम्बन तथा नयी परिस्थितियोमे ढल जानेकी लचकके कारण वे विषमतामे भी आह्लादपूर्ण मनोभाव बनाये रहते हैं। व्यर्थकी कल्पित चिन्ताएँ उन्हें व्यग्र-विचलित नहीं करतीं। यही उर्वर मनोभूमि मनुष्यको चाहिये।

नयी परिस्थितियोमें यकायक आ जानेके कारण कुछ व्यक्ति बड़े अस्तव्यस्त हो जाते हैं। मनसे व्यग्र हो उठते हैं और नाना प्रकारकी काल्पनिक चिन्ताओंके महल बनाया करते है। ऐसी अनेक दुश्चिन्ताओंकी कल्पना कर लेते हैं, जो भविष्यके जीवनमें कभी भी घटित नहीं होतीं, पर अदर-ही-अंदर उनकी शक्ति और सामर्थ्यको खाये डालती है।

अब आगे क्या होगा ? हमारा जो सहारा था, वह नहीं रहा। नये वातावरणमे काम कैसे चलायेगे ? कौन हमारा सहायक होगा ? हमारी आर्थिक कठिनाइयों या सामाजिक प्रतिकूलताएँ आखिर अब कैसे हल होंगी ? आगे हमारे आश्रितो, पुत्र-पुत्रियोका क्या होगा ? उनके भोजन-निवासकी व्यवस्था कैसे होगी ? ऐसे अनेक कल्पित भावोंकी दलदलमें वे फँसे रहते है ! वास्तवमें ये या इसी प्रकारकी

और प्रतिकूलताएँ ऐसी हैं, जिनमेंसे बहुत-सी अनहोनी हैं । आगे होनेवाली नही है ।

हमारे शहरमें एक नवयुवकका संयोगसे देहान्त हो गया । विधवा पत्नीने सोचा कि अब क्या होगा; विधवाका जीवन न जाने कैसा होता होगा ? उसमें न जाने कौन-कौन-सी विपत्तियाँ, तिरस्कार, कठिनाइयाँ आती होगी ? मेरे बच्चोंका क्या होगा ? रुपया कहाँसे आयेगा ? इसी प्रकारकी अनेक मानसिक चिन्ताओमें निमग्न रहनेके कारण वह गुप्त वेदनामें इतनी डूबी कि फिर न उठ सकी । उसके एक सप्ताह पश्चात् गुप्त मानसिक भयसे उसकी मृत्यु हो गयी । बच्चे अनाथ रह गये ।

यदि वह भावावेश और नयी परिस्थितियोकी कल्पनासे न डरती, तो हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं, इस विपमतासे मुक्तिका मार्ग भी अवश्य निकल आता । कहींसे भोजन, निवास, शिक्षा, बच्चोंके विवाह आदिकी भी व्यवस्था हो ही जाती ।

हिंदू-समाजमें आज असख्य विधवाएँ हैं । इनमेंसे अनेक विधवाएँ शारीरिक परिश्रम या मानसिक श्रम करके जीविका उपार्जन करती हैं और स्वावलम्बनका जीवन व्यतीत करती है । जैसे विवाहके पूर्व बिना पतिके वे रह सकती है, वैसे ही वे फिर बदलकर रहने लगती है । अब उन्हे पतिपर अवलम्बित रहनेकी आवश्यकता ही नहीं पडती । पहाड़ी स्त्रियोको देखे, तो आपको विदित होगा कि उनके पति प्रायः युद्धमें सैनिकका कार्य करनेके लिये चले जाते है, उनकी अनुपस्थितिमें भी वे मजेमें जीवन चलाती हैं । उन्हें पुरुपके अवलम्बनकी जरूरत ही अनुभव

नहीं होती । अब यदि कोई भी यह समझे कि बिना किसीकी सहायताके काम ही नहीं चलेगा, जीना कठिन हो जायगा—तो यह बात नहीं है। अवसर पड़नेपर नयी परिस्थितियाँ आनेपर स्वयं कुछ-न-कुछ हल निकल ही आता है । डरना नहीं चाहिये, बल्कि साहसपूर्वक उसका सामना करना चाहिये ।

मनुष्यके गुप्त मनमें निवास करनेवाली एक गुप्त शक्ति है, जिसे मानसिक स्वावलम्बन कह सकते हैं । यदि मनुष्य गुप्त मनमें यह धारणा कर ले कि मैं हर परिस्थितिसे लड़ूँगा और ढल जाऊँगा, तो निश्चय ही उसमें गुप्त सामर्थ्य प्रकट हो जायगी, जो उस विषमतासे युद्ध करनेकी शक्ति प्रदान करेगी ।

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य एक बार अपनी आदतोंके विषयमें बतला रहे थे कि वे जौके आटेकी रोटी और छाछपर निर्भर रहनेकी आदत डाल रहे हैं। कहने लगे, 'बात यह है कि हमें गायत्री-प्रचार-कार्यके लिये प्रायः देहातोंमें जाना पड़ता है । ग्रामीणोंमें रहते हैं । वे बेचारे इसी भोजनको दे पाते हैं । वहाँ यही भोजन खाकर काम चलाते हैं । भोजनकी वजहसे कोई भी बाधा उपस्थित नहीं होती ।' पण्डितजी हर प्रकारकी परिस्थितिमें अपनेको ढालनेमें पटु हैं । अतः प्रत्येक परिस्थितिमें आह्लादकी उत्साहपूर्ण मनःस्थिति बनाये रहते हैं ।

तात्पर्य यह है कि भगवान्‌ने मनुष्यके चरित्रमें एक ऐसा गुण भर दिया है कि यदि वह न होता, तो वह अधिक स्थायी आनन्द प्राप्त न कर पाता और उसकी अनायास ही अकाल मृत्यु हो जाती ।

यह गुण है परिस्थितियोंके अनुसार लचक। यदि उसमें यह लचक न होती, वह समय और नयी परिस्थितियोंके अनुकूल न ढल पाता, तो शायद संसारमें इतना न पनप पाता, जितना आज विकसित हुआ है और हो रहा है।

इस लचकके उदाहरण आपको जीवनके हर क्षेत्रमें प्राप्त हो जायँगे। क्या आपने कुएँकी ईटोमें उगे हुए पीपलके पेड़को देखा है ? उसके पास पर्याप्त मिट्टी नहीं है। जड़ोको फैलनेके लिये कोई गुंजाइश नहीं है। पर्याप्त प्रकाश और वायु भी नहीं है। फिर भी वह बढ़ता ही जाता है। बढ़कर मजबूत बन जाता है । उसकी जड़े टेढी तिरछी होकर उन्हीं विषम परिस्थितियोंमें अपने भोजनके उपकरण एकत्रित कर लेती हैं। पहाड़ोंकी चट्टानोंपर वृक्ष उगते है, बडे होते जाते हैं, दृढ़ बनते रहते है और इस प्रकार पर्वतोंपर वन-के-वन हो जाते है। उन्हे देखकर आश्चर्य होता है कि वे कैसे मिट्टी, जल, प्रकाश, धूप और वायु पा लेते हैं। हर प्रकारकी विषमताओंसे लड़ने, जूझने-जैसी स्थितिमें पड़कर उसीमें पनपने-ढलनेके ये वृक्ष प्रत्यक्ष उदाहरण है।

एक ग्रामकी बात है। एक बार एक व्यक्तिके पॉवमे जख्म हुआ। बहुत दिनोंतक चिकित्सा होती रही। टॉग सड़ती गयी और अन्तमें यह तय किया गया कि टॉग काटी जायगी। जब इस व्यक्तिने सुना कि टॉग काटी जायगी, तो वह तिलमिला उठा। उफ्, बिना टाँग कैसे काम चलेगा ? जिंदगी बचेगी या नहीं ? भोजन कहाँसे आयेगा ? भविष्य कैसे कटेगा ? ऐसे सैकड़ो प्रश्न

असंख्य बिच्छुओं-दंशोंकी तरह उन्हें विचलित करने लगे। पर पांव काटा ही गया। इसके सिवा कोई दूसरा चारा ही न था। नयी परिस्थितियाँ उपस्थित हुईं। उनके कल्पित भय मिथ्या साबित हुए; क्योंकि उन्होंने आश्चर्यसे देखा कि एक टाँग और दूसरीमें लगी हुई लकड़ीके सहारे ही जीवन फिर सरपट दौड़ने लगा। जीविका-उपार्जनके भी रास्ते निकल आये और अब तो यह हाल है कि वे सुबह सारे गाँवमें फेरी लगाते हैं। कुछ दिनोंसे तो पीठ पर बीस सेरतक बोझ लादकर उसे बेचते फिरते है। अपने दैनिक कार्य करनेमें भी उन्हें अब कोई असुविधा नहीं होती। एक टाँगके अभावमें ही जीवन बखूबी चला जाता है। अब नयी परिस्थितियोंसे उन्होंने जैसे समझौता कर लिया है।

भारतमें जब राजाओंके राज और जमींदारोंकी जमीन-जायदादें गयीं तो वे सोचते थे कि आगेका जीवन अब आखिर किस प्रकार चलेगा। ऐसे-ऐसे राजा जो बाजेका मधुर स्वर सुनकर ही जागते थे, अनेक व्यक्ति जिनकी जी-हजूरी और स्वागतमें लगे रहते थे, जिन्होंने व्यापार या अन्य कोई व्यवसाय कभी न किया था, वे अब नयी परिस्थितियोंके अनुकूल ढल गये हैं। साधारण व्यक्तिके जीवनसे उन्होंने समझौता कर लिया है। वे व्यापार आदिकी योजनाएँ बना रहे हैं। अनेक जागीरदार ठेकेदार बन चुके है। नयी परिस्थितियोंमें पूरी तरह ढल चुके हैं और पूरी तरह प्रसन्न है। यह चरित्र-की लचककी ही अद्भुत प्रताप है।

इतिहासकी ओर एक नजर डालिये। कोलम्बस जब अमेरिका-

की खोजको चला, तो उसके पास एक मामूली-सा जहाज था। आनेवाले नये कष्टों और नवीन परिस्थितियोंकी कल्पनाओंसे उसके मित्र नाविकोंने उसे इतना डराया कि कुछ न पूछिये। वे कहते थे कि इतनी बड़ी यात्राके लिये उनके पास कोई स्थायी प्रबन्ध नहीं है; भोजन, निवास और मौसमके परिवर्तनकी कोई व्यवस्था नहीं है; फिर इतनी बड़ी यात्रा क्योंकर सम्पन्न होगी? कोलम्बसने किसी-की न मानी। वह यात्रापर चल ही दिया। सबने आश्चर्यसे सुना कि उसकी यात्रा पूर्ण हुई। सभी अच्छी-बुरी परिस्थितियोका उन लोगोंने पूरी तरह सामना किया और पूर्ण विजय प्राप्त की।

सम्राट् शाहजहाँ औरंगजेबद्वारा अपमानित होकर जेलमें पडे। कहाँ सुख-समृद्धि और विलासोंमें पलनेवाला सम्राट् और कहाँ जेलका जीवन ! लोग समझते थे चार दिनमें सम्राट् समाप्त हो जायगा, उसका जीवन-दीप कठोर परिस्थितियोंके एक झटकेसे ही बुझ जायगा। पर नहीं, ऐसा नही हुआ। सम्राट्ने उसी परिस्थितिके अनुकूल अपने आपको ढाल लिया। उनमें जन्मसे ही हुकूमतकी आदत थी। जेलमे भी उन्होंने बच्चे पढ़ानेका ही काम माँगा। बच्चोंको पढ़ाकर अपनी हुकूमतकी प्रवृत्तिको संतुष्ट करते रहे। अब सोचिये, यदि वे केवल जेलकी विकटताके ही दुःस्वप्न देखा करते, तो आखिर क्या होता? जीवनके जितने कटु-मृदु घूँट उनके भाग्यमें लिखे थे, वे भी उन्हे न मिल पाते। लचकके इस अद्भुत गुणने ही उन्हे ऊँचा उठाये और बचाये रखा था।

कहनेका अर्थ यह कि मनुष्यके स्वभाव और शरीरकी बनावट

कुछ इस प्रकार की गयी है कि वह समय और विकट परिस्थिति पड़नेपर बखूबी उनके अनुसार ढल सकता है; लचककर नयी हालतोंके अनुसार अपनेको बना सकता है। दो-चार दिनके बाद उसे इस नये जीवनकी खत. आदत पड़ जाती है और नये सिरेसे जीवन चलने लगता है।

जब छोटे जार्ज वाशिंगटनका पिता मर गया था, तो उसकी माँ अकेली थी, भोजनका साधन न था। वह एक जंगलकी झोपड़ीमें रहती थी। कहते है उसमें भेड़िये भी रहते थे। माँ छोटे जार्जको सुबह खिला-पिला झोपड़ीमें ताला लगा स्वयं जंगलसे लकड़ी चुनने चली जाती थी और सायंकाल उन्हें बेचकर घर पहुँचती थी। रातमें बच्चेको जाकर गलेसे लगाती थी। प्यार करती और भोजन पकाकर खिलाती थी। इस प्रकार विरोधी परिस्थितियोंमें दृढ़ होकर जार्ज पलता रहा और एक दिन अमेरिकाका प्रेसीडेंट बना। इसी प्रकारके उदाहरण और बहुत-से हैं।

तुर्कीका कमालपाशा स्कूलमें कहार था। वाल्मीकि डाकू थे और राहगीरोंको लूटकर जीविका चलाते थे। हिटलर मज़दूरी करके दिन व्यतीत करता था। मुसोलिनीका बाप पहले इटलीमें एक लुहार था। ये सभी विषम परिस्थितियोंमें बढ़ते और पनपते रहे और महानताको प्राप्त हुए।

प्राचीन भारतमें विद्यार्थियोंके सर्वतोमुखी विकासके लिये गुरुकुलका कठोर अभावग्रस्त जीवन आवश्यक समझा जाता था। राजाओंसे लेकर साधारण नागरिक भी अपने बच्चोंको असुविधा और

कष्टोंका जीवन बितानेके लिये आश्रमोमें भेजा करते थे । कष्ट एक प्रकारके शिक्षक थे, जिनकी कठोर परीक्षाएँ उत्तीर्ण करनेके उपरान्त विद्यार्थीको समग्र जीवनके कष्ट कर्तव्य-पथसे विचलित नही कर सकते थे । वह शिक्षा एक प्रकारसे कठोर परिस्थितियोंके अनुसार जीवन ढालनेकी शास्त्रीय पद्धति थी ।

निष्कर्ष यह है कि इस देव-दुर्लभ मानव-शरीरका निर्माण कुछ इस प्रकार किया गया है और ऐसी-ऐसी गुप्त शक्तियाँ अणु-अणुमें भर दी गयी है कि प्रत्येक आदमी विषम-से-विषम और नयी-से-नयी परिस्थितियोंके अनुकूल थोड़ेसे परिश्रम और दृढ़तासे ढल सकता है ।

ऐसी कोई विषम परिस्थिति नहीं जिसे आप न जीत सके, आपकी शक्तियाँ सैकडों इन्द्रवज्रोसे अधिक हैं । हर स्थितिपर पूर्ण विजय प्राप्त करनेकी गुप्त सामर्थ्य आपमें भरी पड़ी है । भयभीत होनेकी तनिक भी आवश्यकता नही है ।

प्रश्न उठता है कि यो तो समय आनेपर हर मनुष्य परिस्थिति-के अनुसार बदल ही जाता है, लेकिन किस व्यक्तिको सच्चे अर्थोंमें ढला हुआ कहा जाय ? क्या विवशता और मजबूरीकी टक्करोंसे बदला हुआ व्यक्ति ही सफल माना जाय ?

नही; वास्तवमें सफल व्यक्ति उसे कहना चाहिये जो नयी परिस्थितियों, विषमताओं और अड़चनोंमें भी अपने जीवनका संतुलन, अपना आदर्श न छोडे । पूरी तरह लगा रहे । पूर्ण प्रसन्न रहे । स्वस्थ रहे । किसी अड़चनका अनुभव न करे ।

स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने गीताके १२वें अध्यायमें इस विषय-का कुछ संकेत किया है। समत्वयोगका तात्पर्य ही यह है कि मनुष्यजीवनकी सब स्थितियों, अड़चनों, कष्टोंमें पक्ष-विपक्ष, हानि-लाभ, मान-अपमानसे प्रभावित न हो। अपना आन्तरिक संतुलन बनाये रक्खे। संवेदनाका केन्द्र बाह्य पदार्थोंमें न रखकर अंदर आत्मामें, ईश्वरमें बनाये।

जो व्यक्ति संवेदनाका केन्द्र बाह्य पदार्थों या परिस्थितियोंमें रखते हैं, वे बार-बार उन स्थितियोंके बदलनेसे दुखी रहते हैं। जो व्यक्ति अपनी आन्तरिक मनःस्थितियोंको ईश्वरत्वमें केन्द्रित करते रहते हैं, वे शाश्वत चिरस्थायी सुखका अनुभव करते हैं।

अतः असुविधाओं, कष्टों, विषम परिस्थितियों, प्रतिकूलताओंसे घबराइये नहीं। ये केवल मनकी दुर्बलता होनेपर मनुष्यको विचलित करती हैं। मस्तिष्कको नयी परिस्थितियोंके अनुकूल बदलनेकी आज्ञा दीजिये; विचारोंका दिव्य प्रवाह उधरको मोड़िये और एकाग्रतासे उसी ओर बढ़िये। फालतू क्षुद्र अनुराग, मोह, शंका आदिकी दुर्बलताओंमें मन फँसिये। आपकी अन्तरात्मामें जो गुप्त सामर्थ्य है, उसे बढ़ाइये। अपने हितकी बात सोचिये। आप यही कहिये कि 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ। पूर्ण समर्थ हूँ। मुझमें गुप्त शक्तिका अक्षय भंडार भरा हुआ है। इन्द्रियों, मन और बुद्धि तीनोंपर आत्म-संयमद्वारा मुझे विजय प्राप्त करनी है। मेरी आत्मशक्तिके सम्मुख कोई बाधा नहीं ठहर सकता। मैं जीवनमार्गपर निष्कण्टक बढ़ रहा हूँ।

दूसरोंका सहारा एक मृगतृष्णा

मनुष्य बन्धु-बान्धवों, इष्ट-मित्रों तथा परिवारमें अनेक व्यक्तियों-से घिरा हुआ है। वह प्रेरणा, उत्साह एवं सहायताके लिये इधर-उधर उत्सुक नेत्रोंसे देखा करता है। यदि कोई सहायता कर देता है, उत्साहसूचक दो वचन कह देता है, तो वह प्रसन्न हो जाता है, किंतु जहाँ बेरुखी, शुष्कता, नीरसता दीखती है, वहीं अपने मनमें आन्तरिक दुःख और गुप्त मनमें एक वेदनामयी निराशाका अनुभव करता है। तनिक-सी प्रशंसासे फूलकर कुप्पा हो जाना अथवा अपनी आलोचना सुनकर आन्तरिक दुःखका अनुभव करना निर्बल मनके विकार है।

जो व्यक्ति ननिक-ननिक-सी बातोंमें दूसरोंके उत्साहकी प्रतीक्षा किया करता है, अपनी मौलिक प्रतिभाका विकास नहीं करता। वह उस शिशुकी भाँति है, जो माताकी गोदसे उतरकर कर्मोंसे परिपूर्ण इस संघर्षमय संसारमें अपने पाँवोंपर खड़ा नहीं होना चाहता।

जीवनमें एक अवस्था ऐसी आती है, जब मनुष्यको दूसरोंका सहारा प्राप्त नहीं होता। माता-पिताका शीतल संरक्षण विधिके विधानद्वारा खींच लिया जाता है; परिवारका समस्त उत्तरदायित्व ऊपर आ जाता है; अपनेसे छोटोंका भार भी वहन करना पड़ता है और जीवनक्रमका नियोजन भी स्वयं करना पड़ता है। इस स्वतन्त्र स्थितिमें ही मनुष्यके आत्मबलकी परीक्षा होती है।

जीवनमें यथासम्भव हमें बात-बातमें दूसरोंका सहारा लेनेकी आवश्यकता नहीं है। घरमें, व्यापारमें, योजनाओंके निर्माणमें स्वयं अपनी सूझ-बूझ, मौलिकता, दूरदृष्टिसे कार्य लेनेकी प्रवृत्ति विकसित करनी चाहिये। अपने बलपर, अपनी बुद्धिपर कार्योंको करनेसे मनुष्यकी अनेक गुप्त शक्तियोंका विकास होता है।

कोई तुम्हारा काम नहीं करेगा, जबतक कि तुम स्वयं अपने पूरे उत्साह, जोश और सामर्थ्यसे उसमें न जुट जाओ। तुम्हारा आत्मबल ही तुम्हारा स्थायी सहायक हो सकता है। जिसका आत्म-बल विकसित होता है, वह शक्ति और जीवनसे परिपूर्ण होता है; दूसरोंकी सहायता ताकनेके स्थानपर स्वयं अपने बलपर काम करता है। जो मनुष्य जितना ही अपने आत्मासे, अपनी शक्तियों एवं

पौरुषसे परिचित होता है, वह उतना ही आत्मबल-विज्ञ होता है। आत्मबलके अनुपातमें ही उसमे जीवन होता है।

लोगोंमें यह मिथ्या कल्पना बैठ गयी है कि भारी डील-डौलके मोटे-ताजे शरीरमें ही शक्ति होती है। वास्तवमें शक्ति तो आत्माकी है। इसीको हिम्मत कहते हैं। मामूली शरीर भी आत्मबलसे शक्ति-सम्पन्न हो जाता है। क्या शिवाजी भारी भरकम शरीरवाले थे? गुरु गोविन्दसिंह, प्रताप इत्यादि साधारण शरीरवाले होकर भी इस आत्मबलकी शक्तिसे बलवान् बने। आत्मबल मनुष्यको जनताका नेतृत्व प्रदान करनेवाला सूक्ष्म तत्त्व है।

क्या आत्मबलकी वृद्धि सम्भव है ?

आत्मबल प्रायः स्वाभाविक होता है। वे मनुष्य धन्य हैं, जिनमें जन्मसे ही आत्मबल विद्यमान है। वास्तवमें हमारे माता-पिता, वातावरण एवं संस्कारोंका आत्मबलपर बड़ा प्रभाव पडता है। हिम्मत बढानेवाले, निरन्तर प्रोत्साहनके वातावरणमें रहनेके कारण कुछ बालक स्वत· दूसरोंकी अपेक्षा आत्मबलमें बढ़े-चढ़े होते हैं। ईश्वरके कृपाबलका भरोसा रखनेवाले व्यक्तियोंमे हिम्मत स्वतः ही बढ जाती है।

आत्मबल बढ़ाया भी जा सकता है। अन्य शक्तियोंकी भाँति इसका भी विकास होता है। जो व्यक्ति आत्मबलके विकासका नियम जानता है, वह दीर्घकालीन अभ्याससे इसे विकसित कर सकता है। आवश्यकता है केवल उत्कट, बलवती इच्छा (Burning desire) की। यह इच्छा साधारण-सी मनकी हलकी-झकोर नहीं होनी चाहिये।

हृदय-सरोवरमें तनिक-तनिक देर छोटी-मोटी लहरोंकी तरह जो आलोडन-विलोडन होता है, उससे काम नहीं चलेगा, आपके मनमें जीती-जागती बलवती इच्छा होनी चाहिये।

आत्मबलके विकासका प्रथम तत्त्व है—अनुसंधान। अनुसंधानसे तात्पर्य है अपने पक्ष, नीति या दृष्टिकोणविषयक सत्यताका ज्ञान। आप जिस कार्यको सम्पन्न करने चले हैं, क्या वह उचित है; मर्यादाके भीतर है? अन्य विद्वान् उसके बारेमें क्या कहते हैं? इत्यादि अनेक प्रश्नोंद्वारा आप अपने पक्षका अनुसंधान अर्थात् पर्याप्त खोज-बीन करें। सत्यको मालूम करें। दूसरा सोपान है खोज-बीनसे अर्जित सत्यके प्रतिपालनमें दृढ़ता। स्मरण रखिये, जिसका पक्ष सत्यका पक्ष है, उसमें ईश्वरत्वकी मजबूती है। ईश्वर उस व्यक्तिके साथ है। दैवी सहायता निरन्तर उसके समीप चलती रहती है। जिनके अन्तःकरण शुद्ध हैं, उनके द्वारा सत्य-पथपर दृढ़तासे चलना आत्मबल बढ़ानेवाला है। साधारण व्यक्ति भी सत्यके पथको पकड़कर दृढ़तासे चलता रहे, तो आत्मबलकी अभिवृद्धि कर सकता है।

विकासके मार्गमें दो शत्रु आते हैं, जिनसे बड़े सावधान रहनेकी आवश्यकता है—(१) प्रलोभन, (२) आलस्य। नाना रूप धारणकर प्रलोभन आपको घर दबायेंगे; किंतु आपको उनके मायाजालमें नहीं फँसना है। मन आलस्यके वशीभूत हो सरलताके मार्गपर चलनेका आग्रह करता है। उसे इस आलस्यसे रोकना, पुनः-पुनः उसे सक्रिय करना आत्मबल-वृद्धिका उपाय है।

—⁂—
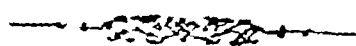
मनकी दुर्बलता—कारण और निवारण

(१)

एक व्यक्ति लिखते हैं—'मुझे मिठाईका बड़ा शौक है। जब कभी मै मिठाईकी किसी दुकानके आगेसे गुजरता हूँ और मेरी जेबमें पैसे होते है, तो मैं जरूर मिठाई खरीदता हूँ और जबतक सब पैसे समाप्त नहीं हो जाते, मिठाई खाता ही रहता हूँ। घरपर भी मीठेकी ओर मेरा मन दौड़ा करता है। और कुछ नही तो शक्कर ही फाँकता हूँ। शरबत पीता हूँ। मिठाईकी इस लतसे मूत्रमें शक्कर आने लगा है और अब मै बीमार भी रहने लगा हूँ। मै जानता हूँ कि मेरी बीमारीका कारण यही मिठाईकी आदत है। इसीने मुझे बीमार किया है। कौन जाने यही मेरे प्राण भी ले ले; पर अभीतक अवसर पाते ही मै मिठाईकी ओर बुरी तरह झुक जाता हूँ। मै क्या करूँ ?'

एक अन्य सज्जन वासनाके बारेमें लिखते है कि वे वासनासे बुरी तरह परेशान है। अनेक बच्चोंके पिता हैं। पत्नी परेशान है। वे स्वयं अपनी मूर्खता जानते हैं, पर वासनाके वशीभूत हो कुछ-का-कुछ कर बैठते हैं और फिर पछताते हैं। जानते-बूझते भी अपने मनकी दुर्बलताके कारण संसारके बन्धनमें फँसे हुए हैं।

अपने क्रोधके आवेशकी बाते करते हुए एक मित्र एक बार कह रहे थे—'क्या बतायें, जब हम देखते है कि दूसरा व्यक्ति सरासर गलत बात कह रहा है, बेवकूफीके तर्क दे रहा है और आगे आनेवाली कठिनाईकी ओर ध्यान ही नही दे रहा है, तो हमें

उद्विग्नता आ जाती है, हम भी उत्तेजित हो उठते हैं। हम किसीके दबैल नहीं हैं, किसीसे माँगकर नहीं खाते हैं फिर क्यों दबें? पर क्या बतायें क्रोधके आवेशमें हम प्रायः ऐसा कह बैठते हैं जिसपर हमें पछताना पड़ता है। मित्रताएँ टूट जाती हैं। हम अपने आवेशकी कमजोरी जानते हैं, पर क्या बतायें इस दुर्बलतासे छूट नहीं पा रहे हैं।'

एक सज्जन चिन्ताकी आदतसे परेशान हैं। उनके पास स्वास्थ्य है, धन है, मान-प्रतिष्ठा भी है, पर न जाने कैसे उन्हें यह भ्रम हो गया कि 'मेरे भविष्यमें कुछ-न-कुछ अनिष्ट होनेवाला है, मेरा स्वास्थ्य खराब हो जायगा, मेरे परिवारवाले मुझे धोखा दे देंगे, मेरी जीविका छिन जायगी।' वे इसी प्रकारकी अनेक छोटी-बड़ी चिन्ताओंमें डूबे रहते हैं। उनकी चिन्ताका आधार कुछ नहीं, केवल कल्पित भयमात्र है, पर वे उसी तुच्छ-सी बातके लिये परेशान रहते हैं। अनहोनी बातोंकी चिन्तामें बैठकर समय नष्ट करते हैं। निराशापूर्ण विचारोंके साथ-साथ उनका मस्तिष्क गुप्त कल्पित भय-पूर्ण विचारोंकी शृङ्खलामें आबद्ध है। वे सदैव कलकी चिन्ता ही किया करते हैं। निरन्तर चिन्ताका मानसिक अभ्यास करनेसे अब उनका मानसिक संस्थान दुःख और भयसे परिपूर्ण हो उठा है।

हमारे एक शिष्यकी आदत है कि वह स्वप्नोंके संसारमें रहता है। कोई नयी अजीब बात होनेवाली है, कुछ-न-कुछ ऐसा परिवर्तन होगा कि स्थिति मेरे अनुकूल पड़ जायगी और मेरा जीवन पूर्वजोंसे अधिक सुन्दर, सुखमय तथा शक्तिशाली हो जायगा। यह कवि नगरकी वास्तविकताको नहीं जानता। मनुष्यको उन्नति करनेमें जिस

घोर संघर्षका सामना करना पड़ता है, उससे इसका कोई परिचय नहीं है। न उसे समझना ही चाहता है।

(२)

ऊपर अनेक प्रकारके ऐसे व्यक्तियोंके उदाहरण हैं, जो मनकी दुर्बलतासे नाना रूपोंसे परेशान हैं। उनका मन उनकी इन्द्रियोंका दास बना हुआ है तथा वे उसके बहकावेमें आकर क्षुद्र कार्योंमें प्रवृत्त हो जाते हैं। उनके मनने उन्हें संसारके नाना बन्धनोंमें बाँध रक्खा है। मनमें जैसा झोंका आता है, वे उधर ही ढुलक पड़ते हैं। अनेक व्यक्ति यह जानते हैं कि वे बुरी व्याधिमें फँसे हैं; उनके मनका प्रवाह गलत दिशामें है; पर भ्रान्त होकर वे विवश-से उसी ओर प्रवृत्त होते रहते हैं।

उनके मनकी दशा उस सरोवरकी तरह है, जिसमें भयंकर तूफान उठा हो और जल अस्तव्यस्त तरङ्गोंमें बह रहा हो। उनकी इन्द्रियाँ अनियन्त्रित हैं। ये इन्द्रियाँ संसारके क्षुद्र क्षणिक आनन्दोंकी ओर झपटती हैं। वे विवेकहीन हो उसी ओर अग्रसर हो जाते हैं।

कुछ अपने दोषोंको ढकनेके लिये दूसरोंके दोषोंका विस्तारसे वर्णन करते है। उनकी बुरी-भली पुरानी बाते खोजकर निकालते हैं। ऐसा करके वे अपनेको उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ प्रमाणित करना चाहते हैं। पर वास्तवमें होता है, इसका ठीक उलटा। दूसरोंके दोषोंमें रमण करनेसे स्वयं उनके चित्तका मैल बढ़ता है। वे अधिकाधिक नीच, अभागे और पापी होते जाते हैं। मनमें क्षुद्र नीच विचारोंके रहनेसे तदनुकूल विषैला वातावरण छाया रहता है और वे निरुपयोगी

कार्योंमें ही लगे रहते है। दूसरे शब्दोंमें यों कहिये कि उनका मन निरुपयोगी विषयों और व्यर्थकी थोथी बातोंमे लगा रहता है। मनकी वृत्तियाँ क्षुद्र विषयोंमें लगी रहती हैं। जिधरको ये वृत्तियाँ लगेंगी, उधरको ही शरीर चलेगा; वैसा ही कार्य शरीरकी इन्द्रियाँ करेंगी। अतः यह कहना सत्य ही है, मन ही मनुष्यके बन्धनका कारण होता है। मन जिससे हमें बाँधता है, हमारा शरीर बिना रस्सियोंके उसीसे बँध जाता है।

मनमें जब विकारोंका प्राबल्य हो जाता है, जब हमारे काम, क्रोध, लोभ, मोह, चिन्ता, उद्वेग इत्यादि सीमासे बढ़ जाते हैं, तब संतुलन नष्ट हो जाता है और मनुष्यकी चित्तवृत्ति विकृत हो जाती है। साधारणतः वह किसी एक वस्तुका ध्यान करता है; फिर एक दूसरी नयी समस्या आकर अपना जोर दिखाती है, तत्पश्चात् एक तीसरा प्रलोभन आकर सब अस्तव्यस्त कर देता है। किसीके विरोधसे क्रोध उत्पन्न होता है, ईर्ष्या उससे प्रतिशोध लेनेको कहती है; दूसरी ओरसे कड़ा विरोध होनेपर भय और घबराहट बढ़ती है; फिर असफल होनेपर घृणा, उद्वेग, चिन्ता और उदासी अपना माया-जाल बुनती रहती है। ये उस दुर्बल मनकी अवस्थाएँ हैं, जिसमें विवेक और इच्छाशक्तिकी दृढ़ता नहीं है।

मानसिक संस्थानका नियन्त्रण ही मनकी दुर्बलतापर विजय प्राप्त करनेका उपाय है। विवेक जितना जाग्रत् होता है मनमें उतनी ही स्थिरता आती है। विवेकके प्रकाशसे इन्द्रियाँ संसारके विषयोसे दूर हटती हैं और मनुष्य व्यर्थ चिन्तनसे छूटकर ऊँचा उठता है।

आप जिस बातको उचित समझते हैं, जो आपकी अन्तरात्मा पुकार-पुकार कर कहती है, उसे ही सत्य समझिये। आपकी शुभ वृत्तियाँ शान्त समयमें जिस ओर चलती हैं, उसीको सन्मार्ग समझिये और व्यर्थ चिन्तनसे बचकर उसी ओर चलिये। सन्मार्गपर चलकर ही मनको शान्त रक्खा जा सकता है। हो सकता है कि प्रारम्भमें मन उधर एकाग्र न हो, पर आत्मा प्रबल तत्त्व है; अतः धीरे-धीरे वह स्वयं उसमें तन्मय होने लगेगा। दुःखका बोझ हलका होगा और हृदयको शान्ति मिलेगी।

आपकी अन्तरात्मा जिस चीजको उचित कहती है, उसीका संकल्प कीजिये। उसी ओर बढ़नेमें आपको आत्म-सामर्थ्य प्राप्त होगी। उसी ओर इन्द्रियोंको लगानेसे शक्तियोंकी वृद्धि होगी।

आपकी एक दुर्बलता संकल्पकी कमजोरी है। आप अपने निर्णयको मजबूतीसे नहीं पकड़ते। यह भलीभाँति जान रखिये कि निरन्तर एक स्थानसे दूसरे स्थानपर लुढ़कनेवाले पत्थरपर काई नहीं जमती। एक विषयसे दूसरेपर फुदकनेवाला मन दुर्बलताकी जड़ है। अपने विचारोंको अपने उद्देश्योंपर एकाग्र करनेका अभ्यास कीजिये।

राग, द्वेष, काम, क्रोध, ईर्ष्या—ये मनकी उत्तेजित अवस्थाएँ हैं। ये मनुष्यके मनकी अस्तव्यस्त अवस्थाओंकी सूचक हैं। इनमें फँसकर मनुष्यका उच्च ज्ञान—विवेक-बुद्धि पंगु हो जाती है। पाप, विकार या दुष्ट विचार सिर ऊँचा करते हैं। इनका जैसे ही आक्रमण

हो, किसी रूपमें या किसी भी स्थितिमें हो, तो तुरंत सावधान हो जाइये और सुमतियुक्त आत्माकी ही प्रेरणा ग्रहण कीजिये।

(३)

मनमें आत्माके द्वारा श्रेष्ठ प्रेरणाका प्रवाह भी बहता है। इसी कारण मनको ही मोक्षका साधन कहा गया है। यदि मन बन्धनका कारण है, तो वही मोक्षका कारण भी बन सकता है। मनके भद्र निश्चयोपर अटल रहकर सन्मतिका ग्रहण कर उसी मार्गपर निरन्तर चलकर जीवन-मार्गको प्रशस्त भी बनाया जा सकता है। आत्माकी निरन्तर प्रेरणासे मन दिव्य मार्गोंकी ओर चलेगा।

सावधान! सत्यका मार्ग मत छोड़ियेगा, चाहे मन कितना ही क्यों न छटपटाये? इन्द्रियाँ तो व्यर्थ ही इधर-उधर भागनेवाली हैं। ये आपको किसी भी खड्डेमें गिरा सकती हैं। इन्द्रियोंको वशमें कर लें तो आप विजयी कहलायेंगे। इन्द्रियाँ चोरकी तरह वह अवसर ताकती रहती हैं, जब वे आपको नरकमें पटक दे, पतन करा दे। यदि इन चोरोंको अवसर मिलेगा, तो ये सारा संचित धर्म नष्ट कर देंगी। मनके संयमसे ही स्वर्ग मिलता है। अनियन्त्रित इन्द्रियोंका विद्रोह ही नरक है। उत्तम स्वास्थ्य, दिव्य बुद्धि और सांसारिक सम्पदाएँ उसीको प्राप्त होती हैं, जिसने अपने मन और इन्द्रियोंपर काबू पा लिया है।

जिन व्यक्तियोंके हृदय पवित्र हैं, मन काबूमें हैं, वे धन्य हैं; क्योंकि वे पृथ्वीपर ही स्वर्गका सुख प्राप्त करेंगे।
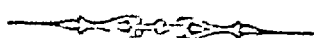
गुप्त शक्तियोंको विकसित करनेके साधन

मनुष्यका मन महान् शक्तियोंका बृहत् भंडार है (Dynamo of creative energy)। एक-से-एक दिव्य शक्ति इसमें निवास करती है। छोटे-बड़े, विद्वान्-मूर्ख सभीमें ये शक्तियाँ बीज रूपसे विद्यमान रहती हैं। किसीमें ये सुप्त, किसीमें निर्बल, किसीमें अविकसित अवस्थामें प्रस्तुत है। सामर्थ्यवान् और जड व्यक्तिमें अन्तर केवल यही है कि एकमें तो यह बीज उत्तम भूमिमें पर्याप्त जलद्वारा अङ्कुरित, पल्लवित एवं पुष्पित हुआ है और दूसरेमें वह ज्यों-का-त्यों पहिले जैसा ही बीज रूपमें वर्तमान है। मै निश्चय-पूर्वक कह सकता हूँ कि यदि मेरे नियमोंका निरन्तर पालन किया जाय तो मूर्खसे मूर्ख और जड भी अपने इच्छानुसार इन शक्तियोंको जाग्रत् कर सकता है। नियमित अभ्यास और साधनद्वारा इनकी वृद्धि हमारी अवस्थाके साथ-साथ हो सकती है और हम पूर्ण सामर्थ्यवान् बन सकते हैं।

मानसिक शक्तियोंका प्रदर्शन परिपुष्ट मस्तिष्कद्वारा होता है। उत्तम मस्तिष्कके द्वारा ही मन अपने अद्भुत सामर्थ्यका प्रदर्शन कर सकता है। मस्तिष्कको भलीभाँति प्रकट एवं विकसित करनेके लिये तीन मुख्य तत्त्वोंपर विचार करना चाहिये। इन तीनोंका स्वरूप इस प्रकार है—

(१) उत्तम पूर्ण परिपुष्ट मस्तिष्क।

(२) मानसिक शक्तियोंका यथार्थ ज्ञान।

(३) मनकी पोषक शक्तियोंका क्रमानुसार संचय।

मस्तिष्कको केवल एक अति सूक्ष्म यन्त्र या डायनमो समझिये। विद्युत् उत्पन्न करनेवाले डायनमोंकी भाँति मस्तिष्क विचार उत्पन्न करता है। हमारे मनके विभिन्न भागोमें भिन्न-भिन्न शक्तियोंके सूक्ष्म केन्द्र हैं। कुछका केन्द्र मस्तिष्कके अग्र, कुछका मध्य और कुछका पृष्ठ भागमें है। मस्तिष्कके जिस भागमें ये शक्तियाँ मुख्यतः निवास करती हैं, उस भागमें स्थित कोषों (Cells) की संख्याके परिमाणमें वे शक्तियाँ कम या अधिक होती हैं। यदि मस्तिष्कका कोई भाग निकम्मा छोड़ दिया जाय तो फिर शनैः-शनैः व्यर्थकी क्रिया करनेके अतिरिक्त उसमें अन्य किसी कार्यको करनेकी क्षमता नहीं रह जाती। यहाँ तक कि कितने ही भाग उपेक्षित होनेके कारण निर्बल और निकम्मे हो जाते हैं। भक्ति-भाव, पूज्य-भावादि शक्तियोका स्थान मस्तिष्कका मूर्धन्य है। जिस मनुष्यकी मूर्धामें उपर्युक्त कोप कम होते हैं, उसमें ईश्वरके प्रति भक्तिभाव और गुरुजनोके प्रति पूज्यभाव कम देखा जाता है। जो शक्तियाँ कपालके नीचेके अर्ध भागमें निवास करती हैं, वे विद्या, कला-विषयोंकी खोज तथा कार्य-साधनसे सम्बन्धित हैं। जिनमें ये विकसित होती है वे निरर्थक बाते नहीं करते, व्यवस्थापूर्वक कार्य करते है और किसी कार्यको एक बार हाथमें लेकर नहीं छोडते। यद्यपि उनमें तर्क-वितर्क करनेकी क्षमता नहीं होती, किंतु फल प्राप्त करनेकी सामर्थ्य रखते है। यदि आप इन मानसिक शक्तियोका विकास करना चाहें तो कपालके नीचेके अग्रभागके कोषोंकी वृद्धि करें। आप अपनी चित्तवृत्ति मस्तिष्कके मध्यबिन्दुपर एकाग्र कीजिये! निरन्तर सोचनेसे उस भागमें रुधिरकी गति बढ़ जायगी और एकाग्रतासे वह भाग पुष्ट होने लगेगा।

कपालके ऊपरी आधे भागमें बुद्धिकी शक्तियाँ अपना-अपना व्यापार करती हैं। इस भागका विकास करनेके लिये मस्तिष्कके मध्यबिन्दुसे कपालके ऊपरके अर्धभाग तक रहनेवाले सूक्ष्म द्रव्यपर एकाग्रता करनी चाहिये। इस प्रदेशके कोषोंकी वृद्धिसे बुद्धिकी शक्तियाँ तेजस्विनी होती हैं और विषयोंको समझनेकी शक्तिकी वृद्धि होती है। नित्यके अभ्यासद्वारा बुद्धिका बल इतना बढ़ जाता है कि जिस विषयपर उसे स्थिर करें, उसीपर आर-से-पार हो जाती है।

कानके छिद्रके आगेसे सिरकी चोटी तक एक खड़ी सीधी रेखा खींचिये। जहाँ इसका अन्त होगा उसके ठीक पीछेके भागमें श्रद्धा, दृढ़ता, आत्मबल, विश्वास इत्यादि दिव्य शक्तियाँ निवास करती हैं। इनपर एकाग्रता करनेसे यदि कोष कम होंगे तो, अधिक; दुर्बल होंगे तो, सबल; और बलवान् होंगे तो और मजबूत हो जायँगे।

मस्तकके पीछे नीचेके भागमें प्रयत्न करनेके सामर्थ्यकी शक्ति होती है। जिस मनुष्यमें यह शक्ति विकसित अवस्थामे होती है वह किसी कामको करनेमें पीछे नहीं रहता। वह किसी कामको कठिन समझकर यों ही नहीं छोड़ देता; क्योंकि उसे लगातार मस्तिष्कके उस भागसे सहारा मिला करता है। जिस मनुष्यमें आत्म-श्रद्धाकी शक्ति विकसित होती है वह अपने प्रयत्नोंमें सदैव सफलमनोरथ होता है। कभी-कभी देखा गया है कि अनेक आग्रहसे कोई कार्य करनेवालोंके मस्तिष्कके पिछले भागमें वेदना मालूम होने लगती है। इस वेदनाका अर्थ यही है कि सामर्थ्य-शक्ति-कोषों (Cells) में दुर्बलता है और एकाग्रताद्वारा उनके पोषणकी आवश्यकता है। एकाग्रता करते समय सोचिये कि मेरे उस विशिष्ट भागमें सूक्ष्म

पौष्टिक प्रवाह वह रहा है, कोष पुष्ट हो रहे हैं, थकावट कम हो रही है। मैं चैतन्यस्वरूप हूँ, मेरे मस्तकमें प्रत्येक ओर चैतन्य व्याप रहा है और सारा शरीर चैतन्यसे ओतप्रोत हो रहा है—इस प्रकार एकाग्रता करनेसे यथेष्ट सामर्थ्यका संचय होगा।

कपालके ऊपरके भागमें, जहाँ अंदरसे बालोंकी जड़ें शुरू होती हैं, यह ज्ञान है कि किस मौकेपर (Tact) क्या करना चाहिये। इस निरीक्षण-शक्तिको जाग्रत् करनेके लिये पूर्वकथनानुसार एकाग्रता करके वहाँके कोषोंको परिपुष्ट एवं विशुद्ध करना चाहिये। कठिन-से-कठिन विषयकी गुत्थियाँ भी इस शक्तिसे सरलतापूर्वक सुलझाई जा सकती हैं।

मस्तिष्ककी बिचली सतहसे नाड़ियोंके बारह जोड़े निकलते हैं। प्रत्येक जोड़ा शरीरको कुछ-न-कुछ ज्ञान देता है। ये नाड़ियाँ गर्दनको विशेष पट्ठे भेजती हैं जिससे हमें कुछ-न-कुछ नवीन बात मालूम होती है। इच्छाशक्तिका यथार्थ स्थान कहाँ है? इसका उत्तर श्री हण्डहारा नामक लेखिकाने अपनी पुस्तक 'Concentration and the acquirement of personal magnetism' में इस प्रकार दिया है—

'मेरी सम्मतिमें इच्छा अथवा संकल्प-शक्तिका स्थित स्थान नाड़ियोंके उस तेजस्क ओजके भीतर निश्चित किया जा सकता है जो मस्तिष्कको चारों ओरसे घेरे हुए है।' अतएव संकल्प-शक्तिके विकासके लिये वहाँके कोषोंकी वृद्धि कीजिये।

मस्तिष्कके विभिन्न कोषोंपर एकाग्रता करनेसे हमारे रुधिरकी गति उस ओर होने लगती है और उनकी संख्यामें वृद्धि तथा विकास

होता है। कोई भी कोष हों, बढ़ाने जरूरी है। यदि सब बढ़े तो उत्तम है। अतः किस विशेष भागके कोष बढ़ावें ऐसा न सोचकर इस भावनापर मन एकाग्र कीजिये कि हमारे मस्तिष्कके सब कोष निरन्तर बढ़ रहे हैं। हम निरीक्षणशक्ति, तुलनाशक्ति, न्यायशक्ति, विवेकशक्ति, संकल्पशक्ति सबको ही बढ़ा रहे हैं। यह भाव केवल ऊपरी दिखावा मात्र न होकर पूर्ण अनुभूतियुक्त होना आवश्यक है। उस समय अपनी कल्पनाद्वारा वैसा ही अनुभव करना चाहिये। प्रारम्भमें आत्मस्वरूपकी भावना करनेकी बात कभी न भूलनी चाहिये।

कोषोंकी वृद्धिकी क्रिया जमीनको जोतकर तैयार करनेके समान है। जिस प्रकार उत्तम रीतिसे जोते हुए खेतमें बीज अच्छे उगते हैं, उसी प्रकारके कोषवाले मस्तिष्कमें मानसिक शक्तियाँ उत्तम रीतिसे विकसित होती हैं। इसलिये जिस प्रकारकी शक्तिको हम विकसित करनेकी इच्छा रखते हैं, उसका यथार्थ स्वरूप हमारे लक्ष्यमें रहना अनिवार्य है। ध्यातामें, ध्यान करनेकी वस्तुके स्वरूपकी यथार्थ कल्पना अत्यन्त आवश्यक है। योगशास्त्रका यह एक अखण्डनीय सिद्धान्त है कि ध्यान करनेवाला जिसका ध्यान करता है, उसीके समान हो जाता है। अतः मानसिक शक्तियोंका विकास चाहनेवालों-को भी जिस शक्तिका विकास करना हो, उसके स्वरूपको अच्छी तरह लक्ष्यमें रखना चाहिये।

कल्पना कीजिये कि हम अपने अंदर श्रद्धा, भक्तिभाव, अन्तर्ज्ञान इत्यादि आध्यात्मिक शक्तियाँ विकसित करना चाहते हैं। इन शक्तियों-के जाग्रत् और विकसित होनेका स्थान मूर्धा और उसके नीचेका प्रदेश है। इन स्थानोंमें एकाग्रता करते समय हम सच्ची भक्ति, सच्ची

श्रद्धा और अन्तर्ज्ञानके जिस नमूनेको सामने रक्खेंगे, वही हममें क्रमशः प्रकट होने लगेगा। अतएव जिस शक्तिके विकासका हमने निश्चय किया है, उसके ऊँचे-से-ऊँचे स्वरूपकी, जहाँ तक हमारी बुद्धि पहुँच सके वहाँ तक, कल्पना करनी चाहिये और उस उच्च कल्पनामें वृत्तिको आरूढ़ करके पूर्वोक्त क्रिया श्रद्धापूर्वक करनी चाहिये। इससे मस्तिष्कके कोष बढ़ेंगे, शुद्ध होंगे और वह काल्पनिक शक्ति धीरे-धीरे बढ़ने लगेगी।

तीसरी बात है सामर्थ्यकी। मन जिस सामर्थ्यसे परिपुष्ट होता है उस सामर्थ्यकी वृद्धि करनेकी भी आवश्यकता है। प्रत्येक मनुष्यमें यह सामर्थ्य एक बडे परिमाणमे प्रस्तुत रहता है; पर अधिकांश व्यक्ति इसका अधिकतर भाग निकम्मी क्रियाओंमें यों ही नष्ट कर दिया करते हैं। बैठे-बैठे पॉव हिलाना, ऑख, नाक या गुप्त अङ्ग टटोलते रहना, साररहित बाते सोचना, या यों ही बेमतलबकी बातें करना या सुपारी चबाते रहना आदि शरीरकी निकम्मी क्रियाएं हैं। इनसे मनकी सामर्थ्य-शक्तिका क्षय होता है। क्रोध, चिन्ता, भय इत्यादि विविध विकारोंसे तो सामर्थ्यका बड़ा नाश होता है। जो दिनभरकी आय होती है क्षोभ और नाराजगीमें बह जाती है। संचित सामर्थ्यका भी क्षय होता है। अतः मानसिक शक्तियोंके इच्छुकको सब प्रकारके क्षयोसे बचनेकी आवश्यकता है। मन पूरी शान्त स्थितिमें रहना आवश्यक है। वाणी और शरीरके सब व्यर्थ प्रपञ्च छोड़कर मनको शान्त स्थितिमें रखनेका प्रयत्न करना आवश्यक है। इससे हमारा बल संचय होता है और हमें एक अद्भुत सामर्थ्यका अनुभव होता है।

जिस सत्संस्कारी व्यक्तिको इस बलका अनुभव हो उसे चाहिये कि अपने योग्य उचित वातावरण खोज ले और निरन्तर मानसिक शक्तियोंको पूर्वोक्त प्रकारसे विकसित करता रहे।

मानसिक शक्तियोंकी अभिवृद्धिके लिये अनुकूल संगति और परिस्थितियोंकी परम आवश्यकता है। अपने उद्देश्यके अनुकूल उचित वातावरण उपस्थित कीजिये। जिस वातावरणमें मनुष्य रहता है, वे ही मानसिक शक्तियाँ क्रमशः उत्पन्न और बढ़ती हुई दिखायी देती हैं। जिस व्यक्तिके परिवारमें, मित्रोंमें, मिलने-जुलनेवालोंमें कवि अधिक होते है, वह प्रायः कवि ही हो जाया करता है। सैनिकों और सिपाहियोंके कुलमें रहनेवाला व्यक्ति प्रायः निडर हो जाया करता है। आप जिस प्रकारकी मानसिक शक्तियोका उद्भव चाहते हैं, वैसे ही व्यक्तियोंमें रहिये, वैसी ही पुस्तकोका अध्ययन कीजिये, वैसे ही मनुष्योंके चित्र देखिये और निरन्तर वैसे ही चिन्तनमें निमग्न रहिये। अपने अभीष्टकी भावनापर मनको एकाग्रकर गम्भीरता-पूर्वक स्थिर कीजिये। उपयुक्त वातावरणमें रहनेसे, मानसिक व्यायामसे, भिन्न-भिन्न क्रियाओंके अभ्याससे, मनकी शक्ति तीव्रकी जा सकती है।

मनकी शक्ति एकाग्रता एवं मननसे विकसित होती है। इधर-उधर चञ्चलतापूर्वक भ्रमण करनेसे, चिन्ताओं एवं भ्रान्तियोंके वशीभूत होनेसे, मनःप्रवृत्ति अनेक दुर्दमनीय कष्टोंका, अनेक पराजयोंका कारण बनती है। यदि एक निर्दिष्ट कार्यमें मन एकाग्र न किया जाय तो समस्त प्रयत्न निष्फल होते हैं। निर्दिष्ट समयपर अन्य समस्त विचारोंको मनःप्रदेशसे बहिर्गत कर एक तत्त्वपर अन्तर्नेत्र एकाग्र करनेसे मनकी शक्ति प्रकट होती है।

एकाग्र ध्यानके दो मुख्य प्रकार हैं—अक्रिय तथा सक्रिय। अक्रिय ध्यानमें इन्द्रियोंको शान्त कर मनोवृत्तिको ग्राहक किया जाता है। समस्त वृत्तियोंको पूर्ण शान्त रखना होता है। 'मै पृथ्वीपर परमात्म-तत्त्वका महत्तम, सर्वोच्च एवं सर्वोत्कृष्ट रूप हूँ।'—केवल इसी भावपर चित्तवृत्तियोंको एकाग्र रखना होता है। ध्यानका दूसरा भेद है—सक्रिय ध्यान। सक्रिय ध्यानमें मनको क्रियात्मक ग्रहणोचित वृत्तिमे रक्खा जाता है। एकाग्रतासे शब्द सुनना होता है। एक ही साथ भावनाओंको ग्रहण करना एवं वाहर भेजना होना है। इस प्रकार मनकी द्विधा क्रिया होती है। जो कुछ कहा जाता है, उसे सुनने एवं उसी समय निर्णय करके मूक मानसिक उत्तर देने हैं।

हमें क्या इष्ट है ?

आप अपना अक्रिय ध्यान उस व्यक्तिकी ओर मत कीजिये जो आपसे अनुग्रह अथवा लाभ उठाना चाहता है। यद्यपि आपको दूसरेकी भावनाएँ ग्रहण करनी चाहिये, तथापि आपको अपने मनकी ऐसी स्थिति वृत्ति रखनी चाहिये, जिससे आपपर किसी अवाञ्छनीय प्रभावका आक्रमण न हो सके। आपको द्वारपालके समान स्थिर रहना चाहिये तथा किसी अनुचित तथा अनर्थकारी सूचना (Suggestion)-का संचार मनके भीतर न होने देना चाहिये, वाहर भेजा हुआ प्रत्येक विचार आपकी इच्छाके वशमें होना चाहिये। जबतक सत्यभाषणका स्वभाव स्थिर रूपसे न बन जाय, तबतक प्रत्येक शब्द-को सावधानीसे बोलते रहिये तथा प्रत्येक कार्य सूक्ष्म अन्तरात्माकी

अनुमतिसे करते रहिये। प्रत्येक कार्यमें अपनी सच्ची संकल्प-शक्तिका संचार करते रहिये।

दार्शनिक कैन्टने एक स्थानपर निर्देश किया है कि नीतिमय जीवनका प्रारम्भ होनेके लिये विचारक्रममें परिवर्तन तथा आचारका ग्रहण आवश्यक है। भारतीय परिभाषाके अनुसार—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ॥ (उपनिषद्)

अर्थात् सत्य, तप तथा सात्त्विक ज्ञान और नित्य निर्विकार रहनेसे ही आत्मतत्त्वका दर्शन हो सकता है। ये सभी बाते मनः-साधनाकी ओर संकेत करती हैं। जीवनमें दर्शनका फल है, मानस सत्यका उदय। साधनाकी भावनासे सात्विकी श्रद्धाका जन्म होता है। चित्तके विषयको अपने अध्यवसायकी क्षमताके अनुभवका विषय बना सकना ही श्रद्धाका लक्षण है। भारतीय विचारकोंने अपने वाङ्मयके उषःकालसे ही इस महत्त्वपूर्ण तत्त्वको समझकर उसका प्रचार किया है। ज्ञानसिद्धि, ऋषि-महर्षियोंका जो साक्षात्कार था, उसको उन्होंने 'श्रुति' कहा है। श्रुतिका जन्म प्रज्ञासे होता है। प्रज्ञा (Intuition) ज्ञान-प्राप्तिका सबसे सूक्ष्म साधन है। योग-समाधिके द्वारा चित्तको संस्कृत करनेका फल हमारे ज्ञान-यन्त्रके लिये पतञ्जलिने यों बतलाया है—'**ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा**' (पा० यो० १।४८) अर्थात् आध्यात्मिक दर्शनकी उच्चतम अवस्थामें ऋतम्भरा प्रज्ञाका उदय होता है। ऋत जिसमे भरता हो, ऐसी बुद्धि ऋतम्भरा है। मनके तर्क-वितर्कद्वारा संचय होनेवाला

ज्ञान सत्य है। हृदयकी अनुभूति या तत्त्वसाक्षात्कारसे उपलब्ध अनुभव 'ऋत' है। योगीकी प्रज्ञा ऋतात्मक ज्ञानका भरण करती है।

बुद्धिका यथार्थ स्वरूप

बुद्धि यथार्थमें प्रतिभाका एक संस्कारित स्वरूप है। भावुकता अर्थात कल्पनात्मक महानुभूति, बुद्धिका एक गुण है। नाना प्रकारके विचार, कल्पनाएँ, मानस-चित्र निर्माण करना, सोचना, तर्क करना बुद्धिके व्यापार हैं। कुशाग्र बुद्धिवाला व्यक्ति अधिक अस्पष्ट मानस-चित्र विनिर्मित करता है। कल्पना करना, ज्ञानके आधारपर उन मानस-चित्रोंको अधिकाधिक स्पष्ट करना, उनमें भावुकता (Feeling) का संचार करना—यह बुद्धिमानीकी आन्तरिक अवस्था है। जबतक उक्त तत्त्वोंमें पूर्ण सामञ्जस्य नहीं, तबतक बुद्धिमें परिपक्वताका संचार नहीं हो सकता। तर्कसे कल्पनाका अनौचित्य प्रक्षालित होता है और बुद्धिका विशुद्ध व्यावहारिक रूप प्रकट होता है। बुद्धिमानकी विविध योजनाएँ व्यावहारिकताके आधारपर विनिर्मित होती हैं। मनुष्यके मनका विकास अधिकतर उसकी बुद्धिके विकासपर ही निर्भर है। बुद्धिकी शक्ति मस्तिष्कके सूक्ष्म कोषों (Cells) में निवास करती है। जिज्ञासा एवं स्मरणशक्ति बुद्धिके विशिष्ट अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं। मननसे मनकी शक्ति बढ़ती है। निर्दिष्ट समयपर दूसरे सब विचारोंको छोड़कर एक 'आत्मतत्त्व' पर मनको एकाग्र करना चाहिये।

चित्तकी शाखा-प्रशाखाएँ

चित्तका प्रधान कार्य जानना या अनुभव करना है। चित्तको

योगदर्शन एवं सांख्यसूत्रोंमे प्रकृतिके सत्त्वगुणका परिणाम माना गया है। चित्त वृत्तियोंका भंडार है। चित्तकी वृत्तियोंको वशमें करना, रोकना, निरोध करना ही शान्तिका मूल है—**'योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः।'** (पा० यो० १ । २)

चित्तकी वृत्तियोंके दो भेद है—अन्तर्वृत्ति, बहिर्वृत्ति। कुछ व्यक्तियोंकी वृत्ति बाह्य संसारकी उलझनोंसे ऊबकर अन्तः-करणके विवेककी ओर लग जाती है। इसमें व्यक्ति अन्तर्जगत्के गूढ रहस्योंमें पूर्ण निमग्न रहता है। वह आत्माके अन्तरालमें विचरण करता है। प्रकृत पुरुषका वास्तविक ज्ञान ही उसका प्रधान लक्ष्य होता है और इस तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिसे समस्त क्लेश दूर हो जाते हैं।

द्वितीय वृत्ति है बहिर्वृत्ति अर्थात् केवल सांसारिक वस्तुओंका देखना, सुनना, उनमें लिप्त रहना। रजोगुण एवं तमोगुणके कारण विषयोंकी ओर वृत्ति झुकी रहती है, जैसे काम, क्रोध, लोभ, आलस्य इत्यादिमें प्रवृत्ति। अधिकांश अस्थिर व्यक्तियोंकी वृत्ति बहिर्वृत्ति ही होती है। विषयोंमें लिप्त रहनेके कारण उन्हे नाना प्रकारके क्लेशोंको भोगना पड़ता है। भोगकी सांसारिक वृत्तियोंको क्लिष्ट कहते हैं।

पतञ्जलिके अनुसार चित्तवृत्तियाँ—

वृत्तियाँ अगणित भी हो सकती हैं। महर्षि पतञ्जलिके अनुसार वृत्तियोंका स्वरूप देखिये। महर्षि पतञ्जलि कहते है:—'प्रमाण-विपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः' (१ । ६)। लौकिक ज्ञानका जो सम्बन्ध है, वह प्रमाण कहलाता है। इसके तीन भेद हैं—

प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम। प्रत्यक्ष वह ज्ञान है जो नेत्रों इत्यादि इन्द्रियोंसे प्राप्त है। अनुमान उसे कहते हैं जिसे हम कुछ चिह्न देखकर अनुमान कर लेते हैं। 'आगम' शास्त्रोक्त वचन अर्थात् सच्चे तत्त्वज्ञानी आप्त मनुष्योंके शब्दोद्वारा प्राप्त होता है। अन्य चार वृत्तियाँ ये हैं:—

विपर्यय—जिससे मिथ्या ज्ञान हो। **'विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूप-प्रतिष्ठम्'** (पा० यो० १ । ८) अर्थात् वह ज्ञान जो सच्चे रूपमें स्थित नहीं है।

विकल्प—जो वस्तु शून्य अर्थात् वास्तवमें कुछ हो ही नहीं, किन्तु केवल शब्द मात्रसे जानी जाय। वेदान्ती समग्र संसारकी वस्तुओंको विकल्प ही मानते हैं।

निद्रा—किसी पदार्थके न होनेका प्रत्यय अर्थात् ज्ञान जिस वृत्तिका आलम्बन है उसे निद्रा कहते हैं। जब स्वप्न आते हों तो वह निद्रा नहीं है।

स्मृति—अन्तिम वृत्ति स्मृति है। यह अनेक दुःखोंका कारण बन जाती है। अतएव, इसका विरोध होना आवश्यक है **'अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः'** (पा० यो० १ । ११) । स्मृति अनुभवसे न्यूनका तो ज्ञान कराती है, किन्तु अधिकका नहीं।

उक्त वृत्तियाँ यदि सात्त्विक हों तो सुख उत्पन्न करेंगी और सुखसे राग उत्पन्न होगा। अर्थात् मन सुखके वशीभूत होगा तो मुक्तिमें बाधा पड़ जायगी। इन वृत्तियोंका विरोध ही मुक्तिकी इच्छा करनेवालेको परमावश्यक है।

स्वाध्यायमें सहायक हमारी ग्राहक-शक्ति

'स्वाध्याय'का तात्पर्य है—ग्रन्थोंद्वारा स्वयं ज्ञानार्जन करना, किंतु यह बहुत संकुचित अर्थ हुआ। 'स्वाध्याय'का बड़ा व्यापक अर्थ है। हम संसारमें फिरते हैं, नाना व्यक्तियों, संस्थाओं, घटनाओं और शुभ-अशुभ अनुभवोंको देखते हैं। अनेक व्यक्ति, नेता, पण्डित, मुल्ला, उपदेशक, अध्यापक हमें नाना ज्ञान-विज्ञान देते हैं। ये प्रत्येक हमारे अध्ययनकी वस्तु हैं। इन सभीके अनुभवोंसे निष्कर्ष निकाल-कर हम अपने ज्ञानभण्डारको विकसित कर सकते हैं।

किंतु स्वाध्यायमें सबसे अधिक महत्त्व जिस तत्त्वका है, वह हमारी ग्राहक दृष्टि है। यों तो हम बहुत-सी पुस्तकें पढ़ते हैं, अनेक व्यक्तियोंके भाषण सुनते है, किंतु जो कुछ देखते, पढ़ते अथवा सुनते हैं, उसमें महत्त्व इस बातका है कि हम वास्तवमें ग्रहण कितना करते हैं, हमारे मस्तिष्कमें कितना ज्ञान ठहरता है और स्थायीरूपसे हमारे मानसिक संस्थानका अङ्ग बनता है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जितना अधिक हम पढ़ते हैं, वास्तवमें उससे बहुत ही कम हम ग्रहण कर पाते हैं। हमारा मस्तिष्क बहुत कम ज्ञान ग्रहण करता है।

वह व्यक्ति भला क्योंकर स्वस्थ एवं शक्तिशाली बन सकता है, जो भोजन तो बहुत परिमाणमे करता है, भोजन भी पौष्टिक है, पर उसकी पाचन-क्रिया व्यवस्थित नहीं है ? वह जो खाता है निकाल देता है। जबतक उदरमें भोजनके रस एकत्रित होकर स्थायीरूपसे

स्वास्थ्य शक्ति नहीं देते तबतक उसकी शक्तियोंमें अभिवृद्धि असम्भव है। यही हाल मस्तिष्कका है। यदि पढ़ने, देखने और सुननेपर आपका मस्तिष्क बहुत कम ग्रहण करता है, तो स्वाध्यायसे अधिक लाभ सम्भव नहीं है।

अत: ग्रहण-शक्तिकी वृद्धि करना नितान्त आवश्यक है। जिस दिमागकी जितनी यह ग्राहक-शक्ति तीव्र होगी, वह उतना ही समुन्नत, सशक्त और ज्ञान-भण्डारसे पूर्ण हो सकेगा। ग्राहकशक्ति-सम्पन्न व्यक्ति एक ही पुस्तक, घटना या दृश्यको देख उसे अपने स्मृतिकोषमें रखकर प्रचुर और स्थायी लाभ उठा सकता है।

ग्रहण-शक्ति मनुष्यके मस्तिष्कके लिये उतनी ही उपयोगी है, जितनी पाचन-शक्ति उदरके लिये आवश्यक है। पाचन-शक्ति हमें नया रक्त, नया मांस, मज्जा, उत्साह और स्वास्थ्य देती है तो ग्राहक-शक्ति हमारे मस्तिष्कको समृद्ध बनाती है। नया ज्ञान हमारे मनमें स्थायीरूपसे ठहर जाता है और हम जीवनपर्यन्त उससे लाभ उठाते रहते हैं।

प्रश्न है ग्राहक दृष्टि कैसे बढ़े? यदि आप दृढ़तासे चाहें तथा उसके लिये मनोयोगपूर्वक प्रयत्न करें, तो सच मानिये आपकी ग्राहक शक्ति तीव्र हो सकती है।

अपने मनको यह आदत डालिये कि वह संसार, समाज, घटनाको गम्भीर दृष्टिसे देखे। यदि कोई पुस्तक पढ़ रहे हैं, तो उसे भी गहरी भेदभरी नजरसे पढ़ा कीजिये। ऐसा प्रयत्न कीजिये कि ऊपरी छिछली दृष्टिसे नीचे गहराईमें उतरकर आप अपने अनुभव,

घटना, पुस्तक आदिका निगूढ़तम विश्लेषण कर सकें। व्यक्तियोंसे जब आप वार्तालाप करें, तब भी गम्भीर दृष्टिसे ही कीजिये। ऊपरी बालोचित हल्की-फुलकी बातोंमें निमग्न मत रहिये।

एक विद्वान्‌के ये अनुभवपूर्ण विचार देखिये। वे लिखते हैं—

'जो घटनाएँ प्रतिदिन हमारे साथ घटित होती हैं, या जो कुछ अनुभवमें आती हैं, उनको जरा गहरी दृष्टिसे देखनेकी आदत डालें; तो बहुत-सी नयी बातें मालूम होती हैं।··· जो प्रिय विषय हो, जिसमें विशेष ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा हो, जिसे अपना लक्ष्य स्थिर किया हो, उसमें विशेष योग्यता प्राप्त करनेके लिये सदा दत्तचित्त रहो। मान लो कि तुम बलवान् होना चाहते हो तो शारीरिक बल-सम्बन्धी जो उपदेश, उदाहरण, घटनाएँ, या अनुभव देखो उनमें विशेषरूपसे चित्त लगाओ और गम्भीरतापूर्वक विचार करो कि इसमें क्या बात हानिकारक और क्या उपयोगी है। हम क्या भूल रहे हैं और किन-किन नियमोंका पालन करनेसे लाभ उठा सकते हैं। इस प्रकार यदि प्रतिदिन कुछ गम्भीर सोच-विचार करते रहे, तो बहुत लाभ होगा। गम्भीरतासे किया हुआ विचार कभी व्यर्थ नहीं जाता। वह विचारोंसे विश्वासमें आता है और विश्वाससे अनुभवमें परिणत हो जाता है। यह अनुभव यदि क्रियामें आ जाय, या आदत बन जाय, तो जीवन उच्चकोटिका बन जाता है।'

वास्तवमें गम्भीर दृष्टिसे देखकर ही स्थायी लाभ उठाया जा सकता है। जलपर ऊपर झाग-ही-झाग फैले रहते हैं। ऊपरी निगाहसे देखनेवाला धोखा खा सकता है, किंतु गहराईसे प्रविष्ट

होनेवाला उसकी निस्सारतासे तुरंत परिचित हो जाता है।

गम्भीर दृष्टिका महत्त्व हमारे बड़े-बड़े नेताओं, धर्मप्रचारकों, विद्वानोंने सदैव समझा है। गौतम बुद्धको विलासके रंगीन वातावरणमें रखकर संसारके माया-मोहमें बाँध रखनेके नाना प्रयत्न किये गये, किंतु वृद्ध, रोगी और मृतकको गहरी दृष्टिसे अवलोकन कर वे संसारकी निस्सारता, क्षणभङ्गुरता और निर्बलतासे परिचित हो गये। वे वस्तुओंकी जड़में प्रविष्ट होकर आधारभूत तत्त्वोंको देखा करते और वस्तुओंका यथार्थ मूल्याङ्कन किया करते थे।

हल्की दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण विषय, महान् ग्रन्थ, तथा स्थायी अनुभव भी साधारण प्रतीत होता है और मन अपनी पूरी शक्तिसे ग्रहण नहीं करता। हमें सभी कुछ तुच्छ प्रतीत होता है। अनेक व्यक्ति घंटों अपने सामने पुस्तकें लिये बैठे रहते हैं, पढ़नेका अभिनय करते रहते हैं, पर शक्तियोंको एकाग्र न करनेके कारण वास्तविक उन्नति कुछ भी नहीं होती। उलटे असफलता मिलती है और आत्मविश्वास नष्ट हो जाता है।

जो कुछ सोचें, गम्भीरतासे सोचें, खूब विचार करें, हर पहलूसे देखें, मानस-चित्र निर्मित करें। जीवनके हर मोर्चेपर गम्भीर दृष्टि आपको लाभ देगी, भली-बुरी बाजारकी वस्तुओं और समाजके मनुष्योंके चुनावमें सहायक होगी। गम्भीर दृष्टिसे चिन्तन-मनन एक उत्तम मानसिक प्रक्रिया है जो सशक्त मनकी सूचक है। अतः गम्भीर दृष्टिसे देखनेकी आदत विकसित कीजिये।

आपकी अद्भुत स्मरणशक्ति

मनुष्यके ज्ञानकी वृद्धि करने और संसारके ज्ञानको आगे बढ़ानेवाली शक्तियोंमें मनुष्यके मस्तिष्ककी स्मरणशक्ति महत्त्वपूर्ण है। अन्य जीवोंकी अपेक्षा मनुष्यमें स्मरणशक्ति विशेष विकसित रूपमें पायी जाती है। ज्ञानभण्डारको बढ़ानेमें इसका प्रमुख स्थान है। लेखकों, इतिहासकारों, वक्ताओं, ऋषि-मुनियोंका ज्ञान उनकी स्मृतिमें संचित रहता है। जब पुस्तकें नहीं थीं, तो अध्यापकोंका मस्तिष्क ही पुस्तकें थीं और उनकी स्मरणशक्तिके कारण ही उनका इतना मूल्य था। जो कुछ वे उच्चारण करते थे, उसे शिष्यको अपनी स्मृतिमें धारण करना पड़ता था। पुस्तकोंके प्रचारसे स्मरणशक्ति निर्बल हो गयी है, फिर भी अनेक व्यक्तियोंमें अद्भुत स्मरणशक्ति पायी गयी है और आज भी पायी जाती है।

अंग्रेजी भाषामें लार्ड वायरन, मैकाले अपनी स्मरणशक्तिके कारण बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। लार्ड मैकालेके मस्तिष्ककी तुलना ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी, लंदनके विशाल पुस्तकालयसे की गयी है। कहते हैं कि जिस विषयपर उन्हें आवश्यकता होती थी, उसीके सम्बन्धमें असीमित ज्ञान-निर्झर उनमेंसे बह निकलता था। उपन्यास, कहानी, भ्रमण या इतिहास किसी भी विषयपर वे धाराप्रवाह बोल सकते थे। वे जो भी पुस्तक पढ़ते थे, उन्हें शब्द-शब्द स्मरण रह जाता था। मिल्टन 'पैराडाइज़ लॉस्ट' जैसा महाकाव्य उन्होंने एक रात्रिमें याद कर डाला

था। कवि बायरनके विषयमें कहा जाता है कि उन्होंने जितनी भी कविताएँ लिखी थीं, जीवनके अन्तिम क्षणोंतक कण्ठस्थ थीं। लार्ड बेकनकी स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि अपने लिखे हुए निबन्ध वे शब्द-शब्द बोल देते थे। अमेरिकाके प्रसिद्ध वनस्पतिविशेषज्ञ असाग्रेकी स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि उन्हें २५००० वनस्पतियोंके नाम स्मरण थे। अमेरिकाके भूतपूर्व राष्ट्रपति राजनीतिज्ञ थेडोर रूज़वेल्ट जिससे एक बार मिलते थे, आयुभर उसे नहीं भूलते थे। कहते हैं, एक बार जापानमें वह एक सज्जनसे पंद्रह वर्ष बाद बाजारमें अकस्मात् मिले तो देखते ही उनका नाम पुकारा और बातचीत प्रारम्भ कर दी और आपको आश्चर्य होगा कि वार्तालापका विषय पंद्रह वर्ष पूर्वका विवाद था। दक्षिणी अफ्रीकाके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री जनरल स्मट्सको अपने पुस्तकालयकी प्रत्येक पुस्तकका प्रत्येक शब्द, पृष्ठ और परिच्छेद स्मरण था और यह बता सकते थे कि अमुक पुस्तक अमुक अलमारीमें रक्खी है और अमुक पृष्ठपर अमुक शब्द लिखे हैं। भारतके क्रान्तिकारी नेता श्रीहरदयालकी अद्भुत स्मरणशक्तिके विषयमें अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। आज भी वाराणसीके महामहोपाध्याय डा० श्रीगोपीनाथ कविराजको सहस्रों ग्रन्थ तथा उनके विषय याद हैं। उनके आस-पास विभिन्न विषयोंके डाक्ट्रेट—प्राप्त करनेके प्रत्याशी विद्वानोंकी भीड़ लगी रहती है।

उपर्युक्त कुछ उदाहरणोंसे यह स्पष्ट है कि यदि प्रयत्न, अभ्यास और श्रम किया जाय, तो आज भी हम अपनी स्मरणशक्तिको बढ़ा सकते हैं। अन्य उच्च शक्तियोंकी तरह प्रत्येक व्यक्तिमें स्मरणशक्ति विद्यमान है।

आपने यह गलत धारणा बना ली है कि आपकी स्मृतिशक्ति निर्बल है। स्मरण रखना एक प्रकारका मानसिक मार्ग है, जिसे टहलने, बातचीत करने, भोजन करने, ध्वनि पहचाननेकी ही भाँति पृथक्-पृथक् स्पष्ट करना पड़ता है। ये सब कार्य आपने बचपनमें सीखे थे और उपर्युक्त सब क्रियाएँ आप स्वतः पूर्ण कर सकते हैं। आपके चेतन मस्तिष्कको इन क्रियाओंके करनेमें कोई विशेष श्रम नहीं करना पड़ता। मानसपटलपर स्वत. ही मानस-चित्र बनते जाते हैं और अतीत मूर्तिमान् होता रहता है। स्मृति एक प्रकारकी आदत है और इसके लिये श्रम और अभ्यासकी आवश्यकता है। कोई भी चेष्टा करनेसे अपनी स्मरणशक्तिका विकास कर सकता है।

हम बातें, वस्तुएँ, व्यक्तियोंको क्यों भूलते हैं? कारण यह है कि हम नवीन ज्ञानको पुराने संचित ज्ञानसे नहीं जोड़ते। अलग-अलग पड़े हुए ज्ञान या अनुभव-कण एकदम भूल जाते है, पर यदि हम नये अनुभवों या ज्ञानको स्मृति-कोषमें संचित पुराने ज्ञानसे संयुक्त कर दे, तो नयी बाते अटकी रह जाती है और भूलतीं नहीं। केवल हमें संयुक्तीकरण या पुराने ज्ञानसे नया ज्ञान संयुक्त करनेकी आवश्यकता है।

विलियम जेम्स लिखते हैं, 'मानसिक क्षेत्रमें जितना भी पुराने ज्ञानसे नया ज्ञान मिलाकर, संयुक्त कर, नयी बातोंको पुरानी बातोंसे मिलाकर रक्खा जायगा, उतना ही हम नयी बातोंको याद रख सकेंगे। प्रत्येक पुरानी बातसे संयुक्त होकर नयी बात याद रहती

है। पुरानी बात एक हुक या कड़ीकी तरह है, जिसमें नयी बात अटक जाती है। जैसे कटुवेसे मछली अटककर ऊपर आ जाती है, उसी प्रकार पुराने संचित विचारोंसे बँधी हुई नयी जानकारी हमें याद रहती है।'

अतः नयी वस्तुओं, विचारों, व्यक्तियोंको अपने मस्तिष्कमें मौजूद संचित ज्ञान-राशिसे संयुक्त करते रहिये। आदमीको उसके पेशे या स्थानसे मिलाकर याद रख सकते हैं। एक ही प्रकारके विचारोंको साथ-साथ संयुक्तकर याद रक्खा जा सकता है।

जिस वस्तु या विचारको याद रखना है, उसे बढ़ा-चढ़ाकर मनमें विकसित दीर्घ मानस-चित्र बनाकर देखिये। बार-बार लम्बे मानस-चित्र चेतनाके स्तरपर रखनेसे वस्तुएँ और विचार याद रहते हैं। मानस चित्रोंके निर्माणका अभ्यास निरन्तर करते रहिये।

स्मृतिको बढ़ानेका एक तत्त्व क्रिया (एक्शन) है। जो वस्तुएँ हिलती रहती हैं, हम उनकी ओर अधिक आकृष्ट हो जाते हैं। थियेटरमें जनता हिलने-डुलने या तेजीसे क्रियाएँ करनेवाले अभिनेताके प्रति अधिक आकृष्ट होती है। यदि आप अपने विचारोंको क्रियाका रूप दे डालें, तो बात जल्दी याद रहेगी। यही कारण है कि जो बात बार-बार उच्चारण करनेसे याद नहीं रहती, वह बार-बार लिखनेसे याद हो जाती है। कारण, जितनी देरतक हम कोई बात लिखते हैं, उतनी देरतक वही विचार हमारे मानसिक नेत्रोंके सम्मुख रहता है। मनमें निरन्तर क्रिया चलती रहती है।

कार्य जितना ही तेज या चकित करनेवाला होता है, उतना

ही अधिक स्मरण रहता है। यदि आपके साथ कोई खूनी घटना हो जाय, तो सदैव याद रहती है। जिस बातमें हमारा जितना अधिक ध्यान या रुचि रहती है, उतनी ही वह स्मरण रहती है। अतः जिन कठिन विषयोंको आप याद रखना चाहते हैं, उनके प्रति अपनी रुचि-वृद्धि कीजिये। दिलचस्पी बढ़ानेसे ध्यान (Attention) ज़मता है और ध्यानसे बातें याद रहने लगती हैं। जितना अधिक ध्यान लगेगा, उतनी अच्छी एकाग्रता होगी। अतः धीरे-धीरे अपने मनको एकाग्र करनेका सतत अभ्यास करना चाहिये। जिस बातको वास्तवमें हम याद रखना चाहते है, एकाग्रता, ध्यान और दिलचस्पी लेकर अवश्य ही हम उसे स्मरण रख सकते हैं। हमें अपने स्मृति-कोषसे यह चुनना चाहिये कि वास्तवमें हम क्या याद रखना चाहते हैं। जिन विचारोंको आप चुनें, केवल उन्हींपर मनको एकाग्र करें।

स्मृति भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है। कोई व्यक्ति कविताकी पंक्तियाँ अधिक याद रख सकता है, तो दूसरा बिसातीकी दूकानकी सैकड़ो छोटी-छोटी वस्तुएँ, तीसरा पंसारीकी दूकानके मसाले, दवाइयाँ इत्यादि। आप एक कागजपर उन वस्तुओंको लिखिये, जिन्हें एक सभ्य संस्कृत विद्वान्‌को स्मरण रखना चाहिये। यदि आप डाक्टर हैं, तो दवाइयों, मानव-शरीरके हिस्सों, हड्डियों आदिको स्मरण रखना आपके लिये उत्तम रहेगा। इतिहासकारको व्यक्तियोंके नाम, सन्, तिथियाँ आदि याद रखना काम देगा। इसी प्रकार अध्यापक, राजनीतिज्ञ, नेता, बैंकर या सम्पादकको भिन्न-भिन्न बातें याद रखनेसे लाभ होगा। अतः अपने कामकी बातोंको याद रखनेमें ही ध्यानको

एकाग्र कीजिये । निरन्तर अभ्यास करनेसे ये वस्तुएँ स्वतः याद होने लगेंगी ।

मान लीजिये, आप विद्यार्थी हैं तथा आपको कोई लम्बा पाठ या इतिहासकी सामग्री स्मरण करनी है। अथवा आप वक्ता हैं और आपको भाषण देनेके लिये दस-बारह बातें याद रखनी हैं। इसमें भी आप संयुक्तीकरणकी युक्तिसे काम लें, अर्थात् एक-एक बातको पूर्व संचित तत्त्वसे जोड़कर याद करें। पहले एक बात याद करें, फिर उसीसे दूसरी जोड़कर धीरे-धीरे दोनोंको दुहरावें। फिर तीसरी जोड़कर तीनोंको क्रमानुसार दुहराएँ । इसी प्रकार धीरे-धीरे एक-एक नयी बात और जोड़ते चलें । इस प्रकार आप समूची रूपरेखा स्मरण कर लेंगे। प्रतिदिन कुछ समयके लिये पुरानी बातें दुहराते जानेसे ज्ञान विस्मृत नहीं होता। विचारोंको मजबूतीसे पकड़िये। छिछले विचारके सामने कोई मानसिक मूर्ति स्पष्ट नहीं आती। बीचमें बात याद नहीं रहती। अतः गहनतासे सोचनेकी आदत डालिये। रचनात्मक विचार संगठित रूपसे विचार करता है और मनमें उनकी मूर्ति स्पष्ट बनाता है ।

लेखकोंको अपनी स्मरणशक्ति बढ़ानेके लिये स्टीवनसन नामक अंग्रेजी लेखककी विधिसे काम लेना चाहिये। उनका मत था कि विचार मनमें आते हैं और यदि उन्हे मजबूतीसे पकड़ न लिया जाय, तो वे गायब हो जाते हैं। अतः वे हमेशा एक डायरी साथ रखते थे, जिसमें पेंसिलसे नये विचार नोट कर लेते थे, नोट कर लेनेसे विचार विस्मृत न होते थे। कागजपर लिखे हुए नये विचार बढ़ाये जा सकते हैं और हमारी स्मृतिको सहायता देते हैं।

स्मरणशक्ति मनकी एक शक्ति है। प्रत्येक शक्तिको विकसित करनेका यह नियम है कि उससे अधिक-से-अधिक काम लिया जाय। जिन शक्तियोंसे काम लिया जायगा, वे ही बढ़ेंगी। शेष नष्ट हो जायँगी। कार्य करनेसे ही शक्तियाँ बनी रहती हैं, अन्यथा पंगु हो जाती हैं। अतः अपने मस्तिष्कसे नित्य नियमित कार्य लेते रहिये। रचना, समन्वय, संघटन, प्रेरणा देना और निर्णय करना, नये-नये विचार-कल्पनाएँ देना—ये सभी श्रेष्ठ कार्य अपने मस्तिष्कसे लेते रहिये। इनमें स्मरणशक्ति काममें आती रहेगी और आप एक कुशल व्यक्ति बने रहेंगे।

स्मरणशक्तिको विकसित करनेका निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिये। जैसे आप किसी पुस्तकके अंशको या किसी कविता, किसी पंक्तिको पढ़ लीजिये, फिर पुस्तक बंद कर मनमें धीरे-धीरे उन्हीं अंशोंको कहिये या उन्हीं अंशोंको लिखनेका प्रयत्न कीजिये। इस अभ्याससे स्मरणशक्ति विकसित हो जायगी। जितना अधिक ध्यान आप पुस्तकको पढ़ने, लिखने और वस्तुओंको गहराईसे देखनेमें लगायँगे, उतना ही उत्तम है। मस्तिष्क उतनी ही पूर्णतासे विचारोंको पकड़ेगा। अतः ध्यानपूर्वक बातोंको समझने और गुप्त मनमें क्रमानुसार सजानेका प्रयत्न किया कीजिये। क्रम तथा व्यवस्थासे अनेक विचार स्मृतिकोषमें दीर्घकालतक सजे रहते है, जब कि अव्यवस्थित रूपसे थोड़ेसे विचार भी स्मरण नहीं रहते। विचारोंको याद रखनेमें सुव्यवस्था लाभप्रद है।
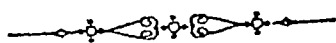
लक्ष्मीजी आती हैं

संसारमें दरिद्रता पाप है। कौन दरिद्रताकी प्रशंसा कर सकता है?

दारिद्र्यं पातकं लोके कस्तच्छंसितुमर्हति। (व्यास)

भारतीय पूजा-पद्धति श्रेष्ठ और वैज्ञानिक आधारोंपर स्थित है। हमारे अध्यात्म-विशारदोंने ज्ञान, भक्ति और चिन्तनके विविध गम्भीर तत्त्वोंका बोध प्रतीकवाद (सिम्बॉलिज्म) के द्वारा करानेका सदा प्रयत्न किया है। भारतीय देवी-देवताओंमें अनेक मानव-गुणोंको ही मूर्त्त-रूप दिया गया है। इन प्रतीकोंसे अनेक गुप्त गुणोंका प्रचार हुआ और जनताने उन्हें अपनाया भी। लक्ष्मी-पूजा भी प्रतीककी इस महिमासे वञ्चित नहीं।

संसारमें शक्तिके तीन प्रकार हैं—शारीरिक, बौद्धिक और आर्थिक। हिंदू विचारकोंने शक्तिके इन तीन प्रकारोंको साकार अभिव्यक्ति देते हुए तीन देवियोंकी मान्यता और उनके स्वरूपोंमें नाना गुणोंकी प्रतिष्ठा की। अष्टभुजा दुर्गा शारीरिक शक्तिकी प्रतीक हैं। उनके एक ही शरीरमें आठ भुजाएँ चार व्यक्तियोंके शारीरिक बलकी द्योतक हैं। सरस्वती देवी हमारी विद्या-बुद्धि और कला-संगीतकी प्रतीक हैं। लक्ष्मी अर्थ-शक्ति अर्थात् रुपये-पैसे, वाणिज्य-व्यापार-समृद्धिकी प्रतिमा हैं। वे कमलपर विराजती हैं, उनके हाथोंमें भी कमल है, धन-सम्पदाकी विपुल-राशि उनके हाथोंसे गिर रही है। 'उल्लू' उनका वाहन है। दीपावली लक्ष्मी-पूजन और धन-वैभवके प्रदर्शन तथा मङ्गलमय कला-सौन्दर्यका पर्व है।

लक्ष्मीजी कहाँ रहती हैं

रुक्मिणीजीने लक्ष्मीजीको चञ्चला देख उनसे प्रश्न किया—'आप कहाँ विराजमान हैं ?' उन्होंने अपने प्रिय व्यक्तियोंके चरित्रके सद्‌गुण बताते हुए उत्तर दिया—

वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे दक्षे नरे कर्मणि वर्त्तमाने ।
अक्रोधने देवपरे कृतज्ञे जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्त्वे ॥

'मैं सुन्दर, मधुरभाषी, चतुर, अपने कर्त्तव्यमें लीन, क्रोधहीन, भगवत्परायण, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय और बलशाली पुरुषके पास बराबर बनी रहती हूँ।'

ऊपर जिन दिव्य चारित्रिक गुणोंका संकेत है, उनमें सुन्दरताके अतिरिक्त अन्य सब ऐसे हैं, जिनका विकास यदि पूर्ण संकल्पसे किया जाय, तो प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। बहुतसे गुण तो मनुष्यके अधीन हैं। सत्य है कि मधुरभाषण और व्यवहार करनेवाले, चतुर और अपने कर्त्तव्यमें सतत लीन व्यक्ति सदा धनी बने रहते हैं। जो अपनी इन्द्रियोंकी विषयिताको वशमें रखते है, वे निश्चय ही लक्ष्मीके प्रिय पात्र होते है। श्रीलक्ष्मीजी स्वयं कहती हैं—

स्वधर्मशीलेषु च धर्मवित्सु वृद्धोपसेवानिरते च दान्ते ।
कृतात्मनि क्षान्तिपरे समर्थे क्षान्तासु दान्तासु तथाबलासु॥

'मैं स्वधर्मका आचरण करनेवाले, धर्मकी मर्यादाको जाननेवाले, वृद्धजनों अथवा गुरुजनोंकी सेवामें तत्पर रहनेवाले, जितेन्द्रिय, आत्मविश्वासी, क्षमाशील और समर्थ पुरुषोंके साथ रहती हूँ। साथ ही जो स्त्रियाँ सदा सत्यवादिनी, सत्याचरण-परायण, सदा निष्कपट तथा सरल स्वभाव-सम्पन्ना रहती हैं, वे भी मुझे बहुत पसंद है। इसी

प्रकार देवता और गुरुजनोंकी पूजामें निरत और सदा हँसमुख रहने-वाली सौभाग्ययुक्त, गुणवती, पतिव्रता, कल्याणकामिनी और अलंकृत स्त्रियोंके पास रहनेमें मुझे बड़ा आनन्द आता है।

इनके अतिरिक्त, ब्रह्मवैवर्तपुराणमें, लक्ष्मीजीके अनेक बहुमूल्य वचनामृत मिलते हैं, जिनसे उनके स्वभावपर प्रकाश पड़ता है। कुछ वचन देखिये। एक स्थानपर कहा है—

स्थिता पुण्यवतां गेहे सुनीतिपथवेदिनाम्।
गृहस्थानां नृपाणां वा पुत्रवत्पालयामि तान्॥

नीति-मार्गपर चलनेवाले, पुण्य-कर्म करनेवाले गृहस्थ तथा राजाओके यहाँ मैं टिकी रहती हूँ और ऐसोंका मै अपने प्रिय पुत्रोंके समान पालन करती हूँ।

परिश्रमी और उद्योगी व्यक्ति सदा समृद्ध देखे जाते हैं। लक्ष्मी सदा उद्योग करनेवालेके पास रहती हैं। जब कोई व्यक्ति उद्योग-धंधा, व्यापार और परिश्रम त्याग देता है, तब नाराज होकर लक्ष्मीजी वहाँसे चली जाती हैं। उनके परिश्रम और उद्योगप्रियताको लक्ष्यकर ही कहा गया है —

'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।'

—उसी पुरुषश्रेष्ठको ही लक्ष्मी प्राप्त होती हैं जो उद्योग-परायण होता है।

इन्द्रकृतं श्रीमहालक्ष्म्यष्टकं स्तोत्रम्

नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते।
शङ्खचक्रगदाहस्ते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥

'श्रीपीठपर स्थित और देवताओंसे पूजित होनेवाली हे महामाये! आपको नमस्कार है। हाथमें शङ्ख! चक्र और गदा धारण करनेवाली हे महालक्ष्मि ! आपको प्रणाम है।

नमस्ते गरुडारूढे कोलासुरभयंकरि।
सर्वपापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥

'गरुड़पर आरूढ़ हो कोलासुरको भय देनेवाली और समस्त पापोंको हरनेवाली, हे भगवति महालक्ष्मि! आपको प्रणाम है।'

सर्वज्ञे सर्ववरदे सर्वदुष्टभयंकरि।
सर्वदुःखहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥

'सब कुछ जाननेवाली, सब कुछ वर देनेवाली, समस्त दुष्टोंको भय देनेवाली और सब दुःखोंको दूर करनेवाली, हे देवि महालक्ष्मि! आपको नमस्कार है।'

सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि।
मन्त्रपूते सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥

'सिद्धि, बुद्धि, भोग और मोक्ष देनेवाली हे मन्त्रपूते भगवति महालक्ष्मि! आपको सदा प्रणाम है।'

आद्यन्तरहिते देवि आद्यशक्ति महेश्वरि।
योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥

'हे देवि, हे आदि-अन्त-रहित आदिशक्ते, हे महेश्वरी, हे योगसे प्रकट हुई भगवति महालक्ष्मि! आपको नमस्कार है।'

स्थूलसूक्ष्ममहारौद्रे महाशक्तिमहोदरे।
महापापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥

'हे देवि! आप स्थूल, सूक्ष्म एवं महारौद्र रूप धारण करनेवाली हो। आप महाशक्ति हो, महोदरा हो और बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाली हो। हे देवि, महालक्ष्मि! आपको नमस्कार है।'

पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्मस्वरूपिणि।
परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥

'हे कमलके आसनपर विराजमान परब्रह्मस्वरूपिणि देवि! हे परमेश्वरि, हे जगदम्बे, हे महालक्ष्मि! आपको मेरा प्रणाम है।'

श्वेताम्बरधरे देवि नानालंकारभूषिते।
जगत्स्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥

'हे देवि महालक्ष्मि! आप श्वेत वस्त्र धारण करनेवाली और नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हो। सम्पूर्ण जगत्‌में व्याप्त एवं अखिल लोकको जन्म देनेवाली हो। हे महालक्ष्मि! आपको मेरा प्रणाम है।'

इन आठ श्लोकोंमें लक्ष्मीजीके स्वरूप, गुण और महाशक्तियोंका संकेत है। जो व्यक्ति भक्तियुक्त होकर इस महालक्ष्म्यष्टक स्तोत्रका सदा पाठ करता है, वह सभी सिद्धियों और राज-वैभवको प्राप्त कर सकता है। जो प्रतिदिन एक समय पाठ करता है, हिंदू-धर्मके अनुसार उसके बड़े-बड़े पापोंका नाश हो जाता है। जो दो समय पाठ करता है, उसके बड़े-बड़े शत्रुओंका नाश हो जाता है और उसपर सदा प्रसन्न रहने और वर देनेवाली महालक्ष्मीजी सदा प्रसन्न रहती हैं।

उपर्युक्त विवेचनसे प्रकट है कि लक्ष्मीजी (अर्थात् अर्थशक्ति) का हमारे जीवनमें बड़ा भारी महत्त्व है। हमें ध्यान रखना चाहिये

कि माता लक्ष्मीका अपमान न हो। सदा स्वोपार्जित या उत्तराधिकारमें प्राप्त धनका सदुपयोग ही करना चाहिये। माता लक्ष्मी हमारे लिये सदा उत्तम-उत्तम वस्तुएँ देनेको प्रस्तुत रहती है, पर हमें उनसे न्यायोचित, सात्त्विक, मर्यादानुकूल ही वस्तुओंकी कामना करनी चाहिये। अनीति, पाप, झूठ, दगा या बेईमानीसे धन कमाना बुरा है। लक्ष्मीजी ऐसे व्यक्तिके पास सदा नही ठहरती। जो धन आपके पास है, उसे भगवान्‌को सेवाके भावसे यथार्थ, उन्नति, सात्त्विक दिशामें सर्वाङ्गीण विकास, देशवासियों और संसारके गरीबोंकी सेवा तथा सहायतामें व्यय करना चाहिये। दान देना, सत्कर्मोंमें अपने धर्मकी कमाईको व्यय करना ही बुद्धिमानी है। दया, सेवा, उदारता, सदाचार, संयम, परोपकार, दान आदि व्यक्तित्वके सात्त्विक गुणोंके विकासमें लक्ष्मीजीकी सहायता लेनी चाहिये। कहा भी है—

वित्तशक्त्या तु कर्तव्या उचिताभावपूर्तयः।
न तु शक्त्या कदा कार्यं दर्पौद्धत्यप्रदर्शनम्॥

धनकी शक्तिद्वारा उचित अभावोंकी पूर्ति करनी चाहिये। अर्थ-शक्तिद्वारा घमंड और धृष्टताका प्रदर्शन नही करना चाहिये।

माता लक्ष्मी यह नही चाहती कि आप रुपया-पैसा लेकर अनुचित कार्योंमे व्यय करें या अपनी अमीरीका थोथा बड़प्पन प्रदर्शित करे, विलासके गन्दे कीचड़मे फँस जायँ, या अपनेसे कमजोरो, अभावपूर्ण व्यक्तियोपर अन्याय और मनमानी करने लगे। कुकृत्यो, गन्दी वासनाओंकी पूर्तिके लिये लक्ष्मीजीको कष्ट देना पाप है।

आज प्रायः देखते हैं कि मूर्ख विवेकहीन व्यक्ति माता लक्ष्मीका

अपमान करते हैं। सट्टा-फाटका, जुआ, रिश्वत, चोरी, ठगी, बेईमानी, छल, अनाचार, अन्याय और शोषण आदिसे रुपया कमाना लक्ष्मीका अपमान करना है। यदि इन अनुचित तरीकोंसे कमाये हुए धनसे कोई धनी बन भी जाय, तो भी लक्ष्मीजी स्वयं उसका कभी-न-कभी नाश कर देती हैं। धन उसके लिये परिणाममें अभिशाप बन जाता है। सजाके रूपमें वे उस अभागेको नाना प्रकारके शारीरिक रोग, द्वेष, शत्रुता, पारिवारिक वैमनस्य, व्यसन, व्यभिचार, दुर्गुण, बुरी आदतें, चिन्ताएँ, उद्दण्डता, अहंकार, तृष्णा आदि अनेकों ऐसी बुराइयाँ अभिशापके रूपमें दे देती हैं, जिनसे ऐसे अमीर व्यक्तिका जीवन सदा दुखी और अशान्त बन जाता है। लक्ष्मीजी सदा यही देखती रहती हैं कि कब व्यक्ति अनीतिकी राहपर जाय और कब वे उस अभागेका परित्याग करें! बुरी आदतों, वासनाओं, फैशन, मिथ्या-प्रदर्शनकी ओछी आदतोंसे लक्ष्मीजीको घृणा है।

लक्ष्मीजी कहाँ नहीं रहतीं

स्वयं लक्ष्मीजीके मुखसे सुन लीजिये कि वे कहाँ रहना पसंद नहीं करतीं। कौन दरिद्र रहा करता है? लक्ष्मीजी कहती हैं—

मिथ्यावादी च यः शश्व-
दनध्यायी च यः सदा।
सत्त्वहीनश्च दुश्शीलो
न गेहं तस्य यास्यहम्॥

—मिथ्यावादी, धर्म ग्रन्थोंको कभी न देखनेवाला, पराक्रमसे हीन, खोटे स्वभावका—ऐसे पुरुषोंके घर मैं नहीं जाती।

सत्यहीनः स्थाप्यहारी मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः ।
विश्वासघ्नः कृतघ्नो वा यामि तस्य न मन्दिरम् ॥

—सत्यसे हीन, किसीकी धरोहर मारनेवाले, झूठी गवाही देनेवाले, विश्वासघात करनेवाले तथा कृतघ्न पुरुषोंके घरमे मैं नहीं जाती ।

चिन्ताग्रस्तो भयग्रस्तः शत्रुग्रस्तोऽतिपातकी ।
ऋणग्रस्तोऽतिकृपणो न गेहं यामि पापिनाम् ॥

—चिन्ता-ग्रस्त, भयमें सदा डूबे हुए, शत्रुओंसे घिरे, अत्यन्त पातकी, कर्जदार और अत्यन्त कंजूस पापियोके घर मै नही जाती । फलत. वे जन्मभर दीन-हीन बने रहते है ।

दीक्षाहीनश्च शोकार्त्तो मन्दधीः स्त्रीजितः सदा ।
न यास्यामि कदा गेहं पुंश्चल्याः पतिपुत्रयोः ॥

मै दीक्षाहीन, शोक-ग्रस्त, मन्दबुद्धि, सदा स्त्रीके गुलाम, व्यभिचारिणीके पति और पुत्रके परिवारमें कभी नहीं जाती । अतः मनुष्यको चाहिये कि तुरंत इन दुर्गुणोंको दूर कर समृद्धिका पथिक बने ।

यो दुर्वाक् कलहाविष्टः
कलिरस्ति सदालये ।
स्त्रीप्रधाना गृहे यस्य
यामि तस्य न मन्दिरम् ॥

—कटुभाषी, कलहप्रिय, जिस परिवारमें निरन्तर कलह होती रहे, जिसके यहाँ स्त्रीकी ही चलती रहे—ऐसे परिवारमें मैं नहीं जाती ।

यत्र नास्ति हरेः पूजा
तदीयगुणकीर्तनम् ।
नोत्सुकस्तत्प्रशंसायां
यामि तस्य न मन्दिरम् ॥

—जिस घरमें भगवान्‌की पूजा और कीर्तन नहीं होते (सात्त्विक वातावरणका प्रभाव नहीं रहता) जिसके व्यक्ति भगवान्‌की प्रशंसामें उत्सुक नहीं होते, वहाँ मै नहीं जाती ।

श्रीमहालक्ष्मीजीको प्रसन्न करनेके लिये दुर्गुणोंसे मुक्त रहना चाहिये । हर प्रकारकी चारित्रिक गन्दगीसे लक्ष्मीजीको घृणा है । बुरी आदतों, सड़े-दिमाग, छल-फरेब करने और व्यसन-व्यभिचारमे फँसे रहनेवाले व्यक्तियोसे लक्ष्मीदेवी अप्रसन्न रहती हैं । वे स्वयं कहती है—

नाकर्मशीले पुरुषे वसामि
न नास्तिके सांकरिके कृतघ्ने ।
न भिन्नवृत्ते न नृशंसवर्णे
न चापि चौरे न गुरुष्वसूये ॥

—मैं अकर्मण्य, आलसी, नास्तिक—परलोक और ईश्वरको न माननेवाले, वर्ण-संकर—जारज, कृतघ्न—उपकारको भुला देनेवाले, अपनी बातपर स्थिर न रहनेवाले, कठोर वचन बोलनेवाले, चोर और गुरुजनोंके प्रति अविनीत ईर्ष्या-द्वेष तथा डाह रखनेवाले पुरुषोंमे कभी नहीं रहती ।

—मैं ऐसे पुरुषोंके पास कभी नहीं रहना चाहती जिनमें तेज, बल और आत्मगौरवका सर्वथा अभाव रहता है । जो लोग

थोड़ेमें ही कष्टका अनुभव करने लगते हैं, जरा-जरा-सी बातपर क्रोध करने लगते है तथा जिनके मनोरथ कभी कार्य-रूपमें परिणत नहीं होते, सदा गुप्त ही बने रहते हैं, उनके पास भी मै कभी नहीं जाना चाहती।

—इसके अतिरिक्त मै उस व्यक्तिके भी पास नहीं रहती, जो अपने लिये कभी कुछ नहीं चाहता तथा जिसका अपने पुरुषार्थमें विश्वास नहीं है। मैं उन लोगोंके पास भी अधिक नहीं रहना चाहती, जो थोडेमें ही संतोष कर लेते हैं।

ऊपर लक्ष्मीके प्रिय पुरुषोके विषयमें अनेक उपयोगी बाते कही गयी है। कुछ त्रुटियाँ तो ऐसी हैं, जो समृद्धि चाहनेवालोको तुरंत त्याग देनी चाहिये। नीतिमें अनेक ऐसी उक्तियाँ आयी है जिनमें लक्ष्मीजीके प्रिय पात्रोंकी चर्चा है। एक उक्ति देखिये—

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं
वध्वाविनं निष्ठुरभाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं
जहाति लक्ष्मीर्यदि शार्ङ्गपाणिः॥

—गन्दा वस्त्र पहिननेवाले, दाँतोंको साफ न रखनेवाले, अपनी पत्नीकी जीविकापर खानेवाले, निष्ठुर भाषण करनेवाले तथा सूर्योदय एवं सूर्यास्तके समय सोनेवाले व्यक्तिको, यदि वह स्वयं विष्णु भी हों तो, लक्ष्मी छोड देती है।

तात्पर्य यह कि धन-सम्पदा-ऐश्वर्य उन स्वच्छ, सक्रिय और उद्योगी व्यक्तियोके पास रहते हैं जो कर्तव्यशील हैं, आलस्यमें पडे

नहीं रहते । लक्ष्मीजी गन्दे, पेटू, कटुवादी, आलसी और अधिक सोनेवालेको त्याग देती हैं । नारीके लिये भी लक्ष्मीजीने कुछ गुणोंकी चर्चा की है । जो स्त्रियाँ लक्ष्मीजीको प्रिय हैं, उनके लक्षण इस प्रकार हैं—

प्रकीर्णभाण्डामनपेक्ष्यकारिणीं
सदा च भर्तुः प्रतिकूलवादिनीम् ।
परस्य वेश्माभिरतामलज्जा-
मेवंविधानां परिवर्जयामि ॥

—लक्ष्मीजी उन स्त्रियोंके निकट नहीं रहना चाहतीं जो अपनी गृहस्थीके सामान—वस्त्र-पात्रादिको जहाँ-तहाँ बेढंगे तरीकेसे छितराये रहती हैं, चीजें ठिकाने नहीं रखतीं । उन्हें वे भी स्त्रियाँ बहुत अप्रिय हैं, जो सदा पतिके प्रतिकूल बातें कहकर दुःख देती हैं । जिस स्त्रीका मन सदा दूसरेके घरमें लगता है, जो निर्लज्ज रहती हैं, उसके पास भी उन्हें जानेमें संकोच रहता है । साथ ही उन्हें उन स्त्रियोंसे भी बड़ी चिढ़ है, जो पापपरायणा, अपवित्र, गन्दी, चोर, अधीर, झगड़ालू, सदा सोनेवाली तथा उनींदी रहनेवाली हैं । अतः लक्ष्मीजीकी प्रिय पात्र बननेके लिये स्त्रियोंका आचरण पवित्र और वृत्तियाँ सात्त्विक होनी चाहिये ।

लक्ष्मीके दुरुपयोगमें दोष

'कादम्बरी' में लक्ष्मीके दोषोंका भी वर्णन आता है । दुरुपयोग करनेसे लक्ष्मी (अर्थ) शत्रु बन जाती है । जो नाना भोगविलासकी वस्तुएँ एकत्रित करता है, वह हर प्रकारसे अपना

पतन कर लेता है। जब राजकुमार चन्द्रापीडका यौवराज्याभिषेक होने जा रहा था, तो शुकनासने उसे जो शिक्षा दी थी, वह सदा स्मरण रखने योग्य है। यहाँ उस भागका सारांश दिया जाता है—

'लक्ष्मी मिल जानेपर भी उसे रखना कठिन है। वह जान-पहचानको बनाये नहीं रखती। अच्छे कुलको भी नहीं देखती। कुल-परम्पराके अनुसार नहीं चलती। पाण्डित्यका मूल्य नहीं समझती। त्यागका आदर नहीं करती। शास्त्र नहीं सुनती। विशेष जन या सद्विवेकका विचार नहीं करती। कहीं स्थिर होकर पैर नहीं रखती। गुणवान् मनुष्यको कभी-कभी अपवित्रकी भाँति छूती भी नहीं। बड़े साहसीका अमङ्गलकी भाँति अधिक आदर नहीं करती। सज्जनको अशकुनकी भाँति नहीं देखती। कुलीनको साँपके समान लाँघ जाती है। वीरको काँटेके समान याद भी नहीं करती। पापीके समान नम्र आदमीके पास नहीं जाती और मनस्वी (प्रतापी) पर पागलके समान हँस देती है।'

तात्पर्य यह है कि ज्यो-ज्यों लक्ष्मी चमकती है अर्थात् मनुष्यके पास धन बढ़ता है, त्यो-त्यों मनुष्यका मन गन्दे कार्यों, वासनापूर्ति और विलासकी ओर जाता है जैसे दियेकी लौ कालिख उगलती है। लक्ष्मीके बुरे प्रभावमें पड़ जानेपर बड़े लोग बेसुध हो जाते हैं और उनके महल कुकर्मोके निवासस्थल बन जाते हैं। उनमें उदारता मिट जाती है। हृदय मलिन हो जाता है। सत्यवादिता दूर हो जाती है और गुण गायब होकर वासनाएँ उभर उठती हैं। कुछ लोग धनके लालचमें पड़कर गन्दे विकारोके

आक्रमणसे विवश होकर वेसुध हो जाते हैं। मरणासन्न लोगोंके समान अच्छे मित्रों, परिवारके सदस्यो और गुरुओंतकको नहीं पहचानते। अत. धनकी शक्तिको अच्छे कार्योंमें ही व्यय करना चाहिये।

समृद्धिके पथपर

संसारकी निन्द्यतम वस्तु है—विचार-दारिद्र्य। विचार-दारिद्र्यने संसारके अनेक व्यक्तियोंको गरीबीकी शृङ्खलाओंमें जकड़ रक्खा है, उनमें कुत्सित दासवृत्ति उत्पन्न कर दी है, मन और जीवनमे हीनत्वका विषम अंधकार फैला दिया है। यह एक निश्चित अकाट्य सत्य है कि विचारकी दरिद्रतासे हम दरिद्री बनते है और सदैव रहेगे। दरिद्रताकी दासवृत्ति मनुष्यको सीमाक्रान्त, क्षुद्र, संकुचित एवं निराश बनानेवाली है। भीषण दरिद्रता मनुष्यकी आत्मशक्तियोंको पंगु, विकृत तथा असमर्थ बनाती है।

क्या ही अच्छा हो यदि मनुष्य यह जान जाय कि हम विचारद्वारा दारिद्र्यसे मुक्त हो सकते हैं। शुद्ध विचार, संगठित विचार, पुष्ट एवं समृद्ध विचारद्वारा दरिद्रतापर बलिदान होनेवाले अनेक व्यक्तियोंकी रक्षा हो सकती है। वे बहुत अधिक अंशोमें दरिद्रतासे मुक्ति पा सकते हैं और अपने जीवनको सुखी कर सकते है।

दरिद्रताके अनेक कारण हो सकते है। लूला, लँगड़ा, अंधा, बहरा यदि दैव-दुर्विपाकसे दरिद्र रह जाय तो वह तिरस्कारका पात्र नहीं कहा जायगा। दयाका पात्र तो वह भाग्यहीन है जो अपने मिथ्या विचारोंद्वारा संसारकी दरिद्रताको आकर्षित किया करता है,

जो अपनी थोथी भावनाओंके द्वारा निज हृदय-पटलपर सब स्थानोंपर दरिद्रता ही दरिद्रता अंकित कर लेता है, जिसकी मुख-मुद्रा—विकृत आकृतिपर दरिद्रताकी काली छाया दुःखद स्थिति उत्पन्न करती है। मै जिस दरिद्रताकी बात कर रहा हूँ वह मनुष्यकी स्वयंकी उत्पन्न की हुई दरिद्रता है। यह दरिद्रता परिश्रम करनेयोग्य होकर आलस्य करनेसे, दुष्ट वर्तावसे, श्रद्धाहीनता, हीनत्वकी भावना, उचित कार्य-पद्धतिके अभावसे, कार्यशैथिल्य या चञ्चलतासे हो जाती है।

सर्वप्रथम मनुष्यके विचार दरिद्र बनने प्रारम्भ होते हैं। वह दरिद्र व्यक्तियोंकी ओर अधिक आकर्षित होता है, उन्हींकी कार्य-प्रणाली, उन्हींकी दीन-हीन स्थिति, उन्हींकी-सी प्रवृत्तिसे वह क्रमशः मेल करने लगता है। अन्धकार, पतन, भिखमंगे, टूटे-फूटे उच्च महत्त्वाकांक्षाओंको विनष्ट करनेवाले विचार एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं, जिनकी विषैली छाया सदा सर्वदा उसके साथ चलती है। अन्तरकी दरिद्रता फिर बाह्याङ्गोंमें भी प्रकट होने लगती है। दरिद्रताके विचारोंसे ग्रसित व्यक्तिके मुखपर क्षुद्रता, असमर्थता, विकृति तथा संकुचितताके चिह्न प्रकट होने लगते हैं। फिर उसकी वस्त्रभूषा इत्यादि सबमें ही दरिद्रताके कीटाणु घुस जाते हैं, जो उसके निश्चय, संकल्प, इच्छा-शक्तियोंका क्षय कर डालते हैं। ऐसा व्यक्ति यही सोचता है कि मेरे भाग्यमें विधाताने दारिद्र्य ही लिखा है, मै दरिद्र हूँ और सदैव दरिद्र ही रहूँगा। मेरे लिये संसारमें कुछ नहीं। मै केवल दूसरोंकी आधीनता, कृपा, इंगितपर ही जी सकता हूँ। यदि किसीने दया करके कुछ दे दिया तो ठीक, अन्यथा मृत्युका मार्ग

ही मेरे लिये खुला है। इस प्रकारकी दरिद्र स्थितिमें, दरिद्र विचारोंके वातावरणमें रहनेके पश्चात् उसे दरिद्रतासे भय लगने लगता है; दरिद्रता भयकर प्रतीत होती है; उसे निकट भविष्यमें अपनी दुर्गति होती दिखायी देती है; अन्त.करणमें कभी शान्त न होनेवाला द्वन्द्व प्रारम्भ हो जाता है। विचार-दारिद्र्य एक दिन उसे असाहसी, क्षुब्ध, डरपोक, भिखारी बना डालता है। वह अपनी शक्तियोंके प्रति शंकित हो उठता है, उसे अपने ऊपर भरोसा नहीं रहता और वह बिलकुल असमर्थ बन जाता है।

आर्थिक सफलताके मानसिक संकेत

आप आर्थिक रूपसे सफल होना चाहते हैं, तो समृद्धिके विचारोंको बहुतायतसे मनोमन्दिरमें प्रविष्ट होने दीजिये। यह मत समझिये कि आपका सरोकार दरिद्रता, क्षुद्रता, नीचतासे है। संसारमे यदि कोई चीज सबसे निकृष्ट है तो वह विचार-दारिद्र्य ही है। जिस मनुष्यके विचारोंमे दरिद्रता प्रविष्ट हो जाती है, वह रुपया-पैसा होते हुए भी सदैव भाग्यका रोना रोया करता है। दरिद्रताके अनिष्ट-कारी विचार हमे समृद्धिशाली होनेमे रोकते हैं; दरिद्री ही बनाये रखते हैं।

आप दरिद्री, गरीब या अनाथ हीन अवस्थामें रहनेके हेतु पृथ्वीपर नहीं जन्मे है। आप केवल मुट्ठी भर अनाज या वस्त्रके लिये दानवृत्ति करते रहनेको उत्पन्न नहीं हुए हैं।

गरीब क्यों सदैव हीनावस्थामें रहता है ? इसका प्रधान कारण

यह है कि वह उच्च आकांक्षाओं, उत्तम पवित्र कल्पनाओं, स्वास्थ्यदायक स्फूर्तिमय विचारोंको नष्ट कर देता है; आलस्य और अविवेकमें डूब जाता है, हृदयको संकुचित, क्षुद्र, प्रेम-विहीन और निराश बना लेता है। सीमाक्रान्त दरिद्रता आनेपर जीवन ठहर-सा जाता है, प्रगति अवरुद्ध हो जाती है, मनुष्य ऋणसे दबकर निष्प्रभ हो जाता है, उसे अपने गौरव, स्वाभिमानको भी सुरक्षित रखना दुष्कर प्रतीत होता है। दरिद्री विचारवाले असमयमें ही वृद्ध होते देखे गये हैं। जो बच्चे दरिद्री घरोंमें जन्म लेते हैं, उनके गुप्त मनमें दरिद्रताकी गुप्त मानसिक ग्रन्थियाँ इतनी जटिल हो जाती हैं कि वे जीवनमें कुछ भी उच्चता या श्रेष्ठता प्राप्त नहीं कर सकते। दरिद्रता कमलके समान तरोताजा चेहरोंको मुर्झा देती है, सर्वोत्कृष्ट इच्छाओंका नाश हो जाता है। यह दुस्सह मानसिक दरिद्रता मनुष्यको पीस देनेवाली है। सैकड़ों मनुष्य इसी क्षुद्रताके गर्तमें डूबे हुए हैं।

आर्थिक सफलताके लिये भी एक मानसिक परिस्थिति, योग्यता एवं प्रयत्नशीलताकी आवश्यकता है। लक्ष्मीका आवाहन करनेके हेतु भी मानसिक दृष्टिसे आपको कुछ पूजाका सामान एकत्रित करना होता है।

दीपावलीके लक्ष्मी-पूजनके अवसरपर आप घर झाड़ते, लीपते, पोतते, सजाते हैं। नयी-नयी तसवीरें, कलात्मक वस्तुओंसे घरको चित्रित करते हैं, अपने शरीरपर सुन्दर वस्त्र और आभूषण धारण करते है। इसी भाँति मानसिक पूजा भी किया कीजिये। अर्थात् मनके कोने-कोनेसे दरिद्रता, गरीबी, परवशता, क्षुद्रता, संकुचितता,

ऋणके जाले विवेककी झाड़ूसे साफ कर दीजिये; मानसिक पटलको आशावादिताकी सफेदीसे पोत लीजिये। मानसिक घरमें आनन्द, आशा, उत्साह, प्रसन्नता, हास्य, उत्फुल्लता, खुशमिजाजीके मनोरम चित्र लगा लीजिये। फिर श्रम और मितव्ययताके नियमोंके अनुसार लक्ष्मीदेवीकी साधना कीजिये। आर्थिक सफलता आपकी होगी। सब विद्याओंमें शिरोमणि वह विद्या है जो हमें कुत्सित और निकृष्ट विचारोंसे मनको साफ करना सिखाती है।

परम पिता परमात्माकी कभी यह इच्छा नहीं कि हम आर्थिक दृष्टिसे भी दूसरोंके गुलाम बने रहे। हमे उन्होंने विवेक दिया है, जिसे धारणकर हम उचित-अनुचित खर्चोंमें अन्तर समझ सकते है, विषय-वासना और नशीली वस्तुओंसे मुक्त हो सकते हैं, अपने अनुचित खर्चे, विलासिता और फैशनमें कमी कर सकते हैं, घरमे होनेवाले नाना प्रकारके अपव्ययको रोक सकते है, अपनी आय वृद्धि करना हमारे हाथकी बात है। जितना हम परिश्रम करेंगे, योग्यताओंको बढ़ायेंगे, अपनी विद्यामें सर्वोत्कृष्टता (Excellence), मान्यता, निपुणता प्राप्त करेंगे, उसी अनुपातमे हमारी आय भी बढ़ती चली जायगी। संसारमें अन्याय नहीं है। सबको अपनी-अपनी योग्यता और निपुणताके अनुसार धन प्राप्त होना है। फिर क्यो न हम अपनी योग्यता बढ़ायें और संघर्षमें अपने आपको हर प्रकारसे योग्य प्रमाणित करें।

श्री ओरिसन मार्डनने अपनी पुस्तक 'शान्ति, शक्ति और समृद्धि' (Peace, Power and Planty) में कई आवश्यक तत्त्वोंकी ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है—

'विश्वके अनेक दरिद्री लोगोंके कारणको खोजिये तो पता लगेगा कि उन्हें आत्मविश्वास नही, उन्हे यह श्रद्धा नहीं है कि वे दरिद्रतासे छुटकारा पा सकते है। हम गरीबोको बताना चाहते है कि वे ऐसी कठोर स्थितिसे भी अपने आपको उन्नत बना सकते हैं। सैकड़ों नहीं, प्रत्युत हजारों ऐसी स्थितिमें उन्नत धनवान् बने हैं और इसलिये हम कहते हैं कि इन गरीबोंके लिये भी आशा है। वे दुर्धर्ष परिस्थिति-को बदल सकते हैं। संसारमें आत्मविश्वास ही ऐसी कुञ्जी है कि सफलताका द्वार खोल देती है।

'प्रकृतिने मनुष्यको ऊपर देखनेकी आज्ञा प्रदान की है, नीचेकी ओर नहीं। मानव-जन्म ऊपर चढ़नेके लिये हुआ है, नीचे गिरनेके लिये नहीं।

'दरिद्रता वास्तवमें मानसिक रोग है, इस रोगसे प्रयत्न करनेपर प्रत्येक व्यक्ति छुटकारा पा सकता है। एक गरीब युवकने अमीर बननेके लिये अपनी आत्मा और योग्यतापर भरोसा करना प्रारम्भ किया। उसने निश्चय किया कि उसके अंदर वह योग्यता—शक्ति विद्यमान है जिसके द्वारा मनुष्य संसारमें नामांकित होते हैं। वह निरन्तर अपनी शुभ्र कल्पनाओंको साकार रूप देता गया और सफलताके उच्चतम शिखरपर पहुँच गया।' आशा, हिम्मत और सतत उद्योगके उत्पादक और उत्साही वातावरणमें रहनेसे प्रत्येक मनुष्य समृद्धिशाली बन सकता है।
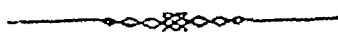
'किंतु' और 'परंतु'

हम आध्यात्मिक उन्नतिके पक्षमें हैं; उसके द्वारा होनेवाले अनेक लाभों तथा सिद्धियोंसे भलीभाँति परिचित हैं; हमने अन्य मुमुक्षुओंको ऊँचा चढ़ते हुए देखा है तथा हमारी भी इच्छा हुई है कि हम भी नाना जंजालोंसे भरे हुए अँधेरे जगत्से निकलकर उन्मुक्त प्रकाशमें आ जायँ, सामाजिक मान्यताओंकी जो पेचीदा गुत्थियाँ हमें बाँधे हुए हैं, उन्हें तोड़-फोड़ दें किंतु....। हम चाहते हैं कि अन्तरात्माकी पवित्रता-निर्मलतासे हृदयके कषाय-कल्मषोंका प्रक्षालन कर स्वच्छ हो जायँ तथा मानसिक गुलामीसे पीछा छुड़ाकर पूर्णत्व प्राप्त कर लें, हंसकी वृत्ति ग्रहण कर दूधको ही ग्रहण करें परंतु ....।

इस प्रकार, आप निरन्तर बहुत-सी उत्कृष्ट योजनाएँ तैयार करते हैं, मन:-प्रदेशमें एक-से-एक ऊँचे विचारोंको लाते हैं, कुछ देर उनपर विचार करते हैं, कल्पनामें एक सुखद संसारको देखकर अतीव प्रसन्न होते हैं किंतु जब वास्तविक कार्य करनेका समय आता है तो अनेक 'किंतु' तथा 'परंतुओं'के फेरमें पड़कर उन शुभ भावनाओंका अन्त कर देते हैं। आप उनपर यथोचित मनन-चिन्तन नहीं करते, केवल बाह्य दृष्टि डालकर ही निष्क्रिय हो जाते हैं। जिसकी आप हार्दिक कामना करते हैं, जिसके लिये आपका अणु-अणु आपको प्रेरित करता है उस ध्येयपर आप देरतक नहीं टिकते। कल्पित कठिनाइयोंकी विभीषिका आपको दूरसे ही भयभीत कर देती है। आपके सुख-स्वप्न अनेक 'किंतु-परंतुओं'के आक्रमणोंसे चूर-चूर हो जाते हैं।

'किंतु' 'परंतु' हमारी निर्बलताके द्योतक हैं। ये हमारे
नमें प्रविष्ट संदेहात्मक विचारधाराके सूचक हैं। इनसे प्रतीत होता
कि हममें स्वतन्त्ररूपसे विचार तथा कार्य करनेकी क्षमता नहीं है।
नब दो मार्गोमें निर्णय करनेका अवसर आता है तो हम कोई भी
नेश्चय नहीं कर पाते। हमारे मनमें अनेक शंकाएँ, संदेह तथा
विरोधी भाव उठ पड़ते है, जिससे हमारा कुछ भी निर्णय
नहीं हो पाता।

राजकुमार हैमलेटके जीवनकी असफलताका कारण उसकी
निर्णयशक्तिकी निर्बलता थी। 'यह करूँ' वह करूँ' 'अमुक
कार्य ठीक रहेगा, या अमुक अच्छा सिद्ध होगा'....वह एक
पेन्डुलमकी तरह इन्हीं दो केन्द्र-बिन्दुओंके मध्यमें चक्कर लगाता
रहता था। अन्त समयतक अपने कर्तव्यको निश्चय न कर सका;
फलतः उसे जीवन भर बड़ा पश्चात्ताप रहा।

हिचकिचाहट

हम आज एक कार्य प्रारम्भ करते है, आगे चलनेपर दो-चार
छोटी-छोटी कठिनाइयाँ आनेपर सोचते है कि चले, लौट चले।
इससे तो पहले ही ठीक थे। यह हिचकिचाहट ही अनेक मनुष्योंके
जीवनको सफल नही होने देती। संदेह ही हमें मारता है। इसके
कारण हम मन.स्थिरताको खो बैठते हैं तथा अपने आपको क्षुद्र
मानने लगते हैं। दो-एक अवसरोंपर इस मानसिक निर्बलताके
प्रकट होनेसे हमारा यह विश्वास हो जाता है कि किसी नये पथके
वास्तविक तथ्यको ढूँढ निकालना हमारे लिये असम्भव है। जीवनमें

कठिनाइयोंको रोकनेका कोई उपाय नहीं है। मनुष्य भाग्यके हाथका खिलौना मात्र है। किस्मत उसे खूब नाच नचा सकती है।

जीवनमें सुख तथा सफलता प्राप्त करनेके लिये सबसे प्रथम इस बातकी आवश्यकता है कि मनुष्य इन 'किंतु' तथा 'परंतुओं' से सदा-सर्वदाके लिये पीछा छुड़ा ले। बिना निर्णय-शक्तिके कोई कार्य न चलेगा और जीवन दुःख तथा अशान्तिसे व्यतीत होगा।

जो व्यक्ति बात-बातमें दूसरोंका मुख निहारा करते हैं, उन्हींके मार्गपर चलते हैं, खुद गाँठका कुछ नहीं लगाते, उनके मनमें सदैव एक द्वन्द्व चला करता है। कभी उन्हें एक मार्ग अच्छा प्रतीत होता है, कभी दूसरा। वे नहीं जानते कि उनका ध्येय क्या हो। उनसे भयंकर भूलें होती हैं तथा वे गिर पड़ते हैं।

जो सेनानायक शीघ्र ही अन्तिम निश्चय कर लेता है, वह सदैव अपने उन शत्रुओंको जा दबाता है जो कि यह सोचा करते हैं कि 'यह करें कि वह करें'।

प्रत्येक अध्यात्म-पथिकको शीघ्र-से-शीघ्र अपने भविष्यका स्पष्ट निश्चय कर लेना उचित है। यह आध्यात्मिक जीवनकी आधार-शिला है. बिना अन्तिम निष्कर्ष निकाले आप अन्तमें यही कहेंगे कि 'माया मिली न राम'। जीवनका प्रत्येक क्षण कितना बहुमूल्य है। यदि वह सोचते ही निकल जाय तो कैसा अनर्थ है।

निर्णय-शक्तिकी वृद्धिके उपाय—

किसी भी कार्यको हाथमें लेनेसे पूर्व यह भलीभाँति सोच लीजिये कि वह कार्य उचित (Desirable) है या नहीं? उसे पूर्ण करनेमें

किन-किन बातोंकी आवश्यकता प्रतीत होगी ? सम्भवतः कौन-कौनसे विघ्न मार्गमें पड़ सकते हैं ? उन विघ्नोंको परास्त करनेके लिये आपके पास क्या उपाय है ? आप पहिले उस मार्गपर चलनेवाले पथिकोंसे सम्मति लीजिये; उनके अनुभवोंपर मानसिक नेत्र केन्द्रित कीजिये। जब आपकी अन्तरात्मा आपको यह बतला दे कि वह कार्य करनेके योग्य है तथा आपमे उसके योग्य सामर्थ्य एवं उपयुक्त साधन उपस्थित हैं तो आप साहसपूर्वक अपनी नौकाको समुद्रमे खोल दें। सूईकी तरह उसमें दृढ़तासे लग जायँ और फिर कैसा ही संकट पड़े, उसे अधूरा न छोड़े।

निर्णयमें अन्तरात्मासे सम्मति लीजिये। आत्माका निर्देश क्या है ? वह आपको किस ओर प्रेरित करती है ? अपनी शिक्षा, अपने इतने वर्षोंके अनुभव आपको क्या बताते हैं ? अन्य मनुष्य क्या कहते हैं ?

शान्तचित्त होकर एक अशान्त स्थानमें बैठिये। मनमें अपनी गुत्थी (Problem) को लाइये। फिर उसपर दैवी प्रेरणा लेनेका प्रयत्न कीजिये। चुपचाप अन्तःकरणकी ध्वनि सुनिये। देखिये, आपकी अन्तःप्रेरणा क्या निर्देश करती है ? दैवी प्रेरणानुसार किये गये सब निश्चयोंमें सिद्धि प्राप्त होती है। दैवी प्रेरणा उसी परम तत्त्वका प्रकाश है जो निरन्तर हमारी आत्माको प्रकाशित करता है। हम जितना ही इस दैवी-तत्त्वसे सम्बन्ध जोड़ेंगे—जितना ही अपने परम पितामें तन्मय हो जायँगे, उतनी ही स्पष्टतासे हमें आत्मध्वनि सुनायी देगी।

आपके वशकी बात

महात्मा एपिक्टेटसने जीवनमें प्रतिक्षण काममें आनेवाली एक महत्त्वपूर्ण बात कही है—

'यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी स्त्री, तुम्हारे बच्चे, तुम्हारे मित्र कभी भी तुमसे पृथक् न हों, तो तुम मूर्ख हो; क्योंकि तुम ऐसी चीजकी चाह कर रहे हो जो तुम्हारे वशकी नहीं है और निरन्तर ऐसी अनहोनी इच्छाओंमे निमग्न रहनेके कारण तुम्हें अतृप्तिका दुःख मिलेगा ही।

'इसी प्रकार यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा नौकर या पत्नी, पुत्र, मातहत या पडोसी आदि अन्य व्यक्ति भूल न करे, तो तुम निरे मूर्ख हो, तुम ऐसी वस्तु चाह रहे हो, जो सम्भव नही है। तुम चाहते हो काला काला न रहे, और कुछ हो जाय। पर ऐसा हो नहीं सकता। अतः तुम दुखी हो।'

इसी भावको यदि हम और गहराई तथा व्यापकतासे देखे तो विदित होता है कि हम जीवनमें अनेक ऐसी बाते चाहते हैं, जो सम्भव नहीं हैं। आप मानसिक, बौद्धिक या आध्यात्मिक दृष्टिसे उच्च

स्तरपर हैं। स्वच्छता पसंद करते हैं अथवा आपकी रुचि कलात्मक है। परंतु आपको व्यक्ति या वातावरण ऐसा प्राप्त होता है जो आपकी मानसिक ऊँचाई तक उठकर नहीं आता। बस, आप दुखी और संतप्त हो उठते हैं।

आप घरमें सफाई चाहते हैं, पर वह आपको नहीं मिलती। आप परिवारके सब सदस्योंको सुशिक्षित चाहते हैं किंतु आपके पूर्ण ध्यान देनेपर भी वे पढ़ते-लिखते नहीं हैं। आप घरके आस-पासके वातावरणको स्वच्छ चाहते है, पर पड़ोसी कूड़ा-करकट वाहर फेंकते हैं, शोर-गुल मचाते है, दिनभर लड़ते-झगड़ते हैं। गालियाँ भी दे बैठते हैं। बाजारमें आप कुछ खरीदने जाते हैं तो दूकानदार चुपचाप आपकी दृष्टि बचते ही खराब वस्तु, सड़ी-गली तरकारी या गन्दी वस्तु दे देता है। आप अपने अफसरसे, मातहतसे या घरवालोंसे जैसा मधुर एवं शिष्ट व्यवहार चाहते हैं, वैसा आपको प्राप्त नही होता। ऐसी अवस्थामें आप मन-ही-मन कुढ़ते हैं, मानसिक संतुलन खो बैठते है, कभी आवेशमें भर जाते है और परिस्थिति और वातावरणको कोसते हैं। लेकिन आप यहाँ भूल कर रहे हैं। यह सब तथा अन्य इसी प्रकारकी अनेक सांसारिक वातें, आपके वशकी चीज नहीं है। दूसरोंके मनोभाव, इच्छाएँ, अच्छी-बुरी आदतें, रहने और सोचनेके ढङ्ग इनमेंसे एक भी वात आपके वशकी नहीं है। इन्हे लेकर दुखी संतप्त रहना या कुढ़ना, मनको भारी रखना आपकी मूर्खता और नासमझी ही है।

यदि आप चाहते हैं कि जीवनमें आपको असफलता, मजबूरी

या कठिनाई कभी न मिले, तो यह असम्भव है। आपके वशकी बात नहीं है। जीवन मृदुल भावनाओंकी मृदुवाटिका है, तो कंटक और शूल, कठोर चट्टानों, पत्थरोंकी शुष्कता और कठोरताओंसे भी भरा है। सभी कुछ आपको चखना है—मधुरता भी, तो कड़वाहट भी।

जिस दुनियाको आप बदल नहीं सकते, उससे झगड़ा करनेसे क्या लाभ? जिस परिस्थितिसे आप बच नहीं सकते, उसे परिवर्तित करनेकी इच्छासे क्या फायदा? जिन व्यक्तियोंका कड़ा, कलहपूर्ण या झगड़ालू स्वभाव है, उनसे अड़ने और क्रोध करनेसे क्या लाभ? असफलता, हानि और भूलपर व्यर्थ सोचनेसे क्या लाभ? ये सभी आपके मनोबल और मानसिक संतुलनको नष्ट करनेवाले हैं।

आपके वशकी बात क्या है? आपका स्वभाव, आपकी अच्छी आदतें, आपका मानसिक संतुलन, मनःशान्ति—ऐसी दिव्य बातें हैं, जो आपके वशकी हैं।

इनका सम्बन्ध स्वयं आपसे और आपके निजी व्यक्तित्वसे है। क्रमिक अभ्यासद्वारा आप इनमेंसे प्रत्येकको प्राप्त कर सकते हैं। इनके द्वारा आपका जीवन सुख और शान्तिसे परिपूर्ण हो सकता है।

अतएव यदि संसारमें सुख और शान्ति चाहते हैं तो जो आपके वशकी बातें हैं, उन्हींको विकसित कीजिये और जो आपके वशकी बातें नहीं हैं, उनपर व्यर्थ चिन्तन या पश्चात्ताप मत कीजिये। स्वयं अपने मस्तिष्कके स्वामी बनिये। संसार और व्यक्तियोंको अपनी राह जाने दीजिये।

काना-फूँसीसे विक्षुब्ध न हों

दो व्यक्ति एक ओर जाकर चुपचाप कुछ काना-फूँसी करने लगते हैं। अभी-अभी वे आपके समीप थे, अब कुछ दूर हट गये हैं कि आप उनकी बातें न सुन सकें।

आपके हृदयमें शंका उत्पन्न होती है। आप सोचते हैं, 'अवश्य ये लोग मेरे विषयमें टीका-टिप्पणी कर रहे हैं। मेरे चरित्रमें जो दुर्बलताएँ हैं, उनपर आलोचना हो रही है। तभी तो दूर हट गये हैं।' ऐसा सोचकर आप अपनी ही दृष्टिमें कुछ नीचे गिर जाते हैं। कानाफूँसी करनेवाले व्यक्तियोंकी ओर शंकासे देखते रहते हैं।

आपकी यह प्रवृत्ति—दूसरोंको अपने प्रति ईर्षालु समझना, अपने आलोचक और विरोधी समझना—स्वयं आपकी आन्तरिक दुर्बलताके चिह्न हैं। कोई क्या कहता है? आपके प्रयत्नोंको कोई प्रशंसात्मक दृष्टिसे देखता है अथवा निन्दात्मक दृष्टिसे? यह जानने-की प्रवृत्ति साधककी किसी छिपी हुई आन्तरिक दुर्बलताको द्योतित करती है और उसकी सृष्टि भी करती है। आप यह मानिये कि सब आपके मित्र हैं; कोई आपके प्रति ईर्षालु नहीं; कोई आपकी चुगली नहीं करता। मित्रभाव रखनेसे मनमें शान्ति बनी रहती है और सामाजिक सम्बन्ध मधुर बनते हैं।

वर्तमानका सदुपयोग करें

जो कार्य, कर्तव्य या उत्तरदायित्व हमारे सामने है उसपर ध्यान न देकर हम सदा बीती घटनाओंकी चिन्ता करते रहते हैं— 'यदि मैं ऐसा न करता, तो यह कष्ट न आता; यदि उसने मुझे यह सहायता दी होती, तो यह ऐसा हो जाता, अथवा कहीं ऐसा न हो जाय !' आदि मिथ्या भयोंसे सदा व्याकुल और त्रस्त रहते है । अर्थात् भूत और भविष्यमें ही निवास करते हैं, जब कि हमारा निवास केवल वर्तमानमें ही सम्भव है और उसीको उपयोगी बनाकर हम सफल बन सकते हैं । जो बीत चुका वह तो मर गया; उसकी चिन्ता क्यों करें ? जो भविष्यमे आनेवाला है, वह वर्तमानके सदुपयोगसे उज्ज्वल बनेगा ।

चुनकर पुस्तक पढ़ें

अनुभवसे ज्ञान परिपक्व बनता है, लेकिन अध्ययनसे ज्ञान पूर्ण होता है । पुस्तक पढ़नेका तात्पर्य यह है कि आप किसी समुन्नत प्रकाशित आत्माका सत्संग कर रहे है । सत्संगका प्रभाव चुम्बक-जैसा है । इससे बड़ा अच्छा वातावरण उत्पन्न होता है । इस वातावरणमें रहकर आप आध्यात्मिक पथपर सरलतासे अग्रसर हो सकेंगे । अत. आप पुस्तकें चुनकर पढें । जीवन इतना बड़ा नहीं कि संसारकी समग्र पुस्तकोंका अध्ययन-मनन हो सके; आपके पास इतना धन भी नहीं कि सभी खरीद सकें । अतः नित्यप्रतिके सांसारिक कार्योंसे जो समय बचे वह चुनी हुई पुस्तकोंमें लगाया करें । फालतू पुस्तकें पढनेसे मनकी गम्भीरता जाती रहती है ।

अप्रिय कार्य पहले कर लें

कुछ कार्य ऐसे हैं जो आपके लिये आर्थिक, सांसारिक, राजनीतिक या अन्य किसी कारणसे आवश्यक है, किंतु उन्हे करनेमें आपको मजा नहीं आता। मन बार-बार उनसे ऊबकर मनोरञ्जक कार्योंकी ओर अग्रसर होता है। यह सही है कि उन कार्योंमें आपका मन नहीं लगता, पर उनके बिना काम भी नही चल सकता। करने अति आवश्यक है। उनपर विजय प्राप्त करनेका सरल उपाय यह है कि आप अप्रिय कार्योंको पहले करे। शुरू-शुरूमें आप ताजे रहते है। कार्य-शक्ति भरी रहती है। मन काममें लगना चाहता है, शरीर कुछ काम माँगता है। अतः इन सख्त कार्योंपर नियन्त्रित होकर लग जायँ। मनको मजबूतीसे कार्यपर एकाग्र रक्खें। दृढ़ इच्छा-शक्तिके प्रतापसे यह शुष्क कार्य जल्दी होगा और अच्छा होगा। सरल कार्य तो तब भी हो जाता है, जब आप थके होते हैं।

साहसपूर्ण जीवन व्यतीत करें

यदि आप साहस करके किसी कार्यक्षेत्रमें प्रविष्ट हो जायँ, तो दूसरोंपर आपकी धाक बैठती है और आपकी गुप्त शक्तियाँ जाग्रत् होकर अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे कार्य करती हैं। इसके विपरीत यदि आप भयभीत होकर दब जायँ, तो इसका दूसरा अर्थ यह है कि दूसरोंके व्यक्तित्वका प्रभाव आपपर पड़ गया है। साहस एक प्रकारका चुम्बक है, जो दूसरोंपर अपना अद्भुत प्रभाव डालता है।

साहस पुस्तक या उपदेशमात्रसे विकसित नहीं होता; प्रत्युत

नित्य-प्रतिके अभ्यासपर और कार्यमें लेनेपर अवलम्बित है। आपका साहस एक ऐसी सम्पदा है, जिसे आप पग-पगपर भुनाते हैं। अतः विवेकपूर्ण होकर अपनी इस उच्च शक्तिका विकास करते चलें। हिम्मतसे काम लें।

बातको कलपर न टालें

प्रत्येक कार्यको करनेका साहस और उत्साहपूर्ण क्षण होता है। यह क्षण जोश और रुचिसे भरा रहता है। यदि कोई कार्य इस क्षण (Intense moment) पर कर लिया जाय तो कठिन कार्य भी सहजमें ही सम्पन्न हो जाता है। कार्य-भार प्रतीत नहीं होता। जब यह जोश ठंडा पड जाता है, तो कार्यशक्तियाँ शिथिल पड़ जाती हैं। मनका सहयोग प्राप्त नहीं होता; एक प्रकारका आलस्य आकर कार्यशक्तियोंको पंगु कर देता है।

कलपर बात टालनेवालेका सर्वनाश होता है। इस उक्तिका [illegible] उदाहरण रावण है जो महाबली और सामर्थ्यवान् होकर भी अमृत-घट पीनेकी बात टालता रहा! अन्तमें उस आलस्य और [illegible]वृत्तिके कारण मृत्युको प्राप्त हुआ। बातको टालना मानसिक [illegible] और मनकी चञ्चल वृत्तिका परिचायक है। जो कुछ करना [illegible] सोच-समझके उपरान्त, तुरंत पूरा और पक्का कर लेना चाहिये।

खुले दिलसे अपनी भूल स्वीकार करें

यदि आप भूलको स्वीकार न करें तो आपकी आत्मापर एक [illegible] आन्तरिक भार रहता है। आत्मा तो सत्यकी प्रखर ज्योतिकी

तरह है । उसके सामने कालिमा कैसे टिक सकती है ? भूलसे उत्पन्न आन्तरिक दु.ख एक प्रकारकी कालिमा है । अत: यदि आप भूलको स्वीकार कर मुक्त हृदयसे माफी माँग लेते हैं, तो मनके गुप्त प्रदेशसे कालिमा चेतनाके ऊपरी स्तरपर आ जाती है । चेतनाके सम्मुख आते ही मानसिक क्लेश दूर हो जाता है ! माफ न करनेपर मन ईर्ष्या और प्रतिशोधकी कलुषित भावनाओंसे उद्विग्न रहता है । अत भूलको स्वीकार करना आध्यात्मिक पथपर आगे बढना है । भविष्यमें भूल न करनेकी सावधानी रख दृढ़तासे कर्त्तव्य-पथपर आरूढ़ रहें । पुरानी गलतियोसे जीवनका पाठ सीखें । सावधान, उनकी पुनरावृत्ति न होने पाये ।

सहन करना सीखें

संसार, देश, प्रान्त और परिवारके झगड़ोंका मूल व्यंग्य है । हम दूसरोंकी बात, चाहे वह न्यायपूर्ण ही क्यो न हो, सहन नहीं करना चाहते । जरा-जरा-सी बात हमारे हृदय-कमलमें काँटेकी तरह घुस जाती है । कड़वी बात, अपनी आलोचना, बुराइयाँ या हमारी बातका कट जाना हमारी पीड़ाका कारण बन जाता है । उत्तेजित होकर हम झगड़ा कर बैठते है । फलत. हम अपने अच्छे सम्बन्धोंको अनायास ही तोड़ बैठते है । क्रोध शान्त होनेपर हमें अपनी मूर्खताका ज्ञान होता है । यदि हम दूसरोंकी बात सहन करना सीखे, अपने आपको संयमित कर लिया करे, तो अनेक स्थानोंपर विजयी हो सकते हैं । मित्रता, पारिवारिक सम्बन्ध, ग्राहक, श्रोता इत्यादि हमारे मित्र बने रह सकते हैं ।

अतिसे बचें

एक उपन्यासकार भारतीय मनोवृत्तिके विषयमें लिखते हैं, 'इस देशमें जो कुछ देखता हूँ सब अतिके दर्जेपर है। थोड़ेसे बहुत धनवान् और बहुतसे निर्धन; विरला ही अत्यन्त धर्मनिष्ठ और बहुतसे कीड़े-मकोड़ोंसे ज्यादा सड़ी जिन्दगी वितानेवाले !'

वास्तवमें अतिका मार्ग अनेक उत्पातोंकी जड़ है। जहाँ अति है, वहाँ कभी-न-कभी क्रान्ति आ सकती है; भयंकर छीना-झपटी हो सकती है। अतिको पहुँचे हुए धार्मिक वृत्तिके व्यक्ति और अतिको पहुँचे हुए नास्तिक अवश्य किसी दिन लड़ पड़ेंगे।

दैनिक जीवनमे जहाँ आप अति करेंगे, वहीं झगड़े, ईर्ष्या, द्वेषकी अग्नि प्रज्वलित हो जायगी। दूसरे समझेंगे कि आप उनके हिस्सेका भी अपहरण कर रहे हैं; सब कुछ अपने आप ही ले लेना चाहते हैं।

अतिकी आदत एक प्रकारका पागलपन है, जो हमें निपट स्वार्थी बनाकर हमारी आत्मीयताका दायरा संकुचित कर देती है। अपने स्वार्थोंके सम्मुख हमें दूसरोंकी न्यायपूर्ण आवश्यकताएँ भी नहीं दीखतीं।

आप सब जगह मध्यका मार्ग ग्रहण करें। न इतना कडुवा बनें कि जो चखे, सो थूके; न इतना मीठा बने कि जो देखे, सो चट कर जाय। सबसे मिलना बरतना पर इच्छानुसार स्वतन्त्र कार्य करना ही उन्नतिका सही मार्ग है।

मध्य मार्ग ही श्रेष्ठतम है

महान् विचारक अरस्तूने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'नीतिशास्त्र' मे एक स्थानपर एक बड़ी मार्मिक बात लिखी है। वे कहते हैं कि संसारमें श्रेष्ठतम मार्ग मध्यका ही मार्ग (Doctrine of mean) है। वे कहते हैं कि सद्गुण और दुर्गुणमें केवल अतिका अन्तर है। सद्गुण दो अतियोंके मध्यकी स्थितिको कहते हैं। अति (Execss) जिस ओरको हो जायगी, वही दुर्गुण बन जायगा, चाहे वह अच्छाई-की अति हो अथवा बुराईकी।

उदाहरणके लिये यदि हम अपनी आयकी अपेक्षा अधिक व्यय करे, व्यय अतिकी स्थितिमें पहुँच जाय, तो वह अपव्यय (फिजूल-खर्ची) कहलायेगा। यदि हम आयसे बहुत कम व्यय करें और अपनी स्थायी आवश्यकताओंकी भी अवहेलना करते चलें, तो वह कृपणता (कंजूसी) कहलायेगी। यदि इन दोनों अतियों—अपव्यय तथा कृपणताके मध्यका मार्ग ग्रहण कर लें, तो वह मितव्ययिता नामक सद्गुण बन जायगा। तनिक-सी कमी या आधिक्य सद्गुणको दुर्गुणमें बदल देगा। यही नियम प्रत्येक गुण या अवगुणके विषयमें लागू होता है।

साहस नामक गुणको लीजिये। यदि इस गुणका आधिक्य हो जाय, तो वह क्रूरता या दुस्साहस बन जाता है। यदि कमी हो जाय, तो वह कायरता कहलाती है। क्रूरता और कायरता दो अतिकी मन:-

स्थितियाँ हैं। हमें चाहिये कि विवेकसे इनकी मध्य स्थिति ग्रहण करें।

अरस्तूने जिस गुणके ऊपर सबसे अधिक जोर दिया है, वह है—Stateliness (गौरव या महत्त्व)। अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा और स्थितिके अनुकूल ही मनुष्यके रहन-सहन और महत्त्वका प्रदर्शन होना चाहिये। जो जितना सम्पन्न है, वह उतनी ही सम्पन्नताका रहन-सहन रक्खे। यदि अपने पदके अनुसार वह रहन-सहन न रक्खे, तो वह उसका टुच्चापन कहा जायगा। यदि उससे अधिक मिथ्या वैभवको दिखलाये, तो वह उसका छिछोरापन कहलायेगा। यदि अपनी स्थिति, पद और वातावरणके अनुसार रहन-सहन रक्खा जाय तो यह उनका सद्गुण ही कहा जायगा और समाजमें उसकी यश-प्रतिष्ठा होगी। अब लीजिये, कोई व्यक्ति उच्च वर्गका है, ऊँचा वेतन पाता है, तो उसे वैसा ही रहन-सहन भी रखना चाहिये। उससे निम्न स्तर उचित नहीं है। इसके विपरीत जो व्यक्ति साधारण स्थितिके होकर बाहरी मिथ्या प्रदर्शन करते हैं वे अपनी और समाजकी बड़ी क्षति करते हैं।

तर्क एक अच्छा गुण है। जो ठीक तरह तर्क कर सकता है, वह [illegible] मुक्त रह सकता है, हानिकर रूढ़ियोंसे अपनी रक्षा कर सकता है। अन्धविश्वास, भ्रम, पाखण्डमें सफाई पेश कर सकता है। पर यदि यही गुण अतिकी सीमापर पहुँच जाय, तो कुतर्क हो जाता है। कुतर्क करनेवाला उचित अनुचितका विवेक न कर समय-असमय कुतर्कों बहस करने लगता है और बकवासी या झक्की [illegible] है। यदि इस गुणकी कमी हो जाय, तो लोग उसे भोंदू

और बुद्धिहीन कहने लगते हैं। नियत मर्यादाके भीतर रहनेसे यह तर्क बना रहता है और सत्यकी खोजमें लाभदायक होता है।

जो व्यक्ति केवल कल्पनाके ही महल बनाता रहता है, कार्य कुछ नहीं करता, उसे लोग शेखचिल्ली कहकर चिढ़ाते हैं। यह सत्य है कि उस व्यक्तिमें सोचने और नये-नये मनसूबे, नवीन योजनाएँ बनाने, बढ़-चढ़कर बाते बनानेके गुण है, पर बिना कार्यके वह व्यक्ति अव्यावहारिक और आलसी ही कहा जायगा। इसके विपरीत सारा दिन इधर-से-उधर फिरनेवाला, घरमें न बैठनेवाला, सारा दिन कार्य-ही कार्य करनेवाला व्यक्ति भी अच्छा नही समझा जाता; क्योंकि उसे भले-बुरेका विचार करनेके लिये भी समय नहीं मिलता। कार्य और विचार दोनोंका उचित समन्वय—मध्यस्थिति ही श्रेष्ठ मार्ग है। ऐसे ही व्यक्ति सफल होते देखे जाते है।

बातचीतके विषयमें भी यही नियम लागू होता है। व्यर्थ अधिक बाते करनेवालेको लोग बकवासी और चुलबुला कहते हैं। किसी मीटिंग या मित्रमण्डलीमें चुपचाप, गुमसुम बैठनेवाला मन्दबुद्धि या मूर्ख समझ लिया जाता है। मध्यका मार्ग ही समाजमें मनुष्यकी योग्यता, सामर्थ्य और सच्चे गौरवको प्रकट करनेवाला है। मध्यस्थितिमें ही सद्‌गुणका अस्तित्व है। अनुचित सीमा या मर्यादासे बाहर हो जाना ही मनुष्यका दुर्भाग्य है।

भगवान् बुद्धने धर्मका मध्यम मार्ग ग्रहण करनेका उपदेश दिया था। वास्तवमें समाज, कुल, परिस्थिति, काल इत्यादिको दृष्टिमें रखकर मर्यादाओंका पालन ही सर्वोत्तम मार्ग है।
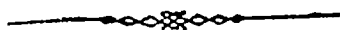
सौन्दर्यकी शक्ति प्राप्त करें

अगर सौन्दर्यके साथ सद्गुण है, तो वह दिलका स्वर्ग है, उसमें दुर्गुण हो तो वह आत्माका नरक है—वह ज्ञानीकी होली और मूर्खकी भट्टी है ।

—क्वार्ल्स

सौन्दर्य आनन्द है और रसका आधार है । सृष्टिका यह सारा वैभव, प्रकृतिका अनुपम एक रूप-लावण्य, सौन्दर्यका उपादान है । इस वैभवपर जो सामूहिक, शान्त, मृदुल, मधुर, स्निग्ध, रम्य—एक प्रकारसे अनिर्वचनीय प्रभाव मनपर पड़ता है वही सौन्दर्य है ।

आप दर्पणमें अपना चेहरा देखते हैं । आपका रंग श्वेत, त्वचा कोमल, रक्त स्वस्थ सब कुछ ठीक है । पर फिर भी चेहरेसे मायूसी टपकती है । मुखमण्डलपर झुर्रियाँ पड़ी हुई हैं । मुद्रा तेजहीन और उत्साहशून्य है । अपने चेहरेपर जिन कृत्रिम प्रसाधनोंका आप प्रयोग करते हैं, जितना रुपया आप सौन्दर्य-प्रसाधनोंपर व्यय करते हैं, उनके बावजूद आपके मुखपर तेज नहीं । आकर्षण नहीं । इसका क्या कारण है ?

संसारके मनोवैज्ञानिकोंने मनुष्यके चरित्रका विश्लेषणकर यह सिद्ध किया है कि मनुष्यके चेहरेके सौन्दर्यका केन्द्र मुखपर नहीं, उसके आन्तरिक मनोभावोंपर है। मुख तो एक दर्पणमात्र है, जिसपर हमारे आन्तरिक मनोभाव प्रकट होकर जनताके आकर्षण अथवा घृणाके केन्द्र बनते हैं।

हमारे मनमें दो प्रकारके मनोभाव हैं—(१) हर्ष, उल्लास, प्रेम, दया, प्रसन्नता, हास्य, आह्लाद, उत्साह, सहानुभूति आदि कल्याणकारी मनोभाव,(२) क्रोध, आवेश, चिन्ता, ईर्ष्या, दर्प, घृणा, भय आदि मानसिक तनाव रखनेवाले मनोभाव। प्रथम वर्गमें सुख-आकर्षण और आनन्दमय जीवन बनानेवाले तत्त्व हैं, तो दूसरे वर्गमें आस-पासके व्यक्तियोंको दुखी कर उत्तेजना उत्पन्न करनेवाले घातक तत्त्व मौजूद हैं। एक जीवनको परिपूर्ण, चेहरेको आकर्षक बनाते हैं, तो दूसरे उसे कटुता और चिन्तासे भर देनेवाले हैं।

मैं अपने परिवारसे सम्बन्धित एक अतीव सुन्दरी स्त्रीको जानता हूँ जिनका चेहरा चाँद-सा सुन्दर, त्वचा नवनीत-सी कोमल और रंग चमेलीके पुष्पकी भाँति निखरा हुआ है। स्वास्थ्य बहुत उत्तम है। ईश्वरने जैसे समस्त सौन्दर्य कूट-कूटकर भर दिया हो। पर यदि आप उनकी ओर देखे, तो आपको तनिक भी आकर्षण प्रतीत न होगा। उनके घर पर्याप्त सम्पत्ति है; मान-प्रतिष्ठाकी कमी नहीं; हर प्रकारकी सुविधाएँ प्राप्त है, फिर भी चेहरेपर निराशाकी कालिमा और चिन्ताकी रेखाएँ है। कहीं-कहीं झुर्रियां भी नजर आती है। वे हर समय अपने आपको एक दार्शनिक-जैसा बनाये रखती हैं

मानो समस्त संसारका बोझ उन्हींपर आ गया हो! वे जीवनको भारस्वरूप मानती हैं; किसी-न-किसी कल्पित असुविधा, कमी, असंतोष या आनेवाली विपत्तिकी बात सोचती रहती हैं। उन्हे यह भ्रम है कि उनके साथ न्याय नहीं हुआ है। अतः वे कल्पित भय, क्रोध और आवेशमें जलती-भुनती रहती हैं। उनसे बातें कीजिये तो अपनी सैकड़ों परेशानियाँ गिना डालेंगी। कल्पित परेशानियों—चिन्ताओं, नाराजी और असंतोषने उनके मुखमण्डलके सौन्दर्यको नष्ट कर दिया है।

हम मनमें जैसे भाव रखते हैं, उनका गुप्त प्रभाव हमारे मुख-मण्डलसे प्रकाशित हुआ करता है। जैसी भावनाएँ स्वयं हमारे मनमें भरी हैं, बाहर जगत्से, अपने इष्ट-मित्रों, परिवारके सदस्यों तथा सहयोगियोंसे हम वैसी ही भावनाओंकी अपेक्षा रखते हैं। हमारा आकर्षण चेहरेकी बनावटकी अपेक्षा इन्हीं भावात्मक प्रभावोंका आकर्षण है। सौन्दर्य हमारी मानसिक अवस्था, विचारोंके चुनाव, जीवनकी समस्याओंके प्रति दृष्टिकोणसे सम्बन्धित है। जब चिन्ता या कल्पित परेशानीके विचार मनमें जम जाते हैं, तो मनुष्य हर घड़ी नैराश्यमें डूबा रहता है; जीवनको भार-ग्रस्त समझता है, चेहरेपर मुर्दनी ले आता है और स्नायु-जालमें नाना विकार उत्पन्न कर लेता है। अनिष्टकी आशङ्का, कठिनाइयाँ, अपराधी वृत्ति, हीनत्वकी भावना, परिवारकी छोटी-बड़ी उलझनोंके विचार मनुष्यके मुखमण्डलके सौन्दर्य-को नष्ट करनेवाले संहारक तत्त्व हैं। ये मनुष्यके चेहरेपर एक प्रकारका तनाव उत्पन्न करते हैं। कालान्तरमें ये तनाव स्थायी रूप धारण कर लेते हैं और सौन्दर्य जाता रहता है। जीवन भारग्रस्त हो जाता है।

कुछ व्यक्ति बच्चोंको डराने-धमकाने अथवा मातहतोंपर रोब डालनेके लिये सदा गम्भीर मुद्रा बनाये रखते हैं; बात-बातपर क्रोध करते और डाँट-फटकार बताते हैं। यह आवेशपूर्ण स्थिति भी सौन्दर्यकी शत्रु है। जिस प्रकार रेशमी वस्त्रमें मोड़ने या तह लगाकर रखनेसे उसमें सिकुड़न उत्पन्न हो जाती है और बार-बार प्रयत्न करनेसे भी दूर नहीं होती, वही बात चेहरेकी झुर्रियोंके भी सम्बन्धमें है। चेहरेकी रगोंको, नसोंको किसी विशिष्ट मुद्रामें देरतक बनाये रखने, मोड़ने या सिकोड़नेकी आदत पड़ जानेपर वह आसानीसे दूर नहीं की जा सकती। फिर तो मनुष्य इस निराशावादी या उग्र रहनेकी आदतसे लाचार हो जाता है। उसे लाख प्रयत्न करनेपर भी उससे छुटकारा नही मिलता।

अत: सौन्दर्यके लिये मनमें यौवन, उत्साह, प्रफुल्लता, प्रेम, सहानुभूति आदिके उदार विचार प्रचुरतासे आने दीजिये। इन्हीं भव्य विचारोंको स्थान दीजिये। ऐसा प्रयत्न कीजिये कि इन शुभ सात्त्विक कल्याणकारी मनोभावोंका प्रकाशन आपके मुखमण्डलपर हो! प्राय: अभिनेता इन मनोभावोंको मुखपर लानेका दीर्घकालतक अभ्यास करते है। मनोविज्ञानका यह नियम है कि जो भाव आप मुखमण्डलपर प्रकट करेंगे, वैसा ही अंदर मनमें अनुभव भी करेंगे। अत: आशा, उत्साह, उल्लास, प्रफुल्लता, मस्तीका अभिनय, किया कीजिये। इनकी छाया धीरे-धीरे आपके मुखमण्डलपर प्रकट होकर उसे सुन्दर बना देगी। प्रारम्भमें छोटे-छोटे शुभ मनोभावोंको मुखमण्डलपर प्रकाशित करे। उग्र मनोविकार मुखश्रीको नष्ट कर देते हैं। इस

बातको सदैव ध्यानमें रखते हुए अपनेको मानसिक उद्वेगो—शोक, भय, क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, उत्तेजना, निराशा आदिका शिकार न बनने दें। मनमें शान्ति, आनन्द और उत्साहवर्धक विचारोंको स्थायीरूपसे स्थान दें। सद्विचार, सद्भावना, सदाचरणके स्थायित्वसे ही मुखाकृति आकर्षक और प्रभावशाली बन सकती है।

(२)

जीवनमें सौन्दर्यको प्रविष्ट कीजिये

प्राचीन कालमे जब आक्रमणकारियोंने ग्रीसपर आक्रमण किया था, तो विजयके पश्चात् उन्होंने वहाँके समस्त सुन्दर मन्दिरों, नयनाभिराम मूर्तियो, कलाकी सर्वोत्कृष्ट कृतियोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। जिस-जिस वस्तुमें उन्हें सौन्दर्यके दर्शन हुए, ईर्ष्या और आवेशमे उन सभीको विनष्ट करनेमें वे प्रयत्नशील रहे। यद्यपि उन्होने सुन्दर कलाकृतियोंको नष्ट कर दिया, किंतु सौन्दर्यकी कलात्मक मनोवृत्तिका विनाश वे न कर सके। ग्रीसके नागरिकोंके हृदयमें सौन्दर्यानुभूति, सौन्दर्याभिव्यक्ति तथा सौन्दर्यका आनन्द लेनेकी भावनाको वे न हटा सके। कोई भी असभ्य शक्तिशाली सभ्य जातिके मनमें रहनेवाली सौन्दर्यकी भावनाको नहीं हटा सकती। ग्रीक कलाके पश्चात् रोमन कलाका जन्म हुआ। जब रोमनिवासियोने इटलीको विजय किया, वहाँ भी सौन्दर्यकी उपासना फैली। रोमकी कलाकृतियोंके अनुकरणपर इटलीकी आश्चर्यचकित करनेवाली कलाका जन्म हुआ। इन कलाकृतियोंके व्यापक प्रसारसे इटली-निवासियोंकी सुप्त सौन्दर्यभावनाएँ जाग्रत् हो उठीं।

किसी व्यक्तिने प्लेटोसे प्रश्न किया था, 'सबसे उत्कृष्ट शिक्षा कौन-सी है ?' प्लेटोने उत्तर दिया, 'सच्ची शिक्षा वह है, जो मनुष्यको शारीरिक एवं आत्मिक सौन्दर्यकी चरम परिणति करा दे। जिस व्यक्तिने सौन्दर्यकी सर्वोच्च साधना की है, वही सच्चे अर्थोंमें शिक्षित है।'

वही पूर्ण परिपक्व जीवन है, जो सौन्दर्य एवं विवेकके सामञ्जस्यसे युक्त है, जिसमें सौन्दर्यके प्रेमके साथ दूसरोंको भी सौन्दर्यानुभूति करानेकी सद्भावना है। मनुष्यका व्यक्तित्व अति विशाल है। अपने व्यक्तित्वके सर्वाङ्गीण विकासके लिये उसे विभिन्न प्रकारके मानसिक एवं शारीरिक भोजनोंकी आवश्यकता है। आप चाहे जो वस्तु कम कर सकते है, किंतु स्मरण रखिये, उसीकी कमी आपके व्यक्तित्वमें धीरे-धीरे प्रकट हो जायगी। सभी तत्त्वोंके बिना व्यक्तित्वका सर्वाङ्गीण विकास असम्भव है। शरीरको भोजन देकर आप आत्माको भूखा नही रख सकते और ऐसा करके आप संतुलित व्यक्तित्व पानेकी आशा नहीं कर सकते। न आप आत्मिक और मानसिक विकास करते हुए शरीरको उपेक्षित कर सकते हैं।

सौन्दर्यके प्रति इच्छा हमारे व्यक्तित्वको एक आवश्यक तत्त्व प्रदान करती है। सौन्दर्यसे विमुख होना इस बातका प्रमाण है कि उसके हृदयमें सौन्दर्यको पहिचानने, अनुभव करनेकी शक्ति नहीं है। दैनिक जीवनमें जो व्यक्ति सौन्दर्यको स्थान देता है, उसकी कलात्मक अभिरुचिका विकास होता है। सौन्दर्य ईश्वरीय गुण

है। ईश्वरको हम चिर सुन्दरके रूपमें देखते हैं। जब हम प्रकृतिके विशाल प्राङ्गणमें दृष्टिपात करते है, तो पाते है कि सृष्टिकर्ताने सर्वत्र सौन्दर्य बिखेर दिया है। प्रकृतिमें विहँसते हुए सुन्दर पुष्पोंको देखिये, भ्रमरोका सुमधुर संगीत सुनिये, पक्षियोके मनोरम रंगोंका निरीक्षण कीजिये। सुन्दर गंध, सुमधुर ध्वनि, रंगोंकी चित्रशाला प्रकृतिके कोने-कोनेमें लहरा रही है। प्रकृतिके इस सुन्दर रूपका दर्शन कर और उसे हृदयमे उतारकर हम जीवनकी कुरूपतासे अपनी रक्षा कर सकते है।

सर्वत्र सौन्दर्यका दर्शन करनेवाला व्यक्ति मानसिक तनावसे दूर रहता है। उसे मायाकी चकाचौंध पथ-च्युत नहीं कर सकती; क्योंकि उसका विवेक सदा जाग्रत रहता है। सच्चा सौन्दर्य-पारखी विवेकबुद्धिको जाग्रत् रखता है। सौन्दर्यका विवेकके साथ निकट साहचर्य उसे भाता है। वह शिवम् और सुन्दरम्को पृथक् नही देखता। उसे सौन्दर्यका वही पक्ष पसंद आता है जो उसके जीवनको ऊँचा उठाता और दुष्प्रवृत्तियोको परिष्कृत या समुन्नत करता है। सौन्दर्य मनुष्यकी रुचिको, उसके आदर्शों एवं भावनाओं-को ऊँचा उठानेवाला होना चाहिये। हम उन वस्तुओंमें सौन्दर्यके दर्शन करना सीखें, जो हमारी नैतिक, मानसिक या आत्मिक रुचिको परिष्कृत करनेवाली है। हमारी सौन्दर्य-साधना केवल वाह्य जगत्में, अथवा अपने शरीरमात्रमें पाये जानेवाले सौन्दर्यतक ही निर्भर न रह जाय, वरं उसे हमारे आन्तरिक जगत्में भी अपना कार्य करना चाहिये। भावनाओ, विचारों, हृदय तथा मन्तव्योका

सौन्दर्य, जो हमारे अन्तःकरणमें निवास करता है, वही वास्तविक नित्य सौन्दर्य है।

आत्मिक सौन्दर्य या आन्तरिक सौन्दर्य वह आधार-शिला है, जहाँसे हमारी सौन्दर्य-दृष्टिका निर्माण होता है। यदि हमारे अन्तःकरणमें सौन्दर्यकी पृष्ठभूमि बैठ जाय, तो हम सृष्टिमें सर्वत्र विवेकमय सौन्दर्यके दर्शन करने लगे।

यदि आपकी इच्छा है कि विस्तृत अर्थोंमें 'पूर्ण मनुष्य' बने—सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्राप्त करें, तो आपको व्यक्तित्वके एक अङ्गमात्रका विकास कर संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिये। मनका निरीक्षण कर देखिये, आपकी सौन्दर्यानुभूति कितनी विकसित हुई है। स्मरण रखिये, अर्थोपार्जनसे तो आपके व्यक्तित्वका एक छोटा-सा भाग विकसित होता है। यह भाग स्वार्थ एवं अहंसे परिपूर्ण है। इससे मनुष्यकी कलात्मक रुचिका परिष्कार नहीं होता। सौन्दर्यविहीन व्यक्ति मालदार भले ही हो, पर प्रसन्न, शान्तचित्त, कलात्मक नहीं हो सकता। सौन्दर्य-प्रेमका प्रभाव यह होता है कि उससे चरित्र उत्तरोत्तर सुसंस्कृत, उदार, समुन्नत, ऐश्वर्ययुक्त और समृद्धिशाली बन जाता है। कलाविहीन कुरूप गन्दे वातावरण-में विकसित होनेवाले बालकोंमें एक प्रकारकी संकुचितता प्रविष्ट हो जाती है, जो जीवनपर्यन्त दूर नही हो पाती। वह बालक बड़ा अभागा है, जिसे पैत्रिक सम्पत्तिके रूपमें मकान, जायदाद, खेत, रुपया-पैसा तो प्राप्त होता है, किंतु उसी अनुपातमें पौरुष, सज्जनता, सौन्दर्य, कलात्मकता और माधुर्य प्राप्त नही होता।

बालकोंके व्यक्तित्वके सर्वाङ्गीण विकासके लिये उन्हे सौन्दर्यसे परिपूर्ण वातावरणमें, प्रकृतिके संरक्षणमे सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंके मध्य, सुन्दर खिलौने, सुन्दर पुस्तकोंसे परिपूर्ण वातावरणमें रखना चाहिये। सुन्दर वातावरणमें निवास करनेसे प्रारम्भसे ही उनकी सौन्दर्यानुभूति जाग्रत् हो जाती है। वाह्य सौन्दर्यकी उपासनासे वे क्रमशः आन्तरिक सौन्दर्यकी ओर उन्मुख हो सकते हैं। माताएँ स्वयं स्वच्छ सुन्दर रहे और बच्चोंको अपना अनुकरण करने दें। गृह स्वच्छ सुन्दर रखें; आलमारियो, आलो, मेजों, बिस्तरों और पुस्तकोंको सुन्दर रखनेकी शिक्षा बच्चोंको सदैव देती रहे। इन प्रारम्भिक संस्कारोसे बच्चोंकी कलात्मक बुद्धि विकसित होगी।

इस आनन्दका अनुभव एक भुक्तभोगी ही कर सकता है, जो मानव-जीवनके सर्वोत्तम गुणों—प्रेम, सौन्दर्य, कलात्मक अभिरुचि, उदारताके विकासके द्वारा मनुष्यको प्राप्त होता है। भिन्न-भिन्न रूपोंमें सौन्दर्य-भावना, कोमल कल्पनाओंका विकास मानव-चरित्रको समुन्नत करनेवाला है। हमें चाहिये कि प्रारम्भसे ही अपने जीवनको सौन्दर्यसे भर लें। इससे हमारे जीवनमें एक ऐसी तन्मयताका प्रवेश होगा, जो समग्र जीवनको आनन्दित रखेगी। इससे न केवल हमारा आनन्द बढ जायगा, वरं हमारी कार्यशक्ति भी विकसित हो सकेगी।

हममेंसे प्रत्येकको अपने शरीरको सर्वोत्तम रूपमें रखना चाहिये और शारीरिक दृष्टिकोणसे पूर्ण परिपुष्ट, स्वस्थ, सुन्दर दीखना चाहिये। पोशाक वेषभूषा दिखावटी न हो, सभ्य शिष्ट

व्यक्तियों-जैसी हो। स्मरण रखिये, सरलतामें भी एक सौन्दर्य है। यह सत्य है कि शब्द, रूप, रस, गंध, रंगका अतुल सौन्दर्य संसारको सुन्दर बनाता है, किंतु मन और हृदयका सौन्दर्य तो ईश्वरीय सत्ताके समीप पहुँचा देता है। हम बाह्य सौन्दर्यकी ओर इसीलिये आकृष्ट होते है; क्योंकि वह हमें आन्तरिक आत्मिक सौन्दर्यतक ले जाता है; प्रवृत्तियोंको पवित्र कर हमारे मार्गको प्रशस्त करता है। परमेश्वरके अनन्त सौन्दर्यकी अनुभूति हमें जिस दिन हो जायगी, उसी दिन हम सौन्दर्यका वास्तविक अभिप्राय समझ सकेंगे।

सफाई, सुव्यवस्था और सौन्दर्य

सफाई एक दैवी गुण है। अंग्रेजीमें एक कहावत है जिसका तात्पर्य है कि 'सफाईसे रहना देवत्वके समीप रहना है।' जो साफ रहता है, अपने रहन-सहनद्वारा देवत्व प्रकट करता है। सफाईसे सौन्दर्य-वृद्धि होती है और साधारण वस्तु भी अपने आकर्षणरूपमें प्रकट होती है। वस्तुओंका जीवन बढ़ जाता है। मशीनोंकी सफाई करने या समय-समयपर कराते रहनेका तात्पर्य उसकी कार्य-शक्तियोंको बढ़ा लेना है।

जब किसी मशीनको ओवर हाल (आमूल नये ढंगसे फिटिंग) किया जाता है तो न केवल सफाई हो जाती है, प्रत्युत सब पुर्जोंको साफ कर नये सिरेसे रखनेके कारण उनमे नयी स्फूर्तिका संचार होता है। जो पुर्जे चूँ-चूँ चर्र-चर्र करते थे, वह थोड़े-से तेलसे सहज स्निग्ध होकर मजेमें चलने लगते हैं। उनकी कार्यशक्ति बढ़ जाती है।

इसी प्रकार मानव-शरीररूपी मशीनका हाल है। हमारे शरीरमें अनेक छोटे-बड़े सूक्ष्म पुर्जे हैं। हमारा शरीर मस्तिष्क, हृदय, फेफड़े, उदर अनेक ग्रन्थियोंसे मिलकर बना है। इन पुर्जोंमें निरन्तर भोजनको पचाकर रक्त बनानेकी क्रियाके कारण मैल एकत्रित हो जाता है। जीवनमें पैसेके लिये हम शरीरको अधिक घिस डालते हैं। प्रायः नेत्रोंकी ज्योति क्षीण पड़ जाती है, गाल पिचक जाते हैं, दाँत गिर जाते हैं, पाचनमें विकार उत्पन्न हो जाते हैं। ये सब रोग शरीरकी अधिक घिसावटके दुष्परिणाम हैं। यदि हम शरीरकी आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकारकी सफाईका ध्यान रक्खें, तो शरीर-मन-प्राणमें नयी स्फूर्ति, नयी शक्ति और प्रेरणाका संचार हो सकता है।

भारतमें जिस तत्त्वकी बड़ी कमी मिलती है वह सफाई है। सुव्यवस्था और सौन्दर्य इसके पुत्र-पुत्री हैं। लोगोंके पास मान-प्रतिष्ठा, उत्साह है; पर स्वच्छता और सुव्यवस्थाका बड़ा अभाव है। दूकानें, गलियाँ, सार्वजनिक स्थान, भोजन तथा मिठाईके बाजारोंमें पत्तोंके ढेर, जूठन, मैल, मक्खियाँ, नालियोंमें भरा हुआ कीचड़, मल-विष्ठा देखकर हमें अपनी गंदी आदतोंपर लज्जा आती है। लोग बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ बनाते हैं, पर उनमें सफाईपर ध्यान नहीं देते। टट्टियों तथा नालियोंकी सफाईपर व्यय नहीं करते। सार्वजनिक टट्टियोंमें सभ्य व्यक्तिको जाते हुए शर्म आती है। मेहतर अपने कर्तव्योंका पालन नहीं करते। अधिकारीवर्ग देख-रेखके मामलेमें शिथिलता दिखलाता है। टट्टी-विष्ठासे सने घिनौने स्वरूप रेलके

डिब्बों और रेलके स्टेशनोंपर पायी जानेवाली टट्टियोंमें भी देखे जाते है। जितना बड़ा शहर, उसकी गलियोमें उतना ही अँधेरा, बदबू और गंदगी पायी जाती है। जहाँ मवेशी बाँधे जाते हैं वहाँका तो कहना ही क्या ?

सफाई एक सार्वजनिक आदत है। हम भारतीयोको अपनी सार्वजनिक गंद्गीपर लाज आनी चाहिये। जहाॅ दूसरे राष्ट्रोंमें सफाई-की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है, सरकार पर्याप्त व्यय करती है, म्यूनिस्पैलिटी बहुत ध्यान देती है, प्रत्येक नागरिक सार्वजनिक सफाई-की ओर ध्यान देता है, वहाँ हमारे यहाँ कोई भी इस ओर ध्यान नहीं देता। नागरिक, विशेषतः ग्रामीण व्यक्ति और नारी-समाज इतने पिछड़े हुए हैं कि जहाँ कही जाते हैं सार्वजनिक स्थानोंको गंदा छोड़ जाते हैं। कूड़ा-करकट सड़कोपर डाला जाता है। केले, आम, संतरे तथा अन्य फलोंके छिलके सड़कोंपर डाले जाते है और कितने ही व्यक्ति उनसे फिसलकर घायल होते हैं। सिनेमामें मूँगफलीके ढेर-के-ढेर छिलके, बीड़ी-सिगरेटके टुकड़े, पानकी पीक यत्र-तत्र फैले हुए मिलते हैं। स्टेशनोंको हर आध घंटे पश्चात् साफ किया जाता है पर वह गंदा होता जाता है। यह हमारी गंदी आदतका सूचक है। हमें अपनी इन आदतोंपर लज्जित होना चाहिये।

शारीरिक स्वच्छताके दो अङ्ग हैं—बाह्य तथा आन्तरिक सफाई। नित्यप्रति मालिश और व्यायामके पश्चात् स्नान करनेसे और खुरदरे तौलियेसे पोंछनेसे शरीर स्वस्थ होता है। प्रायः लोग बार-बार स्नान करनेका क्रम करते हैं, जलमें पड़े रहते हैं, असंख्य गोते लगाते हैं,

बाल्टीपर बाल्टी पानी उँड़ेलते हैं; लेकिन सच्चे अर्थोंमें यह स्नान नहीं है। जबतक शरीरके रोमकूप स्वच्छ नहीं होते और त्वचाका संचित मल दूर नहीं होता, तबतक शरीरकी स्वच्छता नहीं हो सकती। खुरदरे तौलियेको पानीमें भिगोकर त्वचापर रगड़नेसे त्वचा साफ होती है। नाखूनोंको काटना, नासिकाद्वारको स्वच्छ रखना, जिह्वाकी स्वच्छतासे प्रायः उपेक्षित रहते हैं। इनपर बड़ा ध्यान देनकी आवश्यकता है।

आन्तरिक स्वच्छताका साधन उपवास है। पंद्रह दिन पश्चात् उपवास करनेसे संचित भोजन पच जाता है, मल पदार्थ निकल जाते हैं और पेटकी बीमारियाँ दूर होती हैं। हमारे देशमें उपवासको धर्मके अन्तर्गत इसीलिये रक्खा गया है कि सब इससे लाभ उठा सकें। यथासाध्य ठंडे जलसे स्नान करें। मूत्र-त्याग और मल-त्यागके पश्चात् इन्द्रियोंको शीतल जलसे धो डालें।

आपका घर वह स्थान है, जिसके वातावरणमें आप पलते, वायु पाते, संसर्गसे प्रभावित होते हैं। प्रतिदिन हमारा १४-१५ घंटेका जीवन घरमें ही व्यतीत होता है। घरकी चारदीवारी, कमरों, फर्नीचर, वस्त्रों तथा विभिन्न स्थानोंपर जो समय हम व्यतीत करते हैं, उनसे हमारी आदतों और स्वास्थ्यका निर्माण होता है। घर जितना ही स्वच्छ और सुव्यवस्थित होगा, उससे उतनी ही स्वच्छ वायु तथा आनन्द प्राप्त हो सकेगा। यदि आप दूकानदार हैं या आफिसमें आठ घंटे व्यतीत करते हैं तो दूकान और आफिसके वातावरणका भी प्रभाव गुप्त रूपसे पड़ता रहता है। मान लीजिये आप तंबाकू,

शराब, गाँजा, भाँग, चरस अथवा जूतेकी दूकान करते हैं तो इन वस्तुओंकी बदबू निरन्तर आपके स्वास्थ्यपर प्रभाव डालती रहती है। अत: हमें चाहिये कि हम अपने घर, दूकान या आफिसोंको खिलौनोंकी तरह सदा साफ-स्वच्छ रक्खे ।

स्वच्छ घरमें रहनेवालेकी आत्मा प्रसन्न रहती है । आप स्वच्छ धुले हुए वस्त्र पहनकर देखे, मन कितना खिला रहता है । इसी प्रकार सफेद-पुता हुआ कमरा, स्वच्छ फरनीचर, स्वच्छ वस्त्र, स्नानसे स्वच्छ शरीर आत्माको प्रसन्न करनेवाले हैं ।

स्वच्छ रखकर हम अपने घरके सौन्दर्यकी वृद्धि करते हैं और चीजोंके जीवनको बढ़ा लेते है । हमें आन्तरिक शान्ति प्राप्त होती है । सफाई प्रकृतिका अङ्ग बन जानेसे सर्वत्र सौन्दर्यकी सृष्टि करती है ।

आफिस, घर और दूकानमें छोटी-बड़ी असंख्य वस्तुएँ होती है । इनमें कुछ ऐसी हैं जिनका नित्य प्रयोग होता है, तो कुछ ऐसी होती हैं जो देरसे निकलती और काममें आती है । कुशल व्यक्ति अपने घर, दूकान या आफिसकी वस्तुओंकी व्यवस्था इस प्रकार करते हैं कि आवश्यकता पड़ते ही, तुरंत जरूरतकी चीज मिल जाती है। ग्राहक आकर जिस छोटी वस्तुकी माँग करता है, चतुर दूकानदार एक क्षणमें उसे प्रस्तुत कर देता है । घरमें दवाईसे लेकर सुई-डोरा-आलपिन तक एक क्षणमें मिल जानी चाहिये । आफिसकी फाइलका कोई भी कागज तुरंत अफसरके सम्मुख आ जाना चाहिये। पुस्तकालयमें

जो पुस्तक माँगी जाय, तुरंत पाठकको प्राप्त हो जानी चाहिये ।

अव्यवस्थित दूकानदार, अफसर या परिवारका मुखिया उस व्यक्तिकी तरह है, जो उर्द, मूँग, मसूर, गेहूँ, जौ इत्यादि भिन्न-भिन्न अनाजोंको एक साथ मिश्रित कर लेता है और जरूरतके समय उनको पृथक्-पृथक् करनेमें व्यर्थ समय और शक्तिका क्षय करता है। वह न गेहूँ निकाल सकता है, न उर्द, न मूँग। और यदि निकालता भी है तो उस समय जब उसके हाथसे अवसर निकल जाता है। यदि प्रारम्भसे ही वह व्यवस्थासे इन अनाजोंको अलग-अलग रखता तो क्यों इतना श्रम और समय नष्ट होता !

प्रायः अफसर लोग चिल्लाया करते हैं और क्लर्क फाइलोंको भिन्न-भिन्न पत्रोंको, रेफरेन्सोंको तलाश करते हुए थक जाते हैं। दूकानदार वस्तुओंको गलत स्थानपर रखकर झींकते रहते हैं। घरमें दियासलाई, चाकू, नालादानी, साबुन, तौलिया, रूमाल, हाथका थैला, पेन्सिल, कलम इत्यादि प्रायः अव्यवस्थित होनेसे बड़ा हल्ला मचता रहता है। जो डाक्टर अपने यहाँ विभिन्न दवाइयोंको क्रम-व्यवस्थासे नहीं रखते, वे पछताते रहते हैं। सर्वत्र व्यवस्थाकी आवश्यकता है।

आप चाहे जिस स्थिति, वर्ग या स्तरके व्यक्ति क्यों न हों, क्रम और व्यवस्थाकी आपको सबसे अधिक आवश्यकता है। व्यवस्थासे आपका कार्य सरल होगा, श्रम और समयकी बचत होगी और जल्दी आप काम कर सकेंगे। मनमें किसी प्रकारकी उलझन उपस्थित न होगी। काम करनेको तबीयत करेगी।

जिस व्यक्तिमें अपनी वस्तुओंको एक निश्चित क्रम और व्यवस्था-से रखनेकी आदत होती है, वह उनको उचित स्थानपर रखकर सौन्दर्यकी सृष्टि करता है। पं० जवाहरलाल नेहरू जब जेलमें थे, तो उनके पास कुछ गिनी-चुनी वस्तुएँ थी—हजामतका सामान, कंघा, कलम, दावात, कागज इत्यादि। लेकिन वे अपनी आत्मकथामें लिखते है कि 'उन्होंने उन्हींको क्रम और व्यवस्थासे रखकर सौन्दर्य-सृष्टि की और अपनी आत्माको आनन्दित किया था।' आपके पास जो भी वस्तुएँ हों, उन्हींको किसी निश्चित क्रम-व्यवस्थासे रखकर सौन्दर्य और उपयोगितामें वृद्धि कर सकते है।

अपने घरके पृथक्-पृथक् कमरोंको लेकर यह निश्चित कीजिये कि आप उस कमरेको किस कार्यके लिये रखना चाहते हैं—बैठक, स्टोर, प्राइवेट कमरा, औरतोंके बैठने-उठनेका कमरा, भोजन करनेका कमरा इत्यादि। प्रत्येक कमरेको उसी कार्यके लिये क्रमवार सुव्यव-स्थित कीजिये।

मान लीजिये, बाहरवाले एक कमरेको आप बैठक बनाना चाहते हैं। इसमें एक मेज, कुर्सी, सोफासेट, या फर्श तकिया इत्यादि रखिये, पॉव पोंछनेके लिये पायदान, दीवारोंपर कुछ कलेण्डर और एक-दो अच्छे चित्र, खूँटी और जूता रखनेका स्थान। इस कमरेमें व्यर्थकी चीजें, खूँटियोंपर कपड़े या फालतू वस्तुएँ नही रहनी चाहिये। मेन्टलपीसपर कलात्मकरूपसे सजे हुए फूलदान और एक-दो फोटो। अधिक सजावट भी असभ्यताकी निशानी है।

आपके स्टोरमें अनाज, दालें, महीनेभरके कुटे हुए मसाले, घी, तेल, गुड़, चीनी एक ओर वस्त्रोंके संदूक तथा अन्य घरकी वस्तुएँ रहनी चाहिये। यदि मकान छोटा हो तो क्रमसे रक्खी हुई लकड़ियाँ और उपले भी रह सकते हैं। मिट्टीका तेल और लालटेन भी रक्खी जा सकती है। सोनेके कमरेमें भी वस्तुएँ कम ही रहें; क्योंकि फालतू वस्तुओंसे मच्छर होते हैं। रसोईमें भी भिन्न-भिन्न बर्तन क्रमसे सजे रहें। सीने, काढ़ने, बुनने और कातनेका सब सामान एक स्थानपर सजा रहे। मशीन हो तो स्वच्छ तेल लगी हुई रहे। पुस्तकालय हो तो उसकी सब पुस्तकें विषयवार सजी रहें, जिससे जिस समय आवश्यकता हो निकाली जा सके। संक्षेपमें, आपके पास जो भी स्थान हो, जो-जो वस्तुएँ हों, वे स्वच्छ-से-स्वच्छ और सबसे आकर्षक रूपमें मौजूद रहें, जिन्हें देखकर आपको भी प्रसन्नता हो और देखनेवाले भी प्रसन्न रहें।

हमारे घरोंमें वस्त्रोंकी जो दुरवस्था है, उसे देखकर क्षोभ होता है। प्रायः स्त्रियाँ महँगे-से-महँगे रेशमी वस्त्र खरीदती हैं, पर उनके साथ अकथनीय अत्याचार होता है। इधर-उधर फेंका जाता है, आले या कोनेमें मैले पड़े रहते हैं, धोबी (बीस-बीस) दिनोंमें धोकर वापिस नहीं लाता। यदि हम वस्त्रोंकी उचित व्यवस्था रक्खें, मैला होनेपर स्वयं उसे धो लिया करें तो हम आधे वस्त्रोंमें मजेसे काम चला सकते हैं, रुपये बचा सकते हैं और स्वच्छ भी रह सकते हैं। महँगे कपड़े बना लेना आसान है, पर उनकी सेवा करना

तथा उनसे अधिकतम लाभ उठाना कुशलता और चतुराईका काम है।

वस्त्रोंके संदूक या आलमारीमें वस्त्रोंको तरीकेसे रखना चाहिये। इससे वस्त्रोंके कोने सिकुड़ने या मुड़ने नहीं पाते और इस्तरी नहीं टूटती। रेशमी साड़ियोंको कागजमें लपेटकर पृथक् रखना चाहिये। फिनायलकी गोलियाँ रखनेसे वस्त्र विशेषत: साड़ियाँ कीड़ोंसे बची रहती हैं।

वस्तुओंकी सम्हाल तथा व्यवस्था और भी आवश्यक है। सम्हाल रखनेसे मशीनका जीवन कई गुना बढ़ जाता है, जब कि तनिक-सी लापरवाहीसे कीमती चीजे भी जल्दी ही नष्ट हो जाती हैं। लेखकके पास एक फाउन्टेन पेन है। इसका मूल्य तीन रुपयेके लगभग है। अभीतक दस वर्षसे भी ऊपर यह काम कर चुका है। अब भी ठीक हालतमें है। इसी प्रकार घड़ी दस वर्ष, जूता दो वर्ष चलता है। वर्षमें तीन कमीज और चार पाजामोंसे काम चलता है। साइकिलको २६ वर्ष हो चुके हैं। यदि प्रत्येक वस्तुको उचित देख-रेखसे रक्खा जाय तो वह कई गुना अधिक काम देती है।

क्या आप जानते हैं कि आपका फाउन्टेन पेन घिसकर नहीं, प्राय: खोकर नष्ट होता है। पेन्सिलें कभी पूरी तरह काममें नहीं आतीं, कोई माँग लेता है अथवा खो जाती हैं। चाकू और रूमाल भी प्राय: खोते हैं। नालेदानी घरमें अनेक होती हुई भी इधर-उधर रखकर भुला दी जाती हैं। कीमती साड़ियाँ पहनी नहीं जातीं, संदूकोंमें रक्खी

रहती हैं और कीडोंका भोजन बनकर नष्ट होती हैं। जिस साड़ी-पर सबसे अधिक व्यय होता है, वह उतनी ही कम पहनी जाती है। आभूषणोपर औरते प्राण देती हैं, किंतु वे खोकर नष्ट होते हैं, इनके कारण चोरियाँ होती हैं, औरतें चुरा ली जाती हैं और अपमानित होती हैं।

यदि आप अपनी थोड़ी-सी वस्तुओंको क्रम-व्यवस्थासे सजाकर रक्खें तो इन्हींकी सहायतासे आप घरकी शोभामे वृद्धि कर सकते हैं। सौन्दर्यके लिये अधिक वस्तुओंकी आवश्यकता नहीं है। जो थोड़ी-सी चीजें हैं, उन्हींकी सहायतासे आप सौन्दर्यकी उत्पत्ति कर सकते हैं। बस, आपकी दृष्टिमें कलात्मकता अपेक्षित है। कलात्मक दृष्टिसे हर वस्तुका एक नियत स्थान है, जहाँ वह सुन्दरतम लग सकती है। घरकी शोभा इस बातमें है कि आप उस स्थानको खोज निकालें। प्रत्येक वस्तुके लिये एक स्थान निश्चित करे। घरका प्रत्येक सदस्य उस वस्तुको उठाकर उसको नियत स्थानपर ही रक्खे। आपके कमरेमें एक चित्र हो, या कैलेंडर, लेकिन यदि वही स्वच्छ हो, मैलका नाम-निशान न हो, तो वही आकर्षक प्रतीत होता है।

सौन्दर्य व्यवस्थापर निर्भर है। जूते कैसे नगण्य हैं, किंतु यदि आप उन्हींको पॉलिश कर सजाकर क्रमानुसार रक्खे, अपने सन्दूकोंको स्वच्छकर उनपर स्वच्छ वस्त्र बिछा लिया करे, चारपाइयोंकी चादरोंको गंदा न होने दें, कुर्सियों, मेजो, पुस्तकोंकी धूल झाड़ते रहें तो निश्चय जानिये, घरकी चीजोंमें ही सौन्दर्य प्रस्फुटित होगा

और आपको अपने साधारण घरमें ही आनन्द प्राप्त होगा। आत्मा प्रसन्न रहेगी और मनमें यह साहस रहेगा कि आप अच्छे तरीकेसे रहते हैं।

जीवनमें अधिक वस्तुओंकी आवश्यकता नहीं है, बल्कि जो थोड़ी-सी वस्तुएँ हों, उन्हींसे सबसे अधिक, सबसे सुन्दर क्रम-व्यवस्थासे काम लेनेमें आनन्द है। जिनके पास अधिक वस्तुएँ पड़ी रहती हैं, उनमेंसे आधी ही काममें आती हैं, शेष अनावश्यक, जंग लगी हुई, निष्क्रिय, अव्यवस्थित—बेकार पड़ी रहती है। आप अधिक वस्तुओंके संग्रहके मोहमें न पड़े, वरं अपनी थोड़ी-सी वस्तुओंको सजा-सम्हाल कर प्रयोगमें लाये।

सार्वजनिक स्थानोंकी सफाई, सुव्यवस्था एवं सौन्दर्यका उत्तरदायित्व आपपर है। आप एक श्रेष्ठ नागरिक हैं। समाजकी उन्नतिमें आपका महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपकी आदतोंसे समाज बनता-बिगड़ता, समुन्नत-अवनत होता है। अतः आप सार्वजनिक स्थानोंको कार्यमें लेते समय उनकी सफाई और सुव्यवस्थाके सम्बन्धमें बड़े सावधान रहें।

यदि आप धर्मशालामें टिके, तो उसके कमरे या इर्द-गिर्दकी सफाईका ध्यान रक्खें, कमरेको वैसा ही सुन्दर छोड़कर जायँ, जैसा वह आपको मिला था। पब्लिक-पाखानोंका ठीक इस्तेमाल करे। पेशाबघरोंमें सर्वत्र ध्यान रक्खें। पब्लिक पार्क, मन्दिर, सार्वजनिक भवनोंको बिगड़ने न दें। रेलके डिब्बे हम सबके काम आते हैं

किंतु हम सफरके पश्चात् उन्हे छिलको, पत्तो, पानी, धूल-मिट्टीसे सना हुआ. जूठनसे परिपूर्ण छोड़कर उठते हैं। यह हमारी गंदी आदतोका परिचायक, गंदी वृत्तिका द्योतक है। हर सार्वजनिक स्थान सबके बैठने-उठनेके कार्यमे लेनेके लिये बना हुआ है। यदि हममेसे प्रत्येक इसे अच्छी तरह प्रयोगमें लाये, तो वह अधिक दिन चल सकता है और सबको आकर्षक लग सकता है। सार्वजनिक स्थान हमारे हैं। जैसे हम अपनी वस्तुकी सफाई और सुरक्षाका ध्यान रखते हैं. उसी प्रकार हमे सार्वजनिक वस्तुओ तथा स्थानोंका ध्यान रखना चाहिये।

जो समर्थ हैं. अपनी शक्ति या रुपयेका दान दे सकते हैं, उन्हे सार्वजनिक स्थानो, पार्कों, पुलो, धर्मशालाओ, पब्लिक स्कूलों, टहलनेके स्थानों, मन्दिरो, स्नानके घाटो, रेलके डिब्बो, टट्टियो, प्लेटफार्मोकी स्वच्छता और व्यवस्थाका पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। अपने रुपयेसे मरम्मत या नयी वस्तुएँ बनवानेमें पीछे नही रहना चाहिये। रुपये दान देनेके स्थानपर उनसे मरम्मत या पुताई करा देना श्रेयस्कर है।

अपने देश, समाज तथा शरीरकी सफाई, सुव्यवस्था और सौन्दर्यमे हम सबका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दायित्व है। हमें चाहिये कि अपनी जिम्मेदारी अनुभव करें।

आत्मग्लानि और उसे दूर करनेके उपाय

आपसे अनजानमें या बिना सोचे-समझे असावधानीमें कोई पाप हो गया। आपको इस दुष्कृत्यपर पश्चात्ताप और आत्मग्लानि है। आपके हृदयका रोम-रोम पश्चात्तापसे क्लान्त है। आप अपने पाप-कर्मपर पर्याप्त दुखी हो चुके हैं। एक बार बौद्धिक तथा मानसिक दृष्टिसे पश्चात्ताप कर लेना ही यथेष्ट है। जब पश्चात्ताप मर्यादाका अतिक्रमण कर जाता है तो यह एक भावना-ग्रन्थि या कम्प्लेक्सका रूप ग्रहण कर लेता है जिसे आत्मग्लानि या रिमोर्स कहते हैं। अधिक दिनो तक मनमें शोक और आत्मग्लानिके भाव रखनेसे

मनुष्यकी बड़ी मानसिक हानि होती है। अधिक पश्चात्ताप या शोक करनेसे बहुत-सी सृजनात्मक शक्तिका अपव्यय होता है।

मैंने ऐसे कई नवयुवक देखे हैं, जिनसे अनजानमें या अबोध अवस्थामें कोई पाप या दुष्कर्म हो गया था, पर जो जिन्दगी भर पश्चात्ताप करते रहे और विगत पापसे अपनेको शुद्ध न कर सके। अपनी करनीपर सदैव दुःख मनाते रहे।

आज भी ऐसे अनेक धर्मभीरु व्यक्ति देखनेमें आते हैं, जो लज्जावश किसी भयानक दोषीकी भाँति मुँह छिपाये दारुण मानसिक यातना, अपमान, निरादर अथवा आत्मग्लानिकी स्थायी भावनाका अनुभव किया करते हैं। देशके लाखो हीरे बचपनके अन्धकार या अबोध अवस्थामें किये गये दुष्कर्म, हस्तमैथुन, वासना-लोलुपता, वेश्यागमन इत्यादिके शिकार बनकर आयु भर पछताते, रोते, कलपते रहते हैं। अपने आपको धिक्कारते रहते हैं। आत्मग्लानिके आधिक्यके कारण सामाजिक जीवनमे पदार्पण नहीं कर पाते या सार्वजनिक कार्योंमें डरने-घबराते रहते हैं। उनकी आकाङ्क्षाएँ, अभिलाषाएँ और उमंगें अधखिली कलीकी भाँति असमय ही मुरझा जाती है। उन्हे चाहे कितना ही अच्छा कार्य आता हो, ऊँचे उठने, योग्यताओंका प्रदर्शन करनेकी कैसी ही शक्ति क्यों न हो, वे बराबर चुप्पी धारण किये रहते हैं। वे हृदय खोलकर अपने मनकी गाँठे खोल देना चाहते हैं, किंतु आँखें चार करनेमें उन्हे लज्जा और गुप्त भय-सा अनुभव होता है। दृष्टि नीचे किये रहना, बात-बातमें शर्मा जाना, नवयौवना स्त्रीको भले ही आभूषित करता रहे, किंतु पुरुषोंके लिये

विशेषत: महत्त्वाकांक्षीके लिये तो यह बड़ा भारी मानसिक दोष है। अधिक आत्मग्लानिके शिकार बनकर या अतिशोकग्रस्त रहकर हम बिना अपराधके ही अपराधी बन जाते हैं। अनेक बार तो नीची दृष्टि देखकर लोग उन्हे दोषी और अपराधी भी समझ बैठते है। उफ्! कैसी कारुणिक दशा है उस व्यक्तिकी, जो भला-चंगा होते हुए भी पग-पगपर इसी कारण अपनेको नीचा और अति साधारण समझता है, क्योंकि उससे एक बार पाप हो गया था। अति आत्मग्लानिग्रस्त व्यक्ति जब बाजारमें निकलता है, तो उसके मनमें यही गुप्त भय रहता है कि दुनियाके सभी व्यक्ति उसीके पाप, त्रुटि या कमजोरीको तीखी दृष्टिसे देख रहे हैं। चाहे वह कहीं हो, उसे ऐसा अनुभव होता है कि संसार उसकी प्रत्येक क्रिया, हाव-भाव, प्रत्येक छोटी बातको घूर-घूर कर देख रहा हो, जैसे पत्थर पत्थरमें हजारों नेत्र हों जो उसे हडप कर डालनेपर तुले हुए हों।

अपने पापका पश्चात्ताप करना निश्चय ही उचित है। आपसे कोई दुष्कर्म हो गया है, तो उसके लिये अवश्य प्रायश्चित्त करें, भविष्यमें उसे कभी न करनेकी कड़ी शपथ लें, बड़े सावधान रहे, कुसङ्ग और कुमित्रोंसे सदा बचे रहे, गन्दे स्थानोंपर न जायँ, कुविचार मनमे न आने दे। लेकिन जब आप यह सब कुछ कर चुके, तो निरन्तर बीती हुई बातोंमें कदापि लिप्त भी न रहें।

कैथरीन मैन्सफील्ड लिखते है, 'आप इसे अपनी जिंदगीका नियम बना लीजिये कि कभी पश्चात्ताप न करेंगे और बीती हुई अप्रिय बातोंको भूल जायँगे, आप बिगड़ी हुई बातोंको कदापि नहीं बना

मानते—ऐसा करना कीचड़में सने रहनेके समान दूषित है ।'

आत्मग्लानिका एक कारण गुप्त भय है । दूसरा साहसकी कमी है । इस मानसिक रोगीके मानसिक संस्थानमें गुप्त भय तथा डरपोकपन अत्यधिक वर्तमान रहता है । वह लोगोंसे डरता है कि कहीं उसकी गुप्त बातें प्रकट न हो जायँ । मनुष्योंकी भीड़ उसके हृदयमें भयका संचार कर देती है । जहाँ दो-चार व्यक्ति दीखे कि उसे अनुभव होना शुरू हुआ, जैसे वे सब उसीको देखनेके लिये एकत्रित हों, वे उसका मजाक कर रहे हों, उसके पापों और पुराने दुष्कर्मोंकी आलोचना कर रहे हों । आत्मग्लानिग्रस्त व्यक्ति सभा-समितियोंमें सम्मिलित नहीं होता, दस व्यक्तियोंके बीचमें बोलनेसे घबराता है । यहाँ तक कि छोटे-छोटे बच्चोंमें भी आँखें ऊँची कर अपने विचार प्रकट करनेका साहस उसे नहीं होता । वह अपने उच्च अधिकारियोंसे मिलनेमें डरता है और अपने सहयोगी कर्मचारियोंसे मिलने-बोलनेमें घबराता है । अपरिचितोंसे घबराता है । अपनी योग्यता एवं क्षमतामें उसका आत्मविश्वास लुप्त हो जाता है । भय तथा डरपोकपनके अतिरिक्त आत्मग्लानिके कारणोंमें उदासीनता, गम्भीरता, लज्जा, निराशा, आशङ्का और गुप्त रोग है ।

आत्मग्लानि बढ़ने न दीजिये, अन्यथा यह स्थायी नैराश्य और आत्महीनता, स्थायिक मानसिक दुर्बलताका रूप धारण कर लेगी । हम प्रत्येक घटनाको अपने पक्षमें ही तय होनेकी कामना किया करते हैं, घटनाओंको व्यक्तिगत स्वार्थकी दृष्टिसे देखते हैं, अपने व्यक्तिगत स्वार्थोंसे नापते हैं । यदि ये घटनाएँ हमारे पक्षमें

घटित नहीं होती, तो हम खिन्न हो जाते हैं, क्रुद्ध होकर ईर्ष्या अथवा प्रतिशोधकी भावनासे जलने-भुनने लगते है। यह सत्य है कि हम अपना रोप स्पष्टतः प्रकट नहीं करते, किंतु अंदर-ही-अंदर वह हमें खोखला किया करता है। दूसरोंपर तो इसका कुछ प्रभाव पड़ता नही। उल्टे हमारी ही हानि हो जाती है। फिर हम क्यों अपनी व्यर्थ आशाओको ऊँचा चढ़ाये? क्यों कल्पनाके महल खड़े करते रहें? और फिर चारो ओरसे टकराकर क्यों आत्मग्लानिके शिकार बनें!

अपने पापोंपर पछतावा करनेके पश्चात् फिर उसके ध्यानमें निरत मन रहिये। दूसरे व्यक्ति भी इन्ही परिस्थितियोंमेंसे होकर गुजरे हैं।

वास्तवमें हममेंसे पूर्ण निश्छल, पाक-साफ, दोष-मुक्त कोई भी व्यक्ति नहीं है। एक बार ईसा महान्ने कहा था—'वह मेरे ऊपर पत्थर मारे, जिसने कभी पाप न किया हो।' यह सुनकर उन्हें दण्ड देनेवालोंकी निगाहे झुक गयीं! उनके पुराने पाप एक-एक करके उनकी स्मृतिपर उभर आये और वे शरमा गये।

अपने पापोंपर व्यर्थका शोक और पश्चात्ताप छोड़कर नये सही जागरूक रूपमें जीवनमें प्रविष्ट होइये। व्यर्थका डर या पोचपन निकालिये और खोये हुए आत्म-विश्वासको बनाइये।

मि० मिल्टन पावेल साहबका कथन है कि 'यदि आप किसी आत्मग्लानिके रोगीको ठीक करना चाहे तो उसके मनसे गुप्त भय और डरपोकपन, भीरुता निकालिये! अपनी योग्यता और क्षमतापर

अविश्वास करनेके कारण ही रोगी दारुण मानसिक यातना भोगा करता है। अतएव उनमें साहस और आत्मविश्वास उत्पन्न करनेकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। मनुष्यका आत्मविश्वास ही वह अमोघ शक्ति है, जिसके कारण वह उत्साही, क्रियाशील रहता है तथा सार्वजनिक एवं सामाजिक जीवनमें सफलता प्राप्त करता है।

प्रिय पाठक ! तनिक सोचकर तो देखिये, जिस मनुष्यके मनसे भय, चिन्ता, शङ्का, डर, संदेह, निराशा, लाचारी और निर्बलता टपक रही है, वह क्या कभी कोई महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकेगा ? शङ्का और संदेह हमारी उन्नतिमें बड़ी बाधाएँ हैं। ये हमारी मानसिक एकाग्रतामें बाधक हैं और हमारे निश्चयको ढीला कर देनेवाले दुष्ट विकार हैं। ये हमें अपने उद्देश्यसे चल-विचल कर देनेवाले फिसलनेके पत्थर हैं।

संसारमें हमें अविचल साहस एवं धैर्यसे कार्य करना चाहिये। बहुतसे मनुष्योंकी सफलता और समृद्धिका कारण यही है कि वे अपनी शक्तियों और सामर्थ्यमें पूर्ण विश्वास कर सकते हैं।

'हम कार्य कर सकते हैं, हमें ऊँचे दर्जेकी सफलता प्राप्त होगी, हम निरन्तर प्रभुता प्राप्त करते जा रहे हैं, ऊँचे उठते जा रहे हैं, निरन्तर उन्नतिके प्रशस्त पथपर आरूढ हैं'—इन दिव्य संकेतोंसे अपनी आत्माको सराबोर करते रहिये और इन्हें अपने मानसिक संस्थानका एक अङ्ग बना लीजिये, प्रचुर लाभ होगा।

प्रिय पाठक ! योगीकी तरह एकान्तवासी न बनिये। जहाँतक बने उत्साहपूर्वक सामाजिक कार्योंमें भाग लीजिये। आप व्यर्थ ही डरते

किस लिये हैं? क्या आप नहीं जानते कि अन्य व्यक्ति भी आपसे अधिक नहीं जानते। वे भी मामूली ही हैं। जरा हिम्मतसे काम लीजिये।

अवसर मिले तो किसी सभा, समितिमें सम्मिलित हो जाइये और बेधड़क गाना-बजाना या खेल-कूद आदि सीख लीजिये, जिससे आप अपने क्लबके लोगोंसे खूब मिल-जुल सकेंगे। पहले-पहल यदि झेंपना पड़े तो घबरा न जाइये, प्रत्युत डटे रहिये। जहाँ मनमें आत्मग्लानि उत्पन्न हो तुरंत उसे मिटानेके लिये उसके विपरीत कार्य कीजिये। निरुत्साहके स्थानपर उत्साह और उल्लास धारण कीजिये। जहाँ हृदयमें लज्जा-संकोच अथवा भय आये, वहीं साहसपूर्ण जीवन व्यतीत कीजिये। 'हिम्मते मरदां मददे खुदा'। बिना हिम्मत संसारमें मनुष्यका कोई मूल्य नही है।

ढीले वस्त्र पहिनिये, जिससे गहरा श्वास-निश्वास हो सके। मांसपेशियोंको फुलाना आत्मग्लानिको भगानेमें बहुत सहायक होता है। किसी महत्त्वपूर्ण कार्यके लिये किसीसे मिलने जाना हो तो लज्जा न कर अवश्य वहाँ जाइये। जी न चुराइये। मनमें यह निश्चय कीजिये कि डरेंगे नहीं, संकोच और भय नहीं करेंगे। पुराने पापोंकी बात नही सोचेंगे।

पश्चात्तापकी अधिकता मनुष्यकी मौलिकता तथा नयी शक्तियोंका ह्रास करनेवाली है। अतः उससे मुक्त रहिये, मङ्गलमय भविष्यकी आशा रखिये।

जीवनकी कला

मनुष्यके जीवनमें नाना प्रकारके रस है। जिस प्रकार मधु-मक्खी सुन्दर सुरभित सुमनोका मधु एकत्रित करती है, उसी प्रकार वह कड़ुवे नीमके कसैले फलोसे भी शहद लेती है। मीठा और कसैला शहद मिलकर एक नया स्वाद देता है। इसी प्रकार मानव-जीवनमे सुख-दुःख, आशा-निराशा, मजबूरियाँ-उल्लास, हर्ष-विषाद आदि नाना प्रकारके मीठे-खट्टे-कसैले पुष्प है, जिनसे हम जीवन-रस एकत्रित करते हैं।

हमारा जीवन एक वैज्ञानिककी प्रयोगशालाकी तरह है, जिसमें हम स्वयं अपने साथ तथा समाजके अन्य नागरिकोंके साथ रहकर नित्य नूतन प्रयोग किया करते हैं। एक तरह हम सब ही इस संसार-रूपी प्रयोगशालामें अपने अनुभवोंद्वारा प्रयोग कर रहे है। हमारी पांच इन्द्रियाँ, हमारा मस्तिष्क, हमारा शरीर वे यन्त्र हैं, जिनसे हम जीवन और समाजविषयक ज्ञान एकत्रित कर रहे हैं।

वे कौनसे जीवन-सत्य हैं, जो संसारका अनुभव करनेके पश्चात् हमें मिलते हैं तथा जिनसे दूसरोंको लाभ हो सकता है? आइये, विद्वानों, महर्षियों तथा ज्ञानियोंद्वारा निर्णीत कुछ जीवन-सत्योपर विचार करें।

जीवनमें रस लें—

हमारा आधारभूत सत्य यह होना चाहिये कि हम अपने जीवनको प्यार करना, उसमें अधिक-से-अधिक सफलता, प्रतिष्ठा एवं

गौरव प्राप्त करनेका उद्देश्य अपने समक्ष रक्खें। बुद्धिमत्तापूर्वक जीवनका कार्यक्रम, पेशा, कार्यक्षेत्रका चुनाव करे। जो कार्य हमें जीवनभर करना है, उसपर रचनात्मक दृष्टिसे विचार करें। उसमें आनन्द लें। लोग कुछ वर्ष पश्चात् अपने कार्यमें दिलचस्पी या रस लेना छोड़ देते है और कामको भारस्वरूप समझने लगते है। यह बड़े क्षोभका विषय है।

अपने कार्यमें रस लीजिये, उसे दिलचस्प बनाइये। दिलचस्पी-से अपना कार्य करनेसे मनुष्यका स्थायी उत्साह बना रहता है और कार्य सहज सरल हो उठता है। गहराईसे अपने पेशेके गुप्त रहस्य मालूम करें और अपने आपको कार्यके अनुकूल बना लें, ढाल ले। जैसे-जैसे आपकी शक्ति, स्वभाव और आदते पेशेके अनुकूल ढलती जायँगी, वैसे-वैसे एकरसता हटती जायगी। हम निरन्तर अपने पेशोमें उन्नति करते जा रहे हैं—यह भाव मनमें रखनेसे स्थायी उत्साह बना रहता है।

प्रत्येक व्यक्तिको कुछ-न-कुछ कार्य करना पड़ता है, हम भी अपना कार्य कर रहे है। जब बिना काम जिंदा नहीं रहा जा सकता, तो हम क्यो न अपने कार्यमें रम ले—यह मनमें बैठा लेना चाहिये।

प्रधान कार्यके अतिरिक्त कुछ अवकाशका समय निकालें, जिसमे कुछ-न-कुछ मनोरञ्जन करते रहें। मनोरञ्जन जीवनका रस है। कुछ कालके लिये आप संसारकी चिन्ताएँ भूल जायँ। उत्साहसे खेलोंमें भाग ले। उत्साह बनाये रखनेसे शरीरकी शक्तियाँ सक्रिय हो जाती हैं और आत्मविश्वास बढ़ता है।

पेशेमें रस बनाये रखनेके लिये यह आवश्यक है कि आप कुछ दिनोंके लिये मुख्य पेशा छोड़ते रहें और दूसरे कार्योंमें संलग्न होते रहें। नया कार्य करनेसे सरसता बनी रहती है तथा कुछ काल पश्चात् पुराने पेशेके प्रति पुनः उत्साह जाग्रत् हो उठता है।

बन्धनोंसे मुक्त समझें

सम्भव है आपके मानसिक जीवनमें गुप्त भावना ग्रन्थियाँ पड़ी हों। आप ऐसे सभी संस्कारोंसे मुक्त रहनेका अभ्यास करें, जो अनुचित रीतिसे आपके व्यक्तित्वपर भार डाल रहे हैं। अपने सामर्थ्य-पर रहकर नये विचारोंकी दुनियामें रहा करें। नये रूपमें अपनी परिस्थितियों, कठिनाइयों और नाना समस्याओंपर विचार करें।

आपके बन्धन बाहरी या मानसिक दोनों प्रकारके हो सकते हैं। उनका विचारपूर्वक विश्लेषण करें, वर्गीकरण करें, फिर पृथक्-पृथक् विचार कर एक-एकको सुलझाएँ। समस्याओंकी गुत्थियाँ सम्भव है आपको भयभीत कर दें, किंतु जैसे-जैसे आप उनका वर्गीकरण करेंगे, वैसे-वैसे वे साफ होती जायँगी। बिखरे और उलझे हुए बालोंको देखकर मन कैसा घबराता है, किंतु उन्हीं केशोंको जब स्वच्छ कर कंघीसे सुलझा लिया जाता है, तो वे ही सुन्दर प्रतीत होने लगते हैं। यही हाल जीवन-समस्याओंका है। दूरसे उलझा हुआ देखकर आपको जो घबराहट होती है, समीप आनेपर वह विलुप्त हो जाती है।

आवश्यक-अनावश्यकका भेद करना सीखें

अनेक बार हमारी मानसिक शक्तियाँ धोखा दिया करती हैं। अनेक अपूर्ण कार्योंके प्रति हमारा सम्मान नहीं होता। अरुचिकर

कामोंको हाथमें लेनेको तबियत नहीं करती। सच्चे और ठोस कार्यसे बचनेके निमित्त प्रायः हम अनावश्यक कार्योंको हाथमें ले लेते है और उनमें ऐसे संलग्न हो जाते हैं, मानो अत्यन्त जरूरी काम कर रहे हो। कष्टसाध्य कार्योंसे भागनेकी और खेल-कूदमें प्रवृत्त रहनेकी वृत्ति बच्चोंमें विशेष रूपसे पायी जाती है। हममेंसे भी अनेक इसी वृत्तिके शिकार है। हम उन जरूरी कार्योंको न करेंगे, जिनमें श्रम लगता है। कहानी, उपन्यास पढ़नेवाले ढेरों है, पर गम्भीर साहित्यमें आनन्द लेनेवाले नगण्य है।

कठिन, अरुचिकर, परिश्रम और मनोयोग चाहनेवाले कार्योंको आप सबसे पहले करे। प्रातःकालका समय ऐसे कठोर कार्योंके लिये सुरक्षित रखिये। इसमें आप कठिन कार्योंको बखूबी कर सकते है; क्योंकि आपका मन और शरीर ताजा है।

कौन काम पहले, कौन वादमें करे इसका विवेक मनुष्यको अपनी उच्चतम शक्तियोंको एक स्थानपर केन्द्रित करना सिखाता है। अनावश्यक कार्य सरल होते हैं पर उनसे कोई स्थायी लाभ नहीं होता। ऐसे मोहक प्रलोभनसे सावधान !

सच्ची इच्छा और नकली इच्छामें विवेक करें

आप जीवनमे छोटी-बड़ी अनेको इच्छाओंको पूर्ण करने तथा बड़े बननेके अनेको स्वप्न देखा करते है। 'मै यह भी कर लूँ, वह भी कर लूँ' 'लक्ष्मीकी मेरे पास कृपा हो', 'सरस्वती सहायक हो' ऐसी-ऐसी सैकड़ों इच्छाएँ सागरमें तरङ्गोंकी भाँति मनमें उत्पन्न होती रहती हैं। ये थोथी बाते हैं। जो निरी कपोल-कल्पनामें निमग्न रहता

है कार्य कुछ नहीं करता, वह निरा शेखचिल्ली ही कहा जायगा। ये सब नकली इच्छाएँ हैं, जिनका कुछ महत्त्व नहीं।

सच्ची इच्छा मनमें रखनेवाला अपने लक्ष्यके प्रति उत्साह, जागरूकता और परिश्रमसे युक्त रहता है। नकली इच्छा मेहनतका अवसर आते ही विलुप्त हो जाती है। असली इच्छा कठोर परिश्रम, कठिनाई, असफलता तथा कष्टोंके बावजूद स्थायी बनी रहती है। सच्ची इच्छामें स्थायी प्रयत्नकी भावना है। जिसके प्रति जितनी दृढ़ सच्ची इच्छा होती है, वह उतनी ही सफल होती है। नकली इच्छा आकस्मिक सक्रियता मात्र है, सच्ची इच्छा निरन्तर उत्साहपूर्ण सक्रियता है। नकली इच्छाओंको शक्तिका अपव्यय, आलस्य और व्यसन नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं, पर सच्ची इच्छाके सामने ये दुम दबाकर भाग जाते हैं।

शक्तिके अपव्यय (बिखरना) से बचकर कार्यको हाथमें लें, उसमें गड़ जायँ, तभी आप सच्ची इच्छाकी साधना कर सकते हैं। सावधान! आलस्य एवं व्यसनको पास न फटकने दीजियेगा। मानव संस्कृतिने जितने महान् कार्य किये हैं; वे तीव्र स्थायी इच्छा-शक्तिके नेतृत्वद्वारा ही सम्पन्न हुए हैं। इच्छा-शक्ति ही आपको आगे प्रेरित करनेवाली अमोघ शक्ति है। निश्चयमें कभी ढील न रहे।

समीपसे देखें

दूरकी दुनिया, व्यक्ति, मनुष्य, संस्थाएँ, एक अभिनव आकर्षणसे युक्त प्रतीत होते हैं। वस्तुकी दूरी एक झीना धुंधलापन नेत्रोंपर बिछा देता है। इस अस्पष्टताके आवरणमें असुन्दर अकल्याणकारी भी सुन्दर और कल्याणकारी प्रतीत होने लगता है। दूरसे चित्रोंमें नया

सौन्दर्य भर जाता है। समीपसे देखनेपर आप ऐसे अनेक रँगे सियारोंसे परिचित हो जायँगे, उनके अनेक रहस्य आपके सामने प्रकट होंगे, संस्थाओंकी कलई खुल जायगी, बडे व्यक्तियोंकी पोलें खुल जायँगी। आप देखेंगे कि जो दूरसे चमकता है, वह सब सोना नहीं होता। चाँदमें भी कालिमा लगी हुई है। समीपसे देखनेपर आपको बडे व्यक्तियोंमें तुच्छता और तुच्छ समझे जानेवालोंमें त्याग और बलिदानकी महानता दृष्टिगोचर होगी।

अपनी गुप्त बातें हर-किसीसे न कहें

प्रत्येक व्यक्तिके पास कुछ ऐसी गुप्त बाते रहस्योंके रूपमें होती हैं, जिनकी गोपनीयतापर उसकी प्रतिष्ठा, साख या सामाजिक स्थिति निर्भर रहती है। अनेक बार ऐसी गुप्त व्यथाएँ होती है, जिन्हे दूसरे व्यक्ति बाँट नहीं सकते, केवल हँसी और व्यंग्य अवश्य कर सकते हैं। आपके कष्ट सुनकर उनकी दर्प-पूर्ति और ईर्ष्याकी वासनाएँ शान्त होती हैं। आपकी तकलीफोंको सुनकर वे अपने-आपको उनसे ऊँचा समझते हैं। आपको हेय दृष्टिसे देखते हैं। मन-ही-मन आपकी मजबूरियों और असफलताओंपर हँसते है। जो बाहरसे सान्त्वना भी देते दिखायी देते हैं, उनके मनमें भी प्रायः अपनी दर्प-पूर्तिका भाव रहता है।

जिनकी आप सहानुभूति चाहते हैं, उनसे आपको कोई लाभ होने-जानेवाला नहीं है। जो सहानुभूति केवल मिथ्या प्रदर्शनके लिये है, उससे क्या लाभ? यही सहानुभूति प्रदर्शन करनेवाले दूसरोंके सम्मुख जाकर आपकी गुप्त बातें फैलायेंगे और आपकी अप्रतिष्ठाका कारण बनेंगे। आपके मित्र ही आपके गुप्त भेद चारों ओर फैलाकर किनारा कस लेंगे।

कविवर रहीमने इसी तत्त्वको स्पष्ट करते हुए लिखा है—

रहिमन निज मनकी व्यथा मन ही रखिये गोय ।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँट न लैहैं कोय ॥

व्यापारियो, उच्च अधिकारियो तथा नेताओके लिये अपने कार्यालय, व्यापार, दूकान, घर या पार्टीके भेदोको गुप्त रखना आवश्यक है । गोपनीयतासे आपमे दूसरोको आकर्षण प्रतीत हो जायगा ।

सम्भव है, आपमें कुछ ऐसी गुप्त कमजोरियाँ हैं, जिनका दूसरोंको बताना आपके, आपके परिवार या अन्य व्यक्तियोके लिये अहितकर हो । ऐसी दुर्बलताओको दफना देनेमें ही लाभ है ।

व्यापारमें अपने लाभ-हानि, वास्तविक आर्थिक स्थिति किसीसे कहना अत्यन्त हानिप्रद है । जबतक बाहरवाले यह समझते है कि आपकी आन्तरिक स्थिति अच्छी है, आप खूब लाभ कमा रहे है, आपके पास पूँजी एकत्रित है, तबतक आपकी साख बँधी रहती है, उधारसे भी आपके व्यापारमें सहायता मिलती है किंतु आपके घाटेकी बात सुनकर आपके निकट सम्बन्धी भी किनारा कस लेगे, कोई तनिक भी सहायता प्रदान न करेगा । बनी-बनीके सब कोई साथी हैं, पर बिगड़ीका कोई नहीं है । सम्भव है, धीरे-धीरे आपकी हानि दूर होकर फिर अच्छे दिन फिरें, समयकी गतिके साथ आप पुनः समृद्धिशाली बन जायँ । अतः जिन मानसिक उलझनो, हानियो, कष्टोमें आप हो, उन्हें पृथक्-पृथक् सुलझाकर स्वय हल करें । अपने आत्मबल, गुप्त सामर्थ्यको उत्तेजित करें और स्वयं अपनी सहायता करे । दूसरोंसे अपने कष्टों एवं मजबूरियोकी कहानियाँ न कहते फिरें ।

समृद्धि अथवा निर्धनताका मूल केन्द्र——हमारी आदतें !

एक विद्वान्ने लिखा है, 'आप एक कंजूस या लोभी व्यक्तिसे सब कुछ छीन सकते हैं । उसके घर-बार, वस्त्र-आभूषण, पूँजी सब कुछ लूट सकते हैं और उसे घरसे बाहर अकेला खड़ा कर सकते हैं, किंतु फिर भी उसके पास एक महान् वस्तु रह ही जाती है । आप उसकी आदतों——रुपया जोड़ने और एकत्रित करनेकी प्रवृत्तिको नहीं लूट सकते । यह आदत उसके पास रह ही जायगी और अवसर प्राप्त होते ही वह इसीके बलपर पुनः एक दिन समृद्धिशाली बन जायगा ।'

स्टीविनसन कहा करते थे——'सांसारिकता और व्यवसायसे ग्रस्त मनुष्योंको आप संसारके कोलाहल एवं चिन्ताओंसे दूर किसी सुरम्य प्रदेशमें ले जाइये, मनोरम उद्यानमें रखिये, उनके आन्तरिक कष्ट दूर करनेके लिये उनका खूब मनोरञ्जन कीजिये, किंतु उनके मनमें सांसारिकतामें लिप्त रहनेकी जो आदत है, वह उस सुरम्य प्रदेशमें भी उनका पीछा न छोड़ेगी । वे घर, परिवार, रुपयेकी लेन-देन, पूँजीको एकत्रित करने अथवा विवाहोंकी चिन्ताओंमें संलग्न रहेंगे । मनोरम प्रकृति उन्हे उल्लसित-प्रमुदित न कर सकेगी ।'

वास्तवमें, मनुष्यके सुख-दुःख, चिन्ता, आनन्द-समृद्धि, निर्धनताका कारण बाह्य संसार या परिस्थितियोंमें नहीं है । वह

स्वयं मनुष्यकी अपनी व्यक्तिगत आदतोंमें विद्यमान है। आदतोंकी बुनियादपर हमारी सामाजिक प्रतिष्ठाका महल खड़ा होता है। हमारी अमीरी-गरीबीका मूल केन्द्र ये आदतें ही हैं। कुछ उदाहरण लीजिये—

क्या कारण है कि बनिये अल्प आयमें भी अमीर बन जाते हैं, जब कि दूसरे वर्गके व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक आय करते हुए भी आर्थिक दृष्टिसे खोखले बने रहते हैं? कारण—उनकी आदतें हैं। बनिया संयमी होता है। वह अपनी आदतोंपर कठोर नियन्त्रण एवं अनुशासन रखता है। उसमें इन्द्रिय-लोलुपता, रुपयेका अपव्यय करना, बाह्य प्रदर्शन, थोथी शानकी दिखावटी आदतें बहुत कम पायी जाती हैं। वह चार पैसे कमाता है, तो एक पैसा व्यय करता है। तीन पैसे संकट-कालके लिये बचाकर रखता है। यह बचानेकी, संयम और निरभिमानताकी आदतें बनियोंमें कुलसे चली आती हैं। इसीलिये बनियेका पुत्र उन्हीं परिस्थितियोंमें अपनी आदतोंका निर्माण करता है। बनिया-परिवार बहुत [illegible] होता है।

दूसरी ओर आजकलके दिखावटी, दंभी, झूठी शानमें मस्त बाबू वर्गकी आदतोंको लीजिये। वे बाहरी दिखावा, सफेद लिबास, शृंगार, असंयम खूब करते हैं। महीनेमें पैंतालीस रुपये कमायेंगे और दिखायेंगे ऐसा मानो डेढ़ सौ रुपये कमाते हो। भले ही इस अपव्यय और मिथ्या शानको कायम रखनेके लिये कर्ज लेना पड़े। पेन्ट भी हो, नेकटाई भी और सिनेमा-सिगरेट-पान भी। जूतेपर पालिश और बालोंमें सुगन्धित तेल यह दुनियाँको

धोखेमें डालनेके लिये एक कृत्रिम पर्दा खड़ा कर लेना चाहते हैं जिससे उनका असली स्वरूप प्रकट न हो सके । जो चार पैसे कमाकर छः पैसे व्यय करेगा, वह क्या कभी समृद्ध हो सकेगा ? भले ही वह दो-चार वर्ष जनतापर झूठी शान जमा ले, किंतु उसकी नींव बालूपर ही स्थित समझनी चाहिये ।

एक दिन मैं चमारसे जूता गठवा रहा था । कम उम्रका लड़का था, कमीज भी जरा उजली, धोती भी ढगकी और बालोंमें तेल । बाते चल पड़ीं । मैने पूछा, 'कितना कमाया है ।' वह बोला—'अभी क्या, बाबूजी कुल छै-सात आने पैसे आये है, सिनेमाके लायक, बस । सिनेमाका शो देखते जायँगे । भोजनके लिये शामतक आठ आने और चाहिये ।'

'क्या तुम रोज सिनेमा देखते हो ?'

'शामका शो, पाँच पैसेकी बीड़ी, एक माचिस और दो बार पान, बस सरकार—यह नहीं छूटते । इनके लिये आठ-नौ आने, रोज—पहले इकट्ठे करते है । बादमें भोजन देखा जाता है । कभी-कभी भूखे पेट सोना पड़ता है ।'

'पैसे ही नहीं है, सरकार । विवाहकर बीबी-बच्चोंको पालनेके लिये एक डेढ़ रुपया चाहिये । यहाँ एक अकेले खुदका ही पेट नहीं भर पाता हूँ । बीबी-बच्चोंका भार कैसे सम्हाला जाय ? कपडेतकके लिये पैसा नही । रहनेको एक मित्रके टूटे छप्परमें पड़ रहता हूँ और ठिठुरकर रात काट देता हूँ ।'

मुझे चमारकी गरीबीका रहस्य मिल गया था । वह था

उसका असंयम और घृणित आदतें। उसकी आय एक रुपया प्रतिदिन थी जिसे जोड़ने और समझदारीसे व्यय करनेपर वह एक भले नागरिक-जैसा जीवन व्यतीत कर सकता था। पर नहीं, कौन उसकी आदतोंपर नियन्त्रण करे? एक बार जिस रास्तेपर चल पड़े हैं, उसीपर चले जा रहे हैं। मनुष्यकी आदतें भी बड़ी जटिल होती हैं।

मुझे इस उक्तिमें बड़ा भारी सत्य दिखायी देता है—

'पूत कपूत तो क्यों धन संचै?
पूत सपूत तो क्या धन संचै?'

यदि आपका पुत्र कपूत है, तो उसके लिये धन एकत्र करनेसे क्या लाभ! अपनी गंदी अपव्ययी आदतोंके कारण वह सब नष्ट कर देगा। यदि आपका पुत्र सपूत है, तब भी धन-संचयसे कोई लाभ नहीं। कारण, अपनी मितव्ययी एवं संयमी आदतोंके बलपर वह पूँजी स्वयं एकत्रित कर लेगा। हमारी आदतें ही हमारी गरीबी या अमीरीका कारण हैं।

भारत-विभाजनके प्रसंगमें असंख्य परिवार लुट गये। धनवान् रोटी-रोटीके मुहताज बन गये; दूकानदारोंकी दूकानें लुटीं, जमीन-जायदाद, घर-बार जाते रहे। पर उनकी आदतें न छूटीं, न छीनी गयीं। हमने आश्चर्यसे देखा, हमारे शहरमें आये हुए पचास फी सदी शरणार्थी अपनी अल्प पूँजीपर मजबूत संयमी एवं मितव्ययी आदतोंके बलपर पुनः समृद्धिशाली बन गये; उनके रोजगार चल निकले; चार पैसे फिर एकत्रित हो गये। दूसरी ओर पाकिस्तानमें गये मुसलमान अपनी असंयमी अपव्ययी आदतोंके बदतर दरिद्र और पतित हो गये। पंजाब उजड़ गया।

हरे-भरे खेत वीरान बन गये । आलीशान मकानोंपर पीक और और बीड़ीके टुकड़े नजर आने लगे । जिस पंजाबमें अनाजका कोष था, जो सारे भारतको पालता था, वही पंजाब आरामतलब मुसलमानोंके हाथमें आकर अकाल-पीड़ित बन गया । इधर भारतमें श्रमी हिंदुओंने रेगिस्तानी इलाकोंमें भी नहरें निकाल डालीं । ये हैं, मनुष्यकी व्यक्तिगत अच्छी-बुरी आदतोंके परिणाम । हम नागरिकों-की व्यक्तिगत आदतोंसे ही राष्ट्रके चरित्रका निर्माण होता है । यदि राष्ट्रको समुन्नत करना है, तो प्रत्येक नागरिकके चरित्रमें श्रम, मितव्यय, संयम, संगठन और ईमानदारीको स्थान देना होगा ।

व्यक्ति-निर्माणसे राष्ट्र-निर्माणका कार्य होता है । अतः हममेंसे प्रत्येक माता-पिता, भाई-बहिनका कर्तव्य हो जाता है कि बच्चोंमे आदतरूपी मानसिक मार्गोंका निर्माण करे ।

प्रथम उत्तम आदत स्वास्थ्य और संयमकी है । इससे मानवकी मौलिक उन्नति होती है । शरीर स्वस्थ और नीरोग बनता है । व्यसनोंसे विशेष सावधान रहनेकी आवश्यकता है । प्रत्येक बच्चेको स्वस्थ आदतोंमें पालना चाहिये । चाय, तम्बाकू, पान इत्यादि तथा सिनेमाकी गंदी तस्वीरों तथा उत्तेजक साहित्यसे दूर रखनेकी आवश्यकता है ।

मानसिक आदतोंमें संयम, नियमितता, निरभिमानता, सादगी और सचाईकी आदतोंकी अतीव आवश्यकता है । हम जैसे हैं, वैसे ही दूसरोंके समक्ष उपस्थित हों; स्वयं अपनेको या दूसरेको धोखेमें न डाले—यह बड़ी उपयोगी वृत्ति है ।

जो आय हो, उसीमें जीवनकी समस्त आवश्यकताओंकी पूर्ति हो जाय, ऋण लेनेकी आवश्यकता न पड़े, वरं कुछ-न-कुछ प्रतिमास बचता रहे, ऐसी योजना बनाकर चलना चाहिये, ज्यों-ज्यों आमदनी गिरे, त्यों-त्यों आवश्यकताएं भी तदनुसार कम होती रहे।

ईश्वरमें विश्वास होना चाहिये। यदि हम कोई पाप करेंगे, तो ईश्वर हमें दण्ड देंगे; आज नहीं तो कल हमें अपने पापोंका दण्ड अवश्य मिलेगा; हम उससे बच नहीं सकते; जगन्नियन्ताको धोखेमें नहीं डाल सकते; अतः हमें धर्मभीरु बनकर सन्मार्गका ही पथिक बनना चाहिये। सत्य, प्रेम, न्याययुक्त जीवन ही सुख-शान्तिमय होता है, सदा श्रमी ही विजयी होता है, यह आदतोंमें सम्मिलित कर लेना चाहिये।

वासनाकी पूर्ण तुष्टि सम्भव नहीं है। यह मानना गलत है कि वासना-पूर्तिसे स्वयं विरक्ति हो जायगी। वासनाओंकी भट्ठी निरन्तर अधिकाधिक जलती रहेगी। मन एक स्त्रीसे दूसरीपर हमेशा भागता रहेगा। अतः उसको वासनासे विरक्तिकी आदत डालनी होगी। उसे सिनेमा, अश्लील साहित्य, गंदे विचार, व्यभिचार इत्यादिसे बराबर खींचकर सत्कार्योंमें लगाना होगा। सद्-चिन्तन, सद्ग्रन्थावलोकन, सत्पुरुषोंकी सेवा, सत्सङ्गमें लगानेकी आदतोंका निरन्तर विकास करना चाहिये। सद्-चिन्तन, उच्चकार्योंकी प्रवृत्ति भी एक प्रकारकी आदत ही हैं। अतः प्रारम्भसे ही इन अच्छी आदतोंकी ओर प्रवृत्ति रखनी चाहिये। मनुष्यकी आदतें ही सच्चे व्यक्तित्वका निर्माण करती हैं।

स्वभाव कैसे बदले ?

क्या मानव-स्वभाव परिवर्तित हो सकता है ? कई महानुभाव कह उठते है, 'क्या बतायें, हमारा तो क्रोधका स्वभाव है, हमें जल्दी ही गुस्सा आ जाता है । हम उत्तेजनाको रोक नहीं पाते । लड़ बैठते हैं । हमारी किसीसे नहीं बनती ।' कुछ व्यक्ति दूसरोंकी टीका-टिप्पणी करने, दोष निकालने, पीठ पीछे बुराई करनेमें बड़ा आनन्द लेते हैं । वे जानते हैं कि यह उनके स्वभावका दोष है पर बेचारे स्वभावसे विवश हैं ।

मानव-स्वभावको बदला जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति यदि अभ्यास करे, तो वह अपनी पुरानी बुरी आदते छोड़कर अच्छी आध्यात्मिक आदते धारण कर सकता है। प्रेम, सहानुभूति, मैत्री भाव इत्यादि प्रत्येक आदतका विकास निरन्तर अभ्याससे होता है।

आदतें हमारा स्वभाव निर्माण करती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे प्रत्येक आदत एक मानसिक मार्ग है। पुनः-पुनः एक कार्यको दोहरानेसे एक विशेष प्रकारकी आदतका निर्माण होता है। प्रत्येक गंदी आदतका विरोधी शुभ भाव बढ़ानेका अभ्यास करे। इस नवीन आदतको दृढ संकल्पसे बढ़ाते रहे। जो न्यूनताएँ या असभ्यताएँ आपके चरित्रमें आ गयी हैं, उन्हे निकालनेके लिये उनकी विरोधी शिष्टताओंको धारण कर प्रत्येक व्यक्ति नये व्यक्तित्वका निर्माण कर सकता है।

अशिष्ट आदतोंकी मानसिक जड़े बचपनके दूषित कुसंस्कार हैं, जिन्हें बच्चे घरसे, मुहल्लेके गंदे बच्चोंसे तथा स्कूलसे सीखते हैं। ये अन्तर्मनमें प्रविष्ट होकर जटिल ग्रन्थियाँ बन जाती है।

इसके विपरीत जो शिष्टताकी आदते हमारे बचपनमें बरबस अन्तर्मनमें प्रविष्ट करा दी जाती है, वे हमारे आकर्षणका विषय बन जाती है। छोटे बच्चोको शिष्टाचारसम्बन्धी शिक्षा न देनेके कारण उनका उच्च सोसाइटीमें प्रविष्ट होना कठिन हो जाता है। बच्चे निरन्तर हमारा अनुकरण किया करते है।

यदि हम अपने बच्चोंको शिष्ट, सभ्य, आकर्षक, सुन्दर और उत्तरदायित्वपूर्ण नागरिक बनाना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि हम स्वयं उनके सम्मुख शिष्ट व्यवहारका ऐसा नमूना प्रस्तुत करें, जिसका अनुकरण उन्हें जीवनमें उत्साह और प्रेरणा प्रदान कर सके। जो माँ-बाप स्वयं व्यवहारमें ढीले-ढाले हैं, प्रातःकाल शय्या त्यागने, दन्तमञ्जन, स्नान, पूजापाठ या वस्त्र-धारण तथा उन्हें यथास्थान रखनेमें नियमोंका पालन नहीं करते, उनके बच्चे, जो चौबीस घंटोंमें पन्द्रह-सोलह घंटे उनके साथ रहते हैं, किस प्रकार सभ्यता और शिष्टाचारका पाठ पढ़ सकते हैं ?

जैसे हम है, वैसा ही हमारा वातावरण भी है। सभ्य व्यक्तिकी प्रत्येक वस्तु आपको यथास्थान साफ-सुथरी, आकर्षक मिलेगी। जूतोंसे लेकर कमीज; कोट, टोपी या बाल काढ़नेका कंघातक स्वच्छ रक्खा मिलेगा। उसके जूतोंपर न मैल होगा, न कंघेमें बाल लगे हुए होंगे। उसके कोट या पतलून या धोतीमें शिकन न मिलेंगी। वह वस्त्रोंकी देखभाल, सम्हालके कारण दूसरोंसे आधे वस्त्रोंमें भी आकर्षक प्रतीत होगा। कम खर्चेमें वह अधिक तरहके सुख प्राप्त कर सकेगा। उसे लम्बा-चौड़ा बढिया मकान नहीं चाहिये। छोटेसे मकानमें, या एक कमरेका ही वह इतना उत्कृष्ट प्रयोग करेगा कि उसकी सभ्यता प्रकट हो जायगी। शिष्टाचारका अर्थ यही नहीं कि आप दूसरोंके साथ कैसा व्यवहार करते है। स्वयं अपने साथ भी आपका व्यवहार उत्तम होना अनिवार्य है। यदि आप अपने साथ दुर्व्यवहार करते है, तो बड़ा पाप करते है।

आप पूछेंगे कि हम अपने साथ किस प्रकार दुर्व्यवहार करते हैं ? इसके अनेक रूप हैं। आप जानते हैं कि ठीक समयपर उठने, व्यायाम करने, टहलने या विश्राम करनेसे आपका स्वास्थ्य ठीक रहता है; किंतु शोक ! आप न तो ब्राह्म मुहूर्तमें उठते हैं, न व्यायाम, टहलना या विश्राम करते हैं आप रुपयेके लोभमें दिन-रात तेलीके बैलकी तरह पाई-पाई इकट्ठी करनेमें मारे-मारे फिरते हैं। आपके पास पर्याप्त धन है, जिसके द्वारा आप भोजन, वस्त्र तथा अच्छे मकानका प्रबन्ध कर सकते हैं; किंतु आप कंजूसीके कारण इनमेंसे कोई भी काम नहीं करते। यह सब अपने प्रति दुर्व्यवहार है।

अपने शरीरकी बुराईकी तरह जानते-बूझते आप अपने बच्चोंकी आदतों या सभ्यतासे गिरे हुए व्यवहारको नहीं रोकते या उनकी गलतीपर सजा नहीं देते, तो आप अन्याय करते हैं। अपनी पत्नीकी असभ्यताओंको रोकना आपका एक पुनीत कर्तव्य हो जाता है। परिवारके और सदस्योंकी खराबियों या अशिष्टताओंका आप शिष्ट रीतियोंसे परिष्कार कर सकते हैं; अपने अधीन नौकरों आदिको अशिष्टतासे रोककर आप समाजमें अच्छाइयोंके बीज बो सकते हैं। यदि ऐसा नहीं करते, तो यह आपका दुर्व्यवहार है।

आपकी दृष्टि कमजोर है, किंतु फिर भी आप सिनेमा देखते हैं, मिर्च-मसाले, खट्टी चीजोंका व्यवहार करते हैं, यह अपने प्रति दुर्व्यवहार हुआ, अपने अंदर किसी मादक द्रव्यको लेनेकी आदत डालकर विषपान करना आत्मघात करनेके बराबर गर्हित है।

शक्तियोंको खोलनेका मार्ग

मनुष्यका यह स्वभाव है कि दूसरे आदमी उसे जैसा पुनः-पुनः कहते हैं, धीरे-धीरे वह स्वयं भी अपने बारेमें वैसा ही विश्वास करने लगता है। उसका गुप्त मन दूसरोंकी बातोंको चुपचाप पकड़ता रहता है और अन्ततः वह उन्हींके अनुसार ढल जाता है।

चाहे हम ऊपरसे दूसरोंकी बातोंसे मन फेर लें; किंतु, दूसरोंकी बातचीत और टीका-टिप्पणीका गुप्त प्रभाव हमारे ऊपर बहुत जल्द पड़ता है। किसीको आप जैसा कहते रहें, वह धीरे-धीरे वैसा ही होकर रहता है। हमारी यह आन्तरिक कामना रहती है कि दूसरे व्यक्ति हमें अच्छा कहे, हमारे गुणोंकी प्रशंसा करे, हमारी महत्ता स्वीकार करें और तभी हमें अपने अच्छे मनपर विश्वास भी होता है, जब लोग हमें अच्छा कहते हैं। हम चाहे वास्तवमें लाख अच्छे ही हों; पर यदि हमें अपने अच्छेपनका सबूत दूसरोंके शब्दोंद्वारा नहीं मिलता, तो हमारे गुप्त मनपर गहरा आघात पहुँचता है। हमारे अच्छेपनके गुण क्षीण होने लगते हैं। कभी-कभी तो हमारा मन विद्रोह कर उठता है और हम दुर्गुणीतक बन जाते हैं। कहा जाता है कि रावण एक विद्वान् सद्गुणी ब्राह्मण था। पर जब संसारने उसके सद्गुणोंको स्वीकार कर प्रोत्साहन न दिया तो उसका व्यक्तित्व विद्रोही बन गया। उसके सद्गुण विलुप्त हो गये और असुरत्व विकसित हो उठा। यदि उसके दिव्य गुणोंको पर्याप्त प्रोत्साहन लगातार मिलता रहता तो वह भी भारतका कोई ऋषि बनता। जन्मसे ब्राह्मण, अनेक वेदोंका पण्डित, ज्ञानी, विचारक एक

असुर बन गया। यह है गलत दिशामें प्रोत्साहन देनेका दुष्परिणाम।

श्रीश्रीप्रकाशजीने एक बार श्रीमती ऐनी बेसेन्टसे पूछा था कि 'हम भारतीयोंमें क्या दोष है कि हम उन्नति नहीं कर पाते। हमें सफलता नहीं होती और हम तथा हमारे कार्यकर्ता हारकर बैठ जाते हैं?'

श्रीमती ऐनी बेसेन्ट शिष्टाचारकी मूर्ति थीं। वे किसीके हृदयको कष्ट देना नहीं चाहती थीं। बड़े-बड़े संघर्षोंके समय भी सौम्य संयत भाषाका ही प्रयोग करती थीं। व्यक्तिगत स्नेह बनाये रखनेकी कला-में भी अपूर्व रीतिसे प्रवीण थीं। उनके सार्वजनिक विरोधमें भी इसी कारण कोई कर्कशता कभी नहीं आती थी। वे उत्तर देनेमें संकोच कर रही थीं। श्रीश्रीप्रकाशजीने बार-बार आग्रह किया, तो उनका उत्तर वास्तवमें नई रोशनी देनेवाला था। थोडेसे शब्दोंमें उन्होंने बहुत बडे अनुसंधानका परिणाम बतलाया था।

उन्होंने केवल इतना ही कहा था, 'तुमलोगोंमें उदारता नहीं है।' (यू आर नाट ए जेनरस पीपुल)।

उदार नहीं हैं? हिंदू जाति तो पशु, कीट, पतंग तककी हत्या नहीं करती, अहिंसाका सदा पालन करती है। फिर हम कैसे, क्योंकर उदार नहीं हैं?

प्रश्नका उत्तर श्रीश्रीप्रकाशजीके शब्दोंमे सुनिये, 'यकायक सुननेमें यह अनुदारताकी बात हिंदू जातिके लिये बहुत कड़ी मालूम पड़ती है। हम भारतीयोंका विशेषकर हिंदुओंका यही विचार है कि हम बड़े दानी, उदार, सहनशील, सर्वलोकहितैषी हैं। हमारे मठ, मन्दिर, अन्न-क्षेत्र, सदाव्रत, धर्मशाला इत्यादि हमारी दानशीलता

और उदारवृत्तिके सहस्रों वर्षोसे सूचक रहे हैं । हम भारतीयोंसे
बढ़कर कौन उदार हो सकता है ?'

श्रीमती ऐनी बेसेन्टको भी, यह कहते हुए, इस कड़वी दवाकी
छोटी-सी घूँट पिलाते हुए अवश्य कष्ट हुआ । वे तो सदासे ही
भारतीयोंकी प्रशंसक थीं । वे तो हमारी कुरीतियोंकी भी जैसे
समर्थक मालूम पड़ती थीं । लेकिन जिस त्रुटिकी ओर उन्होंने हमारा
ध्यान आकृष्ट किया था, वह गुण-ग्राहकताका अभाव था । दूसरोंको
प्रोत्साहन देनेमें उदारताकी कमी थी ।

वास्तवमें प्रोत्साहनका अभाव हमारे राष्ट्रीय जीवनकी एक
बड़ी कमजोरी बन गयी है । हम दूसरेके प्रति दो-चार अच्छे या
मीठे शब्द कहनेके बजाय उसे तुच्छताका भ्रम कराना ही पसंद
करते हैं । बहुत-से माता-पिता, शिक्षक इत्यादिमें यह खोटी आदत
होती है कि बच्चोंकी जरा-सी भूलोंपर अथवा शीघ्र पाठ न समझ
सकनेपर चिढ़कर कटु वचनोंका उच्चारण करने लगते हैं । 'तुमसे
कुछ न होगा । तुम्हारे दिमागमें भूसा भरा हुआ है । तुमसे जीवन-
में कुछ न होगा ।' इन संकेतोंका ऐसा कुप्रभाव पड़ता है कि
कोमल शिशु अपनी महानताको नहीं पहचान पाता । बालक वैसे
ही भावुक होता है । जरा-सी मानसिक ठेससे उसमें तुच्छताकी
हानिकर भावना जड़ पकड़ जाती है और उसकी बाढ़ हमेशाके लिये रुक
जाती है । आप गम्भीरतासे देखे तो आपको अनेक ऐसे डरे-दुबके भीरु
प्रकृतिके अधपनपे बच्चे मिल जायँगे जो इस तुच्छताकी ग्रन्थिसे
परेशान अपनी महानता न खोज सके हैं, न पनपा ही सके है ।

आशाकी नयी किरणें

एच० जी० वेल्स नामक अंग्रेजीके एक प्रख्यात लेखक हो गये है। बचपनसे ही उन्होंने थोड़ा-थोड़ा लिखना शुरू कर दिया था। वे अपने अपरिपक्व विचारोंसे युक्त लेख पत्र-पत्रिकाओंमें छपनेके लिये भेजा करते थे। बहुतसे नयी उम्रके लड़के इस प्रकार कलम चलाया करते है। एक बार अंग्रेजीके एक बडे सम्पादकके हाथमें युवक एच० जी० वेल्सका एक लेख आया। उसे पढ़नेपर उन्हे इस नये लेखकमें गहराई और वजन मालूम हुआ। उन्होंने उसके लेखको सुधारकर छापा। वेल्सको प्रोत्साहन मिला। सम्पादकने उनसे और लेख मागा। उन्होंने उसे खुश करनेके लिये और भी श्रम लगाकर एक नया लेख लिखा, वह भी छपा। इसी प्रोत्साहनको पाकर एच० जी० वेल्स अंग्रेजीके अमर लेखक बन गये। कल्पना कीजिये कि यदि यह प्रोत्साहन न मिलता तो वह अन्य लेखकोकी तरह विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो जाते। उचित प्रोत्साहनके अभावमें सैकड़ो कवियोंकी इच्छा, अभिलाषाएँ तथा महत्त्वाकाक्षाएँ सूखकर नष्ट हो जाती है।

यदि आप कहें कि ताडना या कठोर वचन कहकर डरानेसे लोग सुधरते है, तो यह ठीक नहीं है। डराने-धमकानेसे और कुछ भले ही हो जाय, सुधार नहीं होता। दोषीके मनमें आपके प्रति घृणाकी भावना उत्पन्न हो जाती है। विषभरे वाक्य आदमी कभी नहीं भूल पाता। व्यंग्य-बाण हृदयमें बिंधे रहते हैं। इसलिये जिसका सुधार करना हो, उसके सद्गुणोंको सही दिशामें प्रोत्साहित कर उसकी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्तियोंका मार्ग खोलिये।

वहम, शंका, संदेह

वहम एक अँधेरा है, जो मनुष्यकी चित्त-वृत्तिको भ्रान्त और संकल्प-शक्तिको क्षीण करता है। वहमी आदमी तनिक-तनिक-सी बातोंमे संदेह करता है। भोजन करते समय उसे यह संदेह होता है कि कहीं इसमे विष न मिला हो अथवा अमुक वस्तु खानेसे स्वास्थ्यको हानि पहुँच जायगी। मैने अमुक वस्तु खा ली इसीलिये स्वास्थ्य नष्ट हो रहा है। दाल मुझे भारी पड़ती है। रात्रिमें दही खाऊँ या नहीं? शंकाशील स्वभावका व्यक्ति यदि किसी यात्रापर जायगा तो सोचेगा कि आज मुहूर्त कौन है? आजका दिन शुभ है अथवा अशुभ? आज चलनेसे पूर्व ज्योतिषी या पण्डितसे पूछ लेना चाहिये। कही रेले न लड़ जायँ, जहाज न डूब जाय, अकस्मात् ताँगा और मोटरमे भिड़न्त न हो जाय, बिजली न गिर पडे अथवा ट्रेनमें आग न लग जाय आदि। वह अपना रुपया किसीको देता है तो बार-बार गिनता है, अनेक प्रश्न करता है, बैंकोंके स्थायित्व तथा फेल हो जानेकी शंका करता है। यदि मेरा रुपया मारा गया तो क्या करूँगा? अमुक-सा रोग उत्पन्न होते ही उसे वहम होता है कि मै इस रोगसे मर न जाऊँ। कहीं मुझे कोई घातक रोग तो नहीं है? यह रोग किसीके जादू-टोनेका दुष्परिणाम तो नही? इस मकानमें किसी प्रेतात्माका प्रभाव तो नहीं?

शंकाशील स्वभावमें दुखी होनेके लिये तनिक-सा सहारा मिलते ही क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। मन गलत दिशामें स्वयं अपने विरोधमें अपना शत्रु बन जाता है। वहमी मनुष्य सदा व्याकुल बना रहता है, वह ठीक और गलतका निर्णय नहीं कर पाता। विवेक ही हमारी वह शक्ति है, जो सत्प्रेरणा देती है और उचित निर्णय करनेमें सहायक होती है। यह संरक्षक सत्ता प्रत्येक मनुष्यके अन्तःकरणमें निवास करती है और उसे ठीक स्थितिमें रखती है। मनुष्य यदि विवेकके प्रकाशमें चलता रहे तो बुद्धि निर्णय करनेमें सफल होती है। दुःख-कष्टोंकी सम्भावना कम होती है। संशय मिट जाते हैं।

शंका, संदेह और वहम मनुष्यकी भारी कमजोरियाँ हैं। बार-बार इन मानसिक बीमारियोंमें फँसे रहनेसे मनुष्यका मन दुर्बल हो जाता है और ये मनुष्यको किसी भी उत्तरदायित्वपूर्ण पदके उपयुक्त नहीं छोड़तीं। वहमी व्यक्ति धीरे-धीरे अविश्वासी, संकोची और कायर बन जाता है। वह तनिक-सी बातसे भयभीत और झूठी कल्पनाओं और मिथ्या भयोंमें लिप्त रहता है।

अत्यधिक शंका करनेका परिणाम नाश होता है। 'संशयात्मा विनश्यति'। अत्यधिक शंकाशील व्यक्ति चिन्तित और निराश रहता है। उसके मनमें नाना विरोधी विकारों—जैसे ग्लानि, लज्जा, अस्थिरता, कायरता, असंतोष, उदासीनता और कुतर्कका संघर्ष चलता रहता है। उसका जीवन अव्यवस्थित और अशान्त हो जाता है। मानसिक व्याकुलता तथा दुर्बलता बढ़ती जाती है और स्मरण-शक्तिका विनाश हो जाता है।

शंका और संदेहसे मुक्तिके साधन हैं दृढ़ता, विवेक और मनोबलमें वृद्धि। जिस कार्यके विषयमें सोचें, उसपर शीघ्र निर्णय करें। हर एक दृष्टिकोणसे देखनेके पश्चात् किसी निर्णयपर जल्दी ही आ जायँ। एक बार निश्चय कर उसीपर डटे रहें। गलती और असफलताकी कल्पना न करें। यदि हो जाय तो कारण जानकर उन्हें दूर करें। व्यर्थ ही मिथ्या भ्रमोंसे लिप्त न रहें। जिन वस्तुओं या परिस्थितियोंसे भयभीत हैं, वे वास्तवमें होनेवाली नहीं हैं। कल्पित भयोंको मनसे सदाके लिये निकाल दीजिये। निडर बनिये।

आप जीवन-संग्राममें प्रविष्ट हों तो मन, वचन और कर्ममें सामञ्जस्य कर यह भावना कीजिये कि आपका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल होगा और आप अपनी आकाङ्क्षाओंको पूर्णतया प्राप्त करेंगे, आप पूर्ण उन्नतिशील तथा सुखी होंगे, आपको सफलता और विजय प्राप्त होगी, सब प्रकारकी स्फूर्तिदायक सामग्री मिलेगी। सर्वप्रथम इसी भावनाको अपने मनमें स्थिर कीजिये। बार-बार अपने मनको इसी दिशामें अर्थात् अपनी उन्नतिकी ओर सोचनेमें लगाइये। एकान्तमें अपने इन निश्चयोंको और दृढ़ कीजिये।

आप ऐसा सोचिये, मानो आपके मनोरथ क्रमशः आपकी ओर आकृष्ट होकर आपके पास आ रहे हैं। आपकी कठिनाइयाँ सरल होती जा रही है। आप क्रमशः शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सिद्धियाँ प्राप्त करते जा रहे हैं।

अपनी आशाओंको निर्बल न होने दीजिये, प्रत्युत उन्हें कार्य-द्वारा और भी दृढ़ बनानेका प्रयत्न कीजिये। कोई बात नहीं, यदि

आपको प्रारम्भमें कुछ प्रतिकूलताएँ दृष्टिगोचर होती है। प्रत्येक महापुरुषके जीवनमें ऐसा ही हुआ है, किंतु वे सबल इच्छाशक्तिसे सदा सफल हुए हैं। आपका मार्ग भी शीघ्र ही निष्कण्टक होनेवाला है। यह निश्चय कर लीजिये।

आशापूर्ण कल्याणमय पवित्र चित्रोंको मन-मन्दिरमें सजाना भी एक कला है। यह सफलताका प्रथम पग है। इसमें पारंगत बनकर कठोर कार्यमें आगे बढते हुए सफलताके मीठे फल चखिये। आप चाहे किसी भी क्षेत्रमें आगे बढ़ें, शंकाओंका परित्याग कर पूर्ण दृढ़तासे अग्रसर हो, आरम्भसे ही अपनी विशेषताएँ दिखाइये और शुभ भविष्यको देखनेकी आदत डालिये। आजसे ही शुरू कीजिये।

एकान्तमें यदि कभी अपने प्रति अविश्वास, शंका या संदेहके कायर विचार मनमें आये, तो सावधान हो जायँ। इसके विपरीत प्रचुर मात्रामें आशा, उत्साह, वीरता और साहसके मजबूत विचार मनमें आने दीजिये। अपने आपको विवेकबुद्धिकी तराजूपर तौलिये। जिस बातको आपकी विवेक-बुद्धि स्वीकार कर ले, उसीको मनमे रखिये। दोषका तिरस्कार कीजिये। तनिक सोचिये, यदि आप छोटी-छोटी-सी बातोंपर भय या संदेह करते रहेंगे और अपने-आपको नहीं सम्हालेंगे, अपनी गुप्त शक्तियोंका विकास नहीं करेंगे, तो आपका ठौर-ठिकाना कहाँ होगा? कौन आपको पूछेगा! मिथ्या भयो, कल्पित चिन्ताओं तथा अविचारोंको आज ही सदाके लिये मनसे दूर कर दीजिये।

संशय करनेवालेको सुख प्राप्त नहीं हो सकता !

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—'संशयात्मा विनश्यति' जो मनुष्य सशय करता रहता है, वह इस लोक या परलोक—कहीं भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता । संदेहवृत्ति उसका नाश कर देती है ।

मैं अमुक कार्य करूँ अथवा न करूँ ? यह संशयवृत्ति हमें उस कार्यको नहीं करने देती । हम सोचते ही रह जाते हैं कि इस कार्यको करें या न करें । अन्ततः वैसे-के-वैसे ही रह जाते हैं ।

अर्जुनके सामने कौरवोंकी बड़ी-बड़ी सेनाएँ सजी हुई खड़ी थीं । उनमें उनके कुछ बन्धु-बान्धव तथा दूरके रिश्तेदार भी थे, जिनसे उसका रक्तका सम्बन्ध था । कौरव अन्यायके पथपर चल रहे थे और राज्यमेंसे पाँच गाँव भी पाण्डवोंको नहीं देना चाहते थे । अर्जुन सोचने लगे कि स्वयं अपने परिवारके सदस्योंका वध करनेसे तो भयानक पाप लगेगा । यदि इनका वध नहीं करता हूँ, तो देवी द्रौपदीके अपमानका बदला नहीं उतरता है, न राज्य ही प्राप्त होता है । उलटे ये ही मुझे मार डालेंगे । उनके मनमें एक ओर दयाकी भावना थी, दूसरी ओर कर्तव्य तथा भावी जीवनके विचार । इन दोनोंमें द्वन्द्व मचा हुआ था । दया कहती थी कि ये तेरे भाई हैं, परिजन हैं, इनका वध मत कर । कर्तव्य कहता था, अन्याय और असत्य मार्गपर चलनेवाला कभी बन्धु और परिजन नहीं हो सकता । वह तो शत्रु है । प्राणोंका प्यासा है । इसलिये उसका वध कर देना चाहिये । वे संशयमें फँसे हुए थे कि किस पक्षमें निर्णय करें । इस स्थितिमें भगवान् श्रीकृष्णने उनकी सहायता की और कहा कि वृथा

मोहमें मत पड़ो। अपना कर्तव्य पालन करो। इस संकेतको सुनकर अर्जुनका संशय दूर हो गया और वह युद्ध करनेको तैयार हो गया। जबतक संशयमें लगा रहा, तबतक शक्तियाँ पंगु रहीं।

यही हाल उस व्यक्तिका होता है जो खड़ा-खड़ा यही सोचता है कि क्या करूँ? किस ओर बढ़ूँ? किसपर विश्वास करूँ, किस-पर न करूँ? कोई मेरी सहायता करेगा अथवा नहीं? मेरा स्वास्थ्य अमुक कार्यको सम्पन्न करनेके योग्य है अथवा नहीं? मेरी तैयारी परीक्षाके लिये उपयुक्त है अथवा अनुपयुक्त? अमुक व्यापारमें मुझे हानि होगी अथवा लाभ?

जो वास्तवमें कमजोर हैं या जिनकी तैयारी अपर्याप्त है, वे यदि संशय करें तो उचित भी माना जा सकता है, लेकिन खेद तब होता है, जब समर्थ और योग्य व्यक्ति सर्वसम्पन्न होते हुए भी अपनी शक्तियोंके प्रति संशय करते रहते हैं और उसके कुफल भोगते रहते हैं। संशयवृत्तिका तात्पर्य है स्वयं अपनी शक्तियोंके प्रति अविश्वास। जीवनके आनन्द और उन्नतिके लिये इस प्रवृत्तिको छोड़ दीजिये।

एक बार रात्रिमें एक व्यक्तिको लघुशंका हुई। भयंकर जाड़ा था। उनकी पत्नीने सफेदीके तमलेको ला दिया। पतिने उसीमें मूत्र कर दिया। सुबह उठे तो वह मूत्र सफेदीमें मिला हुआ दिखायी दिया। पति संशयमें भर गये। जरूर मेरे मूत्रमें कोई विकार है। यह सफेद-सफेद क्या तत्त्व मूत्रमार्गसे बहने लगा है? मुझे कोई भयंकर मूत्र-रोग हो गया है। वैद्यके पास गये। उन्होंने बिना पूर्ण जाँच-पड़तालके कह दिया कि तुम्हारे मूत्रमें शक्कर आने लगी है।

तुम्हें डाइबिटीज रोग हो गया है । सम्भव है और भी कोई घृणित रोग हो । यह सुनकर वह व्यक्ति रोगी बन गया । निरन्तर इसी भ्रम—संदेहमें रहता कि मुझे भयंकर रोग हो गया है और मैं जल्दी ही मृत्युका ग्रास बन जाऊँगा । वैद्यजी दवाइयाँ देते और उससे रुपया लेते रहे । एक दिन संयोगसे उनका उतरा हुआ चेहरा देखकर मैंने ही पूछा, 'कहो मोडूलालजी, क्या बात है ?' उन्होंने उत्तर दिया, 'डाइबिटीज हो गयी है । इलाज चल रहा है ।' और गहराईमें गये, तो उन्होंने अपने मूत्रमें सफेदी आनेकी बात कही ।

'क्या आपने मूत्रकी वैज्ञानिक परीक्षा करायी है ?'

'नहीं, डाक्टरके पास तो नहीं गया ।'

'तो पहले शफाखानेमें जाकर मूत्रकी परीक्षा जरूर कराओ । फिर इलाजकी सोचो । इस इलाजसे काम नहीं चलेगा ।'

दूसरे दिन वे डाक्टरके पास शीशीमें मूत्र ले गये । वैज्ञानिक परीक्षा हुई, तो मालूम हुआ शक्कर नहीं आती है । और भी कोई खराबी नहीं है ।

यह नतीजा देखकर वे फिर उसी रातके विषयमें सोचने लगे । उनकी पत्नीको स्मरण हुआ कि उन दिनों दिवालीके सिलसिलेमें उनके यहाँ पुताईका काम चल रहा था । कलीसे सना हुआ तसला पास ही अंदर पड़ा था । उसीमें पेशाब कराया गया था । इसलिये वह सफेदी पुतनेवाली कलईकी थी । गाँठ खुल गयी । संशय दूर हो गया । उसी दिनसे मोडूलालजी स्वस्थ होने लगे और कुछ दिनों पश्चात् बिलकुल स्वस्थ हो गये । सशयका पर्दा छाते ही मनुष्य

हतप्रभ हो जाता है । उसका विवेक पंगु हो जाता है । दूर होनेपर फिर प्रभावान् हो उठता है ।

अपने अध्यापक-जीवनकी एक घटना मेरे स्मृति-पटलपर सजग हो आयी है । मानिकलाल इंटरके विद्यार्थी थे, परिश्रमी और साधारणतया बुद्धिमान् !

संयोगसे वार्षिक परीक्षामें तर्कशास्त्र (Logic)में फेल हो गये। फेल होते ही उनके मनमें कुछ ऐसा संशय बैठा कि जब कभी तर्कशास्त्रका क्लास होता, उसमें मन-ही-मन डरते रहते । यह नहीं कि पढ़ते न हों । पढ़ते वे बहुत थे, पर मनमें यह संशयवृत्ति रखकर कि यह विषय मुझे कम आता है, मैं कहीं आगे भी फेल न हो जाऊँ ।

दूसरे वर्ष वार्षिक परीक्षा फिर आयी । मानिकलालकी तैयारी बहुत थी । वर्षभर दिल लगाकर पढ़ा था । और विषयोंके पर्चे अच्छे हुए । दूसरे दिन तर्कशास्त्रकी परीक्षा थी । आजसे ही उनके मनमें धुकधुकी थी, मनका संशय उभर रहा था । मैं सुपरिंटेंडेंटके रूपमें परीक्षा दिलाने साथ गया था । रातमें तीन बजे उठता हूँ, तो क्या देखता हूँ कि टट्टीकी बिजली जल रही है, इस वक्त कौन है जो टट्टीमें है । देरतक देखता रहा, पर कोई न निकला । आवाज दी, तो उत्तर नदारद । साहस कर अंदर झाँका, तो क्या देखता हूँ कि मानिकलाल टट्टीमें अंदर तर्कशास्त्र पढ़ रहे हैं ।

'तुम्हारी तैयारी बहुत काफी है ।' मैंने कहा ।

'मुझे तो कुछ भी याद नहीं । क्या होगा ?'

'घबराओ नहीं । तुम निश्चय ही पास होओगे ।'

समझा-बुझाकर किसी प्रकार उस रात उन्हें उस समय तो सुला दिया। दूसरे दिन परीक्षा हुई। आश्चर्य ! महान् आश्चर्य !! मानिकलाल गिरे मुँह निढाल चेहरा और रोनी सूरत बनाये हुए हमारे पास आये और रोकर कहने लगे 'फेल हो गये।'

मैंने कहा, 'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। तुम्हारी बड़ी पक्की तैयारी थी। फेल नहीं हो सकते।'

और जब नतीजा आया, तो वास्तवमें मानिकलाल फेल थे। बादमें मालूम हुआ कि तर्कशास्त्रमें ही वे फेल हुए थे। उनका अपनी शक्तियोंके प्रति संशय ही उन्हें ले डूबा था। विषयका ज्ञान उन्हें काफी था।

फिर तो तीन सालतक निरन्तर वे तर्कशास्त्रमें ही फेल होते रहे और अन्ततः निराश होकर उन्होंने पढ़ना ही छोड़ दिया। संशय ही उनके मानसिक पतनका प्रधान कारण था। इसी शत्रुके कारण वे पतनकी चरम सीमापर पहुँच चुके थे।

यह ठीक है कि कुछ विषय कठिन होते हैं और प्रायः उनमें उत्तीर्ण होनेके लिये बहुत परिश्रम करना पड़ता है। लेकिन इसका यह मतलब बिल्कुल नहीं है कि आप अपनी शक्तियोंके प्रति अविश्वासी बन जायँ और संचित शक्तियोंको ही हाथसे निकाल दे। सदा संशय और अविश्वासके मोहजालमें फँसा हुआ व्यक्ति अपने लिये भी कुछ नहीं कर सकता तो दूसरोंके लिये क्या करेगा ?

कभी-कभी व्यक्तिमें पूरी शक्तियाँ होती हैं। फिर भी वह संशय ही करता रहता है। हमें अपनी बहिनकी एम्० ए० की परीक्षाकी स्मृति आ रही है। उन्होंने काफी तैयारी की थी। रात-दिन पढ़ती

रहती थीं। जब परीक्षा आयी, तो कहने लगीं, मेरी तैयारी पूरी नहीं है। शायद पास भी नहीं होऊँगी। परीक्षामें न जानेके बहाने किये। कहने लगीं, हमें बुखार है। थर्मामीटरसे टेम्परेचर लिया, जो वह न निकला। फिर कहा, पेटमें दर्द है। सर दर्द कर रहा है। हम समझ गये कि संशयवृत्ति ही खराबी कर रही है। वही बात आगे चलकर सच भी निकली।

'तुम केवल परीक्षा-भवनमें चलकर पर्चा ले आना। फीस तो वापस मिलेगी नहीं।'

तांगा किराये कर उन्हे ले गया। उनका मन धुकपुक कर रहा था। परीक्षा-भवनसे कोई भी परीक्षार्थी आध घंटे पहले नहीं निकल सकता था. जब वे बैठ गयीं तो लिखना पड़ा। याद बहुत था। आध घंटेमें जो प्रश्न किया, बहुत ही अच्छा हुआ। साहस आया। कलम तेजीसे चलने लगी। वे तीन घंटे सिर ऊपर उठाये लिखती रहीं! जब परीक्षा-भवनसे बाहर निकलीं, तो उन्हे ऐसा लगा कि पर्चा बहुत संतोषजनक हुआ है।

फिर तो उन्होंने पूरी परीक्षा दी। जब नतीजा आया, तो द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण हुईं।

यदि वे संशयको न पछाड़तीं, तो संशय उन्हें तनिक-सी देरमें तोड़-मरोड़कर रख देता। संशयका माया-जाल तोडनेसे ही सत्यका प्रकाश होता है।

संशय एक प्रकारका अँधेरा है, जो हमारे मन और आत्मापर छा जाता है और कुछ देरके लिये नेत्रोंको झूठे मोहमें बाँध देता है।

कहा है—

'इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि' (यजु० १।८)

अर्थात् असत्यको त्यागकर जो सत्य विचार है, उसीको ग्रहण करना चाहिये।

यदि आप हर किसीपर शक या संदेह करते रहते हैं, तो भी संशयके मायाजालमें अटके हुए हैं। हो सकता है कि किसी विशेष व्यक्तिने आपको धोखा दिया हो या आपसे विश्वासघात किया हो, किंतु प्रत्येकको अविश्वासकी दृष्टिसे मत देखिये। संसारको अपना विरोधी मत समझिये।

कुविचारों, जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों, मनके कुसंस्कार और अज्ञानके बन्धनोंसे स्वयं मुक्त हो जाइये और दूसरोंको भी मुक्त कर दीजिये।

'स्वर्गतो धिया दिवम्' (यजुर्वेद) सद्बुद्धिसे ही स्वर्ग प्राप्त होता है। जिसकी बुद्धि शुद्ध नहीं हुई है, उसे सुख-शान्ति नहीं मिल सकती।

जिस प्रकार आप दूसरोंके प्रति संदेह रखते हैं, वैसे ही स्वयं अपने विषयमे संदेह करते रहते है। अपने प्रति अविश्वास करना अपनी उत्पादक शक्तियोंको पंगु बना लेना है। इससे जीवन अस्थिर और निश्चय संदिग्ध रहता है। स्मरण रखिये, संशय चाहे किसी भी रूपमें क्यों न हो, मनुष्यका जीवन नष्ट कर देता है।

'संशयात्मा विनश्यति'
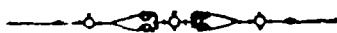
मानव-जीवन कर्मक्षेत्र ही है

कर्मक्षेत्रं हि मानुष्यम्। (व्यास०)

मनुष्यका अधिकांश जीवन परिश्रमका जीवन है। जैसे विना भोजन तथा वायुके जीवन असम्भव है, विना श्रमके जीवन नीरस और शिथिल है। प्रत्येक मानव-विशेषणसे विभूषित होनेवाले व्यक्तिमें 'परिश्रम' वह दिव्य गुण है जिसके द्वारा वह संसारमें विकसित होता है; अपने शरीर, मस्तिष्क तथा आत्माके गुणोकी वृद्धि करता है। परिश्रम हर प्रकार, हर स्थिति तथा वर्गके व्यक्तिके लिये एक आवश्यक तत्त्व है।

जब संसारके सब जीव श्रमद्वारा शक्तिका अर्जन कर रहे हैं, तो आप कैसे निष्क्रिय रह सकते हैं? विना श्रमके भला क्योंकर अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा, सम्मान तथा उत्तरदायित्वकी रक्षा कर सकते हैं!

परिश्रम सर्वश्रेष्ठ शिक्षक है। इसके द्वारा हमारा सम्बन्ध अन्य व्यक्तियों तथा वस्तुओंसे होता है। यदि हम जीवनचरित्रोका अध्ययन करें, तो हमें विदित होगा कि सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति प्रायः कठिन श्रम करनेके अभ्यस्त रहे हैं, अपने आविष्कारोंमें सतत लगनशील और उत्तरदायित्वोंमें धीर और दृढ़ रहे हैं। संसारमें आप जिन कार्योंसे चमत्कृत होते हैं। वे मानवके हाथों या मस्तिष्कके श्रमके अद्भुत चमत्कार हैं। उनमें श्रमका सौन्दर्य और स्थायित्व है। श्रम प्रगतिका चिह्न है।

बफ्न कहा करते थे, 'प्रतिभाशाली व्यक्तियोंकी प्रतिभाका मूल मन्त्र उनके धैर्यमे है ।' वे किसी विरोधसे भी पस्तहिम्मत न होते थे, न थकते ही थे । वे प्रत्येक मिनटका उचित उपयोग करते थे । अपेलीज प्रत्येक दिन कुछ-न-कुछ अवश्य लिखते थे । न्यूटन निरन्तर धैर्य और सतर्कतासे प्रकृतिका निरीक्षण किया करते थे । वाट कहा करते थे, 'हमें यह जानना चाहिये कि किस बातसे काम चलेगा, किससे नही ।' वास्तवमें जो व्यक्ति धैर्यके साथ निरीक्षण करनेकी बुद्धि विकसित कर लेता है, वह अच्छा श्रम कर पाता है । वह सत्यता और सही रूपमें प्रत्येक तथ्यको देखता है । एक बार न्यूटनने कहा था कि 'उन्होंने जिस गुणके विकासमें सबसे अधिक ध्यान दिया था, वह यह था कि वे किसी समस्याको अपने मानव-चक्षुओंके सम्मुख बहुत देरतक रख सकते थे और जीवनके अनुभवो-से उसकी सत्यता मालूम करते रहते थे, यहाँतक कि उन्हे समस्याका हल प्राप्त हो जाता था ।'

आपके कार्यमें अनेक विघ्न-बाधाएँ, प्रतिरोध एवं प्रतिकूलताएँ पड़ेंगी, लेकिन ये कठिनाइयाँ वास्तवमें आपकी सहायक शक्तियाँ हैं, जो पग-पगपर आपकी शक्तियोंकी परीक्षा करती है और आपको दृढ़तर बनाती हैं । वे आपको अनुभव देती है और अध्यवसायी बनाती हैं ।

हरकूलीज नायक यूनानी वीरका सिर शेरकी खालसे ढका होता था और शेरके पंजे उसके गलेके नीचे चुभते रहते थे, जिसका तात्पर्य यह था कि जब कठिनाइयोंपर विजय प्राप्त हो जाती है, तो वे हमारी सहायक शक्तियाँ बन जाती हैं ।

घटनाएँ परिस्थितियोंसे सम्बन्धित रहती हैं। उनका फल हमारे चरित्रपर निर्भर रहता है। आप किसी घटनाके प्रति कैसी प्रतिक्रिया दिखाते हैं, यही कसौटी है। एक प्रतिभाशाली व्यक्तिके लिये असफलता सफलताका सोपान हो सकता है, जब कि एक कमजोर व्यक्तिके लिये वही एक ऐसा खन्दक बन सकता है, जिसमेंसे निकलना असम्भव हो। सब कुछ हमारी इच्छाशक्ति और संकल्पपर निर्भर है। जहाँ चाह है वहाँ राह अवश्य निकल आती है।

जिस वस्तु या जिन-जिन वस्तुओंको आप मूल्यवान् समझते हैं, उनका मूल्य श्रम ही है। श्रमके बिना उसकी प्राप्ति असम्भव थी। महान् पुरुषोंकी सफलताका गुर निरन्तर अनवरत श्रम है। उन्होंने जो कार्य हाथमें पकड़ा, वे लगातार उसीको आगे लेकर बढ़ते रहे हैं। हम यह मानते हैं कि उनमें जन्मजात प्रतिभा, बुद्धि आदि रही होगी, किंतु उनमें जिस गुणका आधिक्य था, वह परिश्रम था। श्रमको सजा मत मानिये, प्रत्युत आशा और उत्साहका सम्मिश्रण कीजिये।

सेन्ट अगस्टाइन कहा करते थे, 'आलस्यमें बिना कुछ किये निष्क्रिय पड़े रहना सबसे कठिन कार्य है। वह व्यक्ति धन्य है जो अपना जीवन और शक्तियाँ उत्तम कार्योंकी सिद्धिमें लगाता है और अपनी योजनाएँ पर्याप्त सोच-समझकर निर्मित करता है। न केवल बड़ी योजनाओंमें, छोटी तथा मामूली योजनाओं तकमें, श्रमकी अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है। आलस्यमें सम्पत्ति अर्जित करनेमें लगे हुए समयसे आधे समयमें ही नष्ट हो जाती है।'

एक संस्कृत कहावतका सार है—'लक्ष्मी उस नर-शिरोमणिके साथ रहती है, जो सर्वाधिक श्रम करता है। वे व्यक्ति दुर्बल हैं, जो भाग्यको ही निर्माण करनेवाली शक्ति माने बैठे हैं।'

इस देशके नवयुवकोंका सबसे बड़ा शत्रु आलस्य है। बेकारोंकी संख्या बढ़ानेवाले कुछ व्यक्ति तो वास्तवमें काम न मिलनेसे परेशान हैं, किंतु अधिकांशमें उनमें ऐसी संख्यावाले अधिक हैं, जो आलसी, बेकार, निठल्ले और मुफ्तमें सब कुछ चाहनेवाले हैं। जो पेशे अधिक परिश्रम चाहते है, उनमें वे दिलचस्पी नहीं लेते। उन नौकरियोंकी ओर दौड़ते हैं जिनमें कम मेहनत करनी पड़ती है। काम न करके, वे आलस्यमें अपनी शक्तियोंका और भी क्षय कर रहे हैं। जिन शक्तियोंका उपयोग नही किया जाता, वे अन्ततः नष्ट हो जाती हैं। शारीरिक और मानमिक शक्तियोंके प्रति आलस्य-भावना अनर्थकारी है। आलस्यने उन्हे पतित और कमजोर बना दिया है। कुछ दिन तो मनुष्यको आलस्यमें कुछ आकर्षण प्रतीत होता है; किंतु बादमें खाली बैठे ठाले रहना भी दु:सह हो जाता है। आलस्यमें आनन्द मनाने, प्रसन्न रहनेकी शक्ति मारी जाती है। जिस व्यक्तिके जीवनमें सदा छुट्टी ही रहती हो, वह छुट्टीके आनन्दको क्या समझ सकता है। बिस्तरपर पड़े रहनेवालोंने कब क्या किया है? उन्हे अपने सोनेसे ही कब फुरसत मिली है? बड़े-बड़े अवसर निकले चले जाते हैं और वे सोये पड़े रहते है। जिसे हम आलस्य कहते है, वह हमारी शक्तियोंके पंगु होनेकी एक निशानी है।

आलस्य जीवित व्यक्तिकी समाधिकी तरह है। आलसी व्यक्ति न अपनी उन्नति, सेवा या प्रगति कर सकता है, न समाज, देश अथवा परमेश्वरके ही काम आ सकता है। वह तो चूहे, खटमल या मक्खी-मच्छरोंकी तरह व्यर्थ ही इस सृष्टिके अन्नको नष्ट करता है। जब उसके मरनेका समय आता है, तो वह व्यर्थ जीवन कीट-पतगों या पशु-पक्षियोंकी तरह नष्ट हो जाता है। ऐसे लोग जो कुछ करते हैं वह बंजर भूमिकी तरह व्यर्थ है। आलस्य समयकी बरबादी है।

पुराने यूनानी लोग कार्यको एक सामाजिक आवश्यकता समझते थे। सोलन कहते हैं कि 'जो व्यक्ति काम नहीं करता था अथवा उससे जी चुराता था, वह कोर्टके सुपुर्द कर दिया जाता था।' एक दूसरे यूनानी वेत्ताका कथन है कि 'जो व्यक्ति कामसे जी चुराता है, वह चोर-डाकू है।' श्रम करनेवाले व्यक्ति अपराधी नहीं होते। उनकी वृत्तियां शुभ कार्योंमें लगती हैं। वे ऊँचाईकी ओर चढते हैं। आलसी व्यक्तिका दिमाग झगडोंकी जड़ है। उसमें रह-रहकर शरारत और तुफान उठा करती है। खाली बेकार बैठकर हम प्रमाद-पापकी ओर प्रवृत्त होते हैं। जो व्यक्ति अपनेको कार्यसे मुक्त समझता है वह दयाका पात्र है, साथ ही सजाका हकदार है। यदि आप अशिक्षित हैं तो थोड़ेसे श्रमसे शिक्षित बन सकते हैं, यदि पिछड़े हुए हैं तो मेहनतसे भागकर आगे निकल सकते हैं, यदि दुर्बल हैं तो सशक्त और मांसल हृष्ट-पुष्ट बन सकते हैं, अपनी सब निर्बलताओंको दूर कर सकते हैं और प्रतिष्ठाका जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

प्रत्येक मन आलस्यमें शक्में आता है और हमे कर्ममार्गसे च्युत

करता है। 'तनिक विश्राम कर लें'—ऐसा विचार मनमें आते ही, वह अपनी शक्तियोंको समेट लेता है। इस 'तनिक' से उसकी शक्तियोंको पूरा काम नहीं मिल पाता। फलतः वह अपनी सृजनात्मक शक्तियाँ खो बैठता है।

अरस्तूने कहा है—'आनन्द एक शक्ति है। दैनिक पर्यवेक्षणसे आपको विदित होगा कि आनन्द और स्वास्थ्यकी आलस्यसे पुरानी शत्रुता है। अनेक व्यक्तियोंके जीवनमें असंख्य अवसर आते हैं, उनकी प्रसन्नताकी प्राप्तिके बहुतसे साधन हो सकते हैं। समयका सदुपयोग कर ये व्यक्ति कहींके कहीं पहुँच सकते हैं। फालतू वक्तमें अपनी गुप्त शक्तियोंको बढ़ाकर ये अपने आपका आमूल परिवर्तन कर सकते हैं और इन्हीं आलसियोंमें ऐसे अनेक व्यक्ति निकल सकते हैं जो शानदार फल प्राप्त कर सकते हैं, पर शोक! ये अपनी मोह-निद्रामें सोये पड़े रहते हैं। इन सदाके लिये अपने हाथसे भागते हुए मिनटों, घंटों, दिनों और सप्ताहोंको मजबूतीसे नहीं पकड़ते। इन्हें व्यर्थ मत क्षय होने दीजिये वरं अपने कार्यसे स्थायी बनाइये।'

यौवनका समय स्वर्णयुग है। जीवनके ये बहुमूल्य क्षण मनुष्यको किसी विशेष दिशामें मोड़नेके लिये समर्थ हैं। उस समय शक्तियाँ अपने पूरे उभारपर रहती है और उनसे खूब परिश्रम लिया जा सकता है। प्रौढ़ हो जानेपर ये शक्तियाँ चाँदीकी तरह हैं। चाँदीके जिस प्रकार अनेक उच्च उपयोग हो सकते हैं उसी प्रकार प्रौढ़ जीवनके समयसे भी प्रचुर लाभ उठाया जा सकता है। वृद्धा-वस्थाका युग शीशेकी तरह है, जिसके उपयोग हैं पर बड़े नहीं।

फिर भी अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार उसका भी कुछ-न-कुछ उपयोग हो ही सकता है।

यदि कार्य करें, लेकिन देरसे झिकाकर दुःख देकर करें, तो क्या लाभ ? कार्य तो वही उत्तम है, जो उचित समयपर समयानुकूल ही कर दिया जाय—जब समय निकल गया, तो उसे करनेसे न लाभ हो सकता है न प्रशंसा ही प्राप्त हो सकती है। नियमपूर्वक ठीक समयपर कार्य पूर्ण कर देना परमेश्वरका एक आशीर्वाद है। टालने या देरसे करनेके कारण अनेक बड़े व्यक्तियोंका पतन हुआ है।

कुछ व्यक्तियोंके असफल होनेका कारण क्रम तथा व्यवस्थाकी कमी है। वे काम खूब करते हैं किंतु सब अव्यवस्थित, टूटा-फूटा, बेतरतीब, विशृङ्खल। जबतक ठीक योजना न बनायी जाय और अपने कार्यको क्रमानुसार पूर्ण न किया जाय, तबतक स्थायी लाभ प्राप्त नहीं होता, प्रत्युत कार्य अधूरा-सा ही रह जाता है।

क्रम तथा सुव्यवस्था सर्वत्र लाभदायक है। घर हो या आफिस, दूकान या और कोई अस्पताल, सुव्यवस्था अमित फल देनेवाली है। व्यवस्थित व्यक्ति थोड़ेसे श्रमसे बहुत काम निकाल सकता है, थोड़ी वस्तुओंसे बहुत-सा लाभ प्राप्त कर सकता है तथा रुपया भी बचा सकता है। आपके घर, दूकान या आफिसकी प्रत्येक वस्तुका एक नियत स्थान होना चाहिये। प्रत्येक सदस्य वस्तुको उसी नियत स्थानपर रक्खे, इधर-उधर न फैलाये। जो वस्तु जहाँसे उठायी जाय वहीं रक्खी जाय, जो पुस्तक अलमारीके जिस स्थानपर रक्खी है, वहीं रक्खी जाय। कमरेमें आपका चाकू, दियासलाई, लिखने-पढ़नेकी वस्तुएँ

कपड़े, कुर्सी, मेज, कंघा, शीशा इत्यादिका जो स्थान नियत हो चुका है वहीं पहुँचना चाहिये। लिखने-पढ़ने, हिसाब-किताब, ऋण या मिलने-जुलनेमें भी समय और क्रमका ध्यान रक्खें। पहले सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य हाथमें लें, फिर कम महत्त्वपूर्ण, फिर अन्य साधारण काम। प्रायः लोग मामूली कामोंको पहले हाथमें ले लेते हैं, जब कि महत्त्वपूर्ण कार्य यों ही पड़े रह जाते हैं।

काममें समयकी पाबंदीका सतर्कतासे ध्यान रक्खें। बिना समय-की पाबंदीके मनुष्य चिन्तित रहता है तथा कामको पर्वतकी तरह भारी और दुरूह कष्टसाध्य मानता है। नियत समयपर कार्य करने-का गुण सर्वत्र प्रशंसित होता है। ऐसे व्यक्तिपर सब विश्वास करते हैं और जिम्मेदारीके कार्य प्रदान करते है।

जीवन एक प्रगति है। यह उन्नति और श्रेष्ठताकी ओर बढ़ना है। हम आशामय प्रयत्नोंसे निरन्तर आगे बढ़ते चलते हैं। प्रायः कठिनाई सत्य-प्राप्तिमें एक गुरुका कार्य करती है। विरोध हमारी गुप्त शक्तियोंको जाग्रत् करता और आगे बढ़नेकी प्रेरणा प्रदान करता है। अधिक कठिनाइयाँ पड़नेपर हमारा आत्म-विश्वास बढ़ता है, विनम्रता आती है और सहिष्णुताकी शक्तियाँ बढ़ जाती हैं।

आपका जीवन बंद पानीकी तरह एक स्थानपर बँधा हुआ सड़ता-गलता नही होना चाहिये। यदि आप उसे आगे नहीं बढ़ायेंगे, जीवनमें प्रवाह नहीं लायेंगे, तो वह पीछे (पतन, आलस्य और मृत्यु) की ओर चलने लगेगा। जहाँ आपको कठिनाइयाँ मिले, उनकी परवा न करते हुए आपको आगे बढ़ जाना चाहिये। सर फिलिप

फिर भी अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार उसका भी कुछ-न-कुछ उपयोग हो ही सकता है।

यदि कार्य करें, लेकिन देरसे झिकाकर दुःख देकर करें, तो क्या लाभ? कार्य तो वही उत्तम है, जो उचित समयपर समयानुकूल ही कर दिया जाय—जब समय निकल गया, तो उसे करनेसे न लाभ हो सकता है न प्रशंसा ही प्राप्त हो सकती है। नियमपूर्वक ठीक समयपर कार्य पूर्ण कर देना परमेश्वरका एक आशीर्वाद है। टालने या देरसे करनेके कारण अनेक बड़े व्यक्तियोंका पतन हुआ है।

कुछ व्यक्तियोंके असफल होनेका कारण क्रम तथा व्यवस्थाकी कमी है। वे काम खूब करते हैं किंतु सब अव्यवस्थित, टूटा-फूटा, बेतरतीब, विशृङ्खल। जबतक ठीक योजना न बनायी जाय और अपने कार्यको क्रमानुसार पूर्ण न किया जाय, तबतक स्थायी लाभ प्राप्त नहीं होता, प्रत्युत कार्य अधूरा-सा ही रह जाता है।

क्रम तथा सुव्यवस्था सर्वत्र लाभदायक है। घर हो या आफिस, दूकान या और कोई अस्पताल, सुव्यवस्था अमित फल देनेवाली है। व्यवस्थित व्यक्ति थोडेसे श्रमसे बहुत काम निकाल सकता है, थोड़ी वस्तुओंसे बहुत-सा लाभ प्राप्त कर सकता है तथा रुपया भी बचा सकता है। आपके घर, दूकान या आफिसकी प्रत्येक वस्तुका एक नियत स्थान होना चाहिये। प्रत्येक सदस्य वस्तुको उसी नियत स्थानपर रक्खे, इधर-उधर न फैलाये। जो वस्तु जहाँसे उठायी जाय वहीं रक्खी जाय, जो पुस्तक अलमारीके जिस स्थानपर रक्खी है, वहीं रक्खी जाय। घरमें आपका चाकू, दियासलाई, लिखने-पढ़नेकी वस्तुएँ

कपड़े, कुर्सी, मेज, कंघा, शीशा इत्यादिका जो स्थान नियत हो चुका है वहीं पहुँचना चाहिये। लिखने-पढ़ने, हिसाब-किताब, ऋण या मिलने-जुलनेमें भी समय और क्रमका ध्यान रक्खें। पहले सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य हाथमें लें, फिर कम महत्त्वपूर्ण, फिर अन्य साधारण काम। प्रायः लोग मामूली कामोंको पहले हाथमें ले लेते हैं, जब कि महत्त्वपूर्ण कार्य यों ही पड़े रह जाते हैं।

काममें समयकी पाबंदीका सतर्कतासे ध्यान रक्खें। बिना समय-की पाबंदीके मनुष्य चिन्तित रहता है तथा कामको पर्वतकी तरह भारी और दुरूह कष्टसाध्य मानता है। नियत समयपर कार्य करने-का गुण सर्वत्र प्रशंसित होता है। ऐसे व्यक्तिपर सब विश्वास करते हैं और जिम्मेदारीके कार्य प्रदान करते है।

जीवन एक प्रगति है। यह उन्नति और श्रेष्ठताकी ओर बढ़ना है। हम आशामय प्रयत्नोंसे निरन्तर आगे बढ़ते चलते हैं। प्रायः कठिनाई सत्य-प्राप्तिमें एक गुरुका कार्य करती है। विरोध हमारी गुप्त शक्तियोंको जाग्रत् करता और आगे बढ़नेकी प्रेरणा प्रदान करता है। अधिक कठिनाइयाँ पड़नेपर हमारा आत्म-विश्वास बढ़ता है, विनम्रता आती है और सहिष्णुताकी शक्तियाँ बढ़ जाती हैं।

आपका जीवन बंद पानीकी तरह एक स्थानपर बँधा हुआ सड़ता-गलता नहीं होना चाहिये। यदि आप उसे आगे नहीं बढ़ायेंगे, जीवनमें प्रवाह नहीं लायेंगे, तो वह पीछे (पतन, आलस्य और मृत्यु)की ओर चलने लगेगा। जहाँ आपको कठिनाइयाँ मिले, उनकी परवा न करते हुए आपको आगे बढ़ जाना चाहिये। सर फिलिप

सिडनीका मूल मन्त्र हमें प्रेरणा देनेवाला है—'मैं सफलता और कार्यसिद्धिका मार्ग मालूम कर लूँगा। यदि न मिला, तो स्वयं निर्माण कर लूँगा।' यदि आपको अपना मार्ग नहीं मिलता, तो अपनी मौलिकता, बुद्धि तथा अध्यवसायसे उसे मालूम क्यों नहीं कर लेते?

आराम तथा विलासमें रहनेसे मनुष्य जीवनभर बच्चा ही बना रहता है। कठिनाइयों और विरोधोंमें रहनेसे उसमें पुरुषोचित शक्ति और सामर्थ्यकी वृद्धि होती है।

बड़े बननेवाले व्यक्तियोंके जीवनका अध्ययन करनेसे विदित होता है कि उनमें कुछ अपूर्णताएँ, त्रुटियाँ या प्रकृतिकी ओरसे कुछ कमजोरियाँ थीं। इन कमजोरियोंको दूर करनेकी प्रतिक्रियाने उन्हे ऊँचा उठाकर आसमान तक चढ़ाया था। चरित्रकी दृढ़ता या कमजोरीकी सच्ची परीक्षा तभी होती है, जब बाह्य परिस्थितियोंमें कोई असाधारण परिवर्तन होता है या कोई विरोध उत्पन्न होता है। विरोधसे मनुष्यको अपनी सब शक्तियोंके सामूहिक बलपर अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करनी होती है। अनेक छिपी हुई गुप्त शक्तियोंका विकास होता है। कठिनता एक भारी हल है। उसे चलानेके लिये लोहेसे सख्त हाथोंकी आवश्यकता है।

आपका श्रम चाहे शारीरिक हो अथवा मानसिक, आपको चाहिये कि आप पूरी शक्ति और एकाग्रतासे उसमें संलग्न हो जायँ, तन्मयतापूर्वक उसे सम्पन्न करते रहें और जबतक उसे पूरा न कर डालें कदापि न छोड़ें। अपने पसीनेकी आयसे आपको समुन्नत होना चाहिये।

धनकी त्रुटियाँ बताते हुए प्रायः कहा जाता है कि इससे हमारी नैतिकताको धक्का लगता है; सहानुभूति, दया, करुणाका लोप होने लगता है, लेकिन गरीबी इससे भी बुरी है, निन्द्य है। गरीबीसे मनुष्यका साहस और उत्साह मारा जाता है, सच्चा और प्रतिष्ठित होना कठिन हो जाता है। अतः श्रमद्वारा अपनी गरीबीको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

श्रमके साथ विश्राम और निर्दोष मनोरञ्जनका भी उचित सम्मिश्रण होना अपेक्षित है। आप परिश्रम करें और थकनेपर पर्याप्त विश्राम करें, मनोरञ्जनद्वारा मनका भार दूर करें, जिससे नया उत्साह और शक्ति प्राप्त हो सके।

अपने कार्यमें निरन्तर संलग्न रहना, मन उचाट न कर उसमें समृद्धिशील बननेका प्रयत्न करते रहना मनुष्यके लिये सबसे स्वस्थ शिक्षा है। जो अपनी शक्तियोंका सुचारु उपयोग श्रममें करता चलता है, वह कठिन कार्योंमें भी सफलता प्राप्त करता जाता है। समृद्धि उसके साथ चलती है।

श्रमशील व्यक्ति तड़के उठता है और अपने कामपर यथासमय जाता है। वह एक सेकंड भी व्यर्थ नष्ट नहीं करता। वह सतर्क और जागरूक बना रहता है, अवसरोंको व्यर्थ नहीं जाने देता। आपने पर्याप्त समझ-बूझकर अपना जो भी कार्यक्रम उद्देश्य या मूल काम निश्चित किया हो, उसमें दृढतासे लग जाइये, अपने निश्चयोंके प्रति सच्चे रहिये। ध्यान रखिये कि आलस्य, तन्द्रा, विलास या बीमारी-की केचुली आपके इर्दगिर्द चिपटी न रह जाय।

सक्रिय जीवन व्यतीत कीजिये

जो शक्ति पृथ्वीको धारण किये हुए है वह क्रियाशीलता है। यदि पृथ्वी अपनी धुरीपर न घूमे तो वह गिर पड़ेगी। इसी प्रकार यदि हम अपनी क्रियाशीलता परिश्रमशीलता त्याग दे, तो जीवन-संग्राममें अवरोध उत्पन्न हो जायगा। क्रियाशीलता ही हमारे जीवन-का सब कुछ है।

रुपयेके परिवर्तनमें हम सब कुछ पा जाते हैं। पर रुपया वास्तवमें क्या है? यह है, हमारा संचित श्रम। श्रमको स्थूलरूप प्रदान कर रुपया, जमीन, जायदाद बना लेते हैं। इसी संचित श्रमसे हम दूसरोंका विभिन्न प्रकारका श्रम खरीदा करते हैं। यदि यह श्रमके विनिमयकी प्रथा रुक जाय, तो संसारका समस्त कार्य रुक सकता है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति अपने शरीर, मन, बुद्धिके अनुसार समाजका

कुछ-न-कुछ कार्य करता है। किसीका श्रम शारीरिक है तो किसी-का मानसिक रहता है। इसी श्रमके आदान-प्रदानसे समाजका कल्याण होता है।

क्रियाशीलता प्रकृतिमें है। हवा और जलतक बिना क्रिया सड़ने-गलने लगेंगे। चाकूको जितना पड़ा रक्खेंगे, निष्क्रिय रक्खेंगे, जंगसे नष्ट हो जायगा। उसीको यदि प्रयोगमें लायेंगे, तो तेज चमकदार और सुन्दर बन जायगा। ऐसा ही मानव-जीवन है। यदि हम अपनी शक्तियोंका सदुपयोग करते रहेंगे, तो मनके दुर्विकार, कूड़ा-करकट, मैल, दुर्गन्ध, सड़न, अव्यवस्था, आलस्य और दारिद्र्य नष्ट हो जायँगे। क्रियाशील रहनेसे हमारी चैतन्यता, जागरूकता, शुचिता और सात्त्विकताकी वृद्धि होती है। मनुष्य अंदर और बाहरसे स्वच्छ एवं प्रसन्न रहता है।

समयरूपी तालेमें परिश्रमरूपी ताली डालनेसे इस पृथ्वीके सब सुख-सम्पत्ति प्राप्त होते हैं। परिश्रमशील व्यक्ति सब कुछ कर सकता है—एक चौपाईका टुकड़ा देखिये—

सकल पदारथ हैं जग माही। कर्महीन नर पावत नाहीं॥

इसमें लेखकने ज्ञान और अनुभवका अखण्ड भण्डार भर दिया है। भगवान्‌ने मनुष्यको संसारमें भेजते समय यह क्रम रक्खा है कि कर्मनिष्ठा और परिश्रमशीलतासे ही सब सम्पदाएँ प्राप्त हों। विश्व कर्मप्रधान है। जो जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल चखता है। तरह-तरहके फल लोगोंको मिल रहे हैं, किसीकी आरती

उतर रही है, जयध्वनि बोली जा रही है यानी प्रतिष्ठा दी जा रही है, प्रशंसा की जा रही है। ये वे व्यक्ति हैं जिन्होने श्रमद्वारा संसारके समयका उपयोग किया है। श्रमकी पूँजीसे जो चाहे खरीद लीजिये।

लोग अभावग्रस्त क्यों हैं? इसीलिये कि उन्होने पूरी परिश्रम-शीलतासे काम नहीं किया है। पूरी निष्ठा नहीं लगायी है। भगवान् उसीका फल देंगे, जो आपने किया है। उन्होंने श्रमके ऊपर सब व्यवस्था रक्खी है। वे परम न्यायकारी हैं। वे देखते हैं कि कौन सही-सही परिश्रम कर रहा है। सही परिश्रमकी कसौटीपर ही हमें सांसारिक मानप्रतिष्ठा, प्रसिद्धि प्राप्त होती है।

समय और श्रमकी उपयोगिता ही मुख्य है। जो कामसे जी चुराते हैं, वे मरते हैं, गरीब रहते हैं और पग-पगपर अपमानित होते हैं। जो फालतू आलसी निकम्मे शैतान हैं, वे लड़ेंगे, झगड़ेंगे, जुआ खेलेंगे, परेशान करेंगे। ये शैतान आपके दिमागपर अधिकार न कर लें, इसके लिये सावधान रहें। मनके शैतानको काम दीजिये। शारीरिक श्रमकी भी उपेक्षा मत कीजिये। श्रम और सम्पत्तिमें कोई अन्तर नहीं है। किसान पृथ्वीकी छाती चीरकर भोजन उत्पन्न करता है, मल्लाह नदीकी छाती चीरकर चलता है। जय, प्रशंसा, मान-प्रतिष्ठा, रुपया-पैसा, जायदाद—ये सब श्रमके पुरस्कार ही हैं।

महाभारतमें एक स्थानपर कहा गया है कि दोनो भुजाओंका कमाया हुआ अन्न हमारे पेटको मिलना चाहिये, बुद्धिकी कमाई

हमारे मनको मिलनी चाहिये। बुद्धिसे लोग अधिक कमाकर प्रायः फालतू अपव्यय करते हैं। शारीरिक श्रमसे कम पैसा मिलता है, लेकिन उसके बिगड़नेकी भी कम गुंजाइश है। बुद्धिकी कमाई धर्म, यज्ञ, दान, पुस्तक-क्रय, ज्ञानवर्द्धनमें व्यय होनी चाहिये। हमारी परम्परा ऐसी रही कि राजा जनक तक हल जोतकर जीविकोपार्जन करते रहे। खेतीका रुपया पसीनेका रुपया है। श्रमका रुपया है। नसीरुद्दीन कुरान लिखकर अपनी जीविका उपार्जन करता था। उसकी पत्नी उसके लिये भोजनकी व्यवस्था करती थी। वह टोपी बनाया करता था। बाजारमें किसीके यहाँ रखवा कर साधारण मूल्यपर ही उन्हें बिकवाता था। गांधी और विनोबा श्रमकी प्रतिष्ठाके ज्वलन्त उदाहरण हैं। उनके यहाँ जल तक मनुष्य खींचते रहे। स्वयं अपना काम करते रहे। व्यक्तिगत आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये स्वयं ही परिश्रम करनेकी जरूरत है।

श्रम मनुष्यकी अभूतपूर्व वस्तु है। श्रमदान-यज्ञ मनुष्यके श्रमकी प्रतिष्ठाका एक जीता-जागता रूप है। कर्म ही मनुष्यको ऊपर उठानेवाला है। भगवान् स्वयं कर्मरत हैं। वे एक क्षणके लिये भी बिना कर्म किये नहीं रहते। यदि वे एक क्षणके लिये कर्म करना बंद कर दे, तो इस सृष्टिका प्रत्येक कार्य रुक जाय। वे निरन्तर कार्यरत हैं। हम भी उनसे शिक्षा लें और अपने-अपने ढंगसे परिश्रम करते रहें। बच्चे, युवक, वृद्ध, नारियाँ सब आयुपर्यन्त कुछ-न-कुछ श्रम कर सकते है।

परिश्रम करनेकी मूल वृत्ति किसी-न-किसी विशेष उद्देश्यके लिये प्रयत्न करना है। एक उद्देश्यको रखकर हमें उसकी प्राप्तिके लिये परिश्रम करना उचित है। एक दिशामें प्रयत्न फल शीघ्र देता है। कई बार सामान्य परिश्रम या संयोगसे कोई-कोई बड़ी बात हो जाती है। एकाएक कुछ व्यक्ति अमीर बन जाते हैं या प्रयत्न विफल हो जाते हैं लेकिन यह स्थिति असाधारण है। बिना श्रमके आयी हुई सम्पत्ति स्वयं निकल जाती है, स्थायी लाभ नहीं होता। फालतू पैसा अभिमानका नशा उत्पन्न करता है। कर्मको कर्त्तव्य समझकर निरन्तर श्रम कीजिये और खिन्नतासे निराश मत रखिये। प्रत्येक क्षण कर्म करते रहनेसे गुप्त शक्तियोंका विकास होता है और जीवन दीर्घ बनता है। जीवनमें जो समयकी पूँजी पड़ी है, उसे निचोड़कर तरह-तरहकी सम्पदाएँ प्राप्त कीजिये।

श्रुति कहती है—जीवन एक संग्राम है। उस जीवनमें वही विजयी होता है, जो सीना तानकर आफतोंका मुकाबिला कर सकता है। आफतोंकी घनघोर घटाओंमें बिजलीकी तरह मुस्करा सकता है, परिस्थितियोंका दास न बनकर उनका दृढनिश्चयी स्वामी बनता है। जो टूट जाना पसंद करता है, पर झुकना नहीं।

अक्षय यौवनका आनन्द लीजिये

क्रियाशीलता यौवन स्थिर रखती है

विकासवादी सिद्धान्त है कि पहले मनुष्य एक जंगली जीव था। सभ्यताके ऊष:कालमें जब अन्य वन्य पशुओंकी भाँति वह उन्मुक्त विचरण करता रहा; घूमना, फिरना, तेजीसे भागकर अपनी उदरपूर्तिके हेतु आखेट करना, तैरना, कूदना-फाँदना—जब उसके दैनिक क्रम रहे, यौवन और जीवन आनन्द प्राप्त करता रहा।

सभ्यताका विकास हुआ या यों कहिये मनुष्य धीरे-धीरे कृत्रिमताके बन्धनमें बँधने लगा, उसका दूर-दूरतक घूमना, फिरना, तैरना, खेलना, कूदना कम होने लगा। वह भोजनोंको भी पकाने लगा; जिह्वाके स्वादमें फँस गया। प्राकृतिक आहारके स्थानपर नाना प्रकारके कृत्रिम भोजनोंका आविष्कार किया गया।

मनुष्यका जीवन आलसी बन गया। प्रकृति श्रमकी पुजारिन है। वह उन्हीं पशु-पक्षियों, जलचर, नभचर इत्यादिको विकसित करती है, जो लगातार परिश्रम करनेके अभ्यस्त हैं। जो जितना ही

क्रियाशील है, उतना ही स्वस्थ और सुडौल है । हरिण चौकड़ी भरता है, नील-गाय तेज दौड़ती है, अश्व जीवनपर्यन्त जीवनकी दौड़ दौड़ता रहता है; पक्षी निरन्तर व्यायाम करते हैं, बिना पंखोंका उपयोग किये, उन्हें भोजन भी प्राप्त नहीं होता, मछलियाँ निरन्तर तैरती रहती हैं, जंगलके जितने भी जानवर हैं, क्रियाशील रहकर ही जीवनके नाना उपादान एकत्रित करते हैं । गाय, भैंसे, बकरी, भेड़ दिनभर घूम-घूमकर घास खाते हैं । यह क्रियाशीलता ही उनके स्वास्थ्यका मूल है । न उन्हें कब्जकी शिकायत होती है, न कड़वी दवाइयाँ भक्षण करनी पड़ती है ।

आलस्यके दुष्परिणाम

आजकलके युवक या युवतीका शरीर देखिये—पिचका हुआ मुख, धँसे हुए कपोल, नेत्रोंके चारों ओर कालिमा, पतले-दुबले हाथ-पाँव, न शरीरमें शक्ति, न मनमें स्फूर्ति । क्या कारण है कि हाथ-पाँव दुबले हैं, क्या कारण है कि सिर, कमर और जोड़ोंमें दर्द रहता है या पेट फूलता चला आ रहा है ? कारण है परिश्रमका अभाव । जिन अङ्गोंसे मेहनत नहीं ली गयी, वे निर्बल हो रहेंगे । शक्ति उन्हीं अङ्गोंमें आती है, जिनसे यथेष्ट श्रम किया जाता है । शरीरसे खूब कार्य लीजिये, देखिये कितनी तीव्रतासे वह दूर होता है; बाहें मोटी होने लगती है, पिचके हुए कपोल पुनः सुचारी आभासे परिपूर्ण हो जाते हैं, सिरदर्द जाता रहता है ।

ग्रामीण मजदूरोंको देखिये, उनके पुट्ठों, आकार, स्वास्थ्यको देखिये और उनके स्वस्थ क्रियाशीलतापर गौर कीजिये । ग्रामीण

स्त्रियाँ बड़े तड़केसे ही चक्की पीसना प्रारम्भ कर देती हैं, उसीके साथ मधुर संगीतकी तान छेड़ देती हैं। कसरत और संगीत—यौवन छलछला उठता है।

आज युवकोंके शरीरोंमें जंग लग गया है। उनकी आदतें आलसी हैं। वे चलना-फिरना या शारीरिक कार्य करना नहीं चाहते। थोड़ी-थोड़ी दूरके निमित्त साइकिल या मोटर बसका आश्रय देखते हैं; खेलने-कूदनेमें उनकी रुचि नहीं है। अपना काम अपने हाथसे करनेमें लज्जाका बोध होता है। पैदल चलनेमें शर्म आती है। पाँवोंसे काम लेना छोड़नेके कारण शरीरकी रही-सही स्फूर्ति भी विलीन हो गयी है।

मेरा वश चले तो साइकिल नामके इस आलसी बनानेवाले यन्त्रको तोड़ फोड़ दूँ। संसारसे इसका बहिष्कार करा दूँ। इन कृत्रिम पाँवोंने हमारे वास्तविक पाँवोंकी शक्तिका शोषण कर दिया है। हमें आलसी बना दिया है। हमारे स्वास्थ्यका दिवाला निकालनेमे इस सवारीका प्रमुख हाथ है। साइकिल-सवारीका कुप्रभाव गुप्त अङ्गोंपर भी पड़ता है और घृणित रोगोंमें प्रकट होता है।

शारीरिक श्रम किया करें

यौवनके इच्छुकको चाहिये कि यथाशक्ति श्रम करे। चलने-फिरनेके कार्य पाँवोंसे करे। साइकिल तथा इक्कोंसे दूर रहे। यदि आपका दफ्तर दो मील दूर है तो आने-जानेका कार्य पाँवोंसे लीजिये। बाजारसे नाना प्रकारकी वस्तुएँ पैदल ही खरीदने जाना चाहिये। स्कूल पैदल चलें। प्रकृति चाहती है कि दिनभर आप काफी चलें; बैठे न रहें।

जल जब एक ही स्थानपर स्थिर रहता है, तो गंदा हो जाता है। वही जल जब लहरोंके रूपमें बहने लगता है, तो मल पदार्थोंसे स्वच्छ हो जाता है। चलने-फिरने क्रियाशील रहनेसे यौवन स्थिर रहता है। प्राकृतिक प्रणालीमें शरीरकी सफाई, पुनः-निर्माण और विकासके लिये क्रियाशीलता एक आवश्यक तत्त्व है।

फौजमें रहनेवालेको नियमित रूपसे चार-पाँच घंटे ड्रिल करायी जाती है। कदम मिलाकर चलना, भागना, दौड़ना, कूदना उनके जीवनके साथ लगा दिया जाता है। फलतः वे दीर्घजीवी और परिपुष्ट होते हैं। सीधे खड़े होने, रीढ़को सीधा रखने, गहरी साँस लेनेसे, व्यायाम तथा कसरतसे यौवन स्थिर रहता है।

एक स्थानपर टिककर घंटों बैठे रहना, गद्दीपर मोटे तकियोंके सहारे लेटे रहना, स्वयं अपने हाथ-पाँवसे काम न कर दूसरोंकी बाट देखना, थोड़ी-थोड़ी दूरके लिये साइकिल, बस, रिक्शा, या ताँगेका प्रयोग, टहलने न जाना, व्यायाम न करना, शारीरिक श्रमसे जी चुराना बुढ़ापेको आमन्त्रित करनेकी आदतें हैं। इनसे मनुष्यका विकास अवरुद्ध हो जाता है।

इसके विपरीत नित्य समयपर टहलने जाना जीवनको बढ़ा लेना है। टहलना अपने-आपमें हलका व्यायाम है। श्री-भुवनेश्वरनाथ माधव लिखते हैं—'जो खुली हवामें टहलता है, उसे अस्पतालोंकी धूल फाँकनी नहीं पड़ती; न डाक्टरोंके पीछे-पीछे मनुष्यका ध्यान करना पड़ता है। टहलनेवालेका विश्वास है कि शरीर, मन, प्राण और आत्माको चिर सुन्दर, चिर युवा, चिर उल्लासमय

रखनेके लिये टहलना यथेष्ट है, उसके विचारमें डाक्टर शत्रु और दवा जहर है। वह इन दोनोंसे बचेगा, उसे इनकी आवश्यकता न होगी। वह प्रकृति माताका स्तन पान करनेवाला भला अपने गलेके नीचे टिकिया या मिक्श्चरके जहरको क्यों उतारेगा? वह जानता है उसके शरीरके लिये जितना कुछ आवश्यक है, प्रकृति देती है। प्रायः लोग उपवासके समय मुर्देके समान पड़ जाते है। उपवाससे पूरा-पूरा लाभ उठानेके लिये टहलना नितान्त आवश्यक है। मीठी नींद आती है, टहलनेवालेको ही। वह शिशुकी तरह सोता है और सिपाहीकी तरह जागता है—बिल्कुल तरो ताजा।'

जो लोग तैर सकते है, वे तैरकर व्यायाम करे। जो सूर्य-नमस्कारका आनन्द उठा लेते हैं, वे सब प्रकारकी निराशा, विषाद, पीड़ा, दुःख और ग्लानिसे मुक्त रहते हैं। यदि आप कोई बड़ा व्यायाम नही करते, तो टहलने और मालिशको तो अपना ही लीजिये। ब्राह्ममुहूर्तमें टहलना, सङ्गीत, स्नान, पूजा, व्यायाम इत्यादि ऐसे पवित्र कर्म हैं, जिनसे आपके शरीर, मन, प्राण और आत्मा सुखी-समृद्ध हो सकते हैं। आपका शरीर स्वस्थ, मन प्रसन्न, हृदय उदार और आत्मा तेजोमय हो सकती है। इन्द्रियोंके विकारोंसे शान्ति मिल सकती है और यौवन स्थिर रह सकता है। यदि आप हाथ-पाँव न हिलाना रईसी आदत समझते हैं तो प्रकृति आपको ऐसी सजा देगी जिससे आपके शरीरकी क्रियाशीलता पंगु हो जायगी।

चलते रहो !

निरन्तर तीव्र गतिसे प्रवाहित सरिताओंका जल जीवनयुक्त होता है, इसके विपरीत जिस जलमें प्रवाह नहीं है, जो एक स्थान-पर रुक गया है, वह सड़कर दुर्गन्धिमय हो उठता है। इस सड़े हुए स्थिर जलमें भी ज्यों ही प्रवाहकी गति आती है, त्यों ही इसमें नव जीवनका प्रादुर्भाव हो उठता है। गति ही जीवन है, स्थिरता मृत्युका पर्याय है।

प्रकृतिमें देखिये, अनन्त आकाशका भ्रमण करता हुआ सूर्य प्रातःसे अपना गतिमान् जीवन प्रारम्भ करता है और अपरिमित लोकोंको द्युतिमान् करता हुआ सम्पूर्ण दिन गतिशील रहकर रात्रिमें विश्राम ग्रहण करता है! उसकी इस यात्राका प्रतिपल प्रतिक्षण

गतिसे परिपूर्ण रहता है । निरन्तर गतिशील रहनेके कारण ही कदाचित् उसके द्वारा विश्वके जीव-जगत्का इतना भला होता है। सूर्य भगवान्का एक दिनका विश्राम जीव-जन्तु जगत्के लिये मृत्युका संदेश बन सकता है।

प्रकृतिके जीव-जन्तु-पक्षी जगत्को देखें, तो आपको स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि जो जीव गतिमान् रहते हैं वे स्वास्थ्य, सौन्दर्य और दीर्घजीवनका आनन्द प्राप्त करते है। निरन्तर यत्र-तत्र उड़नेवाले विभिन्न पक्षी, जंगलोंमें इधर-उधर दौड़नेवाले हिरण, गतिमान् जीवन व्यतीत करनेवाली गाये, बकरियें, भेड़ें, घोडे, वृक्षोंपर उछलकूदका जीवन व्यतीत करनेवाले बंदर, जलमें निरन्तर गतिशील मछलियाँ, कछुवे, मगर इत्यादि बड़ा स्वस्थ जीवन व्यतीत करते है। इसके विपरीत आलस्यमें जड जीवोंकी तरह स्थिर पडे रहनेवाले जीव पंगु, अल्पायु और अस्वस्थ रहते हैं। निष्क्रिय जीवन व्यतीत करनेवाले जीव जल्दी मृत्युको प्राप्त होते हैं। उनके अवयव शैथिल्यमें पडे रहनेके कारण अपना कार्य यथोचित रीतिसे पूर्ण नहीं कर पाते।

प्राणिशास्त्र हमें सिखाता है कि जो अपनी शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक शक्तियोका निरन्तर उपयोग करता है, उस गतिके कारण उनकी ये शक्तियाँ तथा निरन्तर सक्रिय रहनेवाले अवयव पुष्ट होकर सुन्दर बन जाते हैं। काम न करनेवाले अवयव सूखकर विनष्ट हो जाते हैं। निरन्तर कार्यसे हमारा शरीर पुष्ट होकर आत्माकी ऊँचाई प्राप्त करता है।

लेखकको अपनी माताजीका उदाहरण गतिमान् जीवनका जाग्रत् उदाहरण है। वे बड़े तड़के पाँच बजे गृहस्थके नाना कार्योंमें

दत्तचित्त हो संलग्न हो जाती हैं। ठण्ड हो या गरमी, वे शौचादिसे निवृत्त होकर स्नान, ध्यान, पूजन, गीतापाठके अतिरिक्त गृहस्थके सभी कार्य ऐसे करती हैं मानो किसी मशीनके द्वारा किये जा रहे हों। भैंस दुहनेका कार्य हो या वस्त्र धोनेका, पाकशालाके कार्य हों या सीने-पिरोनेके, वे निरन्तर चलते रहते हैं। समस्त दिन कार्यसे थककर वे रात्रिमें मीठी नींद सोती है। उन्हे पता नहीं रहता कि कहाँ सो रही हैं। भोजन कम-से-कम, वस्त्र सबसे थोड़े, किंतु कार्य सबसे अधिक। उनसे कोई उनके उत्तम स्वास्थ्यका रहस्य पूछे, तो वे उसे एक ही वाक्यमें कहेंगी, 'जो फिरैगो, सो चरैगो, बँधो भूखो मरैगो।' अर्थात् जो चल-फिरकर गतिशील जीवन व्यतीत करेगा, उसे खुलकर भूख लगेगी, जो एक स्थानपर बँधा रहकर गति-विहीन जीवन व्यतीत करेगा, उसकी निष्क्रियता उसे मार डालेगी। इस उक्तिसे उनके स्वस्थ-जीवनका पूर्ण मर्म खिंचकर आ जाता है। वे गतिको ही जीवनका प्रधान लक्षण मानती हैं।

आधुनिक मानवके गिरे हुए स्वास्थ्य, कुरूपता, अल्पायुका प्रधान कारण स्थिर गतिविहीन जीवन है। उसे थोड़ी-थोड़ी दूरके लिये सवारी चाहिये। बस-ट्रामने उससे यात्राका आनन्द छीन लिया है, साइकिल आधुनिक मानवका शत्रु है; क्योंकि इसने आधुनिक युवकके पैर जर्जरित पंगु शक्तिविहीन कर दिये हैं। वह साइकिलका ऐसा कीतदास हो गया है कि उसे थोड़ा भी चलना नहीं पड़ता। पाँवोंका समुचित उपयोग न करनेके कारण उसकी जीवनशक्तिका ह्रास हो गया है।

हम यह जानते है कि कुछ शौकीन लोग टहलने जाते है। बड़ी आबादियोंमें ऐसे व्यक्ति दस प्रतिशतसे अधिक नही हैं जो टहलनेके अभ्यस्त हैं। चाहे आप कोई व्यायाम करें अथवा नहीं, किंतु टहलनेका लोकप्रिय व्यायाम अवश्य करें। यदि नहीं तो आजसे ही साइकिलका प्रयोग छोड़कर इधर-उधर जानेके लिये पैरोंका ही प्रयोग किया करें।

'चलते रहो' का तात्पर्य विस्तृत है। इसका एक अर्थ यह भी है कि कुछ-न-कुछ कार्य करते रहो, आलस्यमें निष्क्रिय जीवन व्यतीत न करो। एक कार्यके पश्चात् दूसरा कोई नवीन कार्य प्रारम्भ करो। मानसिक कार्यके पश्चात् शारीरिक, शारीरिक श्रमके पश्चात् मानसिक कार्य—यह क्रम रखनेसे मनुष्य निरन्तर कार्यशीलताका जीवन व्यतीत कर सकता है।

आलस्य शत्रु है, सक्रियता जीवन-जागृतिका लक्षण है। श्रम ही मनुष्यकी सर्वोत्कृष्ट पूँजी है। आलसी व्यक्ति परिवार तथा समाजका शत्रु है। वह दूसरोंके संचित श्रमपर निर्वाह करता है। ऐसे व्यक्तिसे प्रत्येक परिवारको बचना चाहिये।

परिवारोंमें जितने व्यक्ति हो, सभी सक्रिय रहें, अपना-अपना कार्य जागरूकतासे सम्पन्न करें। मुखियाका कर्त्तव्य है कि वह बच्चोंमें प्रारम्भसे ही कार्य करनेकी आदतोंका विकास करे। बच्चोंमें आलस्य उनके भावी जीवनके लिये बड़ा हानिकर है।

निरन्तर कार्य करनेसे वासनाएँ नियन्त्रित रहती हैं। थक जानेसे मनुष्यका मन घृणास्पद कृत्योंसे बच जाता है। उसकी

प्रवृत्तियाँ शुभ कार्योंकी ओर अधिक लगती हैं। कार्यशीलता चरित्रको चमकाकर द्युतिमान् कर देती है और स्वास्थ्यको सौन्दर्यसे परिपूर्ण कर देती है।

गतिशील जीवनका समग्र ज्ञान-विज्ञान एवं मर्म ऐतरेय ब्राह्मणके एक गीतमें बड़ी सुन्दरतासे व्यक्त किया गया है। इस गीतमें भगवान् इन्द्रने हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहितको सक्रिय जीवन व्यतीत करनेका उपदेश इस प्रकार किया है:—

हे रोहित! श्रमसे जो नहीं थका, ऐसे पुरुषको श्री नहीं मिलती। बैठे हुए आदमीको पाप धर दबाता है। इन्द्र उसीका मित्र है, जो बराबर चलता है। इसलिये चलते रहो!

जो पुरुष चलता है, उसकी जाँघोंमे फूल फूलते है। उसकी आत्मा भूषित होकर फल प्राप्त करती है। चलनेवालेसे पाप थक कर सोये रहते है। इसलिये चलते रहो, चलते रहो!

बैठे हुएका सौभाग्य बैठा रहता है, खड़े होनेवालेका सौभाग्य सोता रहता है और उठकर चलनेवालेका सौभाग्य चल पड़ता है। इसलिये चलते रहो, चलते रहो!

सोनेवालेका नाम कलि है, अँगड़ाई लेनेवाला द्वापर है। उठकर खड़ा होनेवाला त्रेता है और चलनेवाला कृतयुगी होता है। इसलिये चलते रहो, चलते रहो!

चलता हुआ मनुष्य ही मधु पाता है। चलता हुआ ही स्वादिष्ट फल चखता है। सूर्यका परिश्रम देखो, जो नित्य चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता। इसलिये चलते रहो, चलते रहो!

व्यस्त रहा कीजिये

विन्स्टन चर्चिल दिन-रातके चौबीस घंटोंमें १८ घंटे परिश्रम करनेके आदी रहे हैं। उनसे जब पूछा गया कि क्या चिन्ताने कभी उनपर आक्रमण किया है, तो उन्होंने उत्तर दिया 'मेरे पास इतना काम है कि चिन्ता करनेके लिये समय ही नहीं मिल पाता।' चिन्ता फालतू आलसी निष्क्रिय मनका एक विकार है। कमजोर तबियतके व्यक्ति जब खाली होते है, तो बजाय उन्नत पहलू देखनेके, वे अपने विरोध, भय, दुःख, क्लेशकी बाते सोचा करते हैं। जिनके पास पर्याप्त कार्य है, उन्हे चिन्ता-जैसे विलासके लिये कहाँ अवकाश है?

प्रसिद्ध वैज्ञानिक लुई पाश्चरने कहा है कि 'शान्ति दो ही स्थानों-पर रह सकती है, पुस्तकालयमें अथवा वैज्ञानिक प्रयोगशालामें।' इन दोनो स्थानोमें क्यों शान्तिकी कल्पना की गयी है? कारण, इन दोनोंमें कार्य करनेवाले व्यक्ति अपनी पुस्तको तथा अनुसंधानोंमें इतने निमग्न रहते हैं कि उनके पास चिन्ता करनेके लिये अवकाश ही नहीं रहता। अनुसंधानमें रत व्यक्तियोंको स्नायविक दौरे नही पड़ते। चिन्ता-जैसी व्यर्थ सारहीन चीजके लिये उनके पास समय नहीं बचता।

यह बात मनोविज्ञानकी दृष्टिसे ठीक है। चाहे किसीका मस्तिष्क कितना ही तेज, बुद्धि कितनी ही कुशाग्र क्यों न हो, दिमाग एक समयमें एक ही बातपर केन्द्रित हो सकता हैं। जब आप अपने कार्यमें सूईकी तरह गड़ जाते हैं, तो फिर मनकी शक्तियोंको चिन्ताके विषयोंपर सोचने-विचारनेका अवसर ही प्राप्त नहीं होता। काममें तन्मय हो जाना,

रुचि और उत्साहसे उसे पूर्ण करनेका प्रयत्न करना चिन्तासे बचनेका श्रेष्ठ उपाय है।

जौन कूपर पौव्स अपनी पुस्तक 'अप्रियको कैसे भूलें?' में लिखते हैं—'जब मनुष्यका मन किसी रुचि-अनुकूल कार्यमें तन्मयतासे लग जाता है, तो उसे एक प्रकारका आराम देनेवाला संरक्षण, एक आन्तरिक शान्ति, एक आनन्ददायक विस्मृतिका अनुभव होता है। उसके चिन्तावाले तनावका भी बन्धन टूट जाता है।'

ओसा जौन्सन कहा करते थे, 'मुझे संसारकी इस कर्मस्थलीमें कार्यमें निमग्न हो जाना चाहिये, अन्यथा मै निराशा तथा चिन्तामें घुल जाऊँगा।'

बात ठीक भी है। यदि हम-आप किसी कार्यमें अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंको व्यस्त न रक्खें, यदि हम बैठकर गड़े मुर्दे उखाड़ने लगें, दुःखद प्रसङ्गोंका स्मरण कर रोते रहें, तो हमारा जीना ही दुष्कर हो जायेगा।

बर्नार्ड शाने सही कहा है, 'दुखी रहनेका सीधा मार्ग यह है कि आप इस चिन्तामें पड़ जायँ कि मैं प्रसन्न हूँ या दुखी?' अतः अहितकर चिन्तनके लिये मनको ढीला छोड़ देना ही मूर्खता है। आइये, फालतू बैठनेके स्थानपर किसी कार्यमें व्यस्त हो जायँ—अपना कमरा ही साफ कर लें; रूमाल ही धो डालें; बाजारसे सब्जी ले आयें या अपने जूतेपर पालिश ही कर लें। कार्य चाहिये। जहाँ आप किसी कार्यमें लिप्त हुए कि चिन्ता भागी। यह सबसे सस्ती दवाई है जिससे चिन्ताकी पुरानी शत्रुता है। चिन्तासे बचनेके लिये कार्य—

पढ़ाई लिखाई, घरेलू काम, बच्चोंसे खेल-कूद, गायन या बागवानीमें लगे रहें।

छोटी-छोटी बातोंके लिये चिन्तित न रहें

कुछ व्यक्तियोंकी यह आदत होती है कि वे आनेवाले भयको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर तिलका ताड़ बनाकर देखते हैं। २४ शताब्दी पूर्व पेरेक्लीजने कहा था, 'सज्जनो ! हमारी बड़ी मानसिक कमजोरी यह है कि हम बैठकर छोटी-छोटी-सी बातोंकी चिन्तामें समय नष्ट कर देते है।' वास्तवमें यदि हम अपनी चिन्ताओंको उनके ठीक रूपमें देखे, तो हमें विदित होगा कि दर-असल ये छोटी-छोटी चीजे हैं जो हमें परेशान करती रहती हैं।

डिजराइलीने कहा है, 'जीवन ऐसी छोटी-छोटी बातोंमें चिन्तित रहनेके लिये नहीं है। जीवन महान् है। वह साधारण बातोंमें विनष्ट होनेके लिये कदापि नहीं बना है।' ऐण्ड्र-मौरिसने उक्त शब्दोके महत्त्वका निर्देश करते हुए लिखा है कि 'इन शब्दोने मुझे जीवनके अनेक कारुणिक और चिन्तनीय स्थलोंमें सहायता की है।' अनेक बार हम गहराईसे सोचनेके कारण या दूर दृष्टिके अभावमें ऐसी बातोंकी चिन्तामें फँस जाते हैं; जिन्हे हम भूलना चाहते हैं और जिनसे हम घृणा करते है। ऐसी चिन्ताएँ हमारे जीवनमें अकारण ही एक यन्त्रणा पैदा कर देती है। हमारी ये छोटी-छोटी बाते कालके प्रवाहमे स्वयं विलुप्त हो जायँगी। हम क्यों जीवनके बहुमूल्य क्षण छोटे-छोटे चिन्ता उत्पन्न करनेवाले कार्योंकी बाते सोच-सोचकर बरबाद करें ? समय स्वयं इन्हे अपने अंदर आत्मसात् कर लेगा। अधिक

ऊँचे प्रश्न, उच्च स्तरकी जीवनसम्बन्धी समस्याओंमे ही हमें संलग्न रहना उचित है।

कल्पित भय व्यर्थ हैं

बच्चा अनेक अनहोनी घटनाओं, अजीब प्रकारसे आनेवाले फल, कष्टदायक चीजोकी बावत सोचकर चिन्तित रहा करता है। बिजली मेरे ऊपर न गिर जाय ? मै नदी या तालाबमे न डूब जाऊँ ? मुझे सिंह न खा डाले ? यदि मुझे अकेले छोड़कर पिताजी चले जायँ तो क्या हो ? कहीं मै मर न जाऊँ ? ये सब कल्पित भय निरन्तर बच्चेके मनःक्षेत्रमे उदित होते रहते हैं। बच्चे इन मिथ्या भयोंमें अज्ञान-वश फँसे रहते हैं।

ऐसे ही अनेक मनुष्योंके मिथ्या भय और चिन्ताएँ होती हैं। उनके भय, निराशा, शंका, चिन्ता आदि कल्पित बन्धनोंपर आधारित होती है। वे इन थोथे बन्धनोंमें बँधे रहते है। अपने आनेवाले लाभों और उन्नतिके स्थानपर ये लोग मनकी व्यथा, पीड़ा, रोग, कष्ट, भय आदिके बावत सोचा करते है। निन्यानवे प्रतिशत भय ऐसे हैं, जो आगे आते ही नहीं। यदि हम अपने इन कल्पित शत्रुओको पराजित कर दे, तो सुव्यवस्थित जीवन व्यतीत कर सकते है।

ईश्वरकी इस सर्वाङ्गपूर्ण सुन्दर सृष्टिमे नष्ट होनेवाली चीज नहीं है। वह पूर्णतासे भरी है। जेनरल जार्ज क्रुक लिखते हैं, 'मेरा सब दुःख, चिन्ताएँ वास्तविक स्थितिसे उत्पन्न न होकर कल्पित भयोंसे उत्पन्न हुए।' इसीलिये शेक्सपीयरने कहा है कि 'कायर आदमी मौतसे पहले कई बार मर चुके होते है—इसी खयालसे कि

मौत अब आयी—अब आयी और बहादुर आदमी तो एक बार ही मरता है जब कि साक्षात् मृत्यु ही उसे घेर लेती है।'

यदि वास्तवमें आपको किसी बातकी चिन्ता है, तो औसतन उनमेंसे अनेक बातें कभी न घटेंगी, केवल मनमें उनका भार मात्र बना रहेगा। सम्भव है, ये बातें औसतके नियमोंके अनुसार न आयें, जिनसे आप व्यर्थ ही मन-ही-मन परेशान हो रहे हैं।

✓ अनिवारणीयसे संतुष्ट रहनेका प्रयत्न कीजिये

जो होना है, वह होकर रहेगा। यदि भवितव्यता निश्चय है, यदि आनेवाली दुर्घटना, दुःखभरे अवसर आनेवालेही हैं, उनसे नहीं बचा जा सकता, तो उनसे मेल कर लेना ही ठीक है। मेल करनेसे तात्पर्य यह है कि आप अपने आपको उसी स्थितिमें समझ लीजिये। जिन बातोंको आप अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंके बावजूद बदल नहीं सकते और जो आपके हाथकी बात नहीं हैं, उनके विषयमें चिन्तित होनेसे क्या लाभ? चिन्तित होकर तो जो रहा-सहा है, उसका भी आनन्द न आयेगा।

ईसा महान्का नैतिक साहस इतिहासके पन्नोंपर स्वर्ण अक्षरोंसे लिखा रहेगा। मानवताने उनके साथ जो व्यवहार किया वह पाशविक था; किंतु उन्होंने बड़ी मनःशान्तिसे उसे सहन किया। सुकरातके सामने मृत्यु-दण्डके फलस्वरूप जब विषका प्याला लाया गया, जेलरने विषका प्याला उसे पीनेके लिये देते हुए कहा, 'जो कुछ होनेवाला है, उसे निश्चिन्त होकर वहन करो।' सुकरातने निश्चिन्ततासे प्याला पी लिया और शान्तिसे निर्भयतापूर्वक मृत्यु प्राप्त की। वह जिसे बदल न सका, उसे शान्तिसे सहन किया।

जो होना है, उसे होने दीजिये। प्रयत्नोंद्वारा स्थितिको सुधारनेका प्रयत्न कीजिये! चिन्ता करनेसे कोई लाभ नहीं। चिन्ता दूर करनेके लिये इस प्रार्थनाके मर्मको समझिये—

'हे परमेश्वर! हमें मनःशान्ति दीजिये।

जिन घटनाओंपर हमारा वश नहीं, उन्हें सहन करनेकी शक्ति दीजिये।

जिन बातोंको हम बदल सकते हैं, उन्हें बदलनेका साहस दीजिये।'

जो घटनाएँ हो चुकी हैं; जो वर्ष, दिन या घंटे हमारे हाथसे छूटे हुए तीरकी भाँति अब हमारे वशकी बात नहीं रहे हैं, उनपर हमारा क्या अधिकार हो सकता है? हम उन्हें किस प्रकार वापस ला सकते हैं? किसी भी प्रकार नहीं। यह मुमकिन नहीं कि उन दिनोंमें हम दुबारा जी सकें, जिनमें हम एक बार जी चुके हैं। जो घटनाएँ व्यतीत हो चुकी हैं, हम उन्हें दूर नहीं कर सकते। हाँ, उनके प्रभावोंको थोड़ा-बहुत सुधार अवश्य सकते हैं।

परमेश्वरकी आनन्दमयी सृष्टिमें पुराने अनुभवोंसे केवल एक ही लाभ सम्भव है। पुराने अनुभवोंका विश्लेषण कर हम अपनी वे गलतियाँ मालूम कर सकते हैं, जिनके कारण हमें हानि उठानी पड़ी है। इन गलतियोंसे लाभ उठाकर उन्हें विस्मृतिके गर्भमें विलीन कर देनेमें ही बुद्धिमत्ता है।

मानसिक संतुलन धारण कीजिये

मनुष्यका अन्तर्जगत् सब जीवोंसे उच्चतर है। उसकी व्यवस्था जगन्नियन्ताकी अद्भुत कुशलताकी द्योतक है। मकड़ीके जालेके सदृश नाना स्मृतियों, इच्छाओं, कल्पनाओं तथा विचारोंके सूक्ष्म तन्तुओंका तानाबाना उसमें फैला रहता है, जिनका सामूहिक प्रभाव मानव-शरीरपर दृष्टिगोचर होता है। प्रायः मनुष्य विचित्र-विचित्र कार्य करते देखे जाते है, किंतु वे अपनी विभिन्न क्रियाओंके मूल केन्द्र—अन्तर्जगत्से अपरिचित होते है। उन्हे विदित नही कि उनके सब सांसारिक या आध्यात्मिक कार्योंका आदि-स्रोत उनका मन है। बाह्य ससारका सुख-दुःख, आह्लाद अथवा क्लेशमयी मनःस्थिति, भलाई-बुराईकी ओर प्रवृत्ति, विक्षिप्तावस्था अथवा मनोमोहिनी मुद्रा हमारे उन संस्कारोंके परिणाम हैं, जिनको हमने अपने अन्तर्जगत्में उपजाया है। संसारमें जो व्यक्ति दुखी रहता है या जो बहुत अल्प साधनोंमें ही आनन्द लूटता है, इसका कारण उस व्यक्तिका मन ही है। अपने अन्तर्जगत्की प्रतिच्छाया ही हम इस लोकमें, व्यक्ति-व्यक्तिमें प्रतिफलित देखते हैं। हमारे संस्कारोंकी छाप हमारी दृष्टिमें निहित रहती है। अपने संस्कारोंके अनुसार ही इस सर्वगुणसम्पन्न सृष्टिसे हम पाप-पुण्य, भलाई बुराई, आनन्द-क्लेश खींचते रहते है।

शरीरपर मनका अद्भुत प्रभाव देखा जाता है। जो रोग वास्तवमें शरीरमें नहीं हैं, उनकी कल्पना करने तथा वैसे ही रोगी-विचारोंको अन्तर्जगत्में स्थान देनेसे वे रोग—व्याधि शरीरमे प्रकट होते देखे जाते है। अपने संस्कारोंके अनुसार ही हम

स्वास्थ्य, यौवन, सौन्दर्य आसपासके वातावरणसे खींचते रहते हैं।

रोगीका मन रोगी होता है। रोगमय मन:स्थितिसे शरीरमें रोगका प्रादुर्भाव होता है; काल्पनिक भयकी आशंकासे शरीर संतप्त हो उठता है। वासना तथा क्रोध उत्तेजना उत्पन्न कर शरीरको कँपा डालते है। निराशा, वेदना और कष्टके विचारोंसे क्लेशमयी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। ईर्ष्या और प्रतिहिंसाके विचारोंसे शरीर दग्ध हो उठता है। लोभमें मनुष्य कल्पनाके महल निर्मित करता रहता है। संदेहदृष्टिसे मनुष्य प्रत्येक व्यक्ति अथवा स्थितिपर अविश्वास प्रकट करता रहता है। दुष्ट तथा अहितकर मनोवृत्तियोंके उद्दीप्त होनेसे मनका अन्त:प्रदेश अस्तव्यस्त तथा संतप्त हो उठता है।

हमारा कोई अनुभव व्यर्थ नही जाता। वह हमारे अन्तर्जगत्‌में अपनी जड अवश्य छोड़ जाता है। जैसे फसल कट जानेपर भी खेतमें वृक्षोंकी जड़े उगी रहती हैं, वैसे ही हमारे सब अच्छे-बुरे, कड़वे-मीठे अनुभव, बाह्य जगत्‌की अनुभूतियाँ सदा-सर्वदाके लिये अन्तर्जगत्‌में अङ्कित हो जाती हैं। उसी ज्ञान तथा संस्कारसे हमारा कार्य संचालित होता रहता है। हमारे आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक सभी प्रकारके दु:ख मनद्वारा संगृहीत किसी दुष्ट विकारके परिणाम होते हैं।

दुर्भावना तथा सद्भावना

हमारे अन्तर्जगत्‌का निर्माण करनेवाली दो वृत्तियाँ हैं—सद्भावना तथा दुर्भावना। ये जीवनके देखनेके दो विभिन्न मार्ग हैं। आप जिस मार्गसे जीवन-यात्रापर निकलते है, उस मार्गमें वैसी ही

वस्तुएँ आपको स्थान-स्थानपर मिलती जाती हैं । दुर्भावनाका मार्ग कण्टकों तथा शूलोंसे परिपूर्ण है । इस रास्तेसे जानेवालोंको सदा अतृप्तिका सामना करना पड़ता है । वह ईर्ष्या, प्रतिशोध, संघर्ष तथा हिंसाकी वृत्तियोंमें उलझा रहता है । दूसरोंपर अविश्वास और शङ्का करता है, सबको अपना शत्रु समझता है, जगत् उसे अपनी उन्नतिके मार्गमें अवरोध करता दिखायी देता है । उसके आत्मविरोधी विचार दुःखोंकी सृष्टि कर उसे मनकी नारकी स्थितिमे धक्का दे देते हैं । वह सदा अशान्त और अतृप्त रहता है ।

दूसरा मार्ग सद्भावनाका है । इसमें मनुष्यके दैवी गुणोंका पावन प्रकाश है । यह मनुष्यकी उच्च स्थितिको लानेवाला आध्यात्मिक मार्ग है । इस पथमें विचरण करनेवाला पथिक प्रत्येक व्यक्तिको आत्मरूपसे देखता है, सबको अपना हितैषी मानता है, सबसे स्नेह करता है और सबकी उन्नतिमे सहायता करता है । अन्य जीव भी उससे प्रेम, सेवा, सहायता, उन्नति, उदारता प्राप्त करते है । संसारके समग्र प्राणियोंसे आत्मभाव रखनेके कारण स्वयं उसकी मनःस्थिति शान्त और संतुलनकी रहती है । उसमें व्यर्थके संघर्ष, प्रतिहिंसा, स्वार्थ या वासनाके ताण्डव नहीं होते । आध्यात्मिक शक्ति उसके मनमें एकत्रित होती चलती है । वह दूसरोंके लिये आत्मत्याग करनेके आनन्दसे परिचित होता है । त्याग, बलिदान और सेवाभाव उसके संकल्पोंको दृढ़ता प्रदान करते है । आध्यात्मिक शक्ति उसके अन्तर्जगत्मे संचित होती चलती है ।

सद्भावना सदा फलित होनेवाली जादूकी शक्ति है । जो

जितनी ही सद्भावना दूसरोंको देता है, वह उससे दुगुनी-चौगुनी सद्भावनाएँ बदलेमें पाता है। सद्भावना कभी व्यर्थ नहीं जाती। सद्भावनाएँ गुप्तरूपसे दूसरोंको हमारी ओर आकृष्ट करती हैं। यदि दूसरा आकृष्ट न भी हो, तो ये स्वयं हमें अमित शान्ति, धैर्य और साहस देनेवाली हैं। ये हमें संकुचिततासे बचाकर उदार बनाती हैं और अन्ततः कल्याणका कारण बनती है।

मानसिक द्वन्द्वोंसे मुक्त रहिये

मानसिक संतुलन भंग होनेसे पूर्व हमारे मनमें मानसिक द्वन्द्वोंकी उत्पत्ति होती है। दो विरोधी भावोंमें संघर्षकी स्थितिको द्वन्द्व कहते हैं। द्वन्द्वोंमें भय एक महत्त्वपूर्ण विकार है। इच्छा और भय, लोभ तथा भय, चोरी तथा पकड़े जानेका भय अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न करते हैं। भय एवं अनिश्चितता, चिन्ता और आशङ्का मानसिक उलझनें बनाती हैं। इनसे मनमें तनावकी स्थिति पैदा हो जाती है। भयसे गुप्त मानसिक उलझनें (न्यूरासिस) बनती हैं। प्रायः हमारे मनमें कोई इच्छा उत्पन्न होती है, किंतु उसे प्राप्त न करनेके कारण भावना-ग्रन्थि बनती है। ये ग्रन्थियाँ नाना विकारजन्य मूर्च्छनाओंमें प्रकट होती हैं।

भय मनुष्यके विकासको रोकनेवाला दुष्ट विकार है। माता-पिताओं तथा गुरुओंको चाहिये कि बच्चोंको अधिक सजाएँ न दें; बच्चोंपर अनुचित सख्ती न करते। कठोर व्यवहारसे बच्चोंमें भयकी गुप्त ग्रन्थियाँ सदाके लिये बन जाती हैं, जो जीवनभर उनके कार्योंमें अर्द्धविक्षिप्तता, बेढंगापन, आत्महीनता या व्यर्थ चिन्ताएँ, बेबसी

उत्पन्न करती हैं। मनुष्यके संकल्पोंकी कमजोरीके कारण ये ही द्वन्द्व हैं। अच्छे व्यक्तित्ववाले आदमी भी कभी-कभी इनके शिकार बन जाते हैं। संतुलनके अभावमें वे आत्म-भर्त्सना किया करते हैं।

उन्नति, समृद्धि तथा स्वस्थताके लिये मानसिक द्वन्द्वोंसे बचे रहें। मनमें उचित विचार रखना, भविष्यके अनिष्टोंसे मुक्त रहना, वाणीसे मधुर बोलना, सबका भला चाहना, मनको उदार रखना—ये वे विचार-पद्धतियाँ हैं, जिनसे मनुष्य सभी प्रकारकी परिस्थितियोंमें शान्त बना रहता है। उचित विचार क्या है? जिन विचारोंसे किसीका अनिष्ट नही होता, जो सबके प्रति सद्भावना, प्रेम, उदारतासे युक्त हैं, जिनमें मनुष्यमात्रकी भलाईके लिये लगन, प्रेम, उत्साह और सेवा-भावना है, जो सदा नये आध्यात्मिक भावनासे स्निग्ध हैं, वे ही सही विचार हैं।

सदा नये समाजोपयोगी कार्य करने, आशावादी भावनाएँ बनाये रखने और आध्यात्मिक चिन्तन करनेसे मनुष्य द्वन्द्वोंसे बच सकता है। जो व्यक्ति नये-नये लोकोपकारी कार्य करेगा, उसके मनमें द्वन्द्व कैसे ठहर सकते हैं? जहाँ सद्ज्ञानका दिव्य प्रकाश है, वहाँ अज्ञानान्धकार कैसे ठहर सकता है? कार्यमें निरत रहनेसे मनुष्य आलस्यसे बच सकता है। परोपकाररत साधकमें आत्मविश्वास बढ़ता है। एक कार्यके पश्चात् वह दूसरे कार्यमें सफलताएँ प्राप्त करता चलता है। सही विचार, उचित दृष्टिकोण, मौलिक दृष्टि और निरन्तर कार्य करनेसे द्वन्द्व दूर होते है।

संक्षेपमें, हमारे मनको उन्नत या अवनत करनेवाली दो शक्तियाँ

हैं—ज्ञान तथा कर्म। हम अध्ययन, मनन, सत्सङ्ग तथा संसारके नाना अनुभवोसे ज्ञान प्राप्त करते है। फिर उनकी सहायतासे कर्ममें प्रविष्ट होते हैं। यदि ज्ञान और कर्म बराबर मात्रामें अपना कार्य करते है, तो मानसिक संतुलन स्थिर रहता है। ज्ञान और कर्मका महत्त्व हमारे प्राचीन विचारकों*ने माना है। बिना कर्मके ज्ञान अधूरा है; इसी प्रकार बिना ज्ञानके कर्म अन्धा है। दोनोका पूर्ण सामञ्जस्य ही अपेक्षित है। ज्ञान और कर्म जब साथ-साथ बढ़ते हैं, तब जीवन आगे बढता है। कर्म तथा ज्ञानके सामञ्जस्यद्वारा हम द्वन्द्वोंका निवारण करें। निरर्थक अनुचित और अनुपयोगी कार्योसे समय बचाकर अपना समय उपयोगी कर्मोंमें व्यतीत करना चाहिये। कर्म-क्रमको धर्ममय बनानेसे द्वन्द्व छूटते हैं।

मानसिक तनाव या खिचावकी स्थिति न आने दें। अर्थात् जैसे ही कोई इच्छा उत्पन्न हो, वैसे ही उसके पक्ष या विपक्षमें निर्णय कर डाले। यह करूँ या न करूँ—ऐसी संशयात्मक मन:स्थिति उत्पन्न न होने दे। संशयमें पडे रहनेसे मनुष्यमें बड़ी दुर्बलता आती है। तनाव बढ़ता है। यदि कोई इच्छा उत्पन्न हो, तो उसकी पूर्ति इस ढंगसे करें कि वह सदा-सर्वदाके लिये निवारित हो जाय।

जिन वस्तुओ, नामों या सजाओंसे बच्चोंको भय उत्पन्न होता है, वे व्यवहारमें न लायें। बच्चोंको उत्साहित किया जाय और सजा इस प्रकार दी जाय कि वे मानसिक ग्रन्थियोसे बच सके।

---

* कर्म और ज्ञान जीवनरूपी पक्षीके दो पंख हैं—योगवासिष्ठ

बड़े व्यक्तियोंमें आत्मसंकेत तथा सजेश्चनसे ग्रन्थियोका निवारण चलता रहे। आत्महीनता या आत्मलघुतासे ग्रसित व्यक्तियोंको श्रेष्ठताके संकेतद्वारा प्रोत्साहित किया जाय।

पूर्ण विकसित व्यक्तियोंको चार प्रकारके भय होते हैं—१—मृत्युका भय, २—वृद्धत्वका भय, ३—गरीबीका भय, ४—प्रियजनोंके अनिष्टका भय। मृत्यु तो अवश्यम्भावी है। जब हम कहते हैं कि अमुक वयस्क मृत्युसे डरता है, तब हम वास्तवमें यह कहना चाहते हैं कि वह मृत्युसे नहीं, अपने पापोंके दुष्परिणामोंसे भयभीत होना है। वह इस बातसे शंकित रहता है कि अब उसे अपनी दुष्टताके कर्मोंकी सजा मिलेगी। उसकी अन्तश्चेतना ऐसा अनुभव करती है कि इस दिव्य जीवनका मैंने जो दुरुपयोग किया है, उसके फलस्वरूप, मरनेके पश्चात् मुझे दुर्गतिमें जाना पडेगा, अतः मनुष्यको अपने कार्य उन्नत करने चाहिये। आत्मोन्नतिके कामो—सद्ग्रन्थावलोकन, परोपकार, सेवा, त्याग, तपश्चर्या, साधना-सत्कर्मोंमें निरत रहना चाहिये। ऐसे कार्य करने चाहिये कि उसे पछताना या आत्मभर्त्सना न करनी पड़े। आप ऐसा जीवन व्यतीत कीजिये कि आत्मग्लानि उत्पन्न न हो। मृत्युको अधिक उन्नत अवस्थामें जानेकी एक स्थिति मानिये। जब कोई व्यक्ति वर्तमानकी अपेक्षा अधिक अच्छी, उन्नत और सुखकर अवस्थामें जाता है, तब उसे कष्ट नहीं, प्रसन्नता होती है। अपने जीवनको धार्मिक बनाकर शुभ भावनाओंमें निरत रह सत्कर्म करनेसे मृत्युका भय छूट सकता है।

वृद्धावस्थाको जीवनका अन्त नहीं, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टियोंसे समुन्नत जीवनका प्रवेशद्वार मानिये। वृद्धावस्था आदरकी पात्र है। वह घृणाकी वस्तु नहीं है। वृद्ध जवानोंकी अपेक्षा शारीरिक शक्तिको छोड़कर हर प्रकारसे बढ़ा हुआ होता है। वृद्धावस्था वह परिपुष्ट समुन्नत दशा है, जिसके लिये प्रकृति आरम्भसे तैयारी करती है। अतः बुढ़ापेका डर मनसे सदाके लिये निकाल दीजिये।

गरीबीका भय व्यर्थ है, यदि आपका जीवन संयम और दूरदर्शितासे व्यतीत हो रहा है। आप जिस स्थिति, जिस अवस्था—हैसियत या आयके व्यक्ति हों, कुछ-न-कुछ अवश्य बचा सकते हैं। यह संचित धन आपको गरीबीसे सुरक्षित रख सकता है।

प्रियजनोंके अनिष्टका भय त्याज्य है। आप उनके प्रति शुभ भावनाएँ रखिये, यथासम्भव सेवा कीजिये, उनके लिये बलिदान करनेको प्रस्तुत रहिये। बस, इससे अधिक आप कुछ नहीं कर सकते। समाजमें मजबूरियाँ होती हैं। आदमी उनमें फँसकर जो हो जाय, उसके प्रति कोई चारा नहीं है।

मानसिक संतुलन स्थिर रखनेके लिये मनोबलकी अतीव आवश्यकता है। जिसका मनोबल बढ़ा हुआ है, वह द्वन्द्वोंसे मुक्त रहता है। मनोबल वह शक्ति है, जो हमारे समस्त अन्तर्द्वन्द्वोंके ऊपर नियन्त्रण रखती है। समुन्नत मनोबलसे हमारी क्रियाएँ शुभ रहती हैं। ध्यान और एकाग्रताके अभ्यासद्वारा मनोबलकी वृद्धि करते रहिये। विचार, भाव तथा आचार—इन तीनोंका पूर्ण सामञ्जस्य रखिये। शुभ मति,

शुभ विचार तथा इन शुभ संस्कारोंके शुभ परिणामस्वरूप अच्छा आचार रखनेसे मनोबल बढ़ता है। गंदगीकी ओर प्रवृत्त होने, दुराचार करने, विषय-वासनामें लगे रहने, अपनी शक्तिसे बड़ा काम ले लेनेसे मनोबल घटता है। सद्विचार सीखें। उन्नत विचारोंसे सद्भाव, सद्भावसे सदाचार उत्पन्न होता है। पहले छोटे कार्योंमें सफलता प्राप्त करें, फिर अपेक्षाकृत कुछ बड़े कामोंको हाथमें लें और इस प्रकार मनोबलको बढ़ाते रहें। धीरे-धीरे सफलता प्राप्त करते रहनेसे मनुष्यको अपनी शक्तियोंके प्रति विश्वास बढ़ जाता है और निर्णयात्मक बुद्धि जाग्रत् होती है।

ध्यानका अभ्यास करनेसे मानसिक संतुलन बना रहता है। ध्यान जम जानेपर मनुष्य जब चाहे तब चित्तवृत्ति और विचार-शक्तियोंका प्रवाह फेंक सकता है। इसके लिये दीर्घकालीन सतत अभ्यासकी आवश्यकता है।

अपने कार्यों, संकल्पों और मन्तव्योंमें तन्मय हो जाइये और व्यर्थके निकम्मे चिन्तनसे बचिये। जो अपने उद्देश्यमें तन्मय रहता है, वह संतुलित रहता है। निकम्मा सदैव व्यग्र और अशान्त बना रहता है। गीतामें वर्णित कर्मयोगका तात्पर्य यही है कि कुशलतापूर्वक निष्कामभावसे अपने कर्ममें तन्मय हो जाइये, उद्देश्यहीन चिन्तनसे दूर रहिये, कर्मरत व्यक्ति पूर्ण संतुलित होता है। आपका जीवन सदुद्देश्योंकी प्राप्तिमें व्यतीत होना चाहिये और कार्यक्रम सदा धर्ममय होना चाहिये।

प्रतिस्पर्द्धाकी भावनासे हानि

जीवन गति है। जीवन-धारा एक सरिताके प्रवाहकी भाँति सतत गतिशील है। जैसे एक ही स्थानपर टिका या रुका हुआ होनेके कारण जल दूषित हो जाता है, वैसे ही जीवन-प्रवाहमें संतोष भी हानि-कारक सिद्ध हो सकता है। पूर्ण परिश्रम करनेपर जो कुछ प्राप्त हो हमें उससे संतोष करना चाहिये—यह ठीक है; किंतु उतावलापन, सदा आगे बढ़ने और अपनी गति, सामाजिक स्थिति, पद, घर-बार, सौन्दर्य इत्यादिको सदा दूसरोंसे मिलाना, तुलनात्मक दृष्टिसे अपनेको नीचा पाना, फिर रात-दिन उसी फिक्रमें पड़े रहना—प्रतिस्पर्द्धाकी यह भावना सीमाका अतिक्रमण करनेसे घातक दुष्परिणामोंको उत्पन्न कर मनुष्यका जीवन अशान्तिसे भर देनेवाली है।

हमारा अमुक मित्र उन्नतिकी दौड़में हमसे आगे निकल गया, अमुकको उच्च पद-प्रतिष्ठा, गौरव प्राप्त हो गया, अमुककी पत्नी कितनी सुन्दर है, अमुकका निवास-स्थान कितना भव्य है, पुत्र-पुत्री कितने सभ्य हैं—आदि-आदि प्रतिस्पर्द्धाजनक भावनाएँ मानसिक तनाव-

की सृष्टि कर पाचन-शक्तिको निर्बल कर देती हैं। नसोंके तने रहनेसे सुख-शान्ति प्राप्त नहीं होते और मनुष्य सदा अपने विरोधी विचारों, दूषित कल्पनाओंको ही मनमें पोसता रहता है।

प्रतिस्पर्द्धासे चिन्ता और ईर्ष्या उत्पन्न होती हैं और पेटमें कब्ज, अपच तथा अल्सरकी बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती है, त्वचाकी बीमारियाँ फूटती हैं और शरीरका समग्र स्नायु-मण्डल अनियन्त्रित हो जाता है। भूख नहीं लगती और मनुष्य दुबला होता जाता है।

श्री एडवर्ड विगम अपनी पुस्तक 'आनन्द-प्राप्तिके नये उपाय' में लिखते हैं—

जब आपको जीवन-यापनकी भौतिक सुविधाएँ प्राप्त हो जायँ, भोजन, वस्त्र, मकान, अच्छा स्वास्थ्य इत्यादि—तो आपकी प्रसन्नता या दुःख बहुत कुछ इस बातपर निर्भर है कि आप किस प्रकार अपने आपको दूसरोंसे मिलाते या तुलना करते हैं। यदि आप उनसे एक बातमें अपने आपको पूरा या ऊँचा उठा हुआ पाते हैं, तो किसी दूसरे तत्त्वमें गिरा हुआ, अविश्वासी या निर्धन पाते हैं। आप अपने व्यक्तित्वके इस गिरे हुए पक्षपर निरन्तर चिन्तन कर मनको चिन्ता और कल्पित वेदनाके भारसे भर लेते हैं। यदि आप अपने गुण, सुविधाओं और समृद्धियों अर्थात् अपने उन्नत पक्षसे दूसरोका मिलान करते रहे और अपने प्रति हितैषी बने रहे, तो आप जीवनके प्रति सतत एक चाव, नयी रुचि, उत्साह और उन्नतिकी ओर लगे रहेगे। आपकी योग्यताएँ उत्तरोत्तर बढ़ती रहेगी और विवेक परिपक्व हो जायगा।

मनुष्य सर्वप्रथम आत्म-स्थायित्व चाहता है अर्थात् मरना नहीं चाहता । वह अपने शरीरको रोग और मृत्युसे सुरक्षित रखना चाहता है । इसी सिद्धान्तको गहराईसे देखें तो हम कह सकते हैं कि हम अपने अहंकी रक्षा चाहते हैं, अपने व्यक्तित्वपर आक्रमण करनेवालोंसे बचना चाहते हैं, अपनेको अपकीर्तिसे बचाना चाहते हैं । दूसरे हमारे विषयमें क्या सोचते हैं, यह बात हमारे विषयमें उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं, जितनी यह बात कि स्वयं अपने ही विषयमें उनके माध्यमसे सोची गयी घृणित या गिरी हुई मान्यताएँ । इसी बातको यों कहिये कि हम भ्रमवश यों ही सोचने लगते हैं कि अमुक हमें गरीब समझता होगा; अमुक हमें मूर्ख, मंदमति कहता होगा; अमुक हमें अप्रतिष्ठित समझता होगा इत्यादि । इनमेंसे अधिकांश हमारी झूठी कल्पनाएँ ही होती हैं; क्योंकि इस विशाल जन-समाजको इतना अवकाश कहाँ कि केवल हमारी ही टीका-टिप्पणी करता रहे । उसे अन्य बहुतसे महत्त्वपूर्ण कार्य हैं ।

मनुष्य समस्त कार्योंके मूलमे दूसरोंद्वारा अपने कार्योंकी प्रशंसा प्राप्त करना चाहता है । जब हम समझते हैं कि कोई हमें पसंद नहीं कर रहा है, तो हम अपने आपको हीन, कमजोर और अरक्षित-सा समझने लगते हैं । जौन डिवि कहते हैं, 'मानव-प्रवृत्तिकी सबसे उत्कट अभिलाषा महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त करना ही है । लोग महत्ता प्राप्त करनेके लिये भूखे रहते हैं पर उत्तमोत्तम वस्त्र, आलीशान मकान, मोटर-बंगला इत्यादि दिखावटी चीजें एकत्रित करते है ।'

तनिक विचार करें केवल वस्त्रोंपर ही आप कितना अपव्यय केवल महत्ता-प्राप्तिके लिये कर देते हैं। अच्छे वस्त्र या आभूषण पहिनकर आप प्रतिस्पर्द्धामें मन-ही-मन ऊँचे उठ जाते हैं और एक मिथ्या दर्पसे फूल उठते हैं। 'मैं इनसे श्रेष्ठ हूँ, ऊँचा हूँ, मेरी बराबरीका कोई नहीं है (चाहे वह वस्त्राभूषण-जैसी क्षुद्र बातमें ही सही)।' इस प्रकारकी एक भी चीज मिलते ही आप अन्य गुणोंमें भी अपने-आपको दूसरोंके समान मान बैठते हैं। इस कल्पित श्रेष्ठता और उच्चताकी भावनासे आपके अहं-भावकी क्षणिक तृप्ति होती है। स्पर्द्धा-द्वारा अपनेको श्रेष्ठ या निकृष्ट, ऊँचा उठा हुआ अथवा नीचा गिरा हुआ समझना मानव-प्रकृतिका एक निगूढ़तम रहस्य है। इसके भले-बुरे उपयोगपर हमारे जीवनका सुख या दुःख निर्भर है। यदि हम इस तुलनात्मक वृत्तिका सदुपयोग करें तो सुखी, अन्यथा दुखी बने रहेंगे।

अपने आपको इसलिये मत धिक्कारिये कि आप अपनेको हीन पाते हैं। समझदारीसे यदि आप अपनी तुलना दूसरोंसे करें और सत्यतासे परखें, तो आपको सौन्दर्य, स्वास्थ्य, धन, प्रतिष्ठा, स्थिति आदिकी नीचाईसे उत्पन्न ग्लानि उत्पन्न न होगी। वास्तवमें आप गलती यह कर बैठते हैं कि अपने व्यक्तित्वकी दुर्बलताओंको दूसरोंके व्यक्तित्वकी अच्छाइयों या विशिष्टताओंसे मिलाने लगते हैं। आपमें कुछ कमजोरियाँ हैं, तो स्मरण रखिये जिन्हें आप श्रेष्ठ समझते हैं, उन व्यक्तियोंमें भी निर्बलताएँ हैं। उनकी अच्छाइयाँ देखते हैं तो कृपया अपने व्यक्तित्वको सहानुभूतिसे परखकर अपनी

विशिष्टताएँ भी खोजिये। आपको अवश्य कुछ-न-कुछ अच्छाइयाँ अपनेमें मिलेगी जो आपको आगे बढ़ने, सद्गुणोंका विकास करनेकी प्रेरणा देगी।

आत्म-विश्वास स्वयं एक भावनाग्रन्थि है, एक स्वस्थ मानसिक आदत है, तो दूसरी ओर आत्महीनता अर्थात् अपने विपक्षमें सोचना और अपनेको दूसरोंसे नीचा समझना एक दूसरी ग्रन्थि हैं, एक अस्वस्थ मानसिक आदत है। तुलनात्मक दृष्टिसे दूसरी अस्वस्थ आदतके गुलाम बनना दुखी जीवन बितानेकी तैयारी करना है। गलत चीजोंकी तुलनासे मनुष्यके जीवनमें भारी असंतोष छा जाता है। अतः या तो आप अपनी अच्छाइयोंको दूसरोंकी अच्छाइयोंसे मिलाइये अथवा मिलानका प्रश्न ही न उठाइये।

अपनी तुलनात्मक दृष्टिका विश्लेपण कीजिये। थोड़ी देरके लिये यह सोचिये कि आखिर वे कौन-सी बाते हैं जिनसे आप अपना दूसरोंसे मिलान करने बैठे है? धन, प्रतिष्ठा, प्रभुता, महत्ता, पत्नी, सौन्दर्य, स्वास्थ्य, बुद्धि—अवश्य इन्हींमेंसे कोई भावना आपके मनमें विद्रोह मचा रही है। प्रारम्भमें तो यही मानिये कि ईश्वरने उपर्युक्त सब गुणोंमे सबको सब चीजें समान मात्रामें प्रदान नहीं की हैं। किसीमें एक अधिक है तो किसीमें दूसरी बढ़ी हुई है। एक व्यक्ति बुद्धिमान् विद्वान् है, तो उसमे शारीरिक सौन्दर्य बिल्कुल नहीं है, दूसरा रुपये-पैसेवाला है तो उसे समाजसे आदर और प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं। तीसरेके पास सौन्दर्य है, तो चरित्र नहीं है। संक्षेपमें प्रत्येकका अपना-अपना क्षेत्र

पृथक्-पृथक् है। जीवन एक दौड़ है। इस दौड़में हम सब अपने ढंगसे दौड़ रहे हैं। कोई आगे है तो कोई पीछे।

एडवर्ड एल० थौर्नडाइक कहते हैं, 'हम सदा किसी-न-किसी व्यक्तिसे आगे निकलते जा रहे हैं। हमारे आगे दो व्यक्ति भाग रहे हैं, तो दस व्यक्ति पीछे भी तो छूटे जा रहे हैं। फिर हम उन पीछेवाले व्यक्तियोंको देखकर थोड़ा-सा संतोष क्यों न लें और नयी प्रेरणासे आगे चलनेवाले दो व्यक्तियोंको हरानेकी हिम्मत क्यों न करें।'

वास्तवमें हमे चाहिये कि अपनी विद्या, बुद्धि, धन आदिको समूचे समाजकी विद्या, बुद्धि, धन आदिसे तुलना न करें। एक सुन्दर स्त्रीको चाहिये कि वह यह सोचकर दुखी न रहे कि हाय मै सबसे सुन्दर स्त्री क्यों न हुई। उसे अपने मुहल्ले, ग्राम या प्रान्तकी साधारण सौन्दर्यवाली स्त्रियोंसे मिलान कर ही सुख-संतोष करना चाहिये। गलत मिलान करनेकी प्रवृत्ति प्रायः बचपनमें उत्पन्न होती है। माता-पिता एवं शिक्षकोंका कर्तव्य है कि उचित दिशाओं—स्थितियोमें ही तुलनाकी प्रवृत्तिको विकसित होने दें। आप अच्छाइयोंको अच्छाइयोसे ही मिलाइये और उत्साहपूर्वक उनकी अभिवृद्धिका प्रयत्न कीजिये। यह समझकर हतोत्साह न हो जाइये कि यह कठिन या कष्टसाध्य है। गलत चीजोकी तुलना करना और अपनेको कमजोर पाकर चिन्तित होना हीनत्वकी भावना-ग्रन्थि उत्पन्न करना है। सावधान!

जीवनकी भूलें

सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी विचारक रूसोने अपने आत्मचरितमें लिखा है कि 'वही आत्मचरित श्रेष्ठ है, जिसमें लेखक बिना किसी बनावटके सही रूपमें अपने चरित्रको प्रकट करे। उसने जो भूलें की हों, उन्हें स्पष्टतः स्वीकार करे; उनके लिये विक्षोभ प्रकट करे और जनताको अपना वास्तविक रूप देखने दे।'

महात्मा गाँधीजीने अपनी आत्मकथामें जहाँ अन्य कार्योंका निर्देश किया है, स्वयं अपनी भूलोंका भी विवेचन कर डाला है। 'सत्यके प्रयोग' यह उनकी अनुभूतियोंका नाम है। ये अनुभव अच्छे-बुरे जैसे भी हों, जनताके समक्ष आने चाहिये, जिससे वे स्वयं उचित-अनुचित, नीरक्षीरका विवेक कर श्रेष्ठ मार्गपर चलते रहें।

भूल मनुष्यकी एक बड़ी निर्बलता है। हममेंसे कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने जीवनमें भूलें न की हों, अथवा जो सर्वथा भूलोंसे मुक्त हो। यदि यह कहा जाय कि मनुष्य भूलोंका पुतला है, तो भी कोई अतिशयोक्ति न होगी। भूलें अनेक प्रकारकी हो सकती हैं—लेन-देनकी भूलें, पाठ याद न करनेकी भूलें, वासनाके कुचक्र अथवा कुसंगमें पड़कर की गयी बचपनकी भूलें; माता-पिता, अफसर या बड़े व्यक्तियोंसे की गयी अशिष्टतासम्बन्धी भूलें, भावना-प्रवाह, उत्तेजना, विक्षोभ, क्रोध, प्रेमोन्मादसे उत्पन्न भूलें। भूलोंका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और विशद है। पिछले दिनों साम्प्रदायिक विद्वेषमें आकर रक्तपात, हिंसा, बलात्कार जैसे जघन्य कार्य हुए। युद्धके कारण वस्तुएँ महँगी हुई और रिश्वत, काला बाजार, दहेज

इत्यादिकी भूलें समाजमें उठ खड़ी हुई। घरोंमें मार-पीट, अत्याचार, गालीगलौज, पड़ोसमे अदावत, बाजारोंकी दुर्घटनाएँ, शराबके नशेमें किये गये क्षणिक अत्याचार मानहानि, या व्यभिचार, जूआ और सट्टा——ये सब भूलोंके ही विभिन्न प्रकार हैं।

भूलोंके कारण अनेक हैं। कही राग है, तो कही द्वेष; कहीं प्रलोभन है, तो कहीं आलस्य; कहीं आवेश है, तो कहीं विक्षोभ। हृदय या भावनाके आन्तरिक आवेगके वशमें होकर प्रायः हम कुछ-का-कुछ कर बैठते हैं। जब मानसिक क्षोभका तूफान कम होता है, चित्त स्थिर होता है और विवेक जाग्रत् होता है, तब अपनी भूलोंपर आत्मग्लानि होती है।

आवेश और उत्तेजना एक प्रकारके मानसिक तूफान हैं। जैसे वायुमण्डलमे तूफान आनेसे पेड़-पौधे काँप उठते हैं, पत्तियाँ थरथराने हिलने लगती हैं, टहनियाँ टूट-टूटकर गिर जाती है, धूल उड़नेसे नेत्रोंमें धूल छा जाती है, कुछ दीखता नहीं, इसी प्रकार अन्तर्मुखी आवेग आनेपर रक्तका संचार बढ़ जाता है, मनुष्य विचित्र चेष्टाएँ करता है, उत्तेजनाका आन्तरिक आन्दोलन हमारे शुभ विचारों और विवेकको कुण्ठित कर देता है; काम, क्रोध, लोभ, मोह, घृणा, भय आदिके आवेश सम्पूर्ण शरीरको थरथरा डालते हैं। अशान्त स्थितिमें बुद्धि ठीक प्रकार कार्य नही करती और प्रायः हमसे छोटी-बड़ी भूलें हो जाती है।

कुछ भूलें अज्ञान, अशिक्षा, या कुसंगके कारण होती हैं। ऐसे व्यक्ति एक प्रकारके गहन मानसिक अंधकारमें निवास करते है और उन्हे अपनी गलतीका ज्ञान ही नही होता। ज्ञान-वृद्धि होनेपर उन्हें धीरे-धीरे अपनी भूलका पता चलता है।

आलस्य हमारी भूलोंका निर्माता बनता है। मान लीजिये आपका यह नित्यका कर्म है कि रात्रिमें सोनेके पूर्व घरके किवाड़ अच्छी तरह बंद कर शय्या ग्रहण करते हैं। आलस्य आया और भूल गये। उसी दिन चोरी हो गयी। यह चोरी आपकी भूलका दुष्परिणाम है। कुंडी लगाना भूलना, ताला-कुंजीके मामलेमें असावधानी, वस्तुओंको, पेटियोंकी चाभी आदिको नियत स्थानपर न रखना, बाहरसे आकर वस्त्र इत्यादि अस्त व्यस्त फेंक देना, तेलकी शीशी फर्शपर छोड़ देना, चीनीके प्याले साफ न कर यों ही पड़े रहने देना, मामूली फटे हुए वस्त्रको न सिलवाना, जूते पालिस न करना, दफ्तर या रेलवे स्टेशनपर देरसे जाना, पत्रोत्तर न देना आलस्यजनित भूलें हैं। आपको जुखाम है, सिरदर्द है, शरीर दुखता है और आप उसकी ओर ध्यान नहीं देते हैं तो यह भूल बढ़कर किसी भी बड़े रोगमें विकसित हो सकती है। दीवारमें पीपलका छोटा-सा पौधा जड़ पकड़ गया है और आप उसे उखाड़नेमें आलस्य कर रहे है, तो सम्भव है कि इस आलस्यके कारण किसी दिन घर ही टूटकर गिर पडे।

लेन-देनकी भूले बड़े भयंकर दुष्परिणाम दिखलाती हैं। एक बार ऋण लेनेके पश्चात् यदि उसकी अदायगीका उचित प्रबन्ध न हो और आलस्य चलता रहे, तो दिवालिया होनेमें कोई संदेह नहीं। आप बाजारमे निकलते है। आपका मन कभी उत्तम वस्त्र, नयी-नयी वस्तुओं, फैशनकी चीजों, पुस्तकों इत्यादिपर जाता है। अपनी सामर्थ्यकी ओर न देखकर आप तुरत खरीद बैठते हैं। उधार ही सही, मगर फिर चुका देंगे। हमें वेतन तो मिलेगा ही। इधर

दूकानदारका बिल बढ़ता जाता है। बढ़ते-बढ़ते हाथमें आनेसे पूर्व ही वेतन समाप्त हो जाता है। बड़े-बड़े विद्वान्, राजनीतिज्ञ, मन्त्री, उपदेशक ऋणके मामलेमें आलसी रहते हैं। बैकन कुशल विद्वान् था, किंतु अपव्ययके कारण वह ऋणग्रस्त हो गया था। उसे सदा रुपयेकी इच्छा रहने लगी। वह रिश्वत लेने लगा। उसकी आवश्यकताएँ बढ़ीं। रिश्वतमें पकड़ा गया, उसके शत्रुओंकी बन आयी, मुकदमा चला, उसका पतन हुआ। पिट इंगलैंडमें देशकी सम्पत्तिका जिम्मेदार रहा था, पर स्वयं हमेशा कर्जदार रहा। पिटकी मृत्युपर उसके आलस्यके कारण राष्ट्रने चालीस हजार पौंड महाजनोंको दिये थे। लार्ड मेलविल जैसे घरके हिसाब-किताबमें आलसी था, वैसे ही राष्ट्रके व्ययके सम्बन्धमें लापरवाह रहा। फाक्स नामक व्यक्ति बड़ा धनाढ्य था, पर जुआ खेलनेके व्यसनके कारण एक दिनमें उसने ग्यारह हजार पौंड हारे थे। शेरिडन जैसा नाटयकार सदैव ऋणमें रहा। उसने एक बार छः दिनमें अपनी पत्नीके १६०० पौंड व्यय कर डाले थे। रुपये-सम्बन्धी ये भूलें निश्चय ही जीवनपर्यन्त दुःख देनेवाली है।

बिना पर्याप्त सोचे-विचारे यों ही किसीको वचन दे देना, प्रतिज्ञाबद्ध हो जाना, फिर उस वचन-पालनमें अपनेको असमर्थ पाना, लज्जित होकर अपनी भूल स्वीकार करना—इस प्रकारकी भूले प्रायः अपनी शक्तिके विषयमें गलत धारणा या अपनी सामर्थ्यको खूब बढा-चढ़ाकर देखनेसे उत्पन्न होती हैं। कुछ व्यक्ति स्वप्निल जगत्में विचरण कर यथार्थता और अपनी छोटी शक्तिको भूलकर ऐसे लम्बे-

चौडे वायदे कर लेते हैं, कि आयुभर उन्हें पूर्ण नहीं कर पाते। किसी बडे व्यापारको विना समुचित पूँजीके हाथमें ले लेना, पत्र-प्रकाशन, प्रेस-संचालन, अथवा लेन-देनके पेशे छोटी पूँजीको स्वाहा कर बैठते हैं।

विवाह, दहेज, मृत्युभोज, यात्रा अथवा भोगविलासमें अपव्यय कर दूसरोंपर झूठी शान जमानेकी भूल बड़ी दु:खदायी सिद्ध होती है। इसी प्रकार अनियन्त्रित बच्चोंको जन्म देनेवाले माता-पिताको वृद्ध होनेपर अपनी भूलके लिये पछताना पड़ता है। इन क्षणिक बातोंसे दूसरोंपर न शान ही जमती है, न पैसे ही पास रहते हैं।

बुद्धि और तर्ककी अनन्त शक्तियोंके बावजूद मनुष्य कभी प्रमाद, कभी आलस्य, उत्तेजना, भावना या प्रलोभनवश कहीं-न-कहीं भूल कर ही बैठता है। भूल हो जाना एक स्वाभाविक कमजोरी है; किंतु हमें ध्यान यही रखना चाहिये कि वही भूल दुबारा न दोहरायी जाय। भूलकी 'पुनरावृत्ति करना कदाचित् मनुष्यकी सबसे बड़ी भूल है।

प्राय: देखा जाता है कि व्यक्ति एक भूलको दबानेके लिये चार-छ: और नयी भूलें करते हैं। फिर इनमेंसे कोई भूल प्रकट होनेपर उसे छिपानेके लिये नित-नया उपक्रम करते हैं। इस क्रमका निरन्तर विस्तार होता चलता है। वास्तवमें भूल छिपती नहीं, देर-सवेर स्वत: प्रकट हो जाती है। भूलको छिपाना अग्निको रूईमें दबा या छिपाकर रखनेके समान कठिन है। जबतक उसे ठीक न किया जाय,

तबतक वही भूल नयी-नयी भूलोंके रूपमें प्रकट होती और परेशान करती रहती है। उसका निवारण करना ही स्थायी रूपसे उससे मुक्त होनेका साधन है।

आध्यात्मिक दृष्टिसे छिपानेके स्थानपर भूलको स्वीकार कर लेना और भविष्यमें कभी न करनेका दृढ़ संकल्प स्थायी रूपसे करना आत्मसुधारका साधन है। आप चाहे कितने भी बड़े हों, चाहे किसी पद, स्थान, स्तर, पेशेके हों, भूलको सुधार कर सही मार्गपर आरूढ़ रहनेके लिये प्रस्तुत रहिये। भूलको स्वीकार करनेमें हीनता नहीं, बड़प्पन है; संकल्पकी दृढ़ता, सतर्कताकी प्रेरणा है। भूलकी स्वीकृति यह स्पष्ट करती है कि आप आत्म-उत्थानके लिये जागरूक हैं। आगे बढ़ना चाहते हैं। छोटी भूलका भी प्रायश्चित्त तभी हो सकता है जब आप उसपर आत्मग्लानिका अनुभव करें और उसकी पुनरावृत्ति न होने दें। अपनी भूलका उत्तरदायित्व स्वयं अपनेपर ही लीजिये, दूसरेपर व्यर्थ ही न थोपिये।

अवश्य ही, जहाँ किसी स्वीकारोक्तिसे नयी विपरीत स्थिति उत्पन्न होती हो, वहाँ मनमें ही आत्मग्लानि कर लेनी चाहिये, सबके सामने उसे प्रकट नहीं करना चाहिये। भूलोंका यथार्थ ज्ञान होनेसे मनुष्यका जीवन नये मार्गसे प्रवाहित होना प्रारम्भ होता है। सूरदासको जब नारीके प्रेममें अनुरक्त होनेकी वासनामूलक भूलका ज्ञान हुआ तो वे उस घृणित मार्गसे बचकर महान् भक्त तथा महाकवि बन गये। भूलसे लाभ उठाकर सदा आत्मोन्नतिमें संलग्न रहिये।

अपने आपका स्वामी बनकर रहिये !

(१)

अपने आपका स्वामी बनकर रहिये ! आप कहेंगे, 'हम तो स्वयं अपने स्वामी आप हैं ही; फिर इसका क्या तात्पर्य है ?'

यदि आप अपनी इन्द्रियों, मानसिक विकारों और अन्तर्द्वन्द्वोंके वशमें हैं; यदि मनके झकोरोंमें बह जाते हैं; यदि आपको विविध क्षुद्र प्रलोभन नाच नचाया करते हैं और आप इनके वशमें हैं, तो वास्तवमें आप स्वामी नहीं, गुलाम ही हैं । अनियन्त्रित इन्द्रियोंकी दासता ऐसी ही है, जैसे कठपुतलीमें बँधे हुए सूक्ष्म तन्तु । जिधरको तन्तु हिले, उधरको ही कठपुतलीने हाथ-पाँव हिलाये । स्वयं कठ-पुतलीका कोई अस्तित्व नहीं है । उसी प्रकार इन्द्रियोंके दासका क्या ठिकाना !

मनुष्यके जीवनका पूरा विकास गलत स्थानों, गलत विचारों और गलत दृष्टिकोणोंसे मन और शरीरको बचाकर उचित मार्गपर आरूढ़ करानेसे होता है। यदि इन्द्रियोंको बेलगाम, यों ही जिधर चाहें चलनेके लिये छोड़ दिया जाय, तो निश्चय जानिये, वे आपको ऐसे गड्ढेमें ले जाकर पटकेंगी, जहाँसे उठना असम्भव हो जायगा ! इसीलिये भारतीय संस्कृतिमें संयमको विशेष महत्ता प्रदान की गयी है।

मनुष्यकी वासनाएँ अनन्त हैं; इच्छाओंकी कोई गिनती नहीं, तृष्णाओंकी संख्या उतनी ही है जितने आकाशमें सितारे। एक वासना, एक इच्छा या एक तृष्णाके पूर्ण होते ही दस नयी तृष्णाओंका जन्म हो जाता है। इस प्रकार कामनाओं और नित्य नयी आवश्यकताओंका मोह-बन्धन लगातार हमें बाँधे रहता है। हम सांसारिक भोग-विलासके हरदम दास बने रहते हैं; इच्छाओंके प्रपञ्चमें जकड़े रहते हैं।

एक विद्वान्‌ने सत्य ही लिखा है, 'दुनियाको मत बाँधो, अपनेको बाँध लो।' अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर लो तो तुम विजयी कहलाओगे।

अपनी इन्द्रियोंकी रखवाली वैसे ही करो, जैसे एक कर्त्तव्यनिष्ठ सिपाही खजानेके दरवाजेकी रक्षा करता है। यदि चोरोंको अवसर मिलेगा तो इन्हीं दरवाजोंसे घुसकर सारा खजाना खाली कर देंगे।

इसलिये खबरदार ! दरवाजोंपर गफलत न होने देना। इन्द्रियों-पर पापका अधिकार न होने पाये, अन्यथा धर्म, नीति, चरित्र, पुण्य, कीर्ति, यश, प्रतिष्ठाका खजाना लुट जायगा।

मनके संयमसे स्वर्ग मिलता है, किंतु अनियन्त्रित इन्द्रियाँ तो नरककी ओर ले दौड़ती हैं। क्या तुम नहीं जानते कि उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घजीवन, दिव्य बुद्धि और सांसारिक सम्पदाएँ इन्द्रिय-निग्रहसे ही मिलते हैं, जिसने इन्द्रियोंके ऊपर काबू पा लिया है, वह हर परिस्थितिमें पर्वतकी तरह दृढ़ और स्थिर रह सकता है।

संयम वह गुण है जिसपर भारतीय संस्कृति टिकी है। हम एक संयमी जाति हैं। हमारे यहाँ संयमका बड़ा व्यापक प्रयोग है।

हमें चाहिये कि खान-पान, वाणी, विचार, चिन्तन—सर्वत्र ही आत्मसंयमका प्रयोग करें। हमारा मन जब फालतू, व्यर्थके अनीतिकर चिन्तनमें फँसता है, तो हमें उसपर कठोर नियन्त्रण करना चाहिये। जब क्षुद्र अनुराग, मोह, शंका आदि मनोविकारोंके बन्धनमें बँधता है, तब उसका निग्रह करना चाहिये। जब दूसरोंकी खराबियोंकी थोथी आलोचनामें फँसता है, तब उसे संयमपूर्वक रोकना चाहिये।

(२)

दैनिक जीवनमें ही संयमका आत्मशिक्षण और अभ्यास होना चाहिये। यदि हम समझे कि दो-चार दिनके साधारणसे अभ्याससे यह कार्य हो जायगा, तो यह हमारी भूल है। संयमका क्षेत्र अति विस्तृत है। प्रत्येक मोर्चेपर संयमका अभ्यास आवश्यक है।

मान लीजिये, आपके मनमें स्वादिष्ट भोजनकी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। आप पहले अपना दैनिक भोजन करते हैं। उसके बाद कुछ दूध-रबड़ी खाते हैं। फिर मिठाई सामने आ जाती है तो आप इस ओर आकृष्ट हो जाते हैं और स्वास्थ्यकी कुछ परवा न

कर अनाप-शनाप मिठाई खा जाते हैं। यह असंयम आपके स्वास्थ्यको नष्ट करनेवाला और आत्मिक पतनका द्योतक है। अनियन्त्रित जिह्वावाले व्यक्ति कभी जीवनका आनन्द नहीं ले पाते। अधिक भोजनका परिणाम अधिक आलस्य और अहितकर चिन्तन है। इन्द्रियोंको और भी उत्तेजित करने और विकारोंको बढ़ानेका साधन है।

आप किसी मादक द्रव्य—मद्य, भंग, सिग्रेट, गाँजा, चाय, काफीके बन्धनमें बँध गये है, इनके बिना आपको शून्यता प्रतीत होती है। अतः समझ लीजिये कि आपके चरित्रमें संयमकी कमी है।

आपके नेत्र घृणास्पद, वासनासे भीगे दृश्योंको देखनेको दौड़ते हैं। बडे वेगसे सिनेमाके चल-चित्रों, नृत्यो, नग्न मानव-शरीरोकी ओर आकृष्ट होते है, तो यह मनकी दुर्बलताके चिह्न हैं।

आपके कान संगीत (प्रायः उत्तेजक निन्द्य गाने) की ओर भागते हैं। अपने वास्तविक उद्देश्यपर मन एकाग्र न कर आप उस सस्ते संगीतकी ओर खिंच जाते है, तो आप बन्धनमें पड़ गये है।

आपको जहाँ बोलना चाहिये, वहाँ आप बोलते नहीं। जहाँ नही बोलना चाहिये, वहाँ निरन्तर बकवास करते है, भटक जाते है, आवेशमे आ जाते हैं, अपशब्दों तकका उच्चारण कर बैठते है और सबके बुरे बनते हैं। इस अवसरपर भी आपको आत्मसंयमसे ही लाभ हो सकता है।

साँझसे ही आप बिस्तर पकड़ लेते है और दस घंटे निद्रा या तन्द्रामें पड़े रहते है। मध्याह्नको भी भोजनके पश्चात् एक-दो घंटे सो जाते हैं। निद्रासे ही पीछा नहीं छूटता। सारे दिन निद्रा ही सताया

करती हैं। ऐसी अमर्यादित निद्राके वशमें रहनेवाला कैसे कुछ ठोस कार्य कर सकता है? अधिक भोजनका फल अधिक निद्रा, अधिक निद्राका अर्थ आलस्य और आलस्यका अर्थ सार्वत्रिक पतन और सर्वनाश है।

यदि संयम न हो और हमारे कार्य ऊपर लिखे तरीकोसे ही चलते रहें, तो हम अपना समग्र जीवन खान-पान, व्यर्थ चिन्तन, दोष-दर्शन, इन्द्रिय-पूर्ति और निद्रामें ही समाप्त कर दें। पर ऐसा नहीं होता। ईश्वरने हमें एक ऐसी शक्ति दी है, जिसे विवेक कहते हैं। यह विवेक हमें मर्यादा, नियम-बन्धन और नाप-तोल कर चलना सिखाता है। विवेक होनेपर हम स्वयं अपने मनके द्रष्टा बन जाते हैं। अपने मनके व्यापारकी अच्छाई-बुराई देखते हैं। निरुपयोगी और फालतू क्रियाओंका निरीक्षण करते है।

भीष्म एवं युधिष्ठिरके संवादमेंसे ये वाक्य विचारणीय हैं—

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः।
तत्रावगाहं कुरु पाण्डुपुत्र ! न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा॥

धर्मराज ! तुम उस आत्मारूपी नदीमें डुबकी लगाकर स्नान करो, जो संयमरूपी पवित्र तीर्थ है, जिसमें सत्यरूपी जल भरा है, शील जिसका तट है और जिसमें दयारूपी लहरे उठ रही हैं। इसीसे आत्मा शुद्ध होगी। जलमे अन्तरात्माकी शुद्धि नहीं हो सकती।

तमोगुणो अर्थात् प्रमाद, आलस्य, मोह, निद्रा, वासना, शिथिलता—आदिसे मुक्तिके लिये केवल संयमके अभ्यासकी आवश्यकता है। विषयोंके ध्यान अथवा चिन्तनसे उनमें आसक्ति हो जाती है, इस आसक्तिसे इनकी प्राप्तिकी इच्छा होती है और

तमोगुणके इच्छित फल मिलनेसे सर्वनाश हो जाता है। अतः चौबीसों घंटों अपने आपको संयमपूर्ण नियमोंमें बाँध रखना चाहिये।

नियम-बन्धन एक मानसिक बन्धन है। जब आप मनमें यह दृढ़ निश्चय करते हैं कि अमुक नियमोंसे रहेंगे या अमुक-अमुक नियमोंका जीवनमें पालन करेंगे, तो आप मन-ही-मन एक गुप्त शक्तिसे अपने जीवन और कार्योंको बँधा हुआ पाते हैं। नियमोंके पालनका निश्चय ही एक साधन है। इसमें प्रारम्भमें मन और शरीरको कुछ कठिनाई अवश्य पड़ती है, पर बार-बार नियमोंका पालन करनेसे मनका नियन्त्रण हो जाता है।

नियम हमें संयमकी शिक्षा देनेवाले अमूल्य अंकुश हैं, जो हमें उच्च प्रकारके सांस्कृतिक जीवनकी ओर ऊँचा उठाते हैं। नियमकी जंजीरोंमें बँधकर मनुष्य व्यर्थके निरुपयोगी कार्योंसे छूट जाता है। मन व्यर्थकी क्रियाओंसे बच जाता है। मनकी स्वतन्त्रताकी एक विशेष सीमा निर्धारित हो जाती है। इसकी मर्यादाके बाहर जाते ही हम चौंक जाते हैं। गुप्त मन हमें नियमोल्लङ्घन करनेपर प्रताडित करता है। वस्तुतः हम फिर मनकी लगामको खींचकर उसकी निर्बाध स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगा देते हैं।

नियमोंमें बँधकर मनुष्यकी शक्तिका विकास होता है। व्यर्थ-चिन्तन, व्यर्थके कार्य और इन्द्रियोंके प्रलोभनोंसे बचकर आहार-विहारमें संयम लानेसे मनुष्यका शरीर श्रमी, बुद्धि विवेकवती और मन शक्तिशाली बनता है। जितेन्द्रियता व्यक्तिके निर्माणमें सर्वाधिक महत्त्व रखती है।

प्रकृति अपने नियम नहीं छोड़ती । इस संसारकी प्रत्येक गति कुछ गुप्त नियमोंके अनुसार चल रही है । ऋतुओंका आना-जाना, वृक्षोंके फल-फूल, पत्तियोंका उद्भव, जीवविज्ञानके नाना कार्य भौतिक विज्ञानके अनेक नियमोंपर चल रहे हैं । सृष्टि अपने नियम नही छोडती । समस्त विज्ञान हमें नियमोंका महत्त्व स्पष्ट कर रहे हैं । फिर, मनुष्य अपने नियमोंको छोड़कर कैसे उन्नति कर सकता है ? मनुष्यकी अपरिमित शक्तिका विकास मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक नियमोंके पालनसे ही हो सकता है ।

उदाहरणके लिये शारीरिक नियमोंको ही ले लीजिये । शरीर एक पेचीदा यन्त्र है । पर्याप्त श्रम, नियमित तथा संतुलित भोजन, मनोरञ्जन, छः-आठ घंटेकी गहरी निश्चिन्त निद्रा, पर्याप्त आराम, प्रसन्नता आदि आवश्यक हैं । यदि इनमेंसे किसी भी नियमको भङ्ग कर दिया जाता है, तो जीवन अव्यवस्थित हो जाता है । फलतः रोग और शारीरिक कष्ट उत्पन्न हो जाते हैं । यही कारण है कि [illegible] इनमें कोई भी शारीरिक नियमोंका उल्लङ्घन नहीं कर पाते । मानसिक और बौद्धिक नियमोंका अनेक बार अतिक्रमण होता है और मनका सन्तुलन नष्ट हो जाता है । अतः अपने आपको कठोर नियमोंके बन्धनमें बाँधे रखिये । इससे आपकी सभी शक्तियाँ बढ़ती रहेंगी और अपव्यय न होगा । नियम टूटते ही संयम नष्ट हो जाता है और शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं । मन-इन्द्रियोंके गुलाम न रहकर उनको नियन्त्रणमें रखना ही अपने आपका स्वामी बनकर रहना है ।

ईश्वरीय शक्तिकी जड़ आपके अंदर है

संसारमें हाथी, घोड़े, भैंसे, बैल इत्यादि बड़े शक्तिशाली जीव हैं। इनकी शारीरिक शक्तिकी सहायतासे मनुष्य बड़े-बड़े लट्ठे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाता है, पेड़ गिराता है, खेत जोतता है, कुँओंमेंसे जल निकालता है और भारी—भरकम शिलाखण्डोंको ढोता है। घोडे तीव्र गतिसे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाते है और मनुष्यकी आज्ञाओंका पालन करते है; परतु स्वयं हाथी, घोड़े, बैल इत्यादिको यह ज्ञान नहीं है कि शक्ति उनके अंदर छिपी है। वे उनकी पीठपर बैठे या डंडेसे हाँकते हुए आदमीमें शक्ति समझते हैं और चार पसलीके आदमीको आत्मसमर्पण कर देते हैं। यदि उन्हे किसी प्रकार यह ज्ञान हो जाय कि आदमीमें उनकी अपेक्षा बहुत कम शक्ति है, तो वे क्षणभरमे उसे धराशायी कर सकते हैं। घोड़े, हाथी कभी उसके वाहन नहीं रह सकते। सम्भव है वे मानवको ही अपना वाहन बना लें, पर उन्हे अपने जीवनभर अपनी गुप्त शक्तियोंका ज्ञान नहीं होता और वे छोटेसे मनुष्यके गुलाम बने रहते हैं।

मानव-समाजमें भी उपर्युक्त नियम लागू होता है। हमें दो प्रकारके व्यक्ति मिलते है। एक तो वे हैं, जिन्हें अभीतक अपनी गुप्त शक्तियोंका ज्ञान नही हुआ है, अन्धकारमें पड़े परतन्त्रता और बेबसीका जीवन व्यतीत कर रहे हैं। दूसरे वे हैं, जिन्हें अपनी शक्तियोंका ज्ञान हो चुका है। अधिकांश व्यक्ति प्रथम वर्गके हैं जिन्हें शक्तिका ज्ञान नहीं है। ये व्यक्ति सदा किस्मतको कोसा

करते हैं। कभी संसारकी प्रतिकूलताको दोष दिया करते है। उन्हे स्वयं अपने ऊपर विश्वास नही है, अतः वे अपना जीवन परवशता, मजबूरी और लाचारीमें काट रहे हैं।

विश्वास कीजिये आपमें अनन्त शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। ईश्वरने अपने पुत्र—मनुष्यको असीम शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, दैवी आत्मिक शक्तियोंसे परिपूर्ण कर पृथ्वीपर भेजा है। आपकी शक्तियाँ इन्द्रके वज्रोंसे अधिक शक्तिशालिनी हैं। आपका मस्तिष्क शक्तियोंका विशाल भण्डार है। आपके शरीरके अङ्ग-अङ्गमें बल, स्फूर्ति और तेज भरा हुआ है। आपकी आत्मा अद्भुत दैवी सामर्थ्योंकी पुञ्ज है। सूर्यके तेज तथा हृदयस्थ आत्मतेजमें कोई भेद नही है।

सच मानिये, आप ईश्वरके अंश हैं। ईश्वर सर्वोच्च शक्तियोंके केन्द्रबिन्दु हैं। वस्तुतः वे सभी शक्तियाँ बीजरूपसे आपमे विद्यमान है, जो ईश्वरमें हैं। ईश्वर सत्-चित्-आनन्दस्वरूप हैं। अभी आप अपने आपको शरीर मानते हैं; पर वास्तवमें आप सत्-चित्-आनन्दस्वरूप आत्मा है। आप स्थूल नहीं, सूक्ष्म हैं। आप आत्मा हैं। आप अमर हैं। आप विश्वमें व्याप्त ईश्वरीय शक्ति है। आप दिव्य हैं। मनमें यह भाव मत लाइये कि 'मै नीच हूँ। अशक्त हूँ। डरपोक अथवा कायर हूँ।' शक्तिकी जड़ आपके भीतर है। ईश्वरका राज्य आपके भीतर है। आप व्यर्थ ही ईश्वरीय शक्तियोंको दुर्बल मानवके बनाये मठ-आश्रमोंमें अथवा गिरजाघरोंमें ढूँढ़ते फिरते हैं। ईश्वरीय दिव्यतम शक्तिका आदिस्रोत तो स्वयं आपके अन्तरिक्षमें प्रवाहित हो रहा है। इसीको खोज निकालिये और दिव्य जीवन व्यतीत कीजिये।

कभी न कहिये कि आप अमुक कार्य करनेके योग्य नहीं है अथवा आपमे उसके लिये पर्याप्त बल या साधन नहीं है। आपमें सब प्रकारके उच्चतम सामर्थ्य भरे पड़े हैं। आप अपने निश्चय, बल, संकल्पकी दृढ़ता, अटूट परिश्रमसे जो चाहें कर सकते हैं, आपकी सदैव विजय होनी है। यदि अपने इष्ट मार्गपर लगे रहें तो आप परिस्थितियोंको अवश्य बदल सकेंगे। पराजयका विचार मनमें रखना एक खतरा है। इसे सदाके लिये निकाल देना चाहिये। जैसा विचार मनमें आयेगा, वैसा ही कार्य प्रकट होगा। जैसा बीज होगा, वैसा ही वृक्ष उत्पन्न होगा। अतः कमजोरी, निर्बलता, पराजय, हीनत्वके विचार रखना एक खतरा है। कभी भी वह कटु फल उत्पन्न कर सकता है; क्योंकि विचार तो एक सूक्ष्म सक्रिय तत्त्व है। विचारोके परमाणु मनःप्रदेशमें बिखरकर उसे अपने अनुकूल बना लेते हैं। राग, द्वेष, घृणा, स्वार्थ और ईर्ष्याके विचारोंका दूषित वातावरण मनमें अशान्ति उत्पन्न करता और संतुलनको छिन्न-भिन्न कर देता है, नाना प्रकारके उद्वेग और उलझने उत्पन्न कर देता है। अशान्ति, भय, घबराहट, चिड़चिड़ापन, अस्थिरता सब गलत प्रकारके विचारोंके दुष्परिणाम हैं।

अतः अपनी शक्तिके प्रति मनमें अविश्वासकी दीन-हीन भावना मत आने दीजिये। अपने मानसिक वातावरणको भय, भ्रान्ति, शंका, संदेह और चिन्ताके मनोवेगोंसे मुक्त रखिये। ये निकृष्ट विचार मनुष्यकी शक्तिको पंगु करनेवाले हैं, अन्तःकरणकी श्रद्धाकी दुर्बलताके सूचक हैं। अपने ऊपर विश्वास करना ऐसा मन्त्र है जिससे बल बढ़ता है।

जैसा हम देखते, सुनते या सोचते हैं, वैसा ही हमारे अन्तर्जगत्का निर्माण होता है । हम जो-जो वस्तुएँ बाह्य संसारमें देखते हैं, हमारी अभिरुचिके अनुसार उनका प्रभाव हमारे अन्तःकरणपर पड़ता है । प्रत्येक अच्छी मालूम होनेवाली प्रतिक्रियासे हमारे मनमें एक मानसिक मार्ग बनता है । क्रमशः वैसा ही चिन्तन, विचार या कार्य करनेसे यह मानसिक मार्ग दृढ़ बनता जाता है । अन्तमें एक विचार ही आदत बनकर मनुष्यको अपना दास बना लेता है ।

जो व्यक्ति अपनी शक्तियोंके प्रति असीम विश्वास बनाये रखने और उन्हें निरन्तर बढ़ानेका अभ्यास करता है, वह उन्नतिके पथपर चलता है । दूसरोंकी और अपने चरित्रकी अच्छाइयोंपर ध्यान लगाइये । सर्वत्र अच्छाइयाँ, शक्तियाँ, दैवी गुण देखनेसे मनुष्य स्वयं शक्तियों और गुणोंका केन्द्र बन जाता है ।

अच्छाई देखनेकी आदत एक प्रकारका पारस है । जिसके पास अच्छाई देखनेकी आदत है, वह उसीकी शक्तिसे दिव्य गुणोंकी सृष्टि करता है । उस केन्द्रसे ऐसा विद्युत्-प्रकाश प्रसारित होता है, जिससे सर्वत्र सभ्यता और दिव्यताका प्रकाश होता है । जिस स्थानपर नैतिक माधुर्य एकीभूत हो जाता है, वहीं सच्चा आत्मिक सौन्दर्य विद्यमान है । अतः यह मानकर चलिये कि आप असीम शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंके मालिक हैं ।

शक्तियोंका निरन्तर उपयोग कीजिये

जो शक्तियाँ ईश्वरीय देनके रूपमें प्रयोग, उपकार या समाज-सेवा आदिके लिये आपको दी गयी हैं, उनका निरन्तर उपयोग कीजिये । प्रतिदिन उन्हें कार्यमें लेनेसे शक्तियोंका विकास होता

है, पर निश्चेष्ट छोड़ देनेसे वे क्षीण हो जाती है। अंग्रेजीमें एक कहावत है—'प्रतिदिन काममें आनेवाली चाबी तेज चमकती है।' अर्थात् जो चाबी रोज काममें नहीं आती, वह जंग लगकर नष्ट हो जाती है। यही कहावत हमारी शक्तियोंके सम्बन्धमें भी है। हम जिस-जिस शक्तिसे काम लेते रहेंगे, वही पुष्ट रहेगी, शेष नष्ट हो जायगी। शक्तियाँ आपसे यह माँग करती है कि उनसे निरन्तर काम लिया जाय, कभी खाली न छोड़ा जाय। वे उस भूतकी तरह हैं जिसे कुछ-न-कुछ काम चाहिये,जो कभी भी आलस्यमें नहीं बैठ सकता।

उदाहरणके लिये अपने शरीरको ही ले लीजिये। यदि आपको खूब खिलाया-पिलाया जाय और जेलखानेमें बंद कर दिया जाय, जहाँ आप सारे दिन चारपाईपर पडे रहे, तो पाचनक्रिया और रक्त-संचारमें खराबी आने लगेगी, शरीर दुबला हो जायगा, एक-एक क्षण काटना दूभर हो जायगा, प्रगाढ़ निद्राका आनन्द आपको न मिल सकेगा, भूख-प्यास, चेहरेका सौन्दर्य सब क्षीण हो जायगा। हमारा शरीर एक मशीनकी तरह है। जैसे व्यर्थ पड़े रहनेसे अच्छे-से-अच्छे इंजिनको जंग चाट जाता है और उसे चलाना कठिन हो जाता है, उसी प्रकार पहलवान-से-पहलवान व्यक्ति भी केवल खाय और पड़ा रहे, तो रोगी हो जायगा। आपने प्रायः उन साधुओंको देखा होगा, जो एक हाथ ऊँचा उठाये रहते हैं। बहुत समय व्यतीत होनेपर वह सूख जाता है। उसमें रुधिरका संचार बंद हो जाता है। उस हाथकी शक्तिका उपयोग न होनेसे उसकी शक्तियाँ मारी जाती हैं। अतः हमें चाहिये कि अपने शरीरसे पर्याप्त कार्य लें, किसी अवयवको आलस्यके जंगमें न फँसने दें। शारीरिक शक्तियोंका

उपयोग करनेसे शरीरका अङ्ग-अङ्ग शक्तिसे दमक उठेगा, हम बलवान् बन जायँगे, पुष्ट और बलिष्ठ हाथ-पाँवके स्वामी बनेंगे। व्यायाम क्या है? व्यायाम वह विधि है जिसके द्वारा शरीरके सभी अवयवोंसे काम लिया जाता है। फलतः शक्तियाँ बढ़ती हैं।

शरीरकी भाँति ही मस्तिष्क और बुद्धि भी निरन्तर उपयोग, नये-नये विषयोंके अध्ययन, स्वाध्याय, मनन, पठन-पाठन, भ्रमण, सद्ग्रन्थावलोकनसे बढ़ती है। प्रत्येक पुस्तक एक ऐसे मस्तिष्कका सत्सङ्ग है जिसके साथ रहकर हम नया ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। नये-नये व्यक्तियोंसे मिलिये; नये दृश्य, नयी-नयी घटनाएँ देखिये और उनमें सार-तत्त्व, अनुभवपूर्ण उपयोगी तत्त्वोंको ग्रहण कीजिये। इन अनुभवोंसे आपको जीवनयात्रामें लाभ होगा।

ग्रहण-शक्ति बढ़ाते चलिये

आपके अनुभव, संसारका इतिहास, समाजमें इर्द-गिर्द होनेवाली अनेक ऐसी घटनाएँ हैं, जिनसे आपका ज्ञान बढ़ सकता है। आपकी प्रत्येक गलती आपको गुप्तरूपसे कुछ शिक्षा, कुछ उपदेश देती है, आपको आगे बढ़ाती है। इन अनुभवों, ग्राह्य वस्तुओं एवं उपदेशोंमें आप अपनी ग्रहण-शक्तिकी योग्यताके अनुसार ही उन्हें ग्रहण कर सकते हैं। यदि आप अपनी ग्रहण-शक्तिको बढ़ावें; जो देखते, सुनते या अनुभव करते हैं, उसे ग्रहण करें, स्मृतिमें रक्खें, तो प्रगतिके पथपर आगे बढ़ सकते हैं। जो घटनाएँ या अनुभव आपको मिलें, उन्हें ठीक तरह समझें, शङ्काओंका समाधान करें, सार-सार ग्रहण करें और व्यर्थको भूलें, भविष्यमें गलती न करें तो पर्याप्त उन्नति कर सकते हैं।

यह विश्वास रखिये कि परिस्थिति-निर्माणकी योग्यता आपमें भरी हुई है। हर व्यक्ति स्वयं अपने पुरुषार्थसे अपने संसारका निर्माणकर्ता है। आप उच्चतम ईश्वरीय शक्तियोंकी सामर्थ्य लेकर चल रहे हैं। कोई दुष्ट आपका मार्ग अवरुद्ध नहीं कर सकता, बाधाएँ ठहर नहीं सकतीं; क्योंकि आपके शरीर, मन, कर्मसे परमेश्वरकी दिव्य शक्तियाँ प्रवाहित हो रही हैं। ईश्वर आपके द्वारा अपने शुभ कार्य कर रहा है। ईश्वर आपके भीतरसे चमक रहा है। ईश्वरत्वको अपने द्वारा प्रकट कीजिये, ईश्वरमें रहिये-सहिये। ईश्वर होकर सात्त्विक पदार्थ खाइये और ईश्वर होकर ही पवित्र पदार्थ पीजिये। ईश्वरमें श्वास लीजिये और सत्‌का साक्षात् कीजिये। शेष शक्तियाँ स्वयं आपके पीछे-पीछे आती रहेंगी।

यस्याखिलामीवहभिः सुमङ्गलै-
र्वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः।
प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगद्
यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः॥

(श्रीमद्भा० १०।३८।१२)

जब समस्त पापोंके नाशक प्रभुके परम मङ्गलमय गुण, कर्म और जन्मकी लीलाओंसे युक्त होकर वाणी उनका गान करती है, तब उस गानसे संसारमें जीवनकी स्फूर्ति होने लगती है, शोभाका संचार हो जाता है, सारी अपवित्रताएँ धुलकर पवित्रताका साम्राज्य छा जाता है; परंतु जिस वाणीसे उनके गुण, लीला और जन्मकी कथाएँ नहीं गायी जातीं, वह मुर्देको ही शोभित करनेवाली है।

शक्ति, सामर्थ्य और सफलता

मनुष्य शक्ति, सामर्थ्य और सफलताका सिपाही है, अज्ञान एवं मोहवश होकर अपने-आपको दीन, हीन, शक्तिविहीन समझता है। अपनी दैवी शक्तियोंको विस्मृतकर कायरका जीवन व्यतीत करना कितनी बड़ी मूर्खता है। दीनावस्थामें जन्म लिया, अभाव और दुःखोंमें पलते-पनपते रहे और विषादमय जीवन व्यतीत करते हुए मृत्युको प्राप्त हो गये—ऐसा जीवन किस अर्थ? यह तो सृष्टिकर्ता आदिपिता परमात्माका अपमान है।

परमेश्वर चाहते हैं कि मनुष्य अपनी गुप्त शक्ति, अगाध सामर्थ्य और सफलताको पहचानें और सामर्थ्यवान् जीवन व्यतीत करें, दिन प्रति दिन, निरन्तर समुन्नत रहें। हम सबके लिये परमेश्वरने

यश, ऐश्वर्य, मान, प्रतिष्ठाका बृहत् भण्डार इस विश्वके कोने-कोनेमें संचित कर रक्खा है। इन्हे हम योग्यता, ईमानदारी एवं परिश्रमसे प्राप्त करते हैं।

हमारी शक्तियोंका गुप्त केन्द्र हमारा अन्तर्मन है। हमारा मन सागरमें तैरते हुए आइस बर्ग (बर्फका पर्वत) की तरह है। जिस प्रकार आइस बर्गका आठवाँ भाग ऊपर सतहपर और शेष जलमग्न रहता है, उसी प्रकार मनुष्यकी कुछ ही शक्तियोंका विकास हो पाता है। हमारे मनके सात भाग अविकसित, निश्चेष्ट और आलस्यमें ही पड़े रहते हैं। हमारे गुप्त मनमें मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक शक्तियो एवं सामर्थ्योंका एक विशाल अंश विकासकी प्रतीक्षा और अवसर देखा करता है। हमारी गुप्त सामर्थ्य मनकी गुप्त कन्दराओंमें सुप्तावस्थामें निश्चेष्ट पड़ी जंग खाया करती है।

शक्ति और सामर्थ्यका गुप्त केन्द्र आपका गुप्त मन ही है। इसमें आपकी नाना गुप्त शक्तियाँ, योग्यताएँ और प्रतिभाएँ संचित रहती हैं। दूसरे शब्दोंमें, आपकी चेतनताके गुप्त भागमें शक्तिका वह केन्द्र रहता है, जिसे अज्ञात चेतना (Sub-conscious and Un-conscious) कहते हैं। इस केन्द्रस्थलमें अनेक मनोभाव, विचार, कल्पनाएँ और अनुभूतियाँ एकत्रित रहती हैं। आपके संकल्प, मिथ्याविश्वास, भावनाएँ चुपचाप आपके जाग्रत् जीवनके कार्य-व्यापारको क्षण-क्षण प्रभावित किया करते हैं। इस केन्द्रके स्वास्थ्य, समुचित विकास और संतुलनपर आपकी सफलता निर्भर है। अज्ञात चेतनासे कार्य लेनेवाला आपका गुप्त मन जाग्रत् मनकी अपेक्षा अधिक सशक्त,

जागरूक और सचेत है। तुच्छ-से-तुच्छ, हल्की-से-हल्की, छोटी-छोटी अनुभूतियाँ इसमें एकत्रित रहती हैं। दिन-रातके चौबीसों घंटे अन्तश्चेतनाका गुप्त व्यापार (Action) चला करता है। अज्ञात चेतनाका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है।

एक महात्माने अन्तश्चेतनाकी शक्ति और सामर्थ्यकी ओर संकेत करते हुए लिखा है, 'मेरे हृदयमें किसी अज्ञात देव-शक्तिका निवास है। वह मुझसे जैसा करवाता है, वैसा ही मै करता हूँ।'

आपके लिये श्रेयस्कर यही है कि आप अपने गुप्त मनकी असंख्य शक्तियोंपर विश्वासकर जीवनमें प्रविष्ट हों। गुप्त मनसे ही शक्ति-सामर्थ्यका स्रोत फूट निकलेगा, आपकी व्यक्तिगत शक्तियोंका विकास होगा—ऐसा मानकर चलें। गुप्त मनके विकासका श्रेष्ठतम मनोवैज्ञानिक नियम सूचना या सजेश्चन (Suggestion and Auto-Suggestion) है। जो गुण, जो मानसिक, शारीरिक या बौद्धिक भावनात्मक शक्तियाँ आपको इष्ट हों, उन्हें दृढ़तापूर्वक गुप्त मनमें दुहराइये, चेतनाके स्तरपर रखिये, उन्हींमें रमण कीजिये। सूचनानुगामिता अर्थात् दिये हुए सजेश्चनोंके अनुसार कार्य करना आपके गुप्त मनका गुण है। संकेतोंकी दृढतासे पुनरावृत्ति कर आप स्वस्थ, तेजस्वी, सामर्थ्यपूर्ण अन्तर्मनका निर्माण कर सकते है। अच्छी आत्मप्रेरणाएं जब दृढतासे चेतनाके स्तरपर लायी जाती है, तब उनसे नवीन सामर्थ्योंका निर्माण होता है।

डा० गणपुलेका विचार है कि 'अन्तर्मनकी सूचनानुगामिताकी कोई सीमा नहीं है। इसी नींवपर मानसोपचारकी इमारत खड़ी

की जा सकती है। अन्तर्मन यदि सूचनानुगामी न होता तो मानसोपचार शायद ही सम्भव हो सकता।' जो बात रोगोंके लिये सत्य है, वही शक्ति-सामर्थ्य-वृद्धिके लिये और भी सत्य है। यदि हम गुप्त मनको शक्ति-सामर्थ्यकी सूचनाओं (Suggestions) में ओतप्रोत रक्खे और दृढ़तापूर्वक उनमें विश्वास करें तो आन्तरिक शक्तिके केन्द्रको जाग्रत् कर सकते हैं। हमारे यहाँ कीर्तन, मनन, चिन्तन एवं अखण्ड जाप संकेत-विधियाँ ही है। अखण्ड-कीर्तन, पठन, भजन, पूजन इत्यादिसे हमारे गुप्त मनकी शुभ-सात्त्विक शक्तियाँ जाग्रत् होती हैं। यदि हम अन्तर्मनको शक्ति-सामर्थ्यकी शुभ सूचनाएँ देना प्रारम्भ कर दे तो धीरे-धीरे वह उन्हें ग्रहण करने लगेगा और तदनुकूल उसका निर्माण हो जायगा। व्यक्तिमात्रको इसी महान् शक्तिकेन्द्रके शोधनद्वारा आन्तरिक सामर्थ्योंकी अभिवृद्धि करनी चाहिये।

विश्वास कीजिये, आपके भीतर ऐसी-ऐसी विशेषताएँ और गुप्त शक्तियाँ भरी पड़ी हैं कि उनके विकास एवं प्रदर्शनसे आप संसारको चमत्कृत कर सकते हैं। आपकी एक मौलिकता है, अपने व्यक्तित्वका अपना ही महत्त्व है। ये विशेषताएँ विशेषरूपसे आपको ही दी गयी हैं। अपनी रुचि, स्वभाव और चरित्रका अध्ययन कीजिये। अर्थात् अपनी विशेषता माळूम कीजिये—यही अग्रसर होनेकी आधार-शिला है। विश्वका प्रत्येक पुरुष, बालक, स्त्री, यहाँतक कि जानवरतक एक निजी विशेषता लेकर पृथ्वीतलपर आया है। परमेश्वरने अन्य शक्तियाँ तो सामान्यरूपमें ही प्रदान की हैं, किंतु

प्रत्येक व्यक्तिमें एक विशिष्टता (Strong point), एक महत्ता, एक खास तत्त्व अन्य तत्त्वोंकी अपेक्षा तीव्रतर है । जब कोई मनुष्य अपनी इस विशेषताको जान जाता है और निरन्तर उसीके विकासमें अग्रसर होता है, तब उस विशेष दिशामें वह सर्वाधिक उत्कृष्टताका उपार्जन करता है । उच्चतम स्थान सदा रिक्त रहता है । योग्यतम व्यक्तिके लिये हमेशा गुंजाइश रहती है ।

क्या आपने कभी अपनी विशेषताएँ, अपनी प्रतिभा (Talents) को जाननेकी चेष्टा की है ? क्या आपने आत्मनिरीक्षण किया है ? प्रत्येक प्रगतिशील व्यक्ति अपने-आपको तर्ककी कसौटीपर कसकर इस महान् सत्यका साक्षात्कार कर सकता है । आप व्यापक दृष्टिसे अपने व्यक्तित्व, गुणों और विशेषताओंका अध्ययन करें और अपने मुख्य गुणका विकास प्रारम्भ करें । आत्मनिरीक्षण वह साधन है, जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने चरित्रको समझनेका प्रयत्न कर सकता है ।

आत्मनिरीक्षणमें शान्त चित्त और स्थिर बुद्धि रखिये । इससे नीर-क्षीर-विवेकमें सहायता प्राप्त होती है । आवेश, उद्वेग और उत्तेजनाओंमें फँसे हुए व्यक्ति प्रायः शान्तचित्त हो अपने व्यक्तित्वका अध्ययन नहीं कर पाते । वे उद्विग्न रहकर नीर-क्षीरको पृथक् करनेवाले विवेकसे सहायता नहीं ले सकते । कुछ व्यक्ति विचारों या [illegible], मत स्वार्थकी संकीर्णता तथा पाण्डित्यके मिथ्या दम्भसे अपने आपको इतना जकड़ लेते हैं कि विवेकका सच्चा प्रकाश उनमें नहीं आ पाता । संकीर्णता, परदोषदर्शन, अहंकार, दम्भ आदि विवेकको पंगु कर देते हैं । ज्ञानका मुक्त प्रवाह अवरुद्ध

हो जाता है। उनकी वाणी तेजहीन और निस्सार हो जाती है।

मानसिक आलस्य (अर्थात् हानिकर मिथ्या विश्वासोंमें आबद्ध रहना, दकियानूसी विचार रखना) की घृणित गुदड़ी उतार फेंको और सत्यके व्यापक रूपको अनुभव करनेके लिये विवेकद्वारा रूढ़ियोंसे ऊपर उठो। स्वयं अपनी ओरसे मौलिक विचारधारामे संलग्न हो जाओ। जो व्यक्ति अपनी ओरसे प्रत्येक विषय एवं परिस्थितिपर विचार कर सकता है, वह समस्याका हल अवश्य निकाल लेता है।

आत्मनिरीक्षणसे मनका विकार दूर होता है और सत्यका प्रकाश प्रकट होता है। अपनी त्रुटियाँ ज्ञात होती है तथा सही मार्गपर आरूढ़ होनेके लिये आत्मिक बल प्राप्त होता है।

शान्तचित्त हो नेत्र मूँदकर किसी शान्त स्थानपर बैठ जाओ, शरीर और मनको शिथिल कर लो और सब सांसारिक विचारोंको हटाकर केवल 'आत्मनिरीक्षण' की भावनापर चित्तवृत्तियोंको एकाग्र करो। एक-एक कर अपने सम्पूर्ण दिन, सप्ताह, मास, वर्ष, जीवनके कार्योंकी आलोचना करो। जो कार्य तुम्हारे आदर्शोंसे गिरें, उनके प्रति ग्लानि, तथा जो कसौटीपर खरे उतरें, उनके प्रति संतोष प्रकट करो। इस अन्तर्दृष्टिसे मनमें हलके कार्य स्वतः दूर होने लगेंगे और मन स्थायी महत्त्वके कार्योंमें ही रमण करेगा।

उज्ज्वल भविष्यके लिये मनमें नयी-नयी कल्पनाओंके सुमधुर स्वप्न भरे-पूरे रखिये, 'मैं अपना जीवन सफल, सुखद, प्रेममय रक्खूँगा। मैं संसारमें आशा, उत्साह, बल, सुख-शान्तिकी अभिवृद्धि

करूँगा । चित्रकारी, संगीत, काव्य, विद्याद्वारा संसारमें आनन्द उत्पन्न करूँगा । स्वयं मेरा तथा मेरे सम्पर्कमें आनेवाले अन्य व्यक्तियोंका जीवन सुख-शान्तिमय होगा।' आदि विचार एवं प्रेरक कल्पनाएँ मनमें जाग्रत् रखनेसे हमारा गुप्त मन इन्हीं मानसिक दशाओंमें चलता है । वस्तुतः मानसिक समृद्धिके लिये ऐसी उत्तम प्रेरणाएँ अति आवश्यक हैं ।

ध्यानपूर्वक आत्मध्वनिको सुनते और तदनुसार कार्य करते चलिये । आत्म-ध्वनि पुष्ट, स्वस्थ और कल्याणकारी मार्गद्रष्टा है । उसका अनुसरण कर कार्य करनेसे अकल्याणकारी विचारों और दूषित कल्पनाओंसे मुक्ति प्राप्त होती है । सौ चक्षुओंवाले (Argus) की भाँति यह आवश्यक है कि आप मनकी प्रत्येक क्रियाका सूक्ष्म निरीक्षण करते और विरोधी घृणित विचारोंका तिरस्कार करते रहें । चित्तके प्रलोभनके साथ न प्रवाहित हो जायँ वरं उससे पृथक् होकर मनके द्रष्टा बनें । क्रमशः मनका व्यापार देखते-देखते और उसपर नियन्त्रण करते-करते आप तुरीयावस्थामें प्रविष्ट हो जायँगे । यही अभ्यास राजयोगकी सर्वोच्च समाधि है । जो साधक चित्तका निरीक्षण और नियन्त्रण कर मनोव्यापारको सही दिशामें रखनेका अभ्यास कर लेता है, उसने मानो साधनाकी पहली मंजिल पार कर ली है ।

जीवनमें किसी निश्चित उद्देश्यकी रचना कीजिये । यह पर्याप्त सोच-विचारका विषय है । अधूरे सोच-विचारका दुष्परिणाम उद्देश्यको पुनः-पुनः बदलना होता है । फिर साधक किसी भी दिशामें आगे

नहीं बढ़ पाता। अतः मित्रोंसे, विशेषज्ञों तथा स्वयं अपने अन्तर्मनसे विचार-विमर्श कर अपने जीवनोद्देश्यका निर्णय कीजिये और फिर पूर्ण श्रद्धासे उसकी प्राप्तिमें संलग्न हो जाइये।

श्रद्धा या आत्मविश्वास आपकी महत्त्वपूर्ण शक्ति है। जिन-जिन तत्त्वोंमें आपकी श्रद्धा है, वे आपको अवश्यमेव प्राप्त होनेवाले हैं। श्रद्धा आपकी सभी शक्तियोंके मूलमें रहनेवाली सार-स्वरूप है। प्रत्येक कार्य इसीके द्वारा सम्पन्न होता है। विश्वके सब सामर्थ्यवान् व्यक्ति इसी दिव्य शक्तिके बलपर जीवन-युद्धमें विजयी हुए हैं। यह आपके व्यक्तित्वमें पर्याप्त मात्रामें मौजूद है। इसे जाग्रत्‌भर करना है।

'मै निर्विघ्न आगे बढ़ सकता हूँ। शक्ति और सामर्थ्य मुझमें प्रचुरतासे विद्यमान हैं। मैं साधारण कार्योंमें अपनी मौलिकता प्रकट करता हूँ और पूरे जोरसे कार्य करता हूँ। सफलता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।'—जब मनुष्य इन संकेतोंमें पूर्ण विश्वाससे अग्रसर होता है, तब आत्मश्रद्धाकी दिव्य शक्ति उसमें धीरे-धीरे स्वतः प्रकट होती है।

विश्वास कीजिये कि आप शक्तिमान् हैं। विश्वास कीजिये कि अतुलित सामर्थ्योंका भंडार आपमें प्रचुरतासे भरा पड़ा है। विश्वास कीजिये कि आप जिस क्षेत्रमें चलेंगे, सफलता लेकर रहेंगे। विश्वास कीजिये कि आप अपनी सम्पूर्ण शक्ति एक ध्येयकी प्राप्तिमें एकाग्र कर देंगे। सच्चे धैर्य और लगनसे उसपर डटे रहेंगे। सत्य संकल्पसे अग्रसर होते रहेंगे। सत्यके प्रकाशमय रूपको देखेंगे।

मन.शक्तिको अपनी शक्तियोंपर केन्द्रित रखनेसे आत्मश्रद्धाकी वृद्धि होती है।

जिस क्षण मनुष्यको अपनी शक्तियो, गुप्त सामर्थ्यों, गुप्त ज्ञानका विश्वास हो गया, उसी क्षणसे वह जीवन-जागृतिका एक नया पृष्ठ खोलता हैं। इस जागरण (Awakening) को सब धर्मोंसे उच्च समझिये। इसमें गहरी सत्यता निहित है। इस आत्मश्रद्धाके दिव्य बलको अनुभव कीजिये और अपने लक्ष्य, क्षेत्र या कार्यमें लगाइये। आपको नवीनता और सामर्थ्यका अनुभव होगा। स्मरण रखिये, श्रद्धा आपके आत्माका एक प्रमुख अंश है। मनुष्यकी सब सिद्धियाँ श्रद्धाके अनुपातमें ही प्राप्त होती है।

अनुभूत नियम है—'प्रत्येकको उसकी आत्मश्रद्धा, उसके आत्मविश्वासके अनुसार ही प्राप्त होती है।'—यही महानियम मनोवाञ्छित वस्तु (सफलता) का निर्णय करता है। जितनी श्रद्धा, उतनी बल-बुद्धि, शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त होता है।

हम निरन्तर इस असीम शक्तिमय जगत्में आत्मश्रद्धाके अनुसार क्रीड़ा कर रहे हैं। हमारा जीवन-प्राण और सफलता हमे अपने विश्वासों और प्रयत्नोंके अनुसार प्राप्त हो रहा है। विघ्नोंके कारण जो [illegible] लुप्त हो चुकी है, उसे प्राप्त करनेमें सतत प्रयत्नशील रहिये। संशय, भय, कायरताका शिरश्छेद कीजिये। दृढ़ निश्चय, [illegible] संकल्प और प्रबल प्रयत्नद्वारा अपनी गुप्त सामर्थ्यको प्रकट कीजिये। शक्ति, सामर्थ्य और सफलता आपकी होकर रहेगी।